प्रवचन-क्रम

1. तेरी जो मर्जी 2
2. खोलो शून्य के द्वार 24
3. मेरा संन्यास वसंत है.... 44
4. जीवन एक अभिनय 64
5. हंसा, उड़ चल वा देस 83
6. मुझको रंगों से मोह.... 106
7. युवा होने की कला.... 133
8. अपने दीपक स्वयं बनो 154
9. ध्यान का दीया.... 176
10. प्रार्थना की कला.... 198
11. मेरा संदेश है: ध्यान में डूबो 221
12. नियोजित संतानोत्पत्ति 247
13. धर्म और विज्ञान की भूमिकाएं.... 271
14. तथाता और विद्रोह.... 298
15. एक नई मनुष्य-जाति की आधारशिला 323
16. हंसो, जी भर कर हंसो.... 347

प्रीतम छबि नैनन बसी

पहला प्रवचन

तेरी जो मर्जी

पहला प्रश्नः ओशो, नई प्रवचनमाला को आपने नाम दिया हैः प्रीतम छबि नैनन बसी! क्या इसके अभिप्राय पर कुछ प्रकाश डालने की कृपा करेंगे?

आनंद मैत्रेय, रहीम का प्रसिद्ध सूत्र हैः

प्रीतम छबि नैनन बसी, पर छबि कहां समाय।

भरी सराय रहीम लखि, पथिक आप फिर जाय।।

मनुष्य परमात्मा के बिना खाली है, बुरी तरह खाली है। और खालीपन खलता है। खालीपन को भरने के हम हजार-हजार उपाय करते हैं--धन से, पद से, प्रतिष्ठा से।

लेकिन खालीपन ऐसे भरता नहीं। धन बाहर है, खालीपन भीतर है। बाहर की कोई वस्तु भीतर के खालीपन को नहीं भर सकती। कुछ भीतर की ही संपदा चाहिए। बाहर की संपदा बाहर ही रह जाएगी। उसके भीतर पहुंचने का कोई उपाय नहीं है। धन के ढेर लग जाएंगे, लेकिन भीतर का भिखमंगा भिखमंगा ही रहेगा।

दुनिया में दो तरह के भिखमंगे हैंः गरीब भिखमंगे हैं और धनी भिखमंगे हैं। मगर उनके भिखमंगेपन में कोई फर्क नहीं। सच तो यह है कि धनी भिखमंगे को अपने भिखमंगेपन की ज्यादा प्रतीति होती है। क्योंकि बाहर धन है और भीतर निर्धनता है। बाहर के धन की पृष्ठभूमि में भीतर की निर्धनता बहुत उभर कर दिखाई पड़ती है। जैसे रात में तारे दिखाई पड़ते हैं। अंधेरे में तारे उभर आते हैं। दिन में भी हैं तारे, पर सूरज की रोशनी में खो जाते हैं।

गरीब को अपनी गरीबी नहीं खलती, अमीर को अपनी गरीबी बहुत बुरी तरह खलती है। यही कारण है कि गरीब देशों में लोग संतुष्ट मालूम पड़ते हैं, अमीर देशों की बजाय। तुम्हारे साधु-संत तुम्हें समझाते हैं कि तुम संतुष्ट हो, क्योंकि तुम धार्मिक हो। यह बात सरासर झूठ है। तुम संतुष्ट प्रतीत होते हो, क्योंकि तुम गरीब हो। भीतर भी गरीबी, बाहर भी गरीबी, तो गरीबी खलती नहीं, गरीबी दिखती नहीं, उसका अहसास नहीं होता। जैसे कोई सफेद दीवाल पर सफेद खड़िया से लिख दे, तो पढ़ना मुश्किल होगा। इसीलिए तो स्कूल में काले तख्ते पर सफेद खड़िया से लिखते हैं। पृष्ठभूमि विपरीत चाहिए, तो चीजें उभर कर दिखाई पड़ती हैं।

गरीब देशों में जो एक तरह का संतोष दिखाई पड़ता है, वह झूठा संतोष है, उसका धर्म से कोई संबंध नहीं है। लेकिन तुम्हारे अहंकार को भी तृप्ति मिलती है। तुम्हारे साधु-महात्मा कहते हैं कि तुम संतुष्ट हो, क्योंकि तुम धार्मिक हो। तुम्हारा अहंकार भी प्रसन्न होता है, प्रफुल्लित होता है।

पर यह सरासर झूठ है। अहंकार जीता ही झूठों के आधार पर है। झूठ अहंकार का भोजन है। सचाई कुछ और है।

तुम्हारे साधु-महात्मा कहते हैं कि देखो पश्चिम की कैसी दुर्गति है! वे तुम्हें समझाते हैं कि दुर्गति इसलिए हो रही है पश्चिम की, क्योंकि पश्चिम नास्तिक है, क्योंकि पश्चिम ईश्वर को नहीं मानता।

यह बात भी झूठ है। पश्चिम की दुर्गति इसलिए दिखाई पड़ रही है, क्योंकि पश्चिम में धन है, सुविधा है, संपन्नता है। संपन्नता के ढेर, तो भीतर की विपन्नता बहुत खलने लगती है। इतना सब बाहर है और भीतर कुछ

भी नहीं! तो प्राण रोते हैं। प्राण चाहते हैंः भीतर भी भराव हो। तो आदमी दौड़ता है। धन से नहीं भरे तो पद से भरे। तो हो जाऊं प्रधानमंत्री कि राष्ट्रपति! पद से न भरता हो तो शायद त्याग से भरे। तो त्याग दूं पद, तपश्चर्या करूं। व्रत-उपवास, योग, हवन-यज्ञ करूं।

मगर नहीं भरता है। भीतर का खालीपन ऐसे भरता ही नहीं। भीतर का खालीपन तो सिर्फ एक ही तरह से भरता है कि वह प्यारा तुम्हारे भीतर उतर आए। वही उतर सकता है तुम्हारे भीतर। परमात्मा के अतिरिक्त तुम्हारे भीतर किसी का कोई प्रवेश नहीं हो सकता। तुम्हारी प्रेयसी भी वहां नहीं जा सकती। तुम्हारा पति, तुम्हारी पत्नी, तुम्हारे बच्चे, कोई वहां नहीं जा सकते। सिर्फ एक परमात्मा की वहां गति है। सिर्फ वही तुम्हारे अंतरतम में विराजमान हो सकता है। वह भरे तो तुम भरो। वह आए तो तुम भरो। वह जब तक नहीं तब तक तुम खाली हो। और खाली हो तो रोओगे। खाली हो तो दुखी होओगे। खाली हो तो नरक में जीओगे।

रिक्तता ही तो नरक है। और सारे नरक तो कल्पित हैं--कि वहां चढ़े हैं कड़ाहे और लोग जलाए जा रहे हैं, और कड़ाहों में तले जा रहे हैं। यह सब बकवास है। ये सब मनगढ़ंत बातें हैं। ये तो सिर्फ तुम्हें डराने के लिए पंडित और पुरोहितों की ईजादें हैं। क्योंकि तुम भयभीत हो जाते हो तो गुलाम हो जाते हो। भयभीत को गुलाम बनाना आसान है, निर्भय को गुलाम बनाना असंभव है। तुम भयभीत हो जाते हो तो तुम हर तरह के अंधविश्वास के लिए राजी हो जाते हो। कौन झंझट ले! वैसे ही तुम कंप रहे हो, और कौन झंझट ले! पता नहीं आगे क्या मुसीबत झेलनी पड़े। तो तुम मंदिर भी जाते हो, मस्जिद भी जाते हो, गुरुद्वारा भी जाते हो, पूजा-पाठ, जो भी तुम्हें पुरोहित समझाते हैं, करते हो। दान-दक्षिणा, धर्मशाला बनाते, मंदिर बनाते। लेकिन वास्तविक नरक एक ही है और वह हैः भीतर रिक्त होना, खाली होना। क्योंकि जो खाली है उसकी जैसे आत्मा ही नहीं, जैसे अभी आत्मा का जन्म ही नहीं हुआ।

परमात्मा आए तो आत्मा का जन्म हो। उस परम प्यारे को पुकारना होगा। वही भर जाए तुम्हारी आंखों में। वही रम जाए तुम्हारे रोएं-रोएं में। वही बने तुम्हारे हाथों की मेंहदी। वही बने तुम्हारे आंखों का काजल। बस वही हो, तुम न बचो। इतना हो वह कि तुम्हारे रहने के लिए कोई जगह ही न रह जाए। तुम्हें खाली ही कर देना पड़े अपने को।

अभी तुम खाली हो, पीड़ित हो रहे हो। वह आएगा तो तुम्हें और भी अपने को खाली करना पड़ेगा। क्योंकि न मालूम कितना कूड़ा-करकट--विचारों का, वासनाओं का, आकांक्षाओं का, तृष्णाओं का--तुम्हारे भीतर है। न मालूम कितना अहंकार, झूठा सब, मिथ्या सब, पर कुछ न हो तो आदमी को तिनके का सहारा भी बहुत। और जो आदमी डूब रहा हो और तिनके का सहारा लेकर आंख बंद किए सपना देख रहा हो बचने का, उससे कहो कि आंख खोलो, देखो, तिनके के सहारे से कोई बचता नहीं, तो वह नाराज होगा। तुम उससे उसकी आखिरी आशा भी छीने लेते हो।

इसीलिए तो लोग बुद्धों से नाराज रहे हैं। जीसस को सूली ऐसे ही नहीं दी, और सुकरात को जहर ऐसे ही नहीं पिलाया! और अब भी उनका रवैया वही है और आगे भी उनका रवैया वही रहेगा। जो भी तुमसे कहेगा कि इन तिनकों के सहारे तुम पार न हो सकोगे, तुम उसी से नाराज हो जाओगे। कारण सीधा-साफ है। तुम वैसे ही खाली हो, किसी तरह तिनके के सहारे अपनी आंखों को बंद किए अपने को समझा-बुझा रहे हो। और यह तुमसे तिनका भी छीने ले रहा है! यह तुम्हें तिनके का सहारा भी नहीं लेने देता! तुम कैसे क्षमा करो बुद्धों को? तुम उन्हें क्षमा नहीं कर सकते। तुम उन्हें सूली देते हो। हां, सूली देकर पछताते हो। तब पश्चात्ताप होता है, तब

अपराध का भाव जगता है। फिर तुम उनकी पूजा करते हो। यह बड़ा अनूठा खेल है। पहले सूली देते हो, फिर सिंहासन देते हो। जिंदा को सूली देते हो, मुर्दा को सिंहासन देते हो।

तुमने बुद्ध पर कितने पत्थर फेंके, हिसाब है कुछ? तुमने बुद्ध को मार डालने की कितनी चेष्टाएं कीं! पागल हाथी छोड़ा। बुद्ध के ऊपर चट्टानें सरकाईं पहाड़ से!

कहानियां बड़ी प्रीतिकर हैं। कहानी कहती है कि जब पागल हाथी बुद्ध के सामने आया--उस पागल हाथी ने न मालूम कितने लोगों को मार डाला था--जब बुद्ध के सामने आया, बुद्ध को देखा, ठिठक गया। चरणों में झुक गया।

मैं नहीं सोचता ऐसा हुआ होगा। पागल हाथियों से इतनी समझदारी की आशा नहीं की जा सकती। होशियार आदमियों से नहीं होती इतनी आशा, तो पागल हाथियों से क्या खाक आशा होगी! लेकिन कहानी कुछ और कहना चाहती है। कहानी यह कहती है कि तुम्हारे तथाकथित होशियार आदमियों से पागल हाथी भी ज्यादा होशियार होते हैं। पागल हाथी को भी समझ में आ गया कि यह आदमी मारा जाए, मारने योग्य नहीं है। यह आदमी झुकने योग्य है, समर्पित होने योग्य है।

कहानियां कहती हैं कि जब चट्टान बुद्ध पर सरकाई गई... वे नीचे ध्यान कर रहे हैं वृक्ष के नीचे, चट्टान पहाड़ से सरकाई गई, ठीक ऐसे कोण से कि दबोच ही देगी बुद्ध को। हड्डी-पसली का भी पता नहीं चलेगा। उसके साथ ही लुढ़क जाएंगे महागड्ढ में। लेकिन कहते हैं, चट्टान ठीक बुद्ध के पास आकर अपनी राह बदल ली।

अब चट्टानों से कोई इतना भरोसा कर सकता है! लेकिन ये सारी कहानियां इशारे हैं। ऐतिहासिक तथ्य नहीं, मनोवैज्ञानिक सत्य हैं। ये यह कह रहे हैं कि आदमी पत्थरों से भी ज्यादा पाषाण हो गया। पत्थरों को भी इतना होश है कि बुद्ध मार्ग में आते हों तो राह छोड़ दें, उनको चोट न पहुंच जाए! आदमी को इतना होश नहीं।

लेकिन फिर तुम पछताते हो, पीछे तुम पछताते हो। लेकिन पीछे पछताने से क्या होगा? फिर पछताए होत का जब चिड़ियां चुग गई खेत! फिर तुम जन्मों-जन्मों तक, सदियों-सदियों तक पूजा करते हो। तुम्हारे हाथ पर जो खून के धब्बे पड़ जाते हैं, उनको धोते हो, धोए चले जाते हो। मगर वे धब्बे फिर मिट नहीं सकते। क्योंकि वे हाथ पर नहीं पड़े हैं, वे तुम्हारी आत्मा पर ही पड़ गए हैं। उनको ऐसे पूजा-पाठ से धो लेना आसान नहीं होगा!

तुम्हारा अहंकार एक झूठ है--एक झूठ, जिसके सहारे तुम सोचते हो कि पार कर लेंगे। कागज की नाव, जिस पर बैठ कर तुम अथाह सागर को पार करने चल पड़ते हो! काल्पनिक पतवारें, जिनका कोई अस्तित्व नहीं है।

जब ईश्वर को अपने भीतर बुलावा देना हो, तो इस कूड़े-करकट को अलग कर देना होगा। झूठ के सहारे छोड़ देने होंगे। सत्य उनका है, जो झूठ का सहारा छोड़ देते हैं। सत्य साहसियों का है। क्योंकि झूठ का सहारा छोड़ना बड़े दुस्साहस का काम है। झूठ ही तो हमारा एकमात्र सहारा है। उसको भी छीनने की बात हो, तो मन डरता है, कंपता है, भयभीत होता है। और तो हमारे भीतर कुछ भी नहीं है। किसी तरह अपने को समझा-बुझा लिया है; कल्पनाओं में, सपनों में अपने को रचा-पचा लिया है। अपने भीतर विचारों का एक संसार बसा लिया है। उसमें ही उलझे रहते हैं, व्यस्त रहते हैं।

तुम देखो आदमी को, सुबह उठा कि व्यस्त हुआ। घड़ी भर चैन से नहीं बैठ सकता। और ये जो सदा व्यस्त रहते हैं, ये दूसरों को, अगर कोई शांत बैठा हो, अगर कोई चुप बैठा हो, अगर कभी कोई घड़ी भर आंख बंद करके बैठा हो, तो उनको गालियां देते हैं कि ये काहिल हैं, सुस्त हैं, अकर्मण्य हैं!

ये जो सदा व्यस्त लोग हैं, विक्षिप्त लोग हैं। ये बिना व्यस्त हुए नहीं रह सकते। व्यस्तता इनको एक उपाय है, एक सुरक्षा है। अपने को व्यस्त रखते हैं तो भूले रहते हैं--अपने भीतर की दरिद्रता को, दीनता को, झूठ को, असत्य को, कूड़े-करकट को, अपने भीतर के अभाव को भूले रखते हैं। दौड़ते रहते हैं लोग, कोई भी बहाना लेकर दौड़ते रहते हैं। बहाना चाहिए दौड़ने के लिए। दौड़ते रहते हैं तो विस्मरण रही आती है अपनी वास्तविक स्थिति। रुके कि याद आई। खाली हुए, मौन बैठे कि याद आई।

इसलिए ध्यान इस जगत में कठिनतम काम है। हालांकि ध्यान कोई काम नहीं; ध्यान कोई क्रिया नहीं; ध्यान कोई कर्म नहीं। लेकिन कठिनतम काम है। चुप बैठना सबसे ज्यादा मुश्किल हो गया है। और जो चुप नहीं बैठ सकते, वे कहते हैं कि खाली मन शैतान का घर है। बात बिल्कुल उलटी है। जो खाली होने की कला जानता है, जो पूरी तरह खाली होने को राजी है, वही परमात्मा का घर बन जाता है।

लेकिन ये जो तथाकथित कर्मठ लोग हैं, ये तथाकथित जो कर्मयोगी हैं, जो कहते हैं--लगे रहो, जूझते रहो! कुछ भी करो, मगर करो जरूर! खाली होने से कुछ भी करना बेहतर है। गलत भी करो, मगर करो, खाली भर न बैठना! --इन्होंने सारी दुनिया को एक विक्षिप्तता में लगा दिया है। हम हर बच्चे को यही जहर पिला रहे हैं। और हमें यह जहर पिलाने का कारण है! कारण यह है कि हम डरते हैं, जिस दिन भी कोई अपने आमने-सामने होगा, अपने भीतर झांकेगा, तो घबड़ा जाएगा। अतल शून्य का साक्षात्कार करने की सामर्थ्य!

लेकिन जो भी उस शून्य का साक्षात्कार कर लेता है, उसमें पूर्ण उतर आता है। उसने शर्त पूरी कर दी। पूर्ण को पाने की शर्त हैः महाशून्य को स्वीकार कर लेना। इसे चाहे तुम समर्पण कहो, चाहे संन्यास कहो, चाहे ध्यान, चाहे समाधि, प्रेम, प्रार्थना, पूजा, भक्ति, जो तुम्हारी मर्जी, जो नाम तुम देना चाहो। नामों में मुझे बहुत रस नहीं है। तुम्हारी आंखें उस प्यारे से भर जाएं। तुम्हारी दृष्टि में कोई और जगह ही न रहे।

ठीक कहते हैं रहीमः "प्रीतम छबि नैनन बसी, पर छबि कहां समाय।"

अब मैं चाहूं भी कि कोई और छबि मेरी आंखों में समा जाए--धन की, पद की, प्रतिष्ठा की--तो जगह ही नहीं है। अब तो उस प्यारे से आंखें भर गई हैं।

"भरी सराय रहीम लखि... "

जैसे कि सराय भरी हो।

"... पथिक आप फिर जाय।।"

आते हैं पथिक, लेकिन सराय भरी देख कर लौट जाते हैं।

वासनाएं फिर भी आएंगी, इच्छाएं फिर भी आएंगी, द्वार खटखटाएंगी। आकांक्षाएं फिर भी फुसलाएंगी, सब तरह के प्रलोभन देंगी, मगर कोई चिंता नहीं। एक बार प्रभु भीतर विराजमान हो गया--भरी सराय रहीम लखि, पथिक आप फिर जाय--कि फिर ये सब अपने आप चले जाते हैं। इन्हें छोड़ना भी नहीं पड़ता। ये खुद ही उदास होकर चले जाते हैं। ये खुद ही हताश होकर चले जाते हैं। जगह ही नहीं भीतर।

परमात्मा विराट है! वह भर जाए तुम्हारे भीतर तो कहां जगह बचेगी? रंचमात्र जगह न बचेगी। वही फिर भीतर होगा, वही फिर बाहर होगा। लेकिन उसे भरने की शर्त पूरी करनी होती है। शर्त सीधी-साफ है। शर्त है कि तुम जो थोड़े-बहुत भी हो, वह भी न रह जाओ। ऐसे तो निन्यानबे प्रतिशत तुम खाली ही हो; एक प्रतिशत है जो तुमने झूठ से भर रखा है। उस झूठ को भी गिर जाने दो। एक बार साहस करके उस झूठ को भी समर्पित कर दो। एक बार पूरे-पूरे शून्य हो जाओ। और फिर चमत्कार देखो!

अर्पित मेरी भावना--इसे स्वीकार करो!
तुमने गति का संघर्ष दिया मेरे मन को,
सपनों को छवि के इंद्रजाल का सम्मोहन;
तुमने आंसू की सृष्टि रची है आंखों में,
अधरों को दी है शुभ्र मधुरिमा की पुलकन;
उल्लास और उच्छवास तुम्हारे ही अवयव,
तुमने मरीचिका और तृषा का सृजन किया;
अभिशाप बना कर तुमने मेरी सत्ता को,
मुझको पग-पग पर मिटने का वरदान दिया;
मैं हंसा तुम्हारे हंसते से संकेतों पर,
मैं फूट पड़ा लख बंक भृकुटि का संचालन;
अपनी लीलाओं से है विस्मित और चकित!
अर्पित मेरी भावना--इसे स्वीकार करो!
अर्पित है मेरा कर्म--इसे स्वीकार करो!
क्या पाप और क्या पुण्य इसे तो तुम जानो,
करना पड़ता है केवल इतना ज्ञात यहां;
आकाश तुम्हारा और तुम्हारी ही पृथ्वी,
तुम में ही तो इन सांसों का आघात यहां;
तुम में निर्बलता और शक्ति इन हाथों की,
मैं चला कि चरणों का गुण केवल चलना है;
ये दृश्य रचे, दी वहीं दृष्टि तुमने मुझको,
मैं क्या जानूं क्या सत्य और क्या छलना है।
रच-रच कर करना नष्ट तुम्हारा ही गुण है,
तुम में ही तो है कुंठा इन सीमाओं की;
है निज असफलता और सफलता से प्रेरित!
अर्पित है मेरा कर्म--इसे स्वीकार करो!
अर्पित मेरा अस्तित्व--इसे स्वीकार करो!
रंगों की सुषमा रच, मधुऋतु जल जाती है,
सौरभ बिखरा कर फूल धूल बन जाता है;
धरती की प्यास बुझा जाता गल कर बादल,
पाषाणों से टकरा कर निर्झर गाता है;
तुमने ही तो पागलपन का संगीत दिया,
करुणा बन गलना तुमने मुझको सिखलाया;
तुमने ही मुझको यहां धूल से ममता दी,
रंगों में जलना मैंने तुम से ही पाया।

उस ज्ञान और भ्रम में ही तो तुम चेतन हो,

जिनसे मैं बरबस उठता-गिरता रहता हूं;

निज खंड-खंड में हे असीम तुम हे अखंड!

अर्पित मेरा अस्तित्व--इसे स्वीकार करो!

एक बार सब छोड़ दो उस अज्ञात के चरणों में--अपने अहंकार को, अपने कर्ताभाव को। कह दो उससेः तेरी जो मर्जी! जैसा नचाएगा, नाचेंगे! जो कराएगा, करेंगे! हम करने वाले नहीं हैं, हम सिर्फ अभिनेता हैं। तू जो निर्णय लेगा, जो पात्र बनने की आज्ञा देगा, वही बन जाएंगे। न हमारा कोई निर्णय है, न हमारी अपनी कोई नियति है। तेरे हाथों में सब है।

इतना समर्पण जो कर सके वह पूर्ण शून्य हो जाता है। और जब तुम पूर्ण शून्य हो जाते हो, तो तुम्हारा शून्य, तुम्हारा शून्य ही उस पूर्ण के लिए निमंत्रण है। वह पूर्ण तत्क्षण उतर आता है--नाचता, गुनगुनाता, महोत्सव लिए।

दूसरा प्रश्नः ओशो, मैं अत्यंत आलसी हूं। इससे भयभीत होता हूं कि मोक्ष-उपलब्धि कैसे होगी? मार्ग-दर्शन दें!

धर्मेंद्र, मोक्ष कोई उपलब्धि नहीं है। उपलब्धि की भाषा में तुमने मोक्ष को सोचा, कि चूके। मोक्ष कोई लक्ष्य नहीं है, जिसको पाना है; मोक्ष हमारा स्वभाव है। जिसे पाना नहीं है; जिसे हमने कभी खोया ही नहीं है। सिर्फ भूल गए हैं, विस्मृत कर बैठे हैं। पुनर्स्मरण करना है, बस केवल पुनर्स्मरण करना है।

कबीर, नानक, दादू एक शब्द का उपयोग करते हैं, प्यारा शब्द है--सुरति। सुरति आया बुद्ध के शब्द स्मृति से। बस स्मृति करनी है, उसकी सुरति करनी है, सुमिरण करना है।

लेकिन सुमिरण लोगों ने कुछ का कुछ बना डाला। सुमिरण का अर्थ हो गयाः बैठ कर माला फेर रहे हैं, कि राम-नाम की चदरिया ओढ़े हैं, कि बैठे हैं तोते की तरह राम-राम राम-राम राम-राम कहे जा रहे हैं।

सुमिरण, सुरति, स्मृति, स्मरण--इतनी सस्ती बात नहीं, कि तुमने कुछ मंत्र सीख लिए और दोहराने लगे तोतों की तरह, तो तुम उपलब्ध हो जाओगे। सुरति की प्रक्रिया हैः तुम्हें अपने सारे झूठ छोड़ने होंगे। तुम्हें एक-एक झूठ को पहचान-पहचान कर छोड़ना होगा।

और झूठ की परतों पर परतें हैं तुम्हारे ऊपर। तुमने झूठ के कितने वस्त्र पहन रखे हैं! तुम अगर गौर से देखोगे तो बहुत मुश्किल में पड़ जाओगे। जैसे प्याज पर छिलके पर छिलके होते हैं, ऐसे तुम पर झूठ पर झूठ, पर्त पर पर्त है। जैसे प्याज को छीलने बैठ जाओ तो एक पर्त छिली नहीं कि दूसरी पर्त आ जाती है, दूसरी पर्त छिली नहीं कि तीसरी पर्त आ जाती है--ऐसी ही तुम्हारी दशा है। सदियों-सदियों में, जन्मों-जन्मों में स्वभावतः तुमने बहुत धूल की परतें इकट्ठी कर ली हैं, बहुत मिथ्या इकट्ठे कर लिए हैं। तुम जो नहीं हो, दिखलाते हो। तुम जो नहीं हो, बतलाते हो। तुम कुछ करते हो, कुछ कहते हो, कुछ होते हो। इस तरह तुम्हारे जीवन में, तुम जो हो, उसका विस्मरण हो गया है। दूसरों को झूठ दिखाते-दिखाते तुमने खुद ही अपने झूठों पर भरोसा कर लिया है।

तुम एक झूठ बोलते रहो दस-पांच वर्ष तक। फिर दस-पांच वर्ष के बाद यह याद करना मुश्किल ही हो जाएगा कि यह झूठ है या सच है! दस वर्षों तक दोहराओगे, पुनरुक्ति करोगे... और अगर दूसरों ने तुम्हारे झूठ

को मान भी लिया, तब तो और मुश्किल हो जाएगी। उनकी आंखों में भरोसा देख कर तुम्हारी आंखों में भी भरोसा जगेगा। लगेगा कि जब इतने लोग मान रहे हैं तो बात ठीक ही होगी। धीरे-धीरे तुम भूल ही जाओगे कि तुमने एक झूठ की शुरुआत की थी।

और ऐसा हम सदियों से कर रहे हैं, अनंत जन्मों से कर रहे हैं। इसलिए हमें अपने मूल स्वभाव का बोध नहीं रहा है। मिट नहीं गया है हमारा मूल स्वभाव; जो मिट जाए वह स्वभाव नहीं। जो नहीं मिटता है उसी का नाम स्वभाव है। जो खो जाए उसका नाम स्वरूप नहीं। जो नहीं खोया जा सकता उसी का नाम स्वरूप है।

और मोक्ष का क्या अर्थ होता है?

झूठ के जाल से अपने स्वरूप को मुक्त कर लेना है। मोक्ष कुछ पाने की बात नहीं कि कहीं दूर है। मोक्ष कोई दिल्ली नहीं है। मोक्ष तुम्हारे भीतर है। मोक्ष तुम हो।

सो धर्मेंद्र, चिंता न करो। और किसने तुम्हें समझा दिया कि तुम आलसी हो? आस-पास लोग हैं, जो इस तरह की बातें कहते रहते हैं। अगर तुम धन की दौड़ में थोड़े धीमे हो, वे कहेंगे कि आलसी हो। अरे दूसरों को देखो, धनों के अंबार लगा लिए! और तुम वही के वही! दूसरों को देखो, क्या से क्या हो गए! और तुम वही के वही! महल खड़े कर लिए औरों ने, तुम अपना झोपड़ा भी नहीं सम्हाल पा रहे हो! यह भी कब किस बाढ़ में बह जाएगा पता नहीं।

तो लोग कहते हैं, आलसी हो। तुम्हारी पत्नी तुमसे कहेगी, आलसी हो। क्योंकि देखते नहीं दूसरे पतियों को, क्या-क्या भेंटें अपनी पत्नियों को नहीं ले आते हैं! हीरे-जवाहरातों से लाद दिया है! और एक तुम हो! देखो दूसरों को!

तुम्हारे बेटे, तुम्हारे बच्चे तुमसे कहेंगे कि आप आलसी हो। दूसरों के बच्चे कारों में स्कूल जा रहे हैं और हम अभी भी पैदल घसिट रहे हैं!

आलसी तो तुलनात्मक बात है। कौन तुमसे कह रहा है कि तुम आलसी हो? किस कारण कह रहा है? जरा इस पर गौर करना! धन की दौड़ में तुम शायद पिछड़ रहे हो। मगर हर्ज क्या? जो आगे हो गए हैं वे ही क्या कुछ खाक पा लेंगे! सिकंदरों ने क्या पा लिया? और जो पीछे रह गए उन्होंने क्या गंवा दिया? यहां न कुछ पाना है, न कुछ गंवाना है। सब खेल है। किसी ने रेत का बड़ा मकान बना लिया, किसी ने रेत का छोटा मकान बनाया। दोनों मकान गिर जाने के हैं। दोनों के नाम-निशान मिट जाने के हैं। तो क्या फिकर कि तुम छोटा ही बना पाए और दूसरे ने बहुत बड़ा बना लिया! ताश के घर हैं, अभी आएगा हवा का झोंका और सबको ले जाएगा। न छोटे को छोड़ेगा न बड़े को छोड़ेगा। क्या चिंता करते हो?

दूसरों ने तुम्हें समझा-समझा कर... चारों तरफ से यह बात उठी होगी कि तुम प्रतिद्वंद्विता में पिछड़ रहे हो... और हो सकता है तुम भले आदमी होओ। नाम से, धर्मेंद्र, अच्छा लगता है नाम। हो सकता है भले आदमी होओ। यह गला-घोंट प्रतियोगिता, जिसमें जब तक एक-दूसरे की गर्दन न काटो, कोई गति नहीं है, इसमें अगर तुम पिछड़ गए हो, तो हो सकता है थोड़े भलेमानुष हो, सज्जन हो। इसमें तो दुर्जनों की गति है। इसमें तो दुष्ट आगे हो जाने वाले हैं। क्योंकि वे फिकर ही नहीं करते। सौ-सौ जूते खाएं, तमाशा घुस कर देखें! उन्हें कोई चिंता ही नहीं, कितने ही जूते पड़ें, कोई फिकर नहीं; कितने ही कुटें, कितने ही पिटें, लेकिन दिल्ली पहुंच कर रहेंगे। रास्ते भर कुटेंगे-पिटेंगे, कोई फिकर नहीं!

मैंने सुना, बनारस के एक कुत्ते को दिल्ली जाने का फितूर समाया। देखा होगा सभी दिल्ली जा रहे हैं, चुनाव का वक्त! कुत्ते के भी दिमाग में धुन समा गई। उसने कहा, मैं भी दिल्ली जाऊंगा। बनारस के दूसरे धार्मिक

कुत्तों ने समझाया कि पागल, सारी दुनिया बनारस आती है, तू दिल्ली जा रहा है? मगर वह नहीं माना। नहीं माना तो उन्होंने कहा, ठीक है, अब तू जा ही रहा है तो हमारे प्रतिनिधि की तरह जा! सारे कुत्तों ने उसे मिल कर फूलमालाएं पहनाईं और कहा कि तू हमारा प्रतिनिधि है। प्रधानमंत्री से भी मिल लेना, राष्ट्रपति से भी मिल लेना और हम कुत्तों के साथ जो दुर्व्यवहार किया जा रहा है सदियों-सदियों से, उसकी शिकायत भी कर देना।

लंबी यात्रा थी। कुत्ता तेज था, लेकिन आशा थी कि कम से कम इक्कीस दिन लगेंगे पहुंचने में। तो इक्कीस दिन के लिए भोजन इत्यादि की उन्होंने बांध दी पोटली। कलेवा इत्यादि का इंतजाम कर दिया। लेकिन वह कुत्ता सात दिन में ही दिल्ली पहुंच गया! दिल्ली के कुत्तों को भी खबर हो चुकी थी कि बनारस से कुत्ता आता है, तो वे भी स्वागत की तैयारी कर रहे थे। मगर उनकी तैयारियां ही पूरी नहीं हो पाई थीं। न मंच बना था, न झंडे लगे थे, न झंडियां बंधी थीं और यह कुत्ता पहुंच गया! उन्होंने कहा, हद्द कर दी भाई! इक्कीस दिन की यात्रा सात दिन में पूरी कर ली! यह हुआ कैसे?

वह कुत्ता मुस्कुराया और उसने कहा, अपने ही भाई-बंधुओं के कारण हुआ।

कुत्तों ने पूछा, हम समझे नहीं! पहेली न बूझो, सीधी-सीधी बात करो। यह क्या हुआ? अब तक किसी ने भी सात दिन में यात्रा नहीं की!

उस कुत्ते ने कहा कि यात्रा इक्कीस दिन की ही थी, लेकिन सात दिन में इसलिए पूरी हो गई कि जिस गांव में घुसा उसी गांव के कुत्ते मेरे पीछे पड़ गए! ऐसी भौंका-भांकी मचाई, टिकने ही नहीं दिया कहीं! और जब तक वे छोड़ कर गए, दूसरे गांव के कुत्तों ने पकड़ लिया! एक रात विश्राम नहीं किया। यह कलेवे की पोटली खोलने का मौका नहीं मिला। भूखा-प्यासा हूं, मगर चित्त प्रसन्न है कि दिल्ली तो आ गया! जो राह में गुजरी सो गुजरी, जो बीती सो बीती--बीती ताहि बिसार दे, आगे की सुध ले। कोई फिकर नहीं, जीवित आ गए, इतना ही बहुत है।

लोग भागे जा रहे हैं। इक्कीस दिन की यात्राएं सात दिनों में पूरी हो जाती हैं। लोग गति के दीवाने हैं। स्वभावतः तुम अगर धीमे-धीमे चलोगे, तुम अगर मस्ती से चलोगे, लोग कहेंगेः आलसी हो। यह कोई चाल हुई! यह कोई ढंग हुआ! अरे बीसवीं सदी में जी रहे हो और यह बैलगाड़ी की चाल! यह जनवासे की चाल के दिन नहीं रहे! दौड़ो! ये ढीले-ढाले कपड़े पहने हुए नहीं पहुंच पाओगे। चूड़ीदार पाजामा!

चूड़ीदार पाजामा चीज ऐसी है कि मुर्दे को भी पहना दो तो वह दौड़े। क्योंकि उसमें ऐसा फंसा हुआ मालूम पड़ता है कि लगता है कैसे निकल जाऊं! इसलिए तो नेताओं के लिए हमने चूड़ीदार पाजामा चुना है। मरे-मराए, मुर्दे, जिनको कभी का कब्रों में होना चाहिए था, वे चूड़ीदार पाजामा के बल से चलते हैं। तुम भी देखो एक दिन चूड़ीदार पाजामा पहन कर। दो घंटे तो पहनने में लगते हैं, दो आदमी पहनाने को चाहिए। और उतारने की तो तुम पूछो ही मत! और जब आदमी एकदम कस जाता है तो दो सीढ़ियां एक साथ छलांग लगाता है।

तो इस भाग-दौड़ की दुनिया में, धर्मेंद्र, लोग क्या कहते हैं, इसकी चिंता न करो। और लोगों ने ही तुम्हें यह भ्रांति बिठा दी होगी कि आलसी हो!

मैंने तो किसी को आलसी नहीं देखा। सांस ले रहे हो मजे से। आलसी तो सांस ही न ले। खाते-पीते हो, पचाते भी हो। आलसी तो पचाए ही नहीं। आलसी तो खाए-पीए कौन, कौन झंझट करे! उठते-बैठते हो, नहाते-धोते हो, चलते-फिरते हो। पर आदमी जैसे आदमी हो तो आलसी समझे जाओगे। घबड़ाओ मत, तुम तो दास मलूका का स्मरण रखोः

अजगर करे न चाकरी, पंछी करे न काम।

दास मलूका कह गए, सबके दाता राम।।

तुम भी कहां की बातों में पड़े हो--आलसी! और तुमने मान भी लिया, औरों ने समझा भी दिया! मान लोगे तो समस्या बन जाएगी।

और मोक्ष से तो कोई अड़चन ही नहीं है। अगर आलसी भी हो--चलो मान ही लें, सिर्फ मानने के लिए, बात पूरी करने के लिए कि आलसी ही हो--तो भी मोक्ष से कोई विरोध नहीं है आलस्य का। मोक्ष कोई दौड़ थोड़े ही है। मोक्ष तो दौड़ छोड़ना है।

अक्सर ऐसा हुआ है कि आलसियों ने पा लिया है और कर्मठ चूक गए हैं। क्योंकि आलसी बैठ सकता है शांत, लेट सकता है शांत। उसे बहुत आपा-धापी नहीं है। वह ज्यादा भाग-दौड़ में नहीं है। वह आंख भी बंद कर ले सकता है, वह घड़ी दो घड़ी के लिए बिल्कुल निश्चिंत अपने में डूब भी सकता है। उसका ही मोक्ष है। क्योंकि मोक्ष अर्थात स्वभाव। तुम्हारी झूठों की परतों के भीतर छिपी जो तुम्हारी स्वरूप की धारा है, उसका अनुभव। तुम जो वस्तुतः हो, उसकी पहचान। तुम्हारे मौलिक रूप की प्रतीति, साक्षात्कार।

कोई मोक्ष ऐसा थोड़े ही है कि सीढ़ी लगानी है आकाश पर। लोगों का यही ख्याल है कि मोक्ष यानी कहीं दूर आकाश में। जब भी तुम्हें मोक्ष का ख्याल आएगा या स्वर्ग का ख्याल आएगा तो बस देखोगे आकाश की तरफ। और नरक का जब ख्याल आएगा तो सोचोगे नीचे, पाताल!

मगर भाई मेरे, पाताल में अमरीका है! और अमरीकी जब सोचते हैं नरक की, तो तुम हो। क्योंकि तुम उनके नीचे पड़ रहे हो। और अमरीकी जब स्वर्ग की सोचते हैं, तो तुम जहां नरक सोचते हो वहां उनका स्वर्ग है, और तुम जहां स्वर्ग सोचते हो वहां उनका नरक है। जमीन गोल है, थोड़ा इसका ख्याल रखो। इसमें कौन नीचे, कौन ऊपर! और आकाश की कोई सीमा नहीं है, इसलिए ऊपर-नीचे कुछ हो नहीं सकता। ऊपर-नीचे तो तभी कोई चीज हो सकती है जब सीमा हो। आकाश तो असीम है, और पृथ्वी गोल है। कोई सीढ़ी थोड़े ही लगानी है। कहीं और थोड़े ही जाना है। अपने में जाना है।

और मोक्ष उपलब्धि नहीं है। उपलब्धि की भाषा अहंकार की भाषा है। मोक्ष तो वह है जो तुम्हें मिला ही हुआ है, तुम भूले-बिसरे बैठे हो। जैसे जेब में तो पैसे पड़े हों और तुम भूल गए। कई बार तुम्हें ऐसा हो जाता है--जो लोग चश्मा लगाते हैं उनको याद होगा--चश्मा तो लगाए हुए हैं और चश्मा खोज रहे हैं। चश्मा ही लगा कर चश्मे ही को खोज रहे हैं! जिन लोगों की आदतें हैं कलम को कान में खोंस लेने की, वे कान में कलम को खोंस लेंगे और फिर कलम को खोजते फिरेंगे।

बस भूली, बिसर गई बात। थोड़ा स्मरण लाना है। और स्मरण की क्षमता सभी में है। वह हमारे चैतन्य का स्वभाव है। वह चैतन्य की आंतरिक क्षमता है, उसका गुण है। जैसे आग का गुण है गर्म होना और बर्फ का गुण है ठंडा होना, वैसे चैतन्य का गुण है--सुरति, स्मृति। चैतन्य का गुण है--होश, याद। इसलिए व्यर्थ अपने मन को छोटा न करो, ओछा न करो।

देखो, सोचो, समझो; सुनो-गुनो औ" जानो,

इसको, उसको--संभव हो निज को पहचानो।

लेकिन अपना चेहरा जैसा है, रहने दो;

जीवन की धारा में अपने को बहने दो,

तुम जो कुछ हो, वही रहोगे--मेरी मानो!
कोई तुम्हें अन्यथा नहीं होना है, तुम्हें कुछ और नहीं होना है।

तुम जो कुछ हो, वही रहोगे--मेरी मानो!
देखो, सोचो, समझो; सुनो-गुनो औ" जानो,
इसको, उसको--संभव हो निज को पहचानो।
लेकिन अपना चेहरा जैसा है, रहने दो;
जीवन की धारा में अपने को बहने दो,
तुम जो कुछ हो, वही रहोगे--मेरी मानो!
वैसे तुम चेतन हो, तुम प्रबुद्ध ज्ञानी हो
तुम समर्थ तुम कर्ता, अतिशय अभिमानी हो,
लेकिन अचरज इतना, तुम कितने भोले हो,
ऊपर से ठोस दिखो, अंदर से पोले हो।
बन कर मिट जाने की तुम एक कहानी हो!
पल में हंस देते हो, पल में रो पड़ते हो,
अपने में रम कर तुम अपने से लड़ते हो,
पर यह सब तुम करते, इस पर मुझे शक है
दर्शन-मीमांसा--यह फुर्सत की बकझक है!
जमने की कोशिश में रोज तुम उखड़ते हो!
थोड़ी-सी घुटन और थोड़ी रंगीनी में;
चुटकी भर मिरचे में, मुट्ठी भर चीनी में
जिंदगी तुम्हारी सीमित है--इतना सच है,
इससे जो कुछ ज्यादा, वह सब तो लालच है।
दोस्त उम्र कटने दो, इस तमाशबीनी में!
धोखा है प्रेम-बैर, इसको तुम मत ठानो,
कड़वा या मीठा, रस तो है छक कर छानो!
चलने का अंत नहीं, दिशा-ज्ञान कच्चा है।
भ्रमने का मारग ही सीधा है, सच्चा है।
जब-जब थक कर उलझो तब-तब लंबी तानो!
देखो, सोचो, समझो; सुनो-गुनो औ" जानो,
इसको, उसको--संभव हो निज को पहचानो।
लेकिन अपना चेहरा जैसा है, रहने दो;
जीवन की धारा में अपने को बहने दो,
तुम जो कुछ हो, वही रहोगे--मेरी मानो!

जीवन की धारा में बहे चलो। अभिनय की तरह पूरा किए चलो। एक तमाशबीन की तरह। तादात्म्य न बनाओ। एक द्रष्टा की तरह। जैसे कि कोई नाटक देखता हो, ऐसे ही जीवन को देखते हुए बहे चलो। परमात्मा जहां ले चले, जो करवाए, किए चलो। कर्ता वही, नियंता वही, तुम सब उस पर छोड़ कर निर्भार हो रहो। अगर तुम बह सको तो क्या चिंता है आलस्य की! सबके दाता राम!

इतना बड़ा विराट अस्तित्व, किस माधुर्य से, किस संगीत से, किस लयबद्धता से चल रहा है! तुम एक अकेले व्यर्थ परेशान हो रहे हो। लेकिन कारण है, समझाया गया है बार-बार तुम्हेंः मोक्ष को पाना है! मोक्ष के लिए श्रम करना है! मोक्ष के लिए तपश्चर्या करनी है! मोक्ष के लिए संकल्प जुटाना है! मोक्ष को एक गंतव्य बना दिया है--एक दूर का तारा! मोक्ष को भी अहंकार के लिए एक लक्ष्य बना दिया है। जब कि अहंकार का लक्ष्य मोक्ष कभी भी नहीं बन सकता। जब तक अहंकार है तब तक कहां मोक्ष! जब अहंकार नहीं है तो जो शेष रह जाता है, वही मुक्ति की अवस्था है, वही मोक्ष है, वही निर्वाण है, वही ब्रह्म-भाव है।

धर्मेंद्र, व्यर्थ चिंता न करो। यहां तक आ गए, यही कुछ कम प्रमाण है कि तुम आलसी नहीं हो! तुमने आलसियों की कहानियां तो पढ़ी ही होंगी।

दो आलसी लेटे हैं एक वृक्ष के नीचे। जामुन पक गई हैं और जामुन टपाटप पड़ रही हैं। एक आलसी दूसरे से कहता है कि भाई मेरे, यह भी क्या दोस्ती हुई! अरे दोस्त वह जो वक्त पर काम पड़े। जामुनें टपाटप गिर रही हैं, पड़े तुम सुन रहे हो, तुमसे यह भी नहीं होता कि एक जामुन उठा कर मेरे मुंह में दे दो!

दूसरे ने कहा कि जा-जा, बड़ा दोस्त बनने आया है! हां, यह मैं भी मानता हूं कि दोस्त वही जो वक्त पर काम आए। अभी थोड़ी देर पहले एक कुत्ता मेरे कान में मूत रहा था, तूने भगाया?

एक आदमी यह सुन रहा था, राह से जाता हुआ। उसने कहा हद हो गई! आया, एक-एक जामुन उठा कर दोनों के मुंह में रख दीं। चलने को हुआ तो एक ने आवाज दी, भाई, जाते कहां! कम से कम गुठली तो निकाल जाओ। नहीं तो अब ताजिंदगी हम गुठली ही मुंह में रखे पड़े रहेंगे! और एक झंझट कर दी। जरा रुको।

लेकिन इनको भी मैं आलसी नहीं कहूंगा। अगर सच्चे आलसी होते तो इतनी भी कौन बातचीत करता, कि भाई, जामुनें टपाटप गिर रही हैं, हमारे मुंह में डालो। इतना भी आलसी से होता? कि कहां चले, कि जरा गुठली तो निकाल जाओ। यह भी आलसी से होता? आलसी तो जी ही नहीं सकता। यहां कोई आलसी नहीं है। हां, तारतम्यता है, क्रम है। कुछ कम दौड़ते हैं, कुछ ज्यादा दौड़ते हैं।

लेकिन कम दौड़ने वाले के लिए कुछ मोक्ष कठिन है, मुश्किल है, दूर है--ऐसा मत समझना। मोक्ष कोई ओलंपिक की दौड़ नहीं। मोक्ष तुम्हारी निजता है। वृक्ष के नीचे पड़े-पड़े भी, ये जो दो आलसी हैं, ये भी मुक्त हो सकते हैं। ये वृक्ष के नीचे पड़े-पड़े ही मुक्त हो सकते हैं।

इस बात को तुम गांठ बांध लो कि मोक्ष तो तुम्हारे भीतर ही है। इतना भी नहीं है कि टपाटप हो रहा हो कि कोई तुम्हारे मुंह में डाले। तुम्हारे भीतर ही है, तुम ही हो! तुम से जरा भी भिन्न नहीं है। जिस क्षण शांत हो जाओगे, उसी क्षण जान लोगे। जिस क्षण मौन हो जाओगे, उसी क्षण यह अपूर्व रोशनी तुम्हारे भीतर जगमग हो उठेगी, जैसे हजार-हजार सूरज एक साथ ऊग आए हों!

कहीं शिथिल कुछ, कहीं अधिक कुछ खिंचे,
आज क्यों तार बीन के?
लरज-लरज जाते,
स्वर सुंदर सहज नहीं सुकुमार बीन के!

शिथिल हुई संगीत-साधना,
चिढ़-चिढ़ कर चढ़ गईं त्योरियां;
हिला सहज विश्वास हृदय का,
अंगुलियों की कंपी पोरियां;
ध्यान भंग हो गया, गया तदभाव,
नयन थे पार बीन के!
कहीं शिथिल कुछ, कहीं अधिक कुछ खिंचे,
आज क्यों तार बीन के?
मनोयोग से, वीणावादी!
कर वादी-संवादी वश में!
समय सत्य तो अमृत प्रेम तू
भर वीणा के युगल कलश में!
सुधा-सिक्त स्वर-लहर जगाएं तार-तार--
शत बार बीन के!
कहीं शिथिल कुछ, कहीं अधिक कुछ खिंचे,
आज क्यों तार बीन के?

जरा सी बात करने की है। हम भी वीणा हैं--वैसी ही वीणा जैसे बुद्ध, जैसे कृष्ण; वैसी ही वीणा जैसे महावीर, जैसे मोहम्मद। लेकिन बस तार हमारे कहीं कुछ थोड़े ज्यादा खिंचे हैं, कहीं कुछ थोड़े ढीले हैं, इसलिए स्वर ठीक से जगते नहीं, स्मृति ठीक से उठती नहीं; बोध ठीक से पकड़ में नहीं आता, छूट-छूट जाता है। बस जरा तारों को थोड़ा सा ठीक बिठा लेना है।

वीणा के तार ठीक बैठ जाएं, सम-स्वर हो जाएं, तो संगीत अभी उठा! तारों में संगीत सोया पड़ा है, छेड़ने की ही बात है। तार भी भीतर हैं, छेड़ने वाला भी भीतर है, संगीत भी भीतर है--सब कुछ तुम्हारे भीतर है। थोड़े से कुछ तार ज्यादा खिंच गए हैं, उनको थोड़ा ढीला करो; कुछ तनाव हैं मन में, उन तनावों को थोड़ा शिथिल करो। कुछ तार थोड़े ढीले हो गए हैं, कुछ जीवन में अतिशय लिप्सा है, भोग है, उन तारों को थोड़ा सा कसो।

मगर भूल मत कर लेना, जैसा कि अक्सर हो जाती है। अक्सर ऐसा हो जाता है कि जो तार ढीले थे, उनको लोग ज्यादा कस लेते हैं; जो तार ज्यादा कसे थे, उनको ज्यादा ढीला कर देते हैं। बात वही की वही रहती है। बीमारी वही की वही रहती है। दवा भी हो गई और बीमारी बदलती भी नहीं।

यही तुम्हारे तथाकथित साधु-संन्यासी करते हैं। जिनको तुम तपस्वी कहते हो, ये तुमसे उलटे लोग हैं, मगर तुमसे भिन्न नहीं। तुम पैर के बल खड़े हो, वे सिर के बल खड़े हैं, मगर ठीक तुम जैसे ही लोग हैं। तुम्हारे आधे तार खिंचे थे, उनके भी आधे तार खिंचे हैं। तुम्हारे आधे तार ढीले थे, उनके भी आधे तार ढीले हैं। हां, तुम्हारे दूसरे आधे तार ढीले हैं, उनके दूसरे। तुम्हारे दूसरे आधे तार खिंचे थे, उनके दूसरे आधे तार खिंचे हैं। मगर न वीणा तुम्हारी संगीत उठा रही है, न वीणा उनकी संगीत उठा रही है। सच तो यह है कि साधारण जीवन में तुम्हें लोगों के चेहरों पर ज्यादा प्रफुल्लता, ज्यादा प्रकाश दिखाई पड़ जाएगा, बजाय तुम्हारे तथाकथित मुनि, तपस्वियों के। उनके चेहरे तो बड़े उदास हैं। तपस्वियों का तो एक नाम ही धीरे-धीरे उदासी

हो गया। उनके एक संप्रदाय का नाम ही उदासीन संप्रदाय हो गया। ये जीते-जी मुर्दा हो गए, इनसे क्या खाक स्वर उठेंगे! इन्होंने तो वीणा से आशा ही छोड़ दी। ये तो निराश ही होकर बैठ गए। ये तो हताश ही हो गए।

परमात्मा उत्सव है, महासंगीत है। तुम भी उसके साथ सम्मिलित हो सकते हो--संगीत होकर ही, उत्सव होकर ही।

लेकिन हमारी सदियों-सदियों की धारणाओं ने हमें खूब अंधा कर दिया है।

एक जैन मुनि बहुत दिनों पहले मुझे मिले। उनके भक्तों ने कहा कि देखते हैं आप, तपश्चर्या से इनकी काया कैसी कुंदन जैसी हो गई है!

उनकी काया हो रही थी पीले पत्ते जैसी और भक्त कह रहे कुंदन जैसी! निखरा हुआ सोना! मैंने उनसे कहा, तुम थोड़ा आंख खोल कर तो देखो! इसी आदमी को अगर ससून अस्पताल में लिटा दिया जाए बिस्तर पर और फिर तुम से कहा जाए कि इसको देखो, यह कौन है? तो तुम्हीं कहोगे कि न मालूम कितनी बीमारियों से परेशान है! तुम्हें फिर इसके चेहरे पर कुंदन जैसी आभा नहीं दिखाई पड़ेगी। और तुम्हीं को दिखाई पड़ रही है। किसी गैर-जैन से पूछो! किसी गैर-जैन को नहीं दिखाई पड़ेगी। जैन को दिखाई पड़ रही है। गैर-जैन की तो बात छोड़ दो--ये दिगंबर जैन मुनि थे--तुम जरा श्वेतांबर जैन से पूछो! उसको भी नहीं दिखाई पड़ेगी। वह भी जरा नीची आंख कर लेगा--कहां का नंग-धड़ंग आदमी खड़ा है! और नंग-धड़ंग भी हो, कम से कम देखने-दिखाने में भी सुंदर हो तो भी ठीक। नंग-धड़ंग होना ही काफी नहीं है, शरीर को सब तरह से कुरूप कर लेना भी जरूरी है। हड्डी-हड्डी हो गया है। इसको देख कर तुम्हें सिर्फ मौत की याद आ सकती है, और कुछ भी नहीं। इसको देख कर तुम्हें यही होगा कि जल्दी घर जाएं, अपने बाल-बच्चों को देखें, कि एक दफा तो देख लें।

अभी-अभी बंबई में एक दिगंबर जैन मुनि आए हुए थेः एलाचारी विद्यानंद। उनसे तो बंबई में भेल बेचने वाले भेलाचारी भी बेहतर दिखाई पड़ें। उनके चेहरे पर भी थोड़ी रौनक, थोड़ा रंग, थोड़ी आभा! मगर दिगंबर जैनों को लगेगा कि अहा! कैसा कुंदन जैसा रूप! स्वर्ण जैसा रूप!

उनके मैंने अखबारों में चित्र देखे। जितने चित्र देखे सभी में वे... अब नंग-धड़ंग बैठे हैं, तो नंग-धड़ंग तो अखबार कोई छापने को राजी होगा नहीं, और खुद भी संकोच होता होगा, और भक्तों को भी थोड़ी लाज आती होगी... तो सब अखबारों में जो उनके फोटो छपे हैं, उसमें एक बहुत बड़ा ग्रंथ अपने घुटनों पर रखे हुए बैठे हैं, जिसमें कि उनका नंग-धड़ंगपन न दिखाई पड़े। तो भैया मेरे, एक लंगोट ही पहन लेते, उसमें क्या हर्जा था? इतना बड़ा ग्रंथ, इससे लंगोट हलका होता, ज्यादा सरल होता! एक तिग्गी बांध लेते। इतना बड़ा ग्रंथ लिए बैठे हो--जरा सी बात छिपाने को!

मगर जो हमारी धारणा हो, वहां हमें कुछ नहीं गड़बड़ दिखाई पड़ती। जैन घरों में महावीर की तस्वीरें टंगी होती हैं। तो तस्वीरें इस तरह से बनाते हैं वे कि महावीर खड़े हैं, ध्यान कर रहे हैं और एक झाड़ की शाखा लंगोटी का काम कर रही है।

क्यों सता रहे हो बेचारों को!

मैं एक घर में मेहमान था। तस्वीर सुंदर थी, मगर एक शाखा सब गड़बड़ कर देती है। और घने पत्ते उसमें उगे हुए हैं, तो महावीर की नग्नता छिप जाती है। मैंने उनसे पूछा कि एक बात पूछूं, पतझड़ के दिनों में क्या करते होंगे? उन्होंने कहा, मतलब? मैंने कहा, जब ये पत्ते गिर जाते होंगे, फिर? उन्होंने कहा, आप भी क्या बात कर रहे हैं, अरे यह तस्वीर है! मैंने कहा, तस्वीर है, वह तो मुझे भी मालूम है, मगर असलियत की तो सोचो! महावीर अगर ऐसे हमेशा ही जब देखो तब झाड़ की आड़ में खड़े रहते होंगे, पतझड़ में क्या करते होंगे? और

कहीं आते-जाते थे कि नहीं? क्योंकि जब देखो तब, जहां जाता हूं वहीं ये झाड़ की आड़ में ही खड़े हैं! या तो इस झाड़ को सब जगह साथ ले जाते होंगे, कि रखे हैं एक बैलगाड़ी में झाड़! तो वह असली जीवन न हुआ, वह तो ऐसे ही हुआ जैसे कि झांकियां निकलती हैं--कि ट्रक पर सवार हैं, झाड़ लगा हुआ है, उसके बगल में खड़े हुए हैं। इतना उपद्रव! एक जरा सी हनुमान जी की लंगोटी, लाल लंगोटी से काम पूरा हो जाता। जांघिया, चड्डी, जो तुम्हारा इरादा हो ले लो!

मगर जो हमारी धारणा है वह हमें नहीं दिखाई पड़ती। हम अपनी धारणाओं के प्रति अंधे होते हैं। हमने सदियों-सदियों से उदासीन आदमी को समझा है कि यह विरक्त, पहुंचा हुआ है!

सिद्ध तो वही है जो परम उत्सवमय है; जिसके जीवन में नृत्य है, गीत है। और जीवन में नृत्य और गीत तभी होता है जब वीणा के सारे तार ठीक-ठीक कस गए हों। न ज्यादा ढीले, न ज्यादा कसे; ठीक मध्य में आ जाएं। जब ठीक मध्य में होते हैं, जहां सम्यकत्व होता है, जहां समता होती है या समाधि... ये सब शब्द बड़े प्यारे हैं। हमारे पास जितने महत्वपूर्ण शब्द हैं, सब सम से बने हैं। सम्यकत्व, समता, समाधि, संबोधि, ये सारे शब्द सम से बने हैं। सम का अर्थ है वह मध्य-बिंदु जो अतियों से पार है, जो अतियों का अतिक्रमण कर गया। न भोग की अति, न त्याग की अति; जो मध्य में ठहर गया है; जो अति से मुक्त हो गया है, अतिशय से मुक्त हो गया है। उसके जीवन में सौंदर्य भी होगा, संगीत भी होगा, सत्य भी होगा।

तुम चिंता न करो आलस्य की। इतना तुम कर सकोगे। इतना मेरा भरोसा है, प्रत्येक आदमी कर सकता है। यह प्रत्येक आदमी का जन्मसिद्ध स्वभाव है। इतना करने में कोई अड़चन नहीं है कि अपने तारों को व्यवस्थित कर ले। और तार व्यवस्थित हो जाएं तो संपदाओं की संपदा तुम्हारे भीतर है। न तो मोक्ष ऊपर है आकाश में, न कहीं दूर है, न किन्हीं और चांद-तारों पर खोजने जाना है। बस अपने भीतर डुबकी लगानी है।

तीसरा प्रश्नः ओशो, बस यही एक अभीप्सा हैः मौन के गहरे अतल में डूब जाऊं छूट जाए यह परिधि परिवेश शब्दों का महत व्यापार सीखा ज्ञान सारा और अपने ही निबिड़ एकांत में बैठा हुआ चुपचाप अंतरलीन हो सुनता रहूं मैं शून्य का संगीत प्रतिपल।

यही अभीप्सा करने योग्य है।

अभीप्सा और आकांक्षा के भेद को समझ लेना। आकांक्षा होती है सदा पर को पाने की, अन्य को पाने की। इसलिए आकांक्षा में बंधन है, पर-निर्भरता है। मिल जाए तो भी दुख है और न मिले तब तो दुख है ही।

जीवन के इस महत सत्य को समझने की कोशिश करो। जिनको धन नहीं मिलता वे दुखी हैं। क्योंकि उनको लगता हैः हार गए, असफल हो गए, कुछ कर न पाए, कुछ जीवन में सिद्ध न कर पाए कि हम भी थे, कि हम भी कुछ थे! जीवन असार गया। और जिनको धन मिल जाता है वे भी दुखी हैं। वे दुखी हैं इसलिए कि जीवन भर दांव पर लगा दिया, धन कमाया, और धन में कुछ है नहीं! मगर धन मिलने पर ही पता चलता है कि इसमें कुछ है नहीं। और अब बहुत देर हो गई। अब किसी से यह कहना भी कि धन में कुछ नहीं है, नाहक अपनी और बदनामी करवानी है। तो लोग और हंसेंगे--कि तुम मूढ़ हो! जिंदगी भर जिस चीज के पीछे दौड़े, अब तुम्हें होश आया! तुम्हें बुद्धि पहले न थी?

तो धनी धन पाकर भी चुप रहता है। भीतर ही भीतर पीड़ित होता है, दुखी होता है, रोता है। और बाहर? मुस्कुराहट!

पद पर पहुंचा हुआ व्यक्ति भीतर तो बेचैन होता है, क्योंकि देखता है कि पद पर तो आ गया, मिला तो कुछ भी नहीं! कुर्सी कितनी ही ऊंची हो जाए, इससे मिलना क्या है? तुम तो जो थे वही हो! सिर्फ कुर्सी की ऊंचाई से तुम्हारे चैतन्य की ऊंचाई नहीं बढ़ जाएगी। काश इतना आसान होता कि कुर्सी की ऊंचाई से चैतन्य की ऊंचाई बढ़ जाती! कि तिजोड़ी में धन के बढ़ने से भीतर की निर्धनता मिट जाती! काश इतना आसान होता कि बाहर यश फैल जाता, नाम फैल जाता, ख्याति फैल जाती, और भीतर सब कुछ तृप्त हो जाता, संतुष्ट हो जाता!

पर ऐसा नहीं होता। सब मिल कर भी कुछ मिलता नहीं, यह मिलने पर पता चलता है। लेकिन तब तक पूंछ कट चुकी होती है। अब किसी और को यह कहना कि हमारी पूंछ भी कट गई और कुछ नहीं मिला, और भी भद्द होगी। तो कटी पूंछ वाला हंसता ही रहता है। वह कहता है कि बड़ा आनंद आ रहा है। पूंछ क्या कटी, जब से पूंछ कटी है, तब से आनंद ही आनंद है। एकदम वर्षा ही हो रही है आनंद की! तुम भी कटवा लो। और जिन-जिन की कट जाती है, वे सब उसी क्लब में सम्मिलित होते जाते हैं। क्योंकि फिर वे एक-दूसरे की हालत समझने लगते हैं। अब किसी से क्या कहना! अब चुप ही रहने में सार है।

अगर इस दुनिया के सारे प्रतिष्ठित लोग, राजनेता, धनी अपने-अपने जीवन की व्यथा को खोल कर कह दें, तो क्रांति हो जाए, लोगों की दौड़ बंद हो जाए। अगर दुनिया के सारे धनी एक स्वर से कह दें कि हमने धन पाया और कुछ भी नहीं पाया, तो तुम्हारी धन की दौड़ एकदम ठहर जाए! लेकिन वे कहते नहीं, वे कह नहीं सकते; क्योंकि वैसा कहना अपने जीवन भर पर कालिख पोत लेनी होगी। तो लोग कहेंगेः तुम कैसे मूढ़ हो! तुम क्यों दौड़े ऐसी चीजों के पीछे जिसमें कुछ भी नहीं था? तो जो हारे हैं वे भी शान जतलाएंगे कि तुमसे तो हम ही अच्छे! देखो न, हम दौड़े ही नहीं!

हैं हारे, दौड़े भी थे। लेकिन अब वे अपनी हार में भी अहंकार की तृप्ति करने लगेंगे। और वे कहेंगे कि हमें पहले ही से पता था! तुम्हें जगह-जगह ये लोग मिलेंगे जो तुमको हर वक्त कहेंगे, हमें पहले से ही पता था कि ऐसा होने वाला है! ऐसी कोई चीज ही नहीं होती दुनिया में जिसका लोगों को पहले से पता न हो! हरेक कहता हैः हमें पहले से पता है।

कोलंबस ने जब पहली दफा जाने की चेष्टा की अमरीका, इस आधार पर कि पृथ्वी गोल है, कोई साथ देने को राजी नहीं था। एक व्यक्ति समर्थन को राजी नहीं था। वह तो एक झक्की, स्पेन की रानी ने कहा कि ठीक है, क्या हर्जा है! कितना खर्च होगा! बहुत से बहुत नुकसान ही होगा थोड़ा-बहुत, तो हो जाएगा। अब तुझे इतनी जिद्द है तो कर देख।

सारे लोगों ने रानी को कहा कि व्यर्थ पैसा खराब होगा, यह आदमी मरेगा; नब्बे आदमी यह साथ ले जा रहा है, उनकी जान खतरे में है।

वह रानी झक्की थी, उसने कहा कि होने दो। वैसे ही हजारों लोग मर जाते हैं युद्धों में, नब्बे आदमियों की क्या कीमत है! और एक आदमी को इतना फितूर सवार है, कर लेने दो इसको मन की पूरी!

कोई एक आदमी पक्ष में नहीं था। फिर कोलंबस पहुंच गया अमरीका और उसने खोज लिया अमरीका। और जब वह लौट कर आया तो सारे लोग, पूरा मुल्क ही यह कह रहा था कि अरे हम तो पहले ही कहते थे! कोलंबस तो बड़ा ही हैरान हुआ, जो मिले वही कहे कि कहो, हमने पहले ही कहा था न! हम तो सदा से कहते थे कि भाई कोई साथ दे बेचारे का, वह ठीक कह रहा है। हम तो होता धन तो हमीं साथ दे देते! एक आदमी ऐसा न मिला जो यह कहे कि हम इसके विरोध में थे।

कोलंबस ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि मैं तो चकित हो गया कि लोग भी हद्द हैं, और लोग इतने आत्मविश्वास से कहते थे कि हमने तो पहले ही कहा था, कि उनसे यह कहना भी अच्छा न लगता कि भैया, तुम ही विरोध में थे!

रानी ने एक भोज का आयोजन किया कोलंबस के स्वागत में। देश के सारे धनी, सारे प्रतिष्ठित लोग, दरबारी, सब उपस्थित थे। वजीर, मंत्री, इत्यादि-इत्यादि, सेनापति। उन सबने रानी से कहा, इसमें ऐसी कौन सी खास बात है? अरे, यह तो कोई भी कर सकता था, पृथ्वी गोल है! इसमें कोलंबस ने कोई बड़ा गजब नहीं कर लिया, कोई असंभव संभव नहीं कर दिखाया! यह तो कोई भी कर सकता था!

कोलंबस बैठा यह सुनता रहा इन सब की बातें। भोज चलता रहा और वे सभी यह कहते रहे कि हम तो पहले ही कहते थे कि इसमें कुछ खास मामला नहीं है, बेकार पैसा खराब करना है। लेकिन आपको जिद्द थी, कर लिया। यह तो होने ही वाला था, यह तो तय ही था।

कोलंबस से न रहा गया तो उसने एक अंडा उठाया अपनी थाली में से और कहा कि इसको कोई खड़ा करके बता दे!

कई ने कोशिश की। अंडे को कैसे खड़ा करोगे! वह झट से लुढ़क जाए। लोगों ने कहा, अंडा कहीं खड़ा हो सकता है? सब कहने लगे, अंडा कहीं खड़ा हो सकता है? वे कहने लगे कि कोलंबस पागल हो गया। यह लंबी यात्रा का परिणाम होगा। तीन महीने पहुंचने में लगे--पानी ही पानी, पानी ही पानी! और घबड़ाया रहा होगा कि पहुंचते हैं जमीन पर कि नहीं पहुंचते! फिर लौटते वक्त पता नहीं अपने देश वापस पहुंच पाएंगे कि नहीं, नाव ठीक चल रही है कि नहीं। क्योंकि न तो यंत्र थे, न हिसाब था; कहां टकरा जाएंगे, क्या होगा... । इसका दिमाग खराब हो गया; अंडा कहीं सीधा खड़ा हो सकता है? सबने कोशिश की, सबने कह दिया रानी से, यह कभी नहीं हो सकता। यह आदमी पागल है। हम तो पहले ही कहते थे कि यह आदमी पागल है, वे कहने लगे!

कोलंबस ने उठाया अंडा, उसे एक झटका दिया टेबल पर जोर से, तो उसकी पेंदी अंडे की अंदर सरक गई और वह खड़ा हो गया। उसने कहा, देखो यह खड़ा है!

उन्होंने कहा, अरे! यह तो कोई भी कर सकता है। इसमें क्या खास बात है? तुमने पहले क्यों नहीं कहा? यह तो हम भी कर सकते हैं, यह तो कोई छोटा बच्चा कर सकता है। इसमें ऐसी कौन सी खूबी है?

कोलंबस ने कहा कि जरा तुम सोचो तो कि तुम क्या कह रहे हो बार-बार! जो काम करके बता दिया जाता है, वह कोई भी कर सकता है! और जो काम करके नहीं बताया जा सकता, जब तक नहीं बताया गया, तब तक कोई भी नहीं कर सकता। तुम थोड़ा विचार तो करो!

लोग ऐसे हैं। किसी की सफलता वे स्वीकार नहीं कर सकते; अपनी विफलता स्वीकार नहीं कर सकते। इसलिए जो सफल हो जाते हैं, वे बेचारे हिम्मत नहीं जुटा पाते यह कहने की कि साफ-साफ कह दें कि हमें कुछ मिला नहीं। क्योंकि उनको डर लगता है कि सारे विफल लोग कहेंगे कि हम तो पहले ही कहते थे। तो एक तो जिंदगी गंवाई ठीकरे कमाने में, और फिर लोगों की निंदा सहो, बदनामी सहो, और लोगों की हंसी सहो, और मखौल सहो। इससे बेहतर है चुपचाप रहो, अब जो हुआ सो हुआ। अब यह बात कहो ही मत। अब बाहर मुस्कुराते रहो, और बाकी लोगों को भी दौड़ने दो, दौड़ने ही दो।

ऐसे यह पागल दौड़ जारी रहती है। आकांक्षा कभी भी तृप्ति नहीं लाती--सफल हो जाए तो भी नहीं, असफल हो जाए तब तो लाएगी ही कैसे? अभीप्सा बड़ी और बात है, ठीक उलटी बात है। आकांक्षा होती है पर की, अभीप्सा होती है स्व की। अभीप्सा होती है आत्म-अनुभव की।

योग प्रीतम, यही अभीप्सा आवश्यक है। यह अभीप्सा तुम्हें पूरा-पूरा पकड़ ले, तन-प्राण से पकड़ ले, एक झंझावात की तरह पकड़ ले, तुम्हारे रोएं-रोएं में समा जाए, तुम्हारी पोर-पोर में बैठ जाए, तो क्रांति घटित हो जाएगी। और मैं देखता हूं कि रोज-रोज यह अभीप्सा तुम्हारी सघन हो रही है। तुम ठीक कहते होः

"मौन के गहरे अतल में डूब जाऊं
छूट जाए यह परिधि परिवेश
शब्दों का महत व्यापार
सीखा ज्ञान सारा
और अपने ही निबिड़ एकांत में
बैठा हुआ चुपचाप
अंतरलीन हो
सुनता रहूं मैं शून्य का संगीत
प्रतिपल।"

यह होगा। यह हो तभी जीवन सफल भी है। यह हो तभी कृतार्थ हुए। ऐसा जो करके मरता है वह मरता ही नहीं, वह अमृत को उपलब्ध हो जाता है।

लेकिन अभीप्सा सिर्फ अभीप्सा ही न रहे, सिर्फ मात्र एक ख्याल ही न रहे, सिर्फ एक स्वप्न ही न रहे। इस स्वप्न को रूपांतरित करो। ऐसा कहो ही मत कि मौन के गहरे अतल में डूब जाऊं--डूबो! कौन रोकता है?

एक बहुत मजेदार बात है। धन पाना चाहो, हजार रोकने वाले हैं, क्योंकि उनको भी धन पाना है। इसलिए प्रतिस्पर्धा है। राष्ट्रपति होना चाहो, साठ करोड़ का देश है, साठ करोड़ आदमियों से टक्कर है, क्योंकि हरेक को राष्ट्रपति होना है।

अरबी कहावत है कि परमात्मा भी हरेक आदमी के साथ खूब मजाक करता है। जिसको बनाता है, बनाने के बाद जैसे ही दुनिया में भेजने को होता है, उसके कान में फुसफुसा देता है कि तुझसे श्रेष्ठ आदमी मैंने कभी नहीं बनाया! हरेक के कान में कह देता है यही बात! इसलिए हरेक अपने भीतर यह बात छिपाए रखता है; कहे न कहे, मगर छिपाए रखता है--कि मैं हूं श्रेष्ठतम। यह दुनिया है बेहूदी और पागल और नासमझ, कि अब तक मुझे पहचान नहीं पाई, नहीं तो राष्ट्रपति मुझे ही होना ही चाहिए। और तो कोई योग्य आदमी है ही नहीं! योग्य हूं तो मैं हूं, और तो सब अयोग्य हैं।

यही तो संघर्ष है राजनीति का कि प्रत्येक व्यक्ति सोचता हैः मैं योग्य हूं। मैं सारी समस्याएं हल कर लूंगा। हालांकि किसी को समस्याएं हल करने की पड़ी नहीं है। समस्या प्रत्येक को एक हल करनी है--कि मैं कैसे पद पर हो जाऊं! एक ही समस्या है असली, बाकी सब समस्याएं तो बकवास हैं; बाकी समस्याएं तो उस एक समस्या को छिपाने के उपाय हैं।

भीतर की यात्रा में एक खूबी की बात है कि कोई प्रतिस्पर्धा नहीं है।

योग प्रीतम, कौन रोकता है? कोई नहीं रोक रहा है। तुम्हें मौन होना है, कोई अड़चन नहीं है। किसी से टक्कर नहीं है। यही तो आध्यात्मिक जीवन का सबसे सुंदर सत्य है कि वहां किसी से होड़ नहीं, किसी से छीना-झपटी नहीं। आध्यात्मिक संपदा ऐसी संपदा है कि तुम कितनी ही पाओ, किसी और की कम नहीं होती। बाहर की दुनिया में तो तुम पाओगे तो किसी की कम हो ही जाएगी।

मैंने सुना है, एक युवक और उसकी बहन, दोनों हालीवुड पहुंचे। युवक अभिनेता बनना चाहता था। अभिनेता बन गया, मगर हमेशा दिक्कत में, ऋण उसके ऊपर बढ़ता ही जाए। कमाए भी बहुत, मगर जितना कमाए उससे ज्यादा उसका खर्च। ऋण के बोझ के नीचे दबा जा रहा है, कभी भी दिवालिया हो जाएगा। उसकी बहन हो गई वेश्या। उसकी कमाई बढ़ती ही चली गई और धन के ढेर लगते चले गए। एक दिन दोनों मिले। बहन ने उससे कहा कि भाई मेरे! मैं भी हालीवुड में हूं, तुम भी हालीवुड में हो। तुम पर ऋण ही ऋण बढ़ता जाता है, मेरा धन ही धन बढ़ता जाता है। तुम कर क्या रहे हो?

तो उस भाई ने कहा कि अब तुझसे क्या छिपाना! जिस कारण तेरा धन बढ़ रहा है, उसी कारण मेरा धन खो रहा है!

बाहर की दुनिया में तो अगर तुम्हारी जेब वजनी होने लगेगी तो किसी की जेब खाली होने लगेगी। कोई लुटेगा तो तुम बसोगे। कोई बस्ती उजड़ेगी तो तुम्हारी बस्ती आबाद होगी। यहां तो जीवन छीना-झपटी है। यहां तो हरेक हरेक का शोषक है। जो जितना कुशल है, जो जितना कपटी है, जो जितना बेईमान है, वह उतना ज्यादा झपट्टा मार लेगा।

लेकिन भीतर के जगत में और ही अर्थशास्त्र है। वहां तुम्हारी संपदा जितनी बढ़ती है, किसी की घटती नहीं, उलटे तुम्हारी संपदा के बढ़ने से औरों की संपदा बढ़ती है। मनुष्य-जाति के इतिहास में से हम बुद्ध को, महावीर को, कृष्ण को, क्राइस्ट को, मोहम्मद को, जरथुस्त्र को काट दें, अलग कर दें, और आदमी में क्या बचेगा? आदमी वापस झाड़ों पर बैठा हुआ नजर आएगा। आदमी वापस जंगली हो जाएगा। आदमी में कुछ भी नहीं बचेगा। ये थोड़े से लोगों ने जो भीतर की संपदा पाई, उस संपदा के कारण आदमी के चैतन्य की ऊर्जा बढ़ी है।

एक व्यक्ति बुद्धत्व को उपलब्ध होता है तो सारी मनुष्यता जैसे एक सीढ़ी ऊपर उठ जाती है। पता भी नहीं चलता तुम्हें, लेकिन तुम्हारे भीतर क्रांति हो जाती है। एक व्यक्ति बुद्ध होता है तो उसकी रोशनी, उसकी जगमगाहट तुम्हारे अनजाने ही तुम्हारे प्राणों को आंदोलित कर जाती है। उसकी सुगंध तुम्हारे नासापुटों को भर जाती है। तुम पहचानो न पहचानो, तुम आभार मानो न मानो, इससे कुछ भेद नहीं पड़ता। जब वसंत आता है तो हजारों फूल खिल जाते हैं। तुम चाहे देखो चाहे न देखो, लेकिन हवा में गंध होती है, तुम्हारे नासापुट गंध से भरते हैं, हवा में ताजगी होती है, पक्षियों के गीत होते हैं। तुम सुनो न सुनो, तुम बहरे रहो, रहो, मगर गीत तो तुम्हारे प्राणों में प्रवेश करते ही जाते हैं। चुपचाप! बिना किसी पगध्वनि के! एक व्यक्ति का जाग्रत हो जाना सारी मनुष्य-जाति के जीवन में जागरण की एक लहर को पहुंचा देता है।

तो भीतर का अर्थशास्त्र बड़ा उलटा है। वहां एक पाता है, सबको मिलता है। बाहर की दुनिया का अर्थशास्त्र ऐसा हैः वहां एक पाए तो बहुतों का छिनता है।

"मौन के गहरे अतल में डूब जाऊं"--तुम कहते हो, योग प्रीतम।

डूबो! शुभ है तुम्हारे लिए भी, औरों के लिए भी।

"छूट जाए यह परिधि परिवेश

शब्दों का महत व्यापार

सीखा ज्ञान सारा।"

ज्ञान ने थोड़े ही तुम्हें पकड़ा है। पागल हो! तुम उसे पकड़े हो।

शेख फरीद हुआ एक सूफी फकीर। एक आदमी आया और उससे कहने लगा कि कैसे? कैसे यह संसार छूटे?

शेख फरीद तो बहुत मस्त किस्म का आदमी था, अल्हड़। उसके जवाब भी अल्हड़ होते थे। वह एकदम उठा। वह आदमी बोला, आप कहां चले?

फरीद ने कहा कि तुम्हें उत्तर देता हूं, बैठो! वह एकदम उठा और पास ही एक खंभे को पकड़ कर जोर से चिल्लाने लगा, बचाओ भाई, बचाओ!

वह आदमी बोला कि आप कर क्या रहे हैं? आप होश में हैं? आपने पी-पा तो नहीं ली? बचाना क्या है?

फरीद ने कहा, अरे खंभे से छुड़ाओ!

उस आदमी ने कहा, आप भी हद की बातें कर रहे हैं! खुद खंभे को पकड़े हुए हैं और कहते हैं खंभे से छुड़ाओ!

फरीद ने कहा, तो तू तो आदमी होशियार है। जब तुझे इतना समझ में आता है कि मैं खंभे को पकड़े हूं, इसलिए मुझे कोई और छुड़ा नहीं सकता जब तक मैं ही न छोड़ दूं। तू रास्ता लग! संसार को तू पकड़े है कि संसार तुझे पकड़े हुए है? जिस दिन छोड़ना हो, छोड़ देना। इतना शोरगुल क्या मचाना? पूछना-पाछना क्या?

पूछते-पाछते ही हम इसलिए हैं ताकि स्थगित कर सकें। हम पूछते हैं कि कोई रास्ता बताएं कि संसार कैसे छूटे! न कोई रास्ता बता पाएगा... और बताए भी कोई रास्ता, तो कोई हम मानने वाले हैं! अभी हम और पता लगाएंगे। आदमी दो पैसे की मटकी खरीदता है तो ठोंक-ठोंक कर, बजा-बजा कर। तो हम हर रास्ते को पूछेंगे, अभी जाएंगे और सदगुरुओं के पास, इधर और उधर और सब जगह भटकेंगे, शास्त्रों में खोजेंगे। जब तक ठीक रास्ता न मिले तब तक ऐसे कोई हर किसी रास्ते पर थोड़े ही चल पड़ेंगे! इतने नासमझ थोड़े ही हैं, ऐसे अज्ञानी थोड़े ही हैं!

ऐसे न रास्ता मिलेगा, न संसार को छोड़ना पड़ेगा। और रास्ता मिल भी जाए तो भी हम कहते हैंः बड़ा मुश्किल है! बड़ा जाल है संसार का!

अभी मर जाओगे, और एक क्षण में छूट जाओगे। और संसार रोक नहीं पाएगा, और सारा जाल ऐसे का ही ऐसा रहेगा!

एक महिला संन्यासिनी होना चाहती थी। तीन साल सोचती रही। मैंने उससे बार-बार कहा कि तेरी उम्र काफी हो गई, सत्तर साल तेरी उम्र है, कब तक सोचेगी? ऐसे में कहीं मौत पहले आ गई तो फिर मुझे दोष मत देना!

उसने कहा, नहीं-नहीं, आप भी कैसी बात करते हैं! ऐसी बात कहना ही नहीं आप, ऐसी अपशगुन की बात नहीं कहनी चाहिए!

मैंने कहा, इसमें अपशगुन की बात नहीं कह रहा हूं। मौत तो आएगी ही। और सत्तर साल की तू हो गई, कितने दिन तुझे और जीने का इरादा है? मौत के पहले ही संन्यास ले ले। और मौत के बाद तू लेना भी चाहेगी तो मुझे देने में मुश्किल होगी। और मौत के बाद तू कृपा ही करना, आना ही मत। क्योंकि भूत-प्रेतों को संन्यास देने की कोई परंपरा ही नहीं है। वैसे ही मैं काफी झंझट में पड़ा हूं, और अब कहां भूत-प्रेतों को संन्यास देकर झंझट लूंगा! तू क्षमा करना, अगर मर जाए तो कृपा करना, फिर मत आना।

संयोग की बात, बिल्कुल संयोग की बात कि दूसरे दिन ही वह एक मोटर से टक्कर खा गई। अस्पताल में भरती है! उसका बेटा भागा हुआ आया। उसने कहा कि आपने भी कैसी बात कह दी! मेरी मां मोटर से टक्कर खा गई। न आप ऐसी अपशगुन बात कहते...

मैंने कहा कि तुम भी पागल हुए हो! जितने लोग मोटर से टक्कर खाते हैं, कोई मेरे अपशगुन कहने से! ड्राइवर को क्या पता कि मैंने तेरी मां से क्या कहा है!

मैंने कहा, तू फिक्र कर, भाग जा जल्दी और पूछ उससे कि अभी संन्यास लेना हो तो ले ले।

मगर उसकी मां ने कहा कि सोचूंगी। और चौबीस घंटे बाद वह मर गई। मरते वक्त उसने अपने बेटे से कहा कि यह तो बड़ी अजीब बात हुई! मैं तो चली। और सच है कि संसार जहां का तहां है, जाल सब वैसा का वैसा है। मेरे नहीं होने से कुछ फर्क नहीं पड़ेगा। और मैं संन्यास न ले सकी! तुम जाओ और इतनी प्रार्थना करना कि कम से कम मेरी लाश को माला पहना दें।

वह बेटा आया। मैंने कहा, मैंने पहले ही कहा था कि भूत-प्रेत होकर नहीं। लाश को माला पहनाने से क्या होगा? अब लाश तो मिट्टी है। जिसको लेना था संन्यास, वह पक्षी तो उड़ चुका, वह तो दूसरी देह में प्रवेश कर चुका होगा। यह देह तो अब खाली है। वैसे तुम्हारा मन हो और तुम्हें दुख होता हो, तो मैं माला दे देता हूं, जाकर तुम पहना देना, अपने मन को समझा लेना। लेकिन अच्छा यह हो कि तुम संन्यास लो।

उसने कहा, आप भी क्या बात करते हैं! अरे घर-द्वार, गृहस्थी, बच्चे। ऐसे ही मेरी मां मर गई और मैं संन्यास ले लूं? तो अभी घर में हड़कंप मच जाएगा।

मैंने कहा, मां के मरने से कोई हड़कंप मच गया है? मरने से हड़कंप नहीं मचता, संन्यास लेने से हड़कंप मच जाएगा! यही भूल तुम्हारी मां ने की।

उसने कहा, बस अब आप चुप रहें, आप और कुछ आगे मत कहना। क्योंकि कल ही आपने कहा और चौबीस घंटे में मेरी मां खतम! मैं आऊंगा, मैं जरूर आऊंगा।

कोई आठ साल हो गए, अभी तक वे आए ही नहीं।

लोग शांत होने की, मौन होने की भी व्यवस्था नहीं कर पाते। कोई रोक नहीं रहा है। शब्दों का उधार ज्ञान छोड़ने को कौन रोकता है? ज्ञान तुम्हें पकड़ नहीं सकता, शास्त्र तुम्हें पकड़ नहीं सकते, तुम्हीं जकड़े हो। तुम छोड़ दो मुट्ठी, सब गिर जाएगा।

तुम कहते होः

"और अपने ही निबिड़ एकांत में
बैठा हुआ चुपचाप
अंतरलीन हो
सुनता रहूं मैं शून्य का संगीत
प्रतिपल।"

डूबो! देर न करो। क्षण भर की भी देर उचित नहीं है।

यह फूल नहीं है, मेरे मन की भाषा है!
अवनी के मन में--
अंबर से मिल जाने की अभिलाषा है!

बन गई नयन-मुस्कान शब्द,
हो गया हृदय का मौन मुखर,
अंतरमन के अनजाने कोने में
आया मधु-भाव उभर;
यह फूल नहीं है,
अलिखित मेरे छंदों की परिभाषा है!

थिर हुई अचिरता में पल भर
सौरभ रंग रस की एक लहर,
मुरझा कर झरने के क्रम में
खुल कर खिलना बस एक पहर;
यह फूल नहीं है,
कर्म-वचन-मन खिल पाने की आशा है!

यह खुला हुआ अपलक जैसे
अंतरमन का ध्यानस्थ नयन,
है पलक-पंखुरियों पर हंसता
रवि-कर-चुंबित चंचल हिम-कन;
यह फूल नहीं है,
मंत्र-लुब्ध नयनों की अमर पिपासा है!

यह तुम्हारी अभीप्सा शुभ है, मंगलदायी है। यह तुम्हारे प्राणों की भाषा है। यह तुम्हारे अंतरतम की अभिलाषा है। इसे पूरा करो; इसे पूरा होने दो; इसे सहयोग दो। इसके लिए सब कुछ समर्पित करो। और आ गया समय कि अपने निबिड़ एकांत में डूबो। जो जितना बुद्धिमान है, उतनी जल्दी उसका समय आ जाता है। जो जितना बुद्धू है, उतनी देर लगाता है।

अब लहरने-हहरने की गई वेला!
बहुत दिन मैं प्राण-मन के खेल खेला!
ठहरने दो जल, निथरने निखरने दो,
सरोवर को पड़ा रहने दो अकेला!
ठहरने दो मृत्तिका के कण अतल में,
ऊर्मियां उठने न दो अब शांत जल में!
उतरने दो गगन को प्रतिबिंब बन कर,
जागने दो ज्योति मानस के अतल में!
मोह कैसा लोह के इस आवरण से?

क्लेश कैसा काल के काया-हरण से!
प्राण-मन क्यों हों दुखी क्षण-कण विरह में?
अंतरिक्ष न दूर हो अंतःकरण से!
हंस रहा सरसिज, बनी मुसकान वाणी!
खुला गूढ़ रहस्य, बोला मौन ज्ञानी!
बिंबगत बिंबाधरा प्रत्यूष वेला,
खुला नभ अब खुला, दर्पण-स्वच्छ पानी!
अब लहरने-हहरने की गई वेला!
मानसर निष्कंप, लहरों का न मेला!
नाल पर दृग बंद कर ध्यानस्थ सरसिज,
मध्यसर में हंस आत्मा का अकेला!

गए दिन लहरने-हहरने के। बीत गए क्षण दौड़ के, आपाधापी के। तुम्हारे भीतर जो परम जिज्ञासा है, वह उठी है। इन क्षणों को मूल्य दो। क्योंकि कौन जाने यह जिज्ञासा फिर कब उठे! कौन जाने यह अभीप्सा फिर कब जगे, न जगे! किन्हीं सौभाग्य के क्षणों में ऐसी अभीप्सा मनुष्य के प्राणों को पकड़ती है। इन क्षणों को चूकना उचित नहीं है। सब समर्पित करो, सब अर्पित करो।

और यह क्रांति घटेगी, घट सकती है, जरा भी अड़चन नहीं है। तुम्हारे अतिरिक्त और कोई अड़चन नहीं है। तुम्हीं चाहो अगर घटाना तो अभी घट सकती है, यहीं! एक क्षण पर भी टालने की आवश्यकता नहीं है। कल की तो बात ही न करना। क्योंकि जिसने कल पर छोड़ा उसने सदा के लिए छोड़ा। जिसे नहीं करना होता है, वह कल पर छोड़ता है। अभी कर लो, आज कर लो। एक पल का भी भरोसा नहीं है।

उतरो भीतर अपने, ठहरने दो सब--शांति में, मौन में। साक्षी बनो। पुरानी आदत है, विचारों की तरंगें कुछ दिन तक आएंगी! आने दो। देखते रहो निरपेक्ष-भाव से, निष्कंप। न बुरा कहो, न भला। निर्णय मत लेना, चुनाव न करना। तादात्म्य से अपने को अछूता रखना। बस देखते रहना। आती हों मन में लहरें, आने दो। जानना कि यह मैं नहीं हूं। न मैं देह हूं, न मैं मन हूं। जिस दिन, जिस क्षण यह बात सघन होकर बैठ जाएगी--न मैं मन हूं, न मैं तन हूं--उसी क्षण तुम जान लोगे कि मैं कौन हूं। मैं ब्रह्म हूं! अहं ब्रह्मास्मि!

आज इतना ही।

दूसरा प्रवचन

खोलो शून्य के द्वार

पहला प्रश्नः ओशो, अभी न ले जाएं उस पार!
इन अंधियारी रातों में अब,
चंदा देखा पहली बार!
क्षण भर तो जी लेने दें अब
रुक कर निरख तो लेने दें अब
कुछ कह लेने कुछ सुन लेने दें
भ्रम है, सपना है, यह कह कर
अभी न खोलें शून्य के द्वार!
अभी न ले जाएं उस पार!

मीरा, इस पार और उस पार में कोई अंतराल नहीं है--स्थान का या समय का। जाग जाओ तो यही पार उस पार में रूपांतरित हो जाता है। भेद है जागने और सोने का।

नदी के दो तट होते हैं। उन दोनों के बीच तो फासला होता है। इस पार से उस पार जाना हो तो तैरना पड़े, नाव करनी पड़े, पतवार उठानी पड़े, जूझना पड़े आंधियों से, अंधड़ों से। और कौन जाने दूसरा पार मिले न मिले! उसका क्या भरोसा? नाव मझधार में भी डूब सकती है। लेकिन जीवन की नदी के जो दो पार हैं, उनके बीच दूरी नहीं है। उनके बीच इतनी ही दूरी है जितनी सुबह तुम्हारे सोने और जागने के बीच होती है। उसे दूरी नहीं कहा जा सकता। अभी सोए थे, अभी जाग गए। सोने और जागने के बीच कोई यात्रा भी तो नहीं करनी होती। अभी पलकें बंद थीं, अब खुल गईं। अभी सब अंधकार था और सपने ही सपने थे, और सब प्रकाश है अब और सपने कहां तिरोहित हो गए, पता भी नहीं चलता! थे भी कभी, इसका भी पता नहीं चलता।

यह जो जीवन की धारा है, यह सोने और जागने के दो किनारों के बीच बह रही है। हम तो जहां हैं वहीं हैं--सोए भी वहीं, जागे भी वहीं। सोए तो सपनों में खो गए, जाग गए तो सत्य का साक्षात्कार हुआ। इसलिए भाषा में उलझ मत जाना। मैं जब उस पार की बात कर रहा हूं तो किसी दूर के गंतव्य की बात नहीं है वह। कहीं जाना नहीं है। जाने की बात ही नहीं है। जागने की बात है।

तू कहती हैः "अभी न ले जाएं उस पार!
इन अंधियारी रातों में अब
चंदा देखा पहली बार!"

यह जो अनुभव हो रहा है अभी, यह जो चंद्रमा की झलक मिल रही है अभी--स्वप्न में ही है। अंधेरी रात में स्वप्न ही हो सकते हैं। क्योंकि अंधेरा यानी निद्रा। रात यानी प्रसुप्ति। हां, सपना देख सकते हो तुम। उस पार का सपना भी देख सकते हो। सोए-सोए भी कोई सोच सकता है कि मैं जाग गया। नींद में भी जागने का सपना देखा जा सकता है। मगर वह जागना नहीं है।

और यह बात सच है कि नींद में भी जागने का अहसास हो, तो भी आनंद मालूम होगा। जागने की बात में ही इतना रस है कि नींद तक में जागने की प्रतीति हो, तो भी आह्लादित करती है। अभी जो चंद्रमा देखा है, वह चंद्रमा की ज्यादा से ज्यादा झलक है। जैसे झील में बना हुआ चंद्रमा, बिल्कुल चंद्रमा जैसा लगता है, मगर वहां है कुछ भी नहीं, केवल प्रतिफलन है। जैसे कि दर्पण में देखा मुखड़ा; वहां कुछ भी नहीं है, दर्पण को तोड़ कर कुछ भी न पाओगे। दर्पण ही टूट जाएगा बस, हाथ कुछ भी न आएगा। छवि भी खो जाएगी।

जरूर यहां मेरे पास बैठोगे, उठोगे, सुनोगे, समझोगे, रसधार बहेगी। पहले तो तुम्हें चंद्रमा झील में ही दिखाई पड़ेगा। और जब तुम्हें चंद्रमा झील में दिखाई पड़ेगा तो स्वाभाविक है कि तुम्हारा मोह जगे, तुम्हारी आसक्ति जगे। तुम उसी चंद्रमा को पकड़ कर बैठ जाना चाहो। इतना प्यारा! प्रतिफलन ही सही, तुम्हारे लिए तो सत्य ही है। प्रतिफलन तो उनके लिए जिन्होंने सत्य को देखा हो। वे तुलना कर सकते हैं कि सत्य क्या है और प्रतिफलन क्या है। तुमने तो मूल देखा नहीं, इसलिए प्रतिफलन को ही सत्य मान लेने के सिवाय और कोई चारा नहीं है। और अगर मैं कहूं कि यह झूठ, और अगर मैं कहूं कि यह स्वप्न, माया, तो पीड़ा होगी। बामुश्किल तो झलक मिली। तलाश करते-करते तो, खोजते-खोजते तो, जन्मों-जन्मों में तो, कहीं चांद दिखा। और इधर चांद दिखा नहीं है कि मैंने तुमसे कहना शुरू कर दिया कि छोड़ो इसे! यह तो केवल प्रतिफलन मात्र है, प्रतिबिंब मात्र है। जागो इससे! यह तो केवल सपना है!

यह सपना प्रीतिकर है। चंद्रमा झील में भी बड़ा सुंदर होता है, खूब प्यारा होता है। और झील अगर निष्कंप हो, तो बिल्कुल सच है, ऐसी भ्रांति पैदा हो सकती है।

मैं चांद की बात कर रहा हूं। तुम रोज चांद की बात सुनते हो। वह बात धीरे-धीरे भीतर बैठती है, अंतरतम में पैठती है। फिर मैं ध्यान के लिए निरंतर तुमसे आग्रह कर रहा हूं, निमंत्रण दे रहा हूं। फिर धीरे-धीरे ध्यान में भी तुम्हारा रस उमगता है, तुम्हारी जिज्ञासा जगती है। ध्यान का अर्थ हैः मन में उठती तरंगों को शांत कर देना। और जैसे ही, मीरा, मन की तरंगें शांत हो जाएंगी, मन की झील में चांद का प्रतिबिंब बनेगा।

वही हो रहा है। और तुझे ही हो रहा है, ऐसा नहीं; बहुतों को यही होगा। सभी को इस घड़ी से गुजरना होगा। और जैसे ही तुम्हारे मन की झील में तरंगें गईं और चांद का प्रतिबिंब बना, कि जरूरी है कि मैं तुम्हें चौंकाऊं, कि मैं तुम्हें हिलाऊं, कि मैं तुमसे कहूं कि इसमें भटक मत जाना। यह बहुत प्यारा दिखने वाला चांद बस केवल प्रतिबिंब है, अभी असली चांद की तलाश करनी है। अभी उस पार चलना है।

और तब स्वभावतः तुम्हें लगे कि बामुश्किल तो यह सुंदर अनुभव हुआ, बामुश्किल तो यह जरा सी प्रतीति हुई, जीवन में कोई झरोखा खुला, कोई कपाट खुले, ऐसा लगा कि मंदिर करीब आया, ऐसा लगा कि दूरी मिटी--और इधर लग भी नहीं पाई बात कि मैं फिर तुम्हें पुकारने लगा कि रुक न जाना, ठहर न जाना, यह पड़ाव भर है, मंजिल नहीं। विश्राम कर लो दो घड़ी, मगर चलने की तत्परता रखना। अभी और चलना है, और चलना है--जब तक कि सत्य तक ही न पहुंच जाएं तब तक चलते ही चलना है। तब तक बहुत पड़ाव आएंगे और हर पड़ाव पर लगेगा कि बस आ गए। थकान के कारण भी लगने लगता है कि आ गए। और हमें कोई अनुभव भी नहीं सत्य का। इसलिए जो भी हमें मिल जाता है, उसी से हम तृप्त होने लगते हैं। उतना ही क्या कम है! सोचते हैं, शायद बस आ गई मंजिल।

मैंने एक पुरानी सूफी कहानी सुनी है। एक फकीर एक वृक्ष के नीचे बैठ कर रोज अपनी मस्ती में गीत गाता, कभी बांसुरी बजाता, कभी नाचता। एक लकड़हारा भी रोज उसी जंगल से लकड़ियां काट कर गुजरता है। फकीर है, अलमस्त है; झुक कर उसे नमस्कार करता जाता है। एक दिन फकीर ने, जब वह झुक कर नमस्कार

कर रहा था, कहा कि मेरे भाई, तू कब तक लकड़ियां ही काटता रहेगा? अरे पागल, जरा और आगे बढ़! जहां से तू लकड़ियां काट रहा है, उससे थोड़े ही आगे चल कर तांबे की खदान है। एक दिन में इतना तांबा ले जा सकता है कि सात दिन तक फिर तुझे कुछ लकड़ियां काटने की जरूरत नहीं। सात दिन के लिए भोजन पर्याप्त हो जाएगा।

लकड़हारे को भरोसा तो न आया। लेकिन फकीर रोज-रोज कहने लगा। जब भी लकड़हारा आता, उसके पैर छूता, फकीर याद दिलाता कि जरा आगे! जब भी लौटते में उसके पैर छूता, फिर याद दिलाता कि मूरख, तू लकड़ियां ही ढोता रहेगा, सुनेगा नहीं? जरा और आगे!

एक दिन उसने सोचा कि यह आदमी भला है, मस्त है, कौन जाने ठीक ही कहता हो! मस्तों की बात इनकार करनी मुश्किल भी हो जाती है। उनकी मस्ती ही उनकी बात की सचाई का प्रमाण होती है। और तो सत्य का कोई प्रमाण इस संसार में है भी नहीं--सिवाय अलमस्ती के, सिवाय आनंद के, सिवाय उत्सव के। इतना नाचता है यह फकीर! इसके पास कुछ भी नहीं है। इसके गीतों में ऐसी रसधारा बहती है! यह कभी मौन भी बैठा होता है तो भी इसके पास एक तरंग होती है--किसी और लोक की। कौन जाने, ठीक ही कहता हो! फिर झूठ कहेगा क्यों? किस कारण? मैंने इसका बिगाड़ा भी क्या, जो मुझे नाहक आगे की यात्रा करवाए? फिर एक दिन नहीं, रोज-रोज कहता है। संकोच भी लगने लगा उसे कि अब वह फिर कहेगा, तो आज चला ही जाऊं। थोड़ा आगे बढ़ा, पाया कि थी खदान। बहुत चौंका। कहा कि मैं भी कैसा मूरख! कितने दिन से फकीर कह रहा था!

भर लिया इतना तांबा कि फकीर ने तो सात दिन के लिए कहा था, लेकिन वह कम से कम महीने भर के लिए काफी था। महीने भर तो वह आया ही नहीं। महीने भर में एक दिन आता, खदान से तांबा भर ले जाता, बेच लेता और महीने भर के लिए निश्चिंत हो जाता।

एक दिन फकीर ने कहा, पागल, अब तांबे पर ही अटक जाएगा! थोड़ा और आगे नहीं बढ़ना? अरे चांदी की भी खदान है।

लकड़हारे ने सोचाः मेरे इतने भाग्य कहां! चांदी की खदान, मुझ गरीब को मिल जाए! विधाता ने यह मेरी किस्मत में लिखा होता तो मिल ही गई होती। फकीर मजाक कर रहा है; शायद परीक्षा कर रहा है; शायद देख रहा है कि मैं लोभी तो नहीं हूं।

सुनी अनसुनी कर दी। लेकिन फकीर फिर रोज कहने लगा। जब भी आता, महीने में एक बार, फकीर कहता, क्या इरादे हैं? बस अटक जाएगा तांबे पर?

सोचा एक दिन, कौन जाने जैसी पहली बात सच हुई, दूसरी भी सच हो! आगे बढ़ा, थी खदान। फिर ऐसे कहानी चलती है। फिर सोने की खदान और फिर हीरों की खदान है। और हीरों की खदान पर पहुंच गया लकड़हारा, तो फकीर उससे कहता है कि जरा और, जरा और। तो वह पूछता है कि अब किस चीज की खदान?

फकीर कहता है, यह मैं न बता सकूंगा। मगर जरा और। अभी असली धन मिला कहां! यह तो सब नकली धन है। यह तो मौत छीन लेगी। मगर उसका कोई नाम नहीं, अनाम है वह धन। अनिर्वचनीय है वह धन। उसकी व्याख्या न कर सकूंगा। उसके लिए कोई शब्द ही नहीं है, जिसमें वह समा सके। मगर थोड़ा और। इतनी सुनी तूने, इतनी और सुन।

मगर यह बात जंचे न। और जिसको हीरे मिल गए हों, अब उसे पड़ी भी क्या! वह बच कर निकल जाता। फकीर जिस रास्ते पर था उस रास्ते से न गुजरता। लेकिन फकीर भी कुछ ऐसे छोड़ थोड़े ही देते हैं। फकीर

उसके घर जाने लगा। आधी रात खटखटाए दरवाजा, कि भाई मेरे, सोए ही रहोगे? जरा और आगे! इतनी सुनी, अब न अटको। दो कदम और।

और अक्सर ऐसा होता है, मंजिल जब दो कदम रह जाती है तभी लोग अटक जाते हैं। मंजिल जब दो कदम रह जाती है तभी लोग थक कर बैठ जाते हैं।

मगर लकड़हारे की बात भी सच थी। वह पूछता कि बामुश्किल तो मुझे हीरों की खदान मिली, बुढ़ापा आ गया, जिंदगी भर भूखा मरा, दीनता-दरिद्रता में जीया। अब तो इतना मिल गया है कि मैं क्या, मेरी सात पीढ़ियों के लिए काफी है। अब मुझे पड़ी भी क्या?

लेकिन फकीर कहता, मान तू मेरी, सुन तू मेरी। अभी तुझे वह धन नहीं पाना है जो कभी छीना नहीं जा सकता?

लेकिन लकड़हारे की भी बात ठीक थी। वह कहे, तुम प्रमाण दो। तुम मुझे समझाओ। बात पहले मेरी समझ में तो पड़े, तो मैं और आगे बढ़ूं। अब तक तुमने जो बातें कही थीं, मेरी समझ में पड़ती थीं। अब तुम जो बात कह रहे हो वह बेबूझ है।

फकीर ने एक दिन कहा कि देख, मुझे देख। मेरी आंखों में झांक। तुझे नहीं दिखाई पड़ता कि मुझे हीरों से कुछ ज्यादा मिल गया है? नहीं तो मैं भी हीरों की खदान पर ही बैठा होता। तुझे मुझे देख कर प्रतीति नहीं होती कि हीरों के पार भी कुछ है? नहीं तो मैं कोई पागल हूं, जिसे हीरों की खदान पता है, सोने की खदान पता है, वह झाड़ के नीचे बैठ कर बस बांसुरी बजाता रहता? कि आंख बंद करके मस्त होकर डोलता रहता? और मेरे पास कुछ तुझे दिखाई पड़ता है? इस भिक्षापात्र के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। मैं भिखारी रहता, मैं सम्राट न हो जाता? मैं तुझे खबर देता? तूने किसी को खबर दी? तू छिपा रहा है कि किसी को पता न चल जाए हीरों की खदान, मैं भी छिपाता। मैंने तुझे खबर दी, क्योंकि मेरे पास और भी बड़े धन का द्वार खुल गया है। और मैं एक ऐसे धन के द्वार पर पहुंच गया हूं कि कितने ही लोग लें धन, तो भी वहां कुछ कम नहीं होगा। अकूत है, अथाह है। जरा और आगे बढ़ तो मैं जहां हूं वहां तू पहुंच जाए।

धन पकड़ में आ जाता है, ध्यान तो पकड़ में आता नहीं। लेकिन ध्यान ही असली धन है--हीरे-जवाहरातों के पार, समयातीत, कालातीत। उस पार, मीरा, जो मैं तुमसे कहता हूं, चलो, बढ़े चलो, कहीं रुकने नहीं दूंगा जब तक कि उस पार न पहुंच जाओ। और मजा ऐसा है कि उस पार से मतलब ऐसा नहीं कुछ कि कहीं और जाना है। उस पार यानी भीतर। इस पार यानी बाहर। इस पार यानी तंद्रा, निद्रा। उस पार यानी जागरण, ध्यान। इस पार यानी प्रतिबिंब, झलकें, सपने। उस पार यानी सत्य। और सत्य ही केवल मुक्तिदायी है।

लेकिन तुझे तो जो डर लग रहा है, वह सभी को लगता है।

किस किनारे जा लगेगी प्राण की नैया न जाने!
उस किनारे हों न हों इस पार के साथी सुहाने!
सहज हंसमुख सुख, हृदय का धन, न जाने कहां होगा?
दुख, मिलन तन यमुन मन की जाह्नवी का, कहां होगा?
कौन जाने, कौन हों उस तीर पर अपने-बिराने!
कहां होगी सहज सौंधी गंध वाली सजल धरती?
वह लहर, जो तृषित चितवन को अचानक तरल करती?

कहां होगी दूब, उस पर भी तुहिन के चटुल दाने!

नील नभ नक्षत्रधारी और दो नैना भिखारी, कहां होंगे?

स्वप्न की गंधर्व-नगरी, दृश्य उसके हृदयहारी, कहां होंगे?

याद आएगा मुझे जग, आज जग माने न माने!

किस किनारे जा लगेगी प्राण की नैया न जाने!

उस किनारे हों न हों इस पार के साथी सुहाने!

लगता है भय। चिंता पकड़ती है। छोड़ दें इस किनारे को? जो अभी-अभी प्रीतिकर होने लगा है! जो अभी-अभी सुंदर होने लगा है! जहां अभी-अभी लगा है आनंद भी है! जहां अभी-अभी वीणा में झंकार उठी! जहां अभी-अभी रहस्य की धार बही है! छोड़ दें इस किनारे को? और उस पार का क्या पता है? उस पार का क्या भरोसा है? इससे भय पकड़ना स्वाभाविक है, चिंता पकड़नी स्वाभाविक है।

तू ठीक कहती हैः

"अभी न ले जाएं उस पार!

इन अंधियारी रातों में अबचंदा देखा पहली बार!

क्षण भर तो जी लेने दें अब

रुक कर निरख तो लेने दें अब"

कितना ही निरखो, प्रतिबिंब सत्य न हो सकेगा। लाख निरखो, झूठ झूठ ही रहेगा, छाया छाया ही रहेगी, माया माया ही रहेगी।

मगर यही उपाय है। सीधा तुम्हें चांद दिखाया भी नहीं जा सकता। तुम रहते हो सपनों की दुनिया में। इसलिए पहले तो तुम्हें सत्य की भी झलक ही दिखानी होती है। वही तुम्हारी भाषा है जो तुम्हारी समझ में आ सके।

फिर झलक समझ में आ जाए तो तुम्हें कहा जा सकता है कि अब इशारा समझो, अब झलक के पार उठो। अब उसे देखो, जिसकी यह झलक है!

पहले तो तुम्हें पृथ्वी पर ही झलक दिखानी होगी। फिर तुम्हें आकाश की तरफ इंगित किया जा सकता है। और जब चंदा की झलक इतनी प्यारी है तो चंदा कितना प्यारा न होगा! ऐसा सोचो, ऐसा विचारो। और यह झलक क्षण भर में खो जा सकती है। फिर विषाद पकड़ ले सकता है। इसके पहले कि विषाद पकड़े, एक जरा सी कंकड़ी गिर जाए झील में कि फिर लहरें उठ आएंगी और चांद की झलक खो जाएगी। जरा सी बात हो जाए, आदमी खिन्न हो जाता है। यह क्षण भर की जो शांति सघन हो गई है, इसका उपयोग कर लो, इसकी सीढ़ी बना लो। इसलिए मैं क्षण भर भी नहीं चाहता कि तुम इस झलक पर रुको। क्योंकि कौन जाने, अगले क्षण यह झलक हो या न हो। और अगर झलक खो गई तो फिर तुम्हें असली चांद तक ले जाना असंभव हो जाएगा। झलक का ही उपयोग करना है--इशारे की तरह।

तू कहती हैः "क्षण भर तो जी लेने दें अब!"

क्षण का भी कहां भरोसा है? एक क्षण भी तो हमारा अपना नहीं है। आने वाला क्षण आएगा भी, इसका पक्का कहां है! और कहीं ऐसा न हो कि हाथ में आते-आते संपदा चूक जाए। इसलिए नहीं, क्षण भर भी मैं नहीं चाहता कि तुम रुको, कि तुम भटको-भरमो।

तू कहती हैः

"रुक कर निरख तो लेने दें अब
कुछ कह लेने, कुछ सुन लेने दें
भ्रम है, सपना है, यह कह कर
अभी न खोलें शून्य के द्वार!"

मैं कहूं या न कहूं, जो है, जैसा है, वैसा ही है। मेरे कहने से कुछ भेद नहीं पड़ता। तुम्हें एक छाया के पीछे भागता हुआ देखूं और न कहूं? और माना कि तुम्हारे भागने में, तुम्हारी दौड़ में बाधा बनूंगा अगर कहूं कि यह छाया है। और तुम इतने उन्मत्त, तुम इतने मस्त भागे जा रहे हो, जैसे कोई संपदा हाथ लग गई हो! जैसे कोई सत्य हाथ लग गया हो! और मैं ठहरा लूं तुम्हें और कहूं कि यह सब माया है, यह सब छाया है, तो चोट लगती है।

मीरा ठीक कहती है कि मत कहें कि यह भ्रम है, यह सपना है।

मगर मेरे कहने से क्या होता है? भ्रम है! सपना है! मैं कहूं तो भी, मैं न कहूं तो भी। मैं न कहूं तो एक खतरा है कि कहीं इसी भ्रम में ही तुम लिप्त न रह जाओ; इसी सपने में ही कहीं खो न जाओ। शून्य के द्वार तो खोलने ही होंगे, क्योंकि शून्य में ही पूर्ण का साक्षात्कार है। शून्य में ही सत्य की प्रतीति है। शून्य यानी समाधि। ध्यान में सिर्फ झलक मिलती है चंद्रमा की। और शून्य में, समाधि में चंद्रमा ही मिल जाता है। पागल मीरा, जब चंद्रमा की झलक इतनी प्यारी मालूम हो रही है तो झोली फैला, चंद्रमा ही झोली में आने को राजी है! मगर झलक छोड़नी पड़ेगी।

सत्य के मार्ग पर और कुछ नहीं त्यागना होता, केवल असत्य त्यागने होते हैं, केवल असार त्यागना होता है। जो नहीं है वही छोड़ना होता है। यह बेबूझ बात लगेगी तुम्हें। सत्य के मार्ग पर जो नहीं है तुम्हारे पास वही छोड़ना होता है और जो है वही जानना होता है।

मैं तो कहूंगा, बार-बार कहूंगा कि यह सपना है।

बुद्ध ने कहा है अपने शिष्यों को कि अगर ध्यान के मार्ग पर मैं भी तुम्हें मिल जाऊं तो तलवार उठा कर दो टुकड़े कर देना।

ध्यान के मार्ग पर बुद्ध मिल जाएं तुम्हें, तुम ध्यान में बैठे हो और बुद्ध प्रकट हो जाएं, तुम तलवार उठा कर दो टुकड़े कर पाओगे? तुम तो आह्लादित हो जाओगे। तुम तो चरणों पर गिर पड़ोगे। तुम तो कहोगेः हो गई उपलब्धि! आ गई मंजिल! अब और क्या चाहिए!

लेकिन बुद्ध कहते हैं, मैं भी तुम्हें मिल जाऊं ध्यान के मार्ग पर, तो दो टुकड़े कर देना! क्योंकि ध्यान के मार्ग पर मेरा जो मिलना है वह केवल प्रतिफलन है, वह केवल छाया है। अगर तुम उससे भी मुक्त हो गए तो तुम स्वयं ही बुद्ध हो जाओगे। और जब तक तुम स्वयं बुद्ध न हो जाओ तब तक क्या मिलना बुद्ध से? कैसा मिलना बुद्ध से? हम वही जान सकते हैं जो हम हो जाते हैं। और सब जानना झूठ है।

गीत का दीपक संजो दो
दीप्त जागृति के स्वरों से!
उर-जलदपट पर लिखो फिर
दामिनी के अक्षरों से!
यह तिमिर का देश, तुम

छोड़ो न तम का लेश मन में!
लहलहाए ललक ज्योतिर्वल्लरी
प्रत्येक क्षण में!
पुलक-पुष्पों की पंखुरियांगिराओ हंसते करों से!
युगों के अवसाद में
आह्लाद-पल-उत्पल खिला दो!
बहुत दिन बिछुड़े रहे जो,
खिन्न बहिरंतर मिला दो!
किरण-कलियों की करो बरसात
फिर मधुराधरों से!
कल्पना कलहंसिनी फिर
खोल पर उन्मुक्त विहरे!
कर परस मधुछंद का फिर,
आपुलक अनुभूति सिहरे!
फिर झरें नन्हीं फुहारें
चेतना के निर्झरों से!

तुम शून्य तो होओ। और शीघ्र ही--फिर झरें नन्हीं फुहारें चेतना के निर्झरों से! तुम बिल्कुल ही शून्य हो जाओ, कुछ पकड़ो मत। एकदम सन्नाटा हो जाओ। और अमृत झरेगा। उसी शून्य से पूर्ण का आविर्भाव होता है। उसी शून्य में खिलता है पूर्ण का कमल।

मैं तो तब तक तुम्हें हांकता ही रहूंगा, देता ही रहूंगा हांक--बढ़े चलो! रुकने नहीं दूंगा।

तुम तो रुकना चाहोगे। तुम तो हर कहीं रुकने को राजी हो। तुम तो मील के पत्थर पर ही रुक जाने को राजी हो। तुम मंजिल तक पहुंचने की झंझट नहीं लेना चाहते। जितनी जल्दी रुकना हो जाए उतना अच्छा। कौन चले! कौन यात्रा करे! कौन श्रम उठाए!

मगर संन्यास का अर्थ ही यही है कि सत्य पाए बिना नहीं रुकेंगे। इस संकल्प का नाम ही संन्यास है।

दूसरा प्रश्नः ओशो, आप क्या कहते हैं, मैं समझ नहीं पाता हूं। क्या करूं?

परेश, समझ तो पाते हो। क्योंकि मैं तो सीधे-सादे शब्दों में बोल रहा हूं। मैं किसी मुर्दा भाषा में नहीं बोल रहा हूं कि संस्कृत, अरबी, लैटिन, ग्रीक। मैं तो तुम्हारी रोजमर्रा की भाषा में बोल रहा हूं। मेरे शब्दों में एक भी शब्द ऐसा नहीं है जो तुम्हारी समझ में न आता हो। शब्द तो सब समझ में आ जाते हैं। हां, लेकिन शब्दों में जो छिपा है शून्य, वह समझ में नहीं आता। वह समझ में आएगा भी नहीं ऐसे। सुन-सुन कर नहीं आएगा। उसके लिए तो कुछ साधना होगा। जैसे कोई शास्त्रीय संगीत को सुनने जाए तो उसे सुनाई तो सब पड़ता है, लेकिन फिर भी रस नहीं आता--जब तक कि शास्त्रीय संगीत का कुछ बोध न हो; जब तक शास्त्रीय संगीत में कुछ पारंगतता न हो। शास्त्रीय संगीत का अभ्यास चाहिए, तो फिर उसके रहस्य अनुभव में आने शुरू होते हैं।

मैं जो तुमसे कह रहा हूं, शब्द तो सीधे-सादे हैं, लेकिन उन सीधे-सादे शब्दों में जो अनुभव है, वह गहरा है। और जब तक वह अनुभव तुम्हारा न बने, तब तक शब्द तुम सुन भी लोगे, तो भी कुछ चूका-चूका लगेगा।

फिर तुम अभी नये हो यहां, पहली बार ही आए हो। इसलिए ठीक से शायद सुन भी न पाओगे। क्योंकि सुनना भी एक कला है। इधर मैं बोल रहा हूं, उधर तुम्हारा मन हजार बातें बोले चला जाएगा। और अगर तुम्हारा मन वहां बातों में लगा है तो सुनेगा कौन? अगर तुम्हारे भीतर एक भीड़ चल रही है विचारों की, तो वह भीड़ मेरे शब्दों को तुम तक पहुंचने कहां देगी! और किसी तरह पहुंच भी गए मेरे शब्द, तो बहुत विकृत हो जाएंगे। धक्कमधुक्की में, उस भीड़-भाड़ में से गुजरने में कुछ छूट जाएंगे, कुछ टूट जाएंगे, कुछ पहुंचते-पहुंचते अपना रंग-रूप बदल लेंगे। कुछ कहूंगा, कुछ तुम तक पहुंच पाएगा।

जब तक मस्तिष्क बहुत से विचारों से भरा हो, ऊहापोह से भरा हो, तब तक हम सुन कर भी सुनते नहीं। सुनते हुए भी बिल्कुल बहरे होते हैं; बहरों से भी ज्यादा बहरे होते हैं। बहरे को तो जोर से चिल्ला दो तो शायद सुन भी ले, लेकिन कितने ही जोर से चिल्लाओ, भीतर तुम्हारे विचार इतना शोरगुल मचा रहे हैं कि नक्कारखाने में तूती की आवाज हो जाती है बाहर से आई कोई भी बात। उधर बैंड-बाजे बज रहे हैं भीतर, धमाचौकड़ी मची है, बरात लगी है। और एकाध विचार नहीं है वहां, विचारों पर विचारों की कतारें लगी हैं। क्यू लगे हैं, जिनका ओर-छोर नहीं दिखाई पड़ता।

मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी मर गई, तो बड़ी भीड़ अंतिम विदाई में कब्रिस्तान की तरफ चली। लोग बड़े हैरान हुए। एक नया-नया आदमी गांव में आया था। उसने कहा कि महिला क्या कुछ पहुंची हुई महिला थी? बात क्या है? इतनी भीड़! करीब-करीब सारा गांव! जिससे भी उसने कहा वही मुस्कुरा कर रह गया। तो और बात रहस्यपूर्ण हो गई। आखिर उसने सोचा कि उस आदमी से ही क्यों न पूछ लूं जिसकी पत्नी मरी है। तो उसने नसरुद्दीन का हाथ पकड़ा और कहा, भई मैं परदेशी हूं, नया-नया आया हूं। जिससे पूछता हूं वही मुस्कुरा कर रह जाता है। महिला क्या कुछ अदभुत थी?

नसरुद्दीन ने कहा कि ये महिला के लिए नहीं आ रहे हैं, ये सब मेरे गधे को खरीदना चाहते हैं।

गधे को किसलिए खरीदना चाहते हैं?

कहा, मेरे गधे ने ऐसी दुलत्ती मारी मेरी पत्नी को कि वह मर गई। ये सब गधे के खरीददार हैं। इसलिए ये मुस्कुरा कर रह जाते हैं, कुछ बोलते नहीं।

वह आदमी भी उत्सुक हो गया। उसने कहा कि कितने में गधा दोगे?

मुल्ला ने कहा कि लाइन में पीछे लग जाओ। ग्राहक पहले ही बहुत हैं। कब्रिस्तान पर बोली लगेगी। जो ज्यादा दे सो ले जाए। जिसकी हो हिम्मत, ले जाए। गधा खानदानी है! पहले भी ऐसे काम कर चुका है। यह कोई पहला काम नहीं है। मैं भी बामुश्किल खोज कर लाया था।

तुम जरा अपने मन में तो देखना कि किस-किस तरह की भीड़ लगी है! हत्यारे विचार हैं। हिंसा के विचार हैं। आत्महत्या के विचार भी हैं! विध्वंस के विचार हैं। ऐसा कोई पाप नहीं है जो किसी आदमी ने किया हो दुनिया में और जिसका विचार तुम्हारे भीतर भी न हो। यह दूसरी बात है कि तुम करो या न करो। मगर तुम ऐसा कोई विचार न खोज सकोगे जो दुनिया में किसी आदमी के भीतर रहा हो और तुम्हारे भीतर न हो। तुम सारी मनुष्यता का प्रतिनिधित्व कर रहे हो। चंगीजखान और तैमूरलंग और अडोल्फ हिटलर, सब तुम्हारे भीतर मौजूद हैं। मौका मिले, अवसर मिल जाए, तो तुम भी वही सब कर सकते हो।

और इन सारे विचारों में बड़ा द्वंद्व है। क्योंकि अगर अकेला ऐसा ही होता कि अडोल्फ हिटलर और चंगीजखान तुम्हारे भीतर होते तो भी ठीक था; तुम्हारे भीतर बुद्ध होने की संभावना भी है, महावीर होने की संभावना भी है, कृष्ण और क्राइस्ट होने की संभावना भी है। इसलिए बड़ा तुमुल नाद है। तुम्हारे भीतर चौबीस घंटे महाभारत चल रहा है। इधर सेनाएं सजी हैं, उधर सेनाएं सजी हैं। और तुम दोनों तरफ बंटे हो।

ऐसा ही नहीं है जैसा कि महाभारत के युद्ध में था, कि अर्जुन के कुछ सगे-संबंधी इस तरफ थे, कुछ सगे-संबंधी उस तरफ थे। बात यहां तक पहुंच गई थी कि कृष्ण इस तरफ थे और कृष्ण की सेना उस तरफ थी। ऐसा महाभारत में ही नहीं है, ऐसा तुम्हारे भीतर इससे भी ज्यादा है। कम से कम कृष्ण पूरे तो इस तरफ थे; ऐसा तो नहीं था कि आधे उस तरफ, आधे इस तरफ; कि एक हाथ कौरवों के साथ, एक हाथ पांडवों के साथ। मगर तुम्हारे भीतर हालत ऐसी ही है।

एक आदमी स्टीम-रोलर के नीचे दब कर मर गया। उसकी पत्नी भागी हुई अस्पताल पहुंची। खबर मिली कि ससून अस्पताल में भरती है। जाकर उसने पूछा कि किस वार्ड में मेरे पति भरती हैं? जिस नर्स से पूछा, उसने कहा, क्या नाम-धाम? तो उसने कहा कि वही जो स्टीम-रोलर के नीचे दब कर मर गए हैं। तो उसने कहा कि हां, वे भरती हैं--चार नंबर, पांच नंबर और छह नंबर के वार्ड में।

अब तीन वार्ड में एक आदमी भरती हो तो तुम मतलब समझ सकते हो स्टीम-रोलर ने क्या गति कर दी होगी! खोपड़ी अलग हो गई होगी, एक हाथ अलग हो गया, पैर अलग हो गया, चीजें अलग-अलग हो गई होंगी। तीन वार्ड में एक साथ सो रहे हैं, चमत्कार कर रहे हैं!

मगर यह चमत्कार तुम्हारे भीतर प्रतिपल हो रहा है। तुम कितने वार्डों में बंटे हुए हो! खंड-खंड हो। भीड़ मची है। सुनता कौन है यहां! लोग बिल्कुल बहरे हैं।

मैंने सुना, एक पंडित ने चंदूलाल की शादी तय करवाई। लेकिन शादी के दिन जब चंदूलाल ने लड़की को देखा तो गुस्से से पंडित का हाथ पकड़ कर एक किनारे ले गए और बोले कि हद्द कर दी! झूठ की भी हद्द होती है! और ब्राह्मण होकर शर्म न आई! ऐसा क्रोध आ रहा है कि तुम्हारी गर्दन दबा दूं। इससे वीभत्स और कुरूप स्त्री मैंने जीवन में नहीं देखी। इसको देख कर तो डर लगता है। इसकी एक आंख एक तरफ देखती है, दूसरी आंख दूसरी तरफ देखती है। इसकी नाक इरछी-तिरछी! इसके ओंठ तो देखो! इसका चेहरा ऐसा भयंकर काला कि कोलतार भी इसके मुकाबले सफेद मालूम पड़े। कूबड़ इसकी निकली है। इस स्त्री के लिए तुम मुझे यहां लेकर आए हो दिखाने के लिए? तुम्हें शर्म न आई?

पंडित बोला कि चंदूलाल, इतने फुसफुसा कर बोलने की जरूरत नहीं है, लड़की बहरी भी है। तुम बेफिक्र, जो तुम्हें कहना हो, जोर से कहो। इस लड़की में गुणों की कमी नहीं है।

करीब-करीब आदमी बहरे हैं। नहीं शारीरिक अर्थों में, लेकिन मानसिक अर्थों में। कान तो ठीक-ठाक हैं, मगर कान के भीतर मस्तिष्क इतना शोरगुल मचा रहा है कि कान के पार बात पहुंच ही नहीं पाती, कान में ही अटक जाती है।

एक साहब अपने दोस्तों के बीच बैठे हुए अपने साले की लड़की की बड़ी बड़ाई कर रहे थे। कह रहे थेः लड़की का कद भी बहुत ऊंचा है। उसकी नाक भी बहुत ऊंची है। उसने शिक्षा भी बहुत ऊंची प्राप्त कर रखी है। उनके परिवार का स्टैंडर्ड ही बहुत ऊंचा है। और तो और... इतने में ही एक आदमी ने कहा कि हां, वह सुनती भी बहुत ऊंचा है।

परेश, तुम कहते होः आप क्या कहते हैं, मैं समझ नहीं पाता हूं। क्या करूं?

पहले तो ऊंचा सुनना कम करो। पहले तो थोड़ा सुनने की कला सीखो। समझने की बात तो जरा दूर। सुनना हो तो फिर समझना भी हो सकता है। कदम-कदम चलो। एकदम पहाड़ के शिखर पर न पहुंच जाओगे। सीढ़ी-सीढ़ी चढ़ो। पहले सुनना सीखो। श्रावक बनो।

श्रवण क्या है? शांत होकर सुनना, मौन होकर सुनना, पक्षपातरहित होकर सुनना, अपने सारे पक्षपातों को एक तरफ रख कर सुनना। इसका यह अर्थ नहीं होता कि मैं जो कहूं तुम उसे मान लो। इसका इतना ही अर्थ होता है कि मानने न मानने की जल्दी ही न करो। पहले सुन तो लो, फिर पीछे मानना न मानना सोच लेना, विचार लेना। बिना सुने कैसे मानोगे, कैसे नहीं मानोगे?

लोग सुन ही नहीं पाते और मानने नहीं मानने की ऊहापोह में पड़ जाते हैं--कि मैंने जो कहा वह ठीक है या गलत है; शास्त्र के अनुकूल है कि प्रतिकूल है; गीता में ऐसा कृष्ण ने कहा है कि नहीं कहा है; कि वेद इस संबंध में क्या कहते हैं। हिंदू हो तो हिंदुओं के शास्त्रों का तुम मेल बिठालने लगते हो; बौद्ध हो तो बौद्ध शास्त्रों का मेल बिठालने लगते हो; मुसलमान हो तो मुसलमान शास्त्रों का मेल बिठालने लगते हो। सुनेगा कौन? तुम तो दूसरे ही काम में लग गए।

और ध्यान रखना, मैं यह नहीं कह रहा हूं कि मैं जो कहूं उसे मान लो। मानने की तो जरूरत ही नहीं है। सिर्फ सुन लो। फिर सोच लेना। पहले ठीक से सुन लो जो कहा जा रहा है। और उसे ठीक से सुनने के लिए जरूरी है कि बीच में कोई और व्याघात न हो। हटा दो शास्त्रों को एक तरफ। रख दो एक तरफ। कहीं खो नहीं जाएंगे शास्त्र। पीछे उठा कर तालमेल बिठा लेना।

लेकिन जब मैं बोल रहा हूं तभी लोगों के भीतर हजार बातें चल रही हैं--ठीक है या गलत है? मूल्यांकन चल रहा है। निर्णय-निष्कर्ष लिए जा रहे हैं। और बड़ी जल्दी में! पूरी बात भी सुन नहीं पाते और नतीजे ले लेते हैं। कोई पक्ष में हो जाता है, कोई विपक्ष में हो जाता है।

दोनों नासमझ हैं। दोनों ने जल्दी की। न पक्ष में होने की कोई जल्दी है, न विपक्ष में होने की कोई जल्दी है। धैर्य चाहिए! श्रवण की कला केवल उनको ही उपलब्ध हो सकती है जो धैर्यवान हैं। सन्नाटे में सुनो। मौन में सुनो। सिर्फ सुनने के लिए सुनो, कि अभी सुन लें। ऐसे सुनो जैसे कोई सागर के तुमुलनाद को सुनता है, कि बादलों की गड़गड़ाहट को सुनता है। उस वक्त तुम यह थोड़े ही सोचते हो कि ठीक कि गलत, कि वेद से मेल खाती है कि नहीं खाती, कि कुरान की आयतें इस पहाड़ी झरने के पक्ष में हैं कि विपक्ष में!

तुमने कहानी सुनी होगी। तीन पंडित काशी से अपनी शिक्षा पूरी करके वापस चले। रात जंगल में रुके, सुबह भूख लगी तो उन्होंने सोचा कि भोजन बनाएं। उनमें एक वनस्पति-शास्त्री था। तो उन्होंने कहा कि तुम वनस्पति-शास्त्री हो, तुम्हीं जाकर सब्जी खरीदो। तुमसे बेहतर और कौन सब्जी खरीद सकेगा?

दूसरा दार्शनिक था। और पुराने भारतीय दर्शन-शास्त्र हमेशा इस समस्या का विचार करते हैं कि जब हम पात्र में घी को भरते हैं तो घी पात्र को सम्हालता है कि पात्र घी को? तो कहा कि तुम घी खरीद लाओ। तुम इसी का विचार करते रहे वर्षों तक। तुम घी खरीदने में निष्णात हो गए होओगे। यह लो पात्र, घी खरीद लाओ।

और तीसरा था शब्द-शास्त्र का ज्ञाता, भाषा-शास्त्र का ज्ञाता, ध्वनि-शास्त्र का ज्ञाता। तो उन्होंने कहा कि तुम चूल्हा जला लो और पानी चढ़ा दो। क्योंकि पानी बुदबुद-बुदबुद करेगा, तो तुम ध्वनि-शास्त्र के हिसाब से पानी को बुदबुदाने देना।

वह जो वनस्पति-शास्त्री था, उसने बहुत सिर मारा बाजार में, उसे कोई सब्जी ठीक न मालूम पड़ी। क्योंकि हर सब्जी में कुछ दोष थे; किसी में वात, किसी में कफ, किसी में पित्त खराब हो, किसी में कुछ, किसी में

कुछ। आखिर वह नीम की पत्तियां तोड़ कर आ गया। क्योंकि नीम की पत्तियां बिल्कुल दोषरहित हैं। उनमें कोई दोष है ही नहीं। बड़ा प्रसन्न आया, कि चीज लाया हूं! हीरा लाया हूं! दोनों मित्र भी देख कर खुश हो जाएंगे।

वह जो दर्शन-शास्त्री था, उसने बाजार में घी खरीदा, पात्र में रख कर चला। उसने सोचा कि पढ़ते-पढ़ते हैरान हो गया, कभी पक्का निर्णय न हो पाया कि कौन किसको सम्हालता है--घी पात्र को सम्हालता है कि पात्र घी को? आज मौका मिला है प्रत्यक्ष, प्रयोग ही क्यों न कर लूं! सो उसने पात्र उलटाया। घी सब गिर गया। उसने कहा, पक्का हो गया कि पात्र ही घी को सम्हालता है, घी पात्र को नहीं सम्हालता। वह बड़ी प्रसन्नता से लौटा कि एक निश्चय हो गया। सदियों-सदियों के विवाद का निर्णय इतनी सुगमता से हो गया।

तीसरे ने चूल्हा जलाया और जब पानी ने बुदबुद-बुदबुद की आवाज की, और जंगली लकड़ियां थीं, गीली लकड़ियां थीं, वे भी खुदबुद-खुदबुद की आवाज करें, उसने बहुत सोचा, ध्वनि-शास्त्र में ऐसी कोई आवाज ही नहीं थी। ध्वनि-शास्त्र में सब तरह की ध्वनियों का वर्णन था; बुदबुद-खुदबुद, इसका कोई वर्णन ही नहीं था। इतना उसे याद आया, एक सूत्र ध्वनि-शास्त्र में है कि अशब्द कहीं भी हो तो उसको सुनना मत। यह शब्द तो है ही नहीं। पक्का हो गया यह अशब्द है। और इसको बैठ कर सुनना! तो उसने उठाया एक डंडा और हांडी को मारा। हांडी भी फूट गई; पानी गिरा, चूल्हा भी बुझ गया। अशब्द शांत हो गया। वह निश्चिंत हुआ। उसने कहा कि जीवन में एक शुभ कार्य किया। अशब्द हो रहा था, नहीं होने दिया। इस पुण्य के लिए परमात्मा का धन्यवाद!

तीनों जब मिले तो तुम समझ ही सकते हो कि जो परिणाम होना था। भोजन वगैरह का तो सवाल ही क्या था--न चूल्हा था, न सब्जी थी, न घी था। तीनों ने सिर पीट लिया।

पांडित्य बहरा बनाता है लोगों को, अंधा बनाता है लोगों को। पांडित्य ज्ञान नहीं है। निर्दोषता से सुनो, पांडित्य से मत सुनना। पांडित्य से सुनोगे तो सुन ही न पाओगे। सरलता से, मौन होकर, शांत बैठ कर!

मैं तो सीधी-सादी बातें कह रहा हूं, बहुत सीधी-सादी; जैसे दो और दो चार होते हैं। तुम सोचो-विचारो मत। सुन लो, फिर सोच-विचार पीछे कर लेना। और एक बहुत मजे की बात है कि अगर तुम शांत भाव से सुन लो, तो सत्य की अपनी एक गरिमा होती है, सुनते-सुनते ही वह गरिमा तुम्हारे सामने प्रकट हो जाएगी। सत्य की अपनी एक सुगंध होती है, सुनते ही सुनते तुम्हारे प्राण उस सुगंध से भर जाएंगे। और असत्य की एक दुर्गंध होती है, सुनते ही सुनते वह दुर्गंध तुम्हारे सामने प्रकट हो जाएगी। तुम्हें शायद पीछे सोचने के लिए बचेगा भी नहीं कुछ। सुनते ही सुनते, बिना निर्णय लिए, निर्णीत हो जाती है बात।

सत्य स्वतः-प्रमाण्य है और असत्य स्वतः-अप्रमाण्य है। असत्य के लिए कोई अप्रमाणित करने की जरूरत नहीं है। अगर तुम शांत भाव से सुन लो, तो उसी सुनने में तुम देख लोगे, आर-पार देख लोगे कि वह असत्य है, व्यर्थ है; दो कौड़ी उसका मूल्य नहीं। यह निष्कर्ष विचार से नहीं आएगा। यह निष्कर्ष तुम्हारे मौन में ही उठेगा। यह इतना स्पष्ट होगा कि इसके लिए शब्द भी नहीं बनेंगे। बस यह प्रतीति हो जाएगी और बात खतम हो जाएगी। और सत्य ऐसा छू जाता है हृदय को, ऐसा रसमग्न कर जाता है कि तुम फिर लाख उपाय करो, तो भी तुम उसे असत्य सिद्ध न कर पाओगे।

परेश, सुनने की कला सीखो। सुनने की कला की गहराई ही धीरे-धीरे समझने की कला बन जाती है।

थाह नहीं मिलती जीवन की!
लहरों से ही रही खेलती

चंचल मछली मेरे मन की!
स्वल्प ज्ञान की गुनिया हलकी,
कैसे बूझे बात अतल की?
जल में लीन न होने देती
लोह-काठ की नय्या तन की!
व्यर्थ हुई सिद्धांत-समीक्षा;
मिले नहीं गुरु-मंत्र, न दीक्षा;
आज और, कल और दीखती
रंगत मिट्टी के कन-कन की!
यहां स्नेह से स्नेह न मिलता,
सत्यफूल बन स्वप्न न खिलता;
स्वार्थ बन गया स्वामी, भूली
बुद्धि, थकी चेरी क्षण-क्षण की!
थाह नहीं मिलती जीवन की!
लहरों से ही रही खेलती
चंचल मछली मेरे मन की!

मन की इस मछली से तुम थाह न पा सकोगे। और यहां तो चर्चा अथाह की हो रही है। यहां तो बात अगम की हो रही है।

सत्संग ही वही है, जहां रहस्य की बात हो। रहस्य समझा नहीं जाता। समझ में आ जाए तो रहस्य कैसा! इतना ही समझ में आता है कि समझ में नहीं आ सकता। उतरना होगा, डुबकी लगानी होगी। पीया जा सकता है। आनंदित हुआ जा सकता है उसे पीकर, पोषित हुआ जा सकता है उससे, पुष्ट हुआ जा सकता है उससे। निमग्न हुआ जा सकता है उसमें। रस-विभोर हुआ जा सकता है। लेकिन समझना? समझना कैसे संभव होगा? समझना तो असंभव है। जो समझ में आ जाए वह उथला-उथला होगा, इसीलिए समझ में आ जाता है। जो गहरा है, वह समझ से ज्यादा गहरा है। समझ के मापदंड वहां काम नहीं आते। समझ के गज लेकर तुम जाओगे, कि समझ के तराजू लेकर जाओगे, कि बटखरे; वे काम नहीं आएंगे। बात अथाह है। सत्य अगम है। कौन उसे कब समझ पाया है!

हां, इतना ही समझ में आ जाए कि समझ में नहीं आने वाली बात है, तो बहुत समझ में आ गया। इतना ही समझ में आ जाए कि डूबने की बात है, तो बहुत समझ में आ गया; मिटने की बात है, तो बहुत समझ में आ गया।

लेकिन लोग तो किनारे पर खड़े हैं और आशा रखते हैं कि समझ लेंगे सागर की गहराई कितनी है। किनारे पर खड़े-खड़े! पैर भी न रखेंगे सागर में। डुबकी भी न मारेंगे सागर में। उतना खतरा लेना भी नहीं चाहते। बड़े होशियार हैं। किनारे पर ही खड़े विवाद करेंगे कि सागर कितना गहरा है। और भारी विवाद चलता है। ऐसी-ऐसी बातों का विवाद चलता है, सिर फूट जाते हैं, हत्याएं हो जाती हैं। किन बातों पर? जिनका किसी को भी पता नहीं है।

हिंदू किस बात पर लड़ रहे हैं मुसलमानों से? मुसलमान किस बात पर लड़ रहे हैं हिंदुओं से? ईसाइयों में, यहूदियों में विवाद क्या है? जैनों और बौद्धों में संघर्ष क्या है?

सब किनारे पर खड़े हैं। और कितनी सागर की गहराई है, किनारे पर ही खड़े-खड़े विवाद हो रहा है! जो मर्जी आए, उतनी गहराई मान लो। न सिद्ध कर पाओगे तुम, न कोई असिद्ध कर पाएगा। इसीलिए तो दुनिया में सदियों से चल रहे विवाद, अंत नहीं होता उनका। अंत कैसे हो? अंत हो ही नहीं सकता। कोई उतरता ही नहीं पानी में।

और जो पानी में उतरे हैं, वे वहां से लौट कर आते हैं तो कहते हैं कि जो जाना है वह कहा नहीं जा सकता और जो कहा जा सकता है, उसमें, जो जाना है वह समाता नहीं। अनिर्वचनीय है वह। अवर्णनीय है वह। अव्याख्य है वह। न उसे कभी किसी ने कहा है, न कभी कोई कह पाएगा।

फिर सत्संग क्या? फिर सत्संग क्यों? फिर सत्संग-समागम का अर्थ-प्रयोजन क्या?

इतना ही अर्थ है, इतना ही प्रयोजन है, कि जिसने जीया है उसकी तरंगें, उसकी मौजूदगी, उसकी उपस्थिति, उसके शब्द, उसका मौन, उसका उठना, उसका बैठना, उसकी आंखें, उसका तुममें देखना, झांकना, उसके पास होना--शायद तुम्हें छू जाए! शायद तुम्हें स्पर्शित कर ले! शायद संक्रामक हो जाए! शायद तुम भी आंदोलित हो उठो!

ऐसा होता है। कोई संगीतज्ञ वीणा बजा रहा है और तुम बैठे-बैठे अपने हाथ से अपनी कुर्सी पर ही ताल देने लगते हो। क्या हुआ? किसी ने तुमसे कहा नहीं कि ताल दो। कोई आज्ञा नहीं दी गई कि भाइयो एवं बहनो, अब सब अपनी-अपनी कुर्सी पर ताल दो। ऐसी आज्ञाएं भी दी जाती हैं। जैसे जोसेफ स्टैलिन के व्याख्यानों में इस तरह की आज्ञाएं दी जाती थीं। व्याख्यान छपा हुआ बांट दिया जाता था और उसमें जगह-जगह लिखा होता थाः तालियां! तो जहां तालियां लिखा होता था वहां तालियां बजानी पड़ती थीं। न बजाओ तो झंझट में पड़ो। चाहे मन हो बजाने का चाहे नहीं, चाहे अर्थ हो कुछ बजाने का या नहीं, मगर तालियां बजानी पड़ती थीं।

सत्संग ऐसे नहीं होता कि कुछ लोग औपचारिकता से तालियां बजा रहे हैं, कि कुछ लोग औपचारिकता से सिर हिला रहे हैं। नहीं, हार्दिक होना चाहिए। जब वीणा बजेगी तो कुछ सिर हिलने लगेंगे। पता ही नहीं चलेगा सिर हिलाने वालों को कि कब सिर हिल गए, कब तन्मयता बंध गई, कब तल्लीनता आ गई, कब एक तार से तार जुड़ गया। सिर हिलने लगेंगे। हाथ थाप देने लगेंगे। पैर नाचने को आतुर हो उठेंगे। किसी नर्तक को देख कर, किसी के घूंघर बजते देख कर तुम्हारे पैरों में पुलक नहीं आ जाती? बस ऐसा ही कुछ सत्संग में होता है।

परेश, बात समझने की कम, सत्संग में डूबने की ज्यादा है। आते रहो, जाते रहो, धीरे-धीरे रंग चढ़ेगा। चढ़ते-चढ़ते ही चढ़ेगा। और जल्दी कुछ है नहीं। जल्दी चढ़ाए गए रंग कच्चे सिद्ध होते हैं। जब अपने से चढ़ जाए रंग, जब तुम विवश हो जाओ, जब कि तालियां बजानी ही पड़ें, जब कि सिर हिले ही, जब कि तुम चाहो भी रोकना तो भी पैर न रुकें और नृत्य शुरू हो जाए, तो समझना कि आई समझ में बात। पर ख्याल रखना कि जो बात समझ में आती है, वह बात ऐसी है कि उसमें और-और रहस्य के परदे उठते चले जाते हैं, रहस्य कभी समाप्त नहीं होता।

इसीलिए तो हम परमात्मा को अनंत कहते हैं। जितना जानो, और भी जानने को शेष रह जाता है। कितना ही जानो, और भी जानने को शेष रह जाता है। जानते ही रहो, जानते ही जाओ, जितना जानते हो उतना ही लगता हैः कितना अज्ञानी हूं और कितना अनंत अभी शेष है!

मगर यह महिमा आह्लादित करती है भक्त को। उसे उदास नहीं करती कि अभी तक समझ नहीं पाया, पूरा नहीं समझ पाया। आह्लादित करती है, आनंदित करती है कि परमात्मा का ओर-छोर नहीं है, कि मैं खो जाऊंगा परमात्मा में और उसका ओर-छोर नहीं पाऊंगा। क्योंकि भक्त वस्तुतः खो जाना चाहता है। कोई परमात्मा को पकड़ कर प्रयोगशाला में टेस्ट-ट्यूब में डाल कर स्टोव पर गरम करके देखना नहीं चाहता कि कितनी डिग्री पर भाप बनता है, कि कितनी डिग्री पर ठंडा होने पर बरफ बनता है। परमात्मा को प्रयोगशाला में नहीं लाना है, न लाया जा सकता है।

कार्ल मार्क्स कहता था कि जब तक परमात्मा को प्रयोगशाला में न लाया जाएगा, मैं नहीं मानूंगा। तो कार्ल मार्क्स जैसे लोग कभी नहीं मान सकेंगे, क्योंकि परमात्मा लाया नहीं जा सकता प्रयोगशाला में। अगर कार्ल मार्क्स मुझे मिल जाए कभी तो मैं उससे पूछूं कि तुमने और बहुत सी चीजें मान लीं जो प्रयोगशाला में नहीं लाई जा सकतीं। तुम एक स्त्री के प्रेम में गिर गए और तुमने कहा, यह सुंदर है। फ्रा मार्क्स, जिसके प्रेम में मार्क्स पड़ गया था, कहता था--बहुत सुंदर है! सौंदर्य को प्रयोगशाला में लाया जा सकता है? मैं पूछूंगा कार्ल मार्क्स से। तुम अपनी पत्नी फ्रा को ले आओ प्रयोगशाला में और जांच-पड़ताल करवाओ। कोई वैज्ञानिक सिद्ध नहीं कर सकता कि सुंदर है। नाप-तौल करके बता देगाः कितना वजन है, कितनी हड्डी, कितना मांस, कितनी मज्जा। और ज्यादातर तो पानी है--अस्सी परसेंट। और पानी भी कोई साधारण पानी नहीं, समुद्री पानी, कि पीना भी चाहो तो पी न सको। और बाकी मिट्टी, कुछ थोड़ी हवा और कुछ थोड़ा आकाश। सौंदर्य कहां है?

अब तक कितनी आटोप्सी होती हैं मुर्दों की, मगर कभी कोई खोज पाया कि कुछ सौंदर्य पता चला हो? हां, हो सकता है नाक लंबी हो, तो नाक लंबी सही, मगर इसमें सौंदर्य का क्या? क्योंकि दुनिया में ऐसे लोग भी हैं जो चपटी नाक को सुंदर मानते हैं। हो सकता है ओंठ पतले हों, सो क्या? दुनिया में ऐसे लोग हैं जो मोटे ओंठों को सुंदर मानते हैं। अफ्रीका में स्त्रियां अपने ओंठों को मोटा करने के हर उपाय करती हैं। पत्थर लटकाती हैं ओंठों में, ताकि ओंठ मोटे हो जाएं। हम तो कहेंगे, भद्दे हो गए। मगर उनके ओंठ जितने मोटे हो जाएं उतनी ही वे सुंदर समझी जाती हैं। और उनका कहना भी सोचने जैसा है। वे कहते हैंः जितने ओंठ मोटे होते हैं उतना चुंबन गहरा होता है। यह भी बात सच है। पतले ओंठ भी क्या खाक चुंबन करेंगे! क्षेत्र ही नहीं है कुछ, क्षेत्रफल भी तो होना चाहिए।

दुनिया है, हजार मापदंड हैं। अलग-अलग लोगों के अलग-अलग हैं। स्त्रियां बालों को बढ़ाती हैं, बाल सुंदर समझे जाते हैं। लेकिन अफ्रीका में ऐसे कबीले हैं, स्त्रियां बिल्कुल घुट्टमघुट्ट! बिल्कुल त्रिदंडी संन्यासी! और उनका भी कहना सोचने जैसा है। सबकी बातें सोचने जैसी हैं। वे यह कहते हैं कि बालों की वजह से जो स्त्री सुंदर दिख रही है, वह कोई सुंदर है? अरे बिना बालों के दिखे सुंदर तो कोई सौंदर्य है! और उनके हिसाब से चलो तो तुम्हारी सुंदरतम स्त्रियां बदशक्ल हो जाएंगी। एकदम बाल उनके घोंट दो। जरा अपनी पत्नी के बाल घोंट कर देखो! एकदम खुद ही भागोगे कि फिर लौट कर नहीं आओगे घर। भूत-प्रेत मालूम होगी। मगर वे कहते हैं कि जब तक बाल न घुटें, यह कूड़ा-करकट... बाल कूड़ा-करकट ही हैं, क्योंकि बाल शरीर का मरा हुआ हिस्सा है, मुर्दा है... यह जब तक घास-पात साफ न करो, तब तक असली सौंदर्य का पता ही नहीं चलेगा। इस घास-पात के हटने पर अगर कोई स्त्री सुंदर है तो सुंदर है।

अलग-अलग लोग हैं। अलग-अलग उनके सौंदर्य के मापदंड हैं। अपनी-अपनी मान्यता है। मगर सौंदर्य क्या कोई ऐसी चीज है जिसको प्रयोगशाला में तय किया जा सके?

कार्ल मार्क्स से मैं तो कहूंगा कि तुझे सौंदर्य को नहीं मानना चाहिए। लेकिन तू कहता है, तेरी पत्नी सुंदर है। उसने कविताएं भी लिखी थीं अपनी पत्नी के लिए। ईश्वर को तुम कहते हो प्रयोगशाला में लाना पड़ेगा, तब हम मानेंगे। और सौंदर्य को बिना प्रयोगशाला में लिए, बिना प्रयोगशाला के सिद्ध किए मान लेते हो? यह तो तर्क की भूल हो गई। यह तो तर्क अधकचरा हो गया।

जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है उसे प्रयोगशाला में सिद्ध नहीं किया जा सकता। प्रयोगशाला तो केवल स्थूल को पकड़ती है, सूक्ष्म छूट जाता है। और परमात्मा तो परम सूक्ष्म है। वह तो सूक्ष्मातिसूक्ष्म है। उसे कोई कभी नहीं समझ पाया है। हां, लोगों ने जाना है, जीया है, पहचाना है, डुबकी मारी है, अपने को खो दिया है पूरा-पूरा उसमें और परम आनंद को उपलब्ध हुए हैं, सच्चिदानंद को उपलब्ध हुए हैं। लेकिन उन्होंने भी कहा है कि अकूत है, अथाह है। और बहुत शेष है, अनंत शेष है! हमने जो जाना वह कुछ भी नहीं। जैसे बूंद जान ली है और अभी सागर पड़ा है।

मगर जिसने बूंद चख ली उसे सागर जानने की कोई फिक्र भी नहीं रह जाती। जिसने स्वाद ले लिया उसे जानने में रस भी नहीं रह जाता। तुम मिठास के संबंध में जानना चाहते हो या मिठास का स्वाद लेना चाहते हो? थोड़ा सोचो। जो बुद्धिमान है वह कहेगाः हम स्वाद लेना चाहते हैं। जो बुद्धू है वह कहेगाः हम समझना चाहते हैं। तुम पानी को समझना चाहते हो कि प्यास बुझाना चाहते हो? जो बुद्धिमान है वह कहेगाः मैं प्यासा हूं, मुझे पानी चाहिए। जो बुद्धू है वह कहेगा कि पहले हम समझेंगे; जब तक हम समझ न लेंगे तब तक हम कैसे पीएं? क्या प्रमाण है कि पानी के पीने से और प्यास बुझती है? वह तो अच्छा है कि लोग इस तरह के प्रश्न नहीं पूछते, नहीं तो आदमी का जिंदा रहना मुश्किल हो जाए--कि क्या प्रमाण है कि पानी से प्यास बुझती है? कैसे मानें? पानी में प्यास बुझाने का क्या गुण है? इसे प्रयोगशाला में सिद्ध होना चाहिए।

प्रयोगशाला में सिद्ध नहीं होता। क्योंकि सिर्फ कंठ ही सबूत दे सकता है। प्रयोगशाला कैसे सिद्ध करेगी? कंठ के अतिरिक्त कोई सबूत नहीं दे सकता कि पानी प्यास को बुझाता है। और प्रयोगशाला के पास कोई कंठ नहीं है। प्रयोगशाला बता सकती है कि पानी बनता है आक्सीजन और उदजन के मिलने से--एच टू ओ। मगर एच टू ओ तो ऐसा ही मंत्र जैसा है, जैसे गायत्री मंत्र। कुछ लोग बैठे गायत्री मंत्र पढ़ रहे हैं; वे सोच रहे हैं, ऐसे ही गायत्री मंत्र पढ़ते-पढ़ते-पढ़ते पहुंच जाएंगे। यह ऐसी ही भूल है, जैसे कोई बैठा है प्यासा और बैठा है और रट रहा हैः एच टू ओ, एच टू ओ, एच टू ओ। जैसे प्यास बुझ जाएगी!

एच टू ओ का अर्थ और है। वह ठीक है पानी की व्याख्या के लिए, विज्ञान की समझ के लिए; लेकिन प्यास बुझाने के लिए नहीं। प्यास बुझाने के लिए पानी पीना पड़ता है। ऐसे ही परमात्मा को भी पीना पड़ता है।

परेश, यहां बैठो और पीओ। पीते-पीते शायद कुछ झलक आने लगे, कुछ पुलक आने लगे। आती है। यहां बहुतों के चेहरों पर तुम्हें दिखाई पड़ेगी। यहां वातावरण में उसी की गंध है, उसी का संगीत है!

तीसरा प्रश्नः ओशो, क्या संसार में कोई भी अपना नहीं है?

ऊषा, संसार का अर्थ ही क्या होता है? संसार से अर्थ होता है--वह जो हमने कल्पित कर लिया है, गढ़ लिया है। हम अकेले रहने में डरते हैं, घबड़ाते हैं। अकेलापन काटता है। एकाकीपन की बड़ी पीड़ा है। हम दूसरे को चाहते हैं। कोई चाहिए जो हमारे अकेलेपन को भर दे--पत्नी हो, पति हो, बच्चे हों, परिवार हो।

ये सब मान्यताएं हैं। लेकिन हम जी लेते हैं--इन मान्यताओं में अपने को उलझा कर; इन खिलौनों में अपने को भरमा कर। और हम डरते हैं बहुत कि कहीं भरम टूट न जाएं। हम ऐसे लोगों से भी बचते हैं जो हमारे भरम तोड़ दें। हमें भी पता है कि है तो सब भरम ही, मगर हम भ्रमों को भी वास्तविक बनाने का खूब उपाय करते हैं।

तुम देखते हो, जब हम विवाह करते हैं किसी युवक का, युवती का! पुराने समय में लोग होशियार थे, बाल-विवाह करते थे। बाल-विवाह की सबसे बड़ी खूबी जो थी वह यही थी कि बच्चों को जितनी जल्दी धोखा दिया जा सकता है और धोखे पर भरोसा दिलवाया जा सकता है, उतना बड़ों को नहीं दिलवाया जा सकता। उम्र हो जाती है तो बोध भी आ जाता है, सोच-विचार भी आ जाता है। छोटे-छोटे बच्चे, चार-छह साल की उम्र के, ये तो किसी भी चीज को मान लें। इनको तो तुम जो कह दो वही मान लें। ये तो रात अंधेरे में रस्सी पर टंगा हुआ लंगोट, इनको भूत मालूम पड़ता है। तुम बता दो कि ये दो हाथ हैं, यह देखो भूत खड़ा हुआ है! ये तो उसको भूत मान लेते हैं। ये तो घबड़ा जाते हैं। ये तो किसी भी चीज से डर सकते हैं। छोटे बच्चे, अभी इनमें तर्क भी नहीं उठा, विचार भी नहीं उठा, विवेक भी नहीं जगा...

पुराने लोग होशियार थे, ज्यादा चालबाज थे, छोटे-छोटे बच्चों का विवाह करवा देते थे। और विवाह करने का आयोजन इतना भव्य होता था कि भरोसा ही आ जाए। छोटा बच्चा घोड़े पर बैठे, राजा बने, दूल्हा राजा! छुरी इत्यादि लटकी है। शानदार कपड़े पहने है। नगर, समाज के बड़े से बड़े लोग नीचे चल रहे हैं, वह घोड़े पर बैठा है। उसकी अकड़ का ठिकाना न रहे। उसके अहंकार को खूब बल मिले। फिर बड़ा पूजा-पाठ, यज्ञ-हवन, पंडित-पुरोहित, मरी हुई भाषाओं में मंत्र-जाप। सब इतना औपचारिक आयोजन कि उसे लगे कि कुछ बड़ी महत्वपूर्ण बात हो रही है। फिर सात फेरे! और यह सब इतनी गंभीरता से किया जा रहा है। है सब दो कौड़ी का! तुम घोड़े पर बैठो कि हाथी पर, कुछ फर्क नहीं पड़ता। तुम सात चक्कर लगाओ कि सत्तर, चक्कर ही लगा रहे हो, कुछ खास मतलब नहीं है। लेकिन छोटे बच्चे, कि बांध दिया पत्नी का पल्ला छोटे बच्चे के पीछे। वह सोचता है कि अब गांठ बंध गई। और समझा दिया कि अब गांठ बंध गई--ऐसी गांठ, जो अब खुलती नहीं; अब कभी खुल ही नहीं सकती।

छोटे बच्चे मान लें। और भरोसा बचपन में बैठ जाए... ये सम्मोहन की प्रक्रियाएं थीं। यह सम्मोहित करना है। फिर अब इसी पत्नी के साथ बड़ा होगा बच्चा, तो जैसे बच्चे बड़े होते हैं भाई-बहन के साथ वैसे ही पत्नी को भी बड़ा होते देखेगा अपने साथ। स्वभावतः साथ रहते-रहते, सहयोग से, साहचर्य से संबंध गहरा हो जाएगा।

जब तक दुनिया में बाल-विवाह था तब तक तलाक की बात पैदा नहीं होती थी। सोची नहीं जाती थी। जिस दिन से दुनिया में युवकों ने जिद की कि हम तो युवा होने पर विवाह करेंगे, उसी दिन से खतरा विवाह के लिए शुरू हो गया। क्योंकि युवक को तुम लाख घोड़े पर बिठाओ, वह जानता है कि घोड़े पर ही बिठा रहे हो, इससे होना क्या है? दूल्हा राजा ही कहो तो क्या फर्क पड़ता है? सात गांठें बांध दो, इससे क्या होता है? सात चक्कर लगवा दो, इससे क्या होता है? उसे साफ दिखाई पड़ रहा है कि इस सबसे होना क्या है? कल तक जो स्त्री परायी थी, वह आज अपनी कैसे हो जाएगी? मैं कल तक पराया था, अजनबी था, आज अपना हो गया! कल तक एक-दूसरे से कुछ लेना-देना नहीं था, आज अचानक आग के घेरे के सात चक्कर लगा लेने से हम एक-दूसरे के हो गए!

संसार हमारा सृजन है, हम बनाते हैं। और हम बनाते हैं इसलिए कि हम अकेले होने में डरते हैं। हम अकेले होने में भयभीत होते हैं। और सचाई यही है कि हम अकेले हैं। अकेले ही हम आए हैं, अकेले ही हमें जाना

है। दोनों के बीच में जो थोड़ा सा अंतराल है, उसको हम भर लेते हैं भीड़-भाड़ से। लेकिन सचाई यह है कि तब भी हम अकेले हैं।

मैं उस व्यक्ति को ही संन्यासी कहता हूं, जो जानता है कि अकेला मैं आया हूं, अकेला मैं जाऊंगा और अकेला मैं हूं।

इसका यह मतलब नहीं है कि तुम भागो हिमालय, कि किसी गुफा में बैठ जाओ। अकेले होने के लिए कहीं जाने की जरूरत नहीं है; तुम जहां हो वहीं अकेले हो। जो आदमी कहता है कि संसार छोड़ कर मैं हिमालय जाऊंगा, क्योंकि मैं तो अकेला हूं, उसको अभी शक कायम है--कि संसार में रहेगा तो अकेला नहीं है; हिमालय पर रहेगा तो अकेला है। तुम्हारे तथाकथित भगोड़े संन्यासी उतने ही भ्रम में हैं जितने तुम्हारे गृहस्थ। दोनों की मान्यता एक है। दोनों मानते हैं कि यहां रहे संग-साथ, तो संग-साथ हो जाएगा संन्यासी भी डरा हुआ है! संन्यासी ज्यादा डरा हुआ है। इससे तो गृहस्थ ही ज्यादा हिम्मतवर है; डटे हैं! संन्यासी तो भगोड़ा है। उसने तो पीठ दिखा दी।

मगर हम तो जब किसी चीज को पूजना चाहें तो अच्छे-अच्छे नाम दे देते हैं। भगोड़ा नहीं कहते हम उसको, पलायनवादी नहीं कहते। हम उसको कहते हैंः त्यागी! सुंदर शब्द दे दिया, भगोड़ेपन को छिपा दिया। कृष्ण युद्ध के मैदान से भाग गए तो हमने उनको नहीं कहाः भगोड़ादास! हमने नाम दियाः रणछोड़दासजी! क्या होशियारी के लोग हैं! रणछोड़दासजी, मतलब वही है। मगर अब किसी को ख्याल नहीं आता कि रणछोड़दासजी का मतलब क्या है। मंदिर हैं--रणछोड़दासजी के मंदिर! मगर रणछोड़दास का मतलब क्या होता है? भाग खड़े हुए युद्ध छोड़ कर। भगोड़ादास कहो, झगड़ा हो जाए। हिंदू अदालत में पहुंच जाएं कि हमारी धार्मिक भावना को चोट पहुंच गई। हालांकि भगवान भगोड़ादासजी ज्यादा जंचे, बजाय भगवान रणछोड़दासजी के। थोड़ी तुक भी बैठती है--भगवान और भगोड़ादास! रणछोड़दास में तो कोई तुक भी नहीं है। मगर मतलब वही है। हम सुंदर शब्द दे देते हैं।

आदमी मर जाता है तो हम कहते हैंः महायात्रा पर निकल गए। अगर वह आदमी उठ आए तो सिर खोल दे तुम्हारा, कि हम तो मर गए और तुम कह रहे हो महायात्रा पर निकल गए!

आदमी मर जाता है, हम कहते हैंः प्रभु के प्यारे हो गए। वह उठ आए जरा तो गर्दन दबा दे कि यह प्रभु का प्यारा होना है! हम तो मर रहे हैं और तुम कह रहे हो प्रभु के प्यारे हो गए!

लेकिन हम अच्छे शब्द खोजते हैं--झूठों को छिपाने के लिए। कोई मर जाता है तो हम कहते हैं कि अच्छे लोग परमात्मा पहले उठा लेता है, बाकी बुरे लोगों को जिंदा रखता है। किसी के घर छोटा बच्चा मर गया तो लोग उसको समझाने पहुंच जाते हैं कि चिंता न करो, परमात्मा अच्छों को जल्दी उठा लेता है। तो गौतम बुद्ध जो चौरासी साल तक जीए, कुछ गड़बड़ रही होगी; नहीं तो परमात्मा के प्यारे पहले ही हो गए होते।

मगर हम हर भ्रांति को सम्हालते हैं, लीपते-पोतते हैं। ये हमारी आदतें हैं। इस तरह हम अपने संसार को किसी तरह सम्हाले चलते हैं। ताश के पत्तों का घर है, मगर उसमें टेकें लगाए रखते हैं। इधर से गिरा तो टेक लगा दी एक, उधर से गिरने लगा तो टेक लगा दी और। सब तरफ से टेकें लगाए रखे हैं। रेत का मकान बनाए बैठे हैं। जानते हैं गिरेगा। गिरना सुनिश्चित है। जब तक नहीं गिरा है तभी तक चमत्कार है कि क्यों नहीं गिरा है! हवा का जरा सा झोंका आएगा और गिर जाएगा। मगर आशा बांधे हुए हैं--कि औरों के गिरते हैं, हमारा नहीं गिरेगा। हमने कितनी कुशलता से बनाया है!

संन्यासी वह नहीं है जो भागता है संसार से। संन्यासी वह है जो जानता है भीड़ के बीच भी कि मैं अकेला हूं; जो अपने अकेलेपन को स्वीकारता है, उसे इनकारता नहीं, नकारता नहीं।

संसार है क्या? बस तुम्हारी आशा! संसार से मेरा अर्थ ये वृक्ष नहीं है, ये पशु-पक्षी नहीं है, ये चांद-तारे नहीं है। संसार से अर्थ हैः तुम्हारी कल्पनाओं का जाल। उसे तुम सिकोड़ लो, वापस हटा लो। यह संसार तो अपनी जगह रहेगा।

जब मैं कहता हूं कि संसार माया है, तो मेरा मतलब यह नहीं है कि तुम ध्यान में हो जाओगे तो वृक्ष खो जाएंगे और पहाड़ नहीं रह जाएंगे। पहाड़ भी अपनी जगह होंगे, वृक्ष भी अपनी जगह होंगे। यह विश्व तो अपनी जगह होगा, सिर्फ इस विश्व के संबंध में तुमने जो भ्रांतियां बना रखी थीं, तुमने जो एक घरघूला बना रखा था अपनी ही कल्पनाओं का, वह भर नहीं होगा।

जगत तो सत्य है--उतना ही सत्य है जितना ब्रह्म सत्य है। लेकिन इस जगत के भीतर तुमने एक कल्पनाओं का संसार बना रखा है, वह बिल्कुल झूठ है, वह तुम्हारा ही है। सुबह जब तुम जागोगे तो तुम्हारे सपने खो जाएंगे; इसका यह मतलब नहीं है कि तुम्हारे कमरे का फर्नीचर खो जाएगा और जिस बिस्तर पर तुम सोए थे रात भर, वह नदारद हो जाएगा। तुम अपने बिस्तर पर ही अपने को पाओगे, अपने कमरे में ही पाओगे। लेकिन एक बात बदल जाएगीः रात सपनों में तुम न बिस्तर पर थे, न तुम अपने कमरे में थे। तुम न मालूम कहां-कहां रहे! टिम्बकटू पहुंच गए, कि टोकियो पहुंच गए, कि कौन-कौन सी कारगुजारियां कर लीं सपनों में पता नहीं! कितनी चोरियां कर लीं, हत्याएं कर दीं! किसकी स्त्री ले भागे! क्या-क्या हुआ सपने में! वह सब खो जाएगा। लेकिन जो है, वह नहीं खोएगा। वह तो अपनी जगह है।

एक बार सड़क पर कालेज की दो लड़कियां जा रही थीं। अचानक किसी बात पर उनकी तू-तू मैं-मैं हो गई। पहली ने कहा, तुझे अंधा पति मिलेगा। दूसरी ने उत्तर दिया, तुझे लंगड़ा पति मिलेगा। यह बात पास से गुजरते हुए दो भिखारियों ने भी सुनी, जिनमें से एक अंधा था और दूसरा लंगड़ा। वे यह वार्तालाप सुन कर ठहर गए। जब काफी देर तक मामला नहीं सुलझा, तो दोनों भिखारी भीड़ को चीरते हुए उन लड़कियों के पास पहुंचे और बोले, देवियो, आप बाद में चाहे जितनी देर लड़ती रहें, लेकिन हमें यह बता दें कि हम खड़े रहें या जाएं?

तुम्हारा संसार बस ऐसा ही है! आशा बांधे हुए हो। अब उन दो भिखारियों की बेचारों की आशा कि यह अच्छा मौका मिला! सोचा ही नहीं था। भगवान जब देता है तो छप्पर फाड़ कर देता है, सोचा होगा। कि वाह रे वाह, कैसा दिन, शुभ दिन! एक कह रही है अंधा मिलेगा, एक कह रही है लंगड़ा मिलेगा--और हम दोनों मौजूद हैं! अब देर क्या है? लड़ाई-झगड़ा बाद में कर लेना। तो हम खड़े रहें कि जाएं?

तुम कहां खड़े हो? किस आशा में खड़े हो? तुम्हारी सब आशाएं बस ऐसी ही हैं--धन की, पद की, प्रतिष्ठा की--सब झूठी हैं।

ऊषा, यहां संसार में कोई अपना नहीं है।

इसका यह अर्थ नहीं है कि सबसे दुश्मनी साध लो। इसका यह अर्थ नहीं है कि लोगों को प्रेम न दो। इसका यह अर्थ नहीं है कि लोगों की सेवा न करो। इसका यह अर्थ नहीं है कि भाग जाओ, कहीं दूर किसी निर्जन में छिप जाओ। इसका केवल इतना ही अर्थ है कि अपने एकांत को, अपने एकाकीपन को इन भ्रांतियों में मत डुबाओ। अपने एकांत को जीओ। एकांत को जीने का नाम ही ध्यान है। अपने एकाकीपन में रस लो। अपने एकाकीपन का आनंद खोजो। और जितना आनंद अपने में है, अपने में, अपने एकाकीपन में, उतना इस जगत के किसी संबंध में नहीं है।

लेकिन लोगों ने भ्रांतियां कर ली हैं। कहा यही था ज्ञानियों ने सदा-सदा, कि अपने भीतर जो छिपा है उस एक को जानो। मगर उस एक को जानने की बजाय दुनिया में दो तरह के लोग हो गएः एक, जो पर से बंधे हैं; और एक, जो पर से भाग रहे हैं। दोनों अपने को नहीं जानने की चेष्टा में संलग्न हैं। एक पर में आकर्षित है और पर को पकड़ रहा है; वह भी गलती कर रहा है। और दूसरा पर को छोड़ कर भाग रहा है। पर को छोड़ कर भागना तभी सच हो सकता है, जब पर को पकड़ना संभव हो सके। जिसको पकड़ा ही नहीं जा सकता उसको छोड़ोगे कैसे? जो अपना ही नहीं है उसका त्याग क्या करोगे?

एक संन्यासी मुझसे कहते थे आकर कि मैंने पत्नी का त्याग कर दिया, बच्चों का त्याग कर दिया। मैंने उनसे पूछा, वे तुम्हारे थे? अगर तुम्हारे थे, तो तुम्हारे त्याग करने का कोई अर्थ है। अगर तुम्हारे थे ही नहीं, तो फिर तो तुम्हारी जो मर्जी हो वह कहो। तुम कहो कि मैंने सूरज का त्याग कर दिया, मैंने चांद का त्याग कर दिया। यह क्यों नहीं कहते? तुम्हारी पत्नी भी इतनी ही तुम्हारी नहीं थी जितना सूरज तुम्हारा नहीं है। फिर अपने त्याग को जितना बड़ा करना हो उतना बड़ा करके बताओ। कुछ भी तुम्हारा नहीं है। यह त्याग का अहंकार उसी भ्रांति पर खड़ा है।

मगर ज्ञानियों की बातें हमेशा अज्ञानियों के हाथों में पड़ कर बड़े अनूठे अर्थ ले लेती हैं।

दूसरी मंजिल के मकान में रहने वाली युवती काफी देर बाद छत से नीचे कूड़ा डाल कर लौटी, तो पति ने उससे पूछा, कूड़ा डालने में इतनी देर क्यों लगा दी?

आपने ही तो कहा था कि छत से कूड़ा डालते समय छत के नीचे आने-जाने वाले लोगों को देख कर कूड़ा डाला करो। काफी देर तक वहां से कोई गुजरा ही नहीं। अभी एक आदमी वहां से गुजरा तो मैंने उसे देख कर छत से नीचे कूड़ा डाला। पत्नी ने देरी का कारण समझाया।

बुद्धों ने कहा हैः अकेले होने में आह्लादित होओ। अकेले होने में रस खोजो। जितना मौका मिल सके, जब मौका मिल सके, तब आंख बंद करो और भीतर जाओ।

वह तो नहीं करते लोग। कुछ भाग रहे हैं बाहर धन की तरफ और कुछ भाग रहे हैं धन से। लेकिन दोनों बाहर ही भाग रहे हैं। धन भी बाहर है, त्याग भी बाहर है।

इसलिए मैं अपने संन्यासी को न तो कहता हूं कि तुम धन छोड़ो, न कहता हूं पद छोड़ो, न कहता हूं पत्नी छोड़ो। यह छोड़ने का गोरखधंधा बंद करो। तुम्हारा कोई है ही नहीं। छोड़ना क्या है? पकड़ना क्या है? न तुम किसी के हो, न कोई तुम्हारा है। रास्ते पर संग-साथ हो गया है। नदी-नाव संयोग! थोड़ी देर साथ चल लेंगे, फिर रास्ते अलग-अलग हो जाएंगे। जितनी देर साथ हो, अपनी सुगंध बांट सकते हो, बांटो! अपना सौरभ बांट सकते हो, बांटो! जितनी देर संग-साथ है, अपना आनंद बांट सकते हो, बांटो! अपना दुख न दो। लोग वैसे ही बहुत दुखी हैं।

और बांटो अपना आनंद, क्योंकि आनंद बांटने से बढ़ता है। यह सूत्र ख्याल रखना। अगर दूसरों को दुख दोगे, तुम्हारा दुख बढ़ेगा। और अगर तुम दूसरों को आनंद दोगे, तुम्हारा आनंद बढ़ेगा। तुम जो दोगे वही बढ़ेगा।

और गलत व्याख्याएं न करो।

एक बार दो युवक कहीं जा रहे थे। रास्ते में उनका एक तीसरे युवक से झगड़ा हो गया। दोनों में से पहले युवक को तीसरे ने ठोंकना शुरू कर दिया। दूसरा मौका पाकर भाग गया। बाद में जिस युवक की पिटाई हुई थी, उसने अपने मित्र से पूछा, तू मुझे अकेला छोड़ कर क्यों भाग गया? यह कैसी दोस्ती! अरे दोस्त वही जो वक्त पर काम आए। दोस्त तो वही जो अपने दोस्त को दुख में न देख सके। उस दूसरे ने कहा, भई, इसीलिए तो भाग

गया, क्योंकि तुम्हें पिटते हुए मैं नहीं देख सका। बिल्कुल नहीं देख सका! मेरी बरदाश्त के बाहर हो गया। मैंने आंखें बंद कर लीं। मगर फिर भी तुम्हारी पिटाई की आवाज सुनाई पड़ती रही, तो फिर मैंने कहा यहां से हट ही जाना उचित है। अरे दोस्त वही जो न देखे, न सुने!

जीवन में हमने खूब उलटी व्याख्याएं कर ली हैं। आदमी के पास बड़ी उलटी खोपड़ी है। कुछ कहो, कुछ समझेगा। और सदियों-सदियों तक फिर उस नासमझी को ढोएगा।

संसार को, ऊषा, छोड़ना नहीं है। हां, अपना यहां कोई भी नहीं है। इसका यह अर्थ नहीं है कि विरस हो जाओ। इसका यह भी अर्थ नहीं है कि दूसरों के प्रति उदास, दूसरों के प्रति एक ठंडापन ले आओ अपने जीवन में, एक मुर्दगी ले आओ। नहीं, अपना यहां कोई भी नहीं है; उनका भी कोई नहीं है। और सब चाहते हैं कि कोई होता, कि हम अकेले न होते। इस चाह के कारण सबने आयोजन कर लिए हैं अपने-अपने। कई तरह के आयोजन हैं। परिवार बनाते हैं लोग, धर्म बनाते हैं लोग, राजनीतिक दल बनाते हैं लोग, राष्ट्र बनाते हैं लोग। ये सब उपाय हैं कि किसी तरह के नाते खड़े कर लें वे--कोई हमारा है! हम अकेले नहीं हैं!

जब तुम कहते हो मैं भारतीय हूं, तो तुम क्या कह रहे हो? तुम यह कह रहे हो कि जितने भारत के वासी हैं, हमारे हैं; मैं उनका हूं। जब तुम कहते हो मैं हिंदू हूं, तो तुम क्या कह रहे हो? तुम यह कह रहे हो कि सब हिंदू मेरे हैं; मैं उनका हूं। और जब तुम कहते हो मैं ब्राह्मण हूं, तो तुम यह कह रहे होः सब ब्राह्मण मेरे हैं; मैं उनका हूं। ऐसे तुमने न मालूम कितने बड़े, छोटे, उनमें और छोटे, कितने घेरों पर घेरे बना रखे हैं! और उनसे भी काम नहीं चलता, तो कोई रोटरी क्लब में भरती हो जाता है--रोटेरियन! सब रोटेरियन अपने हैं! कोई लायंस क्लब में भरती हो जाता है--सब लायंस अपने हैं!

एक अजायबघर में एक महिला अपने बच्चे को लेकर अजायबघर दिखाने गई थी। बच्चे तो अजीब-अजीब प्रश्न पूछते हैं। एक सिंह को देख कर बच्चे ने पूछा कि मम्मी, क्या तुम बता सकती हो कि लायन एक-दूसरे से कैसा प्रेम करते हैं? उसकी मम्मी ने कहा, बेटा, तेरे पिता के सब दोस्त रोटेरियन हैं, सो लायनों के संबंध में मैं कुछ नहीं कह सकती। हां, रोटेरियन के संबंध में तू पूछ तो बता सकती हूं कि रोटेरियन कैसे प्रेम करते हैं।

घेरों पर घेरे, उनमें और छोटे घेरे! लोग बनाए चले जाते हैं--सिर्फ एक आकांक्षा में कि बहुत से वर्तुलों में घिर कर भुला लेंगे अपने अकेलेपन को। लेकिन न कभी कोई भुला पाया है, न कोई भुला सकता है। तुम्हारा एकाकीपन तुम्हारे जीवन का परम सत्य है। उसकी स्वीकृति संन्यास है। उसकी सहज स्वीकृति संन्यास है।

भीड़ में रहो, बाजार में रहो, मगर अपने एकाकीपन को मत भूलना। और जब मौका मिले तब आंख बंद करके अपने एकाकीपन में डुबकी मार लेना। और वही डुबकी तुम्हें धीरे-धीरे परमात्मा में ले जाएगी, क्योंकि तुम जब बिल्कुल अकेले हो, तो तुम परमात्मा में हो। और जब तुम भीड़ में डूबे हो, औरों में उलझे हो, तब परमात्मा से विमुख हो गए हो। भीड़ से जुड़े कि परमात्मा से विमुख हुए, राम से विमुख हुए। अपने से जुड़े कि राम के सन्मुख हुए। और राम के सन्मुख हो जाना ही क्रांति है।

आज इतना ही।

तीसरा प्रवचन

मेरा संन्यास वसंत है

पहला प्रश्नः ओशो, मैं आपके नव-संन्यास से भयभीत क्यों हूं? वैसे पुराने ढंग के संन्यास से मुझे जरा भी भय नहीं लगता है।

मंगलदास, नये से सदा भय लगता है--नये के कारण ही। मन पुराने से सदा राजी होता है; क्योंकि मन पुराने में ही जीता है। नये में मन की मृत्यु है, पुराने में मन का पोषण है। जितना पुराना हो, मन उससे उतना ही ज्यादा राजी होता है। जितना नया हो, मन उतना ही घबड़ाता है, उतना ही भागता है।

मन की पूरी प्रक्रिया तुम्हें समझनी होगी। मन का अर्थ ही होता है--अतीत। जो बीत गया, उसके संग्रह का नाम मन है। वर्तमान क्षण का कोई मन नहीं होता। बीते सारे कल, उनकी छापें, उनके संस्कार--वही तुम्हारा मन है। थोड़ी देर को अतीत को हटा कर रख दो, फिर क्या बचता है मन में? एक-एक ईंट अतीत की अलग कर लो और मन का भवन गिर जाता है। अतीत का कुछ न बचे तो मन को बचा पाओगे? मन का बचना असंभव हो जाएगा। मन तो अतीत का जोड़ है।

इसलिए मन जराजीर्ण में बड़ा रस लेता है--परंपरा में, इतिहास में। वे युग जो नहीं रहे--रामराज्य, सतयुग--उनमें मन की बड़ी लिप्सा है। क्योंकि मन उनके सहारे अपने को मजबूत पाता है। मन भविष्य में भी रस लेता है, क्योंकि भविष्य अतीत का ही रूपांतरण है। तुम भविष्य के संबंध में जो भी सोचते हो, वह अतीत से ही जन्मता है। और तो आएगा भी कहां से! और तो तुम्हारे पास कुछ है भी नहीं। अगर अतीत की जड़ें हैं, तो भविष्य के पत्ते लगते हैं। अतीत गया, भविष्य भी गया।

साधारणतः हम सोचते हैं समय के तीन खंड हैं--अतीत, वर्तमान और भविष्य। वह धारणा गलत है, बुनियादी रूप से गलत है। समस्त ध्यानियों का अनुभव उसके विपरीत है। समस्त बुद्धों की देशना उसके विपरीत है। समय के दो अंग हैं--अतीत और भविष्य। और समय मन का ही दूसरा नाम है। चाहे कहो मन के दो खंड हैं--अतीत और भविष्य, चाहे कहो समय के। एक ही बात है। समय यानी मन। वर्तमान न तो समय का हिस्सा है, न मन का हिस्सा है। इसलिए जिसे जागना हो उसे वर्तमान में ठहरना होता है। इस क्षण में अगर तुम थिर हो जाओ। न पीछे कुछ, न आगे कुछ। फिर कहां है मन! सारी तरंगें गईं।

अतीत ही भविष्य को जन्माते चलता है। अतीत की संतति है भविष्य। बीते कल, बहुत सुख तुमने देखे, बहुत दुख भी देखे। भविष्य में तुम चाहते हो, जो सुख तुमने अतीत में देखे, उनको और घना करके देखो, और सजा करके देखो। और जो दुख तुमने देखे, वे भविष्य में तुम्हें न देखने पड़ें, बिल्कुल न देखने पड़ें। बस यही तुम्हारा भविष्य है। भविष्य की तुम्हारी कल्पना क्या है? अतीत में से ही छांटते हो। हीरे-जवाहरात बचा लेना चाहते हो, कंकड़-पत्थर छोड़ देना चाहते हो।

हमारी भाषा में इसकी सूचना है। दुनिया की किसी भाषा में यह सूचना नहीं है। क्योंकि दुनिया की भाषाओं पर बुद्धों का प्रभाव नहीं पड़ा। हमारी भाषा पर बुद्धों की छाप है। हम बीते कल को भी कल कहते हैं, आने वाले कल को भी कल कहते हैं। दोनों को हम ने एक ही नाम दिया, जरा भी भेद नहीं किया। दुनिया की कोई भाषा में दोनों के लिए एक ही नाम नहीं है। उसका कारण है। बीत गया, वह भी कल है; आ रहा है जो,

वह भी कल है। दोनों नहीं हैं। एक जा चुका, एक अभी आया नहीं है। और मन दोनों में तैरता है। मन अन-अस्तित्व में जीता है।

इसलिए प्रत्येक व्यक्ति अपने धर्म, अपनी जाति, अपने ग्रंथ, अपनी परंपरा, अपने देश के पुरातन होने की डींग हांकता है। अतिशय, जिसके लिए कोई प्रमाण भी नहीं होते, लेकिन हमारा मन रस लेता है। पूछो हिंदुओं से, तो वे कहेंगे, हमारा धर्म पृथ्वी पर सबसे प्राचीन धर्म है। और पूछो यहूदियों से, वे भी यही कहते हैं। और पूछो जैनों से, उनका भी यही दावा है। और सब अपने दावे के लिए तर्क जुटाते हैं। और सब अपने दावे के लिए तर्क जुटा लेते हैं।

तर्क वेश्या है। उसका किसी से कुछ लेना-देना नहीं है। जो दाम चुकाए, उसके साथ हो लेती है। जो मूल्य चुकाए, उसके साथ हो लेती है। तर्क तो वकील है; हमेशा बाजार में बिकने को खड़ा है। तर्क की कोई निष्ठा नहीं होती। तर्क तो चाकर है।

जैन कहते हैं, उनका धर्म सबसे प्राचीन है। क्यों? क्योंकि उनके प्रथम तीर्थंकर का उल्लेख ऋग्वेद में है। हिंदू कहते हैं, हमारा धर्म सबसे प्राचीन। क्योंकि ऋग्वेद दुनिया की सबसे पहली किताब है, उससे पुरानी और कोई किताब नहीं है। और जैन कहते हैं, अगर ऋग्वेद दुनिया की सबसे पुरानी किताब है, तो ऋग्वेद में आदिनाथ का उल्लेख है, वे हमारे प्रथम तीर्थंकर हैं। और आदिनाथ का उल्लेख बड़े समादर से है--इतने समादर से कि कभी समसामयिक व्यक्ति को इतने समादर से आदृत किया नहीं जाता।

लोग तो मुर्दों को पूजते हैं, ख्याल रखना। जिंदा व्यक्तियों को तो गालियां दी जाती हैं, मुर्दों की पूजा की जाती है। क्योंकि मुर्दे अतीत के हिस्से हो जाते हैं, जिंदा वर्तमान के हिस्से होते हैं।

आदिनाथ का इतने समादर से उल्लेख है ऋग्वेद में, इससे सिद्ध होता है कि कम से कम मरे उन्हें पांच सौ साल तो हो ही चुके होंगे। वे समसामयिक तो हो ही नहीं सकते। तो ऋग्वेद से ज्यादा प्राचीन होने चाहिए। और कोई यह तर्क न भी माने तो भी इतना तो मानना ही होगा कि ऋग्वेद जितने ही प्राचीन हैं और ऋग्वेद में भी उन्हें आदर से उल्लेख किया गया है।

तो जैन कहते हैं कि हमारा धर्म सबसे प्राचीन धर्म है। और यहूदियों से पूछो, तो वे कहते हैं, उनका धर्म सबसे पुराना है। ईश्वर ने उन्हें ही चुना है; वही ईश्वर के चुने हुए लोग हैं। और यही बात और धर्मों के संबंध में है। सब अपने को खींचतान करते हैं--पुराना सिद्ध करने की। किस कारण? तुम्हारे मन को राजी करने के लिए। तुम्हारा मन पुराने से बहुत प्रभावित होता है; इतना पुराना है तो ठीक होगा ही। जैसे सत्य कोई पुरानी शराब है कि पुरानी जितनी हो उतनी ठीक होगी!

सत्य तो शराब से ठीक उलटा है। शराब जितनी पुरानी हो उतनी ठीक होती है, क्योंकि उतनी जहरीली हो जाती है, उतनी विषाक्त हो जाती है, उतनी नशीली हो जाती है। सत्य तो नशे को तोड़ने वाला है; इसलिए जितना नया हो उतना शुद्ध होता है। जितना पुराना हो उतनी धूल जम जाती है। जितना समय बीतता चला जाता है, उतनी पर्त पर पर्त धूल जम जाती है--व्याख्याओं की, टिप्पणियों की, पंडितों की। इतनी धूल जम जाती है कि पता लगाना ही मुश्किल हो जाता है कि मूल क्या था। क्या कहा था उस व्यक्ति ने जिसने जाना था? जिन्होंने नहीं जाना है, उन्होंने इतनी व्याख्याएं कर दी हैं कि तुम व्याख्याओं के जंगल में खो जाओगे।

लेकिन मन राजी होता है पुराने से। मंगलदास, इसीलिए पुराना संन्यास तुम्हारे मन को भाता है। डर नहीं लगता। लाखों लोग चल चुके हैं उस रास्ते पर, इतने लोग गलत नहीं हो सकते। और सच यह है कि जितनी बड़ी भीड़ किसी बात को मानती हो, समझ लेना वह बात सच नहीं हो सकती। क्योंकि भीड़ और सत्य को माने

तो इस पृथ्वी पर स्वर्ग कभी का उतर आया होता। भीड़ असत्य को मानती है, सत्य को नहीं। भीड़ झूठ को मानती है, झूठों में जीती है। भीड़ अंधी है, अंधों की है। यहां सत्य को जानने वाला तो कभी कोई एकाध होता है। और उसकी वही गति होती है जो अंधों के बीच आंख वाले की हो जाए; पागलों के बीच, जो पागल नहीं है, उसकी हो जाए।

भीड़ तो झूठों में जीती है। भीड़ तो सांत्वना चाहती है, सत्य नहीं चाहती।

फ्रेड्रिक नीत्शे ने कहा है, मत छीनो भीड़ से उसके झूठ, अन्यथा भीड़ विक्षिप्त हो जाएगी। मत छीनो भीड़ से उसकी सांत्वनाएं, अन्यथा भीड़ का जीना असंभव हो जाएगा। और इस बात में सचाई है। और इसकी गवाही खुद फ्रेड्रिक नीत्शे के जीवन से मिलती है। खुद वह भी पागल हुआ। और पागल हुआ इसी प्रयास में कि झूठ को छोड़ दे, सब झूठ छोड़ दे।

तुम जरा सोचो, तुमसे तुम्हारे सारे झूठ छीन लिए जाएं, तुम तिलमिला उठोगे। भारत-भूमि धार्मिक भूमि है! जैसे कि भूमियां भी धार्मिक और अधार्मिक होती हैं! भूमि तो भूमि होती है। उन्नीस सौ सैंतालीस के पहले कराची और लाहौर भी धार्मिक भूमि थे, अब? अब नहीं हैं।

लेकिन पाकिस्तानियों से पूछो। पाकिस्तान का मतलब समझते हो? पवित्र स्थान! उन्नीस सौ सैंतालीस के पहले पवित्र स्थान नहीं थे वे, उन्नीस सौ सैंतालीस के बाद पवित्र स्थान हो गए हैं, पाकिस्तान हो गए हैं। तुम्हारे लिए उन्नीस सौ सैंतालीस के पहले धर्म-स्थान थे; क्योंकि भारत का अंग थे। अब भारत का अंग नहीं हैं।

तुम्हारे अहंकार को तृप्ति मिलती है इस बात की घोषणा से कि भारत धर्मभूमि है। तुम जहां पैदा हुए हो, तुमने जिस देश को पैदा होकर गौरवान्वित किया है, वह देश धार्मिक भूमि होनी ही चाहिए। नहीं तो तुम जैसा पुण्यवान यहां पैदा होता! इस तरह तुम प्रकारांतर से अपने अहंकार को भरते हो, कि भारत ऋषि-मुनियों का देश है। जैसे दुनिया में कहीं और ऋषि-मुनि नहीं हुए!

सब जगह होते रहे हैं। इसी तरह होते रहे हैं। यह दूसरी बात है कि तुम्हें पता नहीं, क्योंकि तुम दूसरों का पता ही नहीं रखते। तुमने लाओत्से की फिकर की? तुमने च्वांगत्सु की फिकर की। तुमने लीहत्जु की फिकर की? तुमने नाम भी नहीं सोचे। तुमने विचार भी नहीं किया। तुमने बहाउद्दीन के संबंध में चिंतन किया? तुमने जलालुद्दीन के संबंध में चिंतन किया? कि तुमने अलहिल्लाज के संबंध में ध्यान किया? तुमने फिकर ही नहीं की। तुमने इकहार्ट या बोहमे या फ्रांसिस, इनके संबंध में कभी कुछ भी जानने की आकांक्षा की, अभीप्सा की?

तुम्हें अपने ऋषि-मुनियों का पता है।

दूर हैं, उनकी तो तुम छोड़ दो, किसी हिंदू से पूछो कि जैनों के चौबीस तीर्थंकरों के नाम गिनवा दे! नहीं गिनवा सकेगा। बगल में ही जैन रहता है। बगल में ही जैनों का मंदिर है। वहां पूजा-पाठ भी चलती है, चौबीस तीर्थंकरों की मूर्तियां भी रखी हुई हैं। मगर हिंदू को क्या लेना-देना है! जैनों से उसे क्या प्रयोजन! बौद्धों को कुछ फिकर पड़ी है!

और क्यों करें फिकर वे? जैनों ने उनके साथ क्या व्यवहार किया है? कृष्ण को नरक में डाल दिया है अपने ग्रंथों में! क्योंकि कृष्ण ने ही युद्ध करवाया, महाहिंसा करवाई। और जैन तो अहिंसा परमो धर्मः! वे तो अहिंसा को परम धर्म मानते हैं। तो धर्म का इससे बड़ा और कोई दुश्मन हुआ नहीं। अर्जुन तो बेचारा जैन हुआ जा रहा था। वह तो एकदम तैयार ही था सब छोड़-छाड़ कर चले जाने को। ले लेता एक पिच्छी-कमंडल, बैठ जाता किसी झाड़ के नीचे, करता तपश्चर्या। इस कृष्ण ने इसको भरमाया, भटकाया, ऊलजलूल बातें समझाईं, उलटी-सीधी बातें!

कोई जैन गीता पढ़ता है? कोई जैन गीता पढ़ सकता है? अगर पढ़े भी, तो भी समझ सकता है? असंभव! क्योंकि जगह-जगह उसे विरोध खड़ा हो जाएगा। जगह-जगह उसका क्रोध जग जाएगा। और तुम यह ख्याल रखना कि वह वहीं से तर्क खोज लेगा कृष्ण के विपरीत। क्योंकि कृष्ण कहते हैं अर्जुन से कि जो परमात्मा करवाए वही कर। जैन कहेगा, और परमात्मा अगर संन्यास ही दिलवा रहा हो तो तुम क्यों युद्ध करवा रहे हो? तुम कैसे निर्णायक हो कि परमात्मा क्या करवाना चाहता है? अर्जुन अगर सच में ही जैन होता तो फेंक कर गांडीव नीचे उतर गया होता। वह कहता कि ठीक है, अब परमात्मा जो करवाएगा वही करेंगे। परमात्मा कहता है, पिच्छी-कमंडल लो। मेरे भीतर की अंतरात्मा की आवाज है!

अंतरात्मा की आवाज तो तुम जानते ही हो। दिल्ली के राजनेताओं ने इस शब्द को काफी प्रचलित कर दिया--अंतरात्मा की आवाज! प्रचलित कर दिया या गंदा कर दिया। अब तो अंतरात्मा की आवाज कोई कह नहीं सकता, क्योंकि कहोगे तो लोग कहेंगेः आयाराम-गयाराम। आयाराम- गयारामों को अंतरात्मा की आवाज सुनाई पड़ती है! जब भी उनको आना-जाना होता है, एकदम अंतरात्मा की आवाज सुनाई पड़ती है!

कृष्ण ने भरमाया, जैनों को ऐसा ही लगेगा। तो जैन गीता नहीं पढ़ते। पांच हजार साल हो गए कृष्ण की गीता को, एक जैन ने भी गीता पर कोई टीका नहीं की। हजारों टीकाएं लिखी गईं, लेकिन जैनों ने नहीं, एक ने भी नहीं। इस योग्य भी नहीं माना! और क्यों मानें? क्योंकि कुंदकुंद के समयसार पर किस हिंदू ने टीका लिखी? कुंदकुंद के समयसार का पता ही किसी हिंदू को नहीं है। कुंदकुंद शब्द ही नहीं सुना।

एक युवक ने संन्यास लिया, मैंने उसे कुंदकुंद नाम दिया। उसने तत्क्षण पूछा, ये कुंदकुंद कौन हैं? कभी सुना नहीं।

कुंदकुंद उतने ही महिमावान व्यक्ति हैं जितने कृष्ण। उतने ही महिमावान व्यक्ति हैं जैसे बुद्ध, जैसे कबीर, जैसे नानक। उस अपूर्व कोटि में हैं। लेकिन हम दूसरों की तरफ तो देखते नहीं। पास-पड़ोस में नहीं देखते तो दूर देशों का तो हमें पता ही क्या चलेगा कि इजरायल में कौन-कौन से ऋषि-मुनि हुए और चीन में कौन से ऋषि-मुनि हुए और जापान में कौन से ऋषि-मुनि हुए।

सो हरेक अपने कुएं में जीता है और अपने कुएं को ही मानता है--यही सागर है। और अपने कुएं के बाहर झांकता भी नहीं, डरता भी है कि कहीं कोई बड़े कुएं हों न, अन्यथा अहंकार को चोट लगेगी, पीड़ा होगी। और हरेक अपने कुएं की महिमा में, गुणगान में संलग्न है। हरेक अपने कुएं को सजाने में संलग्न है।

वैज्ञानिक कहते हैं कि वेद पांच हजार साल से ज्यादा पुराने नहीं। लेकिन हिंदू इससे राजी नहीं होते। सिर्फ पांच हजार साल! पांच हजार साल तो हिंदुओं को कुछ जंचते नहीं। पांच हजार साल में खतरा है, क्योंकि चीनियों के पास एक किताब है जो छह हजार साल पुरानी है। फिर वेद सबसे पुराने न रह जाएंगे। और मिश्र में इस तरह के शिलालेख मिले हैं जो सात हजार साल पुराने हैं। तो फिर वेद सबसे पुराने न रह जाएंगे। तो लोकमान्य तिलक ने सिद्ध करने की कोशिश की है कि वेद कम से कम नब्बे हजार साल पुराने हैं!

और जो सिद्ध करना हो, सिद्ध करने के लिए बड़ी तरकीबें खोजी जा सकती हैं--जब सिद्ध ही करना हो, जब तय ही कर लिया हो सिद्ध करना है, खोज-बीन के पहले ही निष्कर्ष ले लिया हो। अवैज्ञानिक ढंग यही होता हैः निष्कर्ष पहले, खोज-बीन बाद में। वैज्ञानिक पहले खोज-बीन करता है, फिर निष्कर्ष लेता है। अगर तुमने निष्कर्ष पहले ही ले लिया है... कोई भी निष्कर्ष ले लो।

एक आदमी ने किताब लिखी है। अमरीका में ख्याल है कि तेरह का आंकड़ा बहुत अपशगुन से भरा हुआ है। तो तुम अगर अमरीका की किसी होटल में ठहरो तो वहां तुम्हें तेरह नंबर की मंजिल नहीं मिलेगी होटल में।

बारह के बाद सीधी चौदह! होती वह तेरह ही है, लेकिन नंबर उस पर चौदह का होता है, क्योंकि तेरहवीं मंजिल पर कोई ठहरना ही नहीं चाहता। और तेरह नंबर का कमरा भी नहीं मिलेगा; बारह के बाद सीधा चौदह। क्योंकि तेरह नंबर के कमरे में ठहरे कौन! तेरह का आंकड़ा बुरा समझा जाता है। और एक आदमी ने बड़ी किताब लिखी है। उसने किताब में सब तरह से सिद्ध किया है कि तेरह का आंकड़ा क्यों बुरा है। तेरह तारीख को कितने लोग दुनिया में पागल होते हैं--उसने सबका हिसाब इकट्ठा किया है। तेरह तारीख को कितने लोग मरते हैं, कितने लोग आत्मघात करते हैं, कितनी दुर्घटनाएं होती हैं, कितनी कारें उलटती हैं, कितने हवाई जहाज गिरते हैं, कितने भूकंप आते हैं, कितने ज्वालामुखी फूटते हैं--उसने इतना सब इकट्ठा किया है!

उसका एक भक्त उस किताब को लेकर मेरे पास आ गया था।

मैंने उससे कहा कि पहले तू यह भी तो फिकर कर, बारह तारीख की भी तो फिकर कर। अगर बारह की तुम खोज करने जाओगे तो इतनी ही दुर्घटनाएं बारह को भी होती हैं। इतने ही लोग बारह को भी मरते हैं और पागल होते हैं। और मैंने उससे कहा कि तेरह को कुछ अच्छा भी घटता है कि नहीं? उसका तो इसने उल्लेख ही नहीं किया। कितने लोग मरते हैं, यह तो बता दिया; कितने बच्चे जन्मते हैं? क्या दुनिया में तेरह तारीख को कोई बच्चा पैदा नहीं होता? और तेरह तारीख को कितने हवाई जहाज नहीं गिरते हैं, उनकी भी तो गणना देनी चाहिए न! और कितनी ट्रेनें ठीक अपने स्थान पर पहुंच जाती हैं बिना गिरे! उसका कोई हिसाब नहीं है।

निष्पत्ति पहले ले ली, फिर खोज-बीन में लग गए। निर्णय पहले ले लिया, फिर उस निर्णय के अनुकूल तथ्यों को खोजने लगे। तो लोग सिद्ध करने की कोशिश करते हैं।

ईसाई इसको मान नहीं सकते कि नब्बे हजार साल पुराना है, क्योंकि ईसाइयों की धारणा है कि दुनिया को ही बने इतना नहीं समय हुआ। ईसाई मानते हैं कि जीसस के केवल चार हजार चार साल पहले दुनिया बनाई गई। वे भी अपने लिए तर्क खोज लेते हैं।

जब पहली दफे खुदाइयां होनी शुरू हुईं और पुराने खंडहर मिले और पुराने ऐसे अस्थिपंजर मिले जो कि बहुत प्राचीन हैं, पचास हजार साल पुराने आदमियों की हड्डियां मिलीं, खोपड़ियां मिलीं, तो ईसाई पादरी बड़ी मुश्किल में पड़ गए। क्या करें! क्योंकि सबको एक खतरा लगा रहता हैः अगर उनके ग्रंथ की एक बात गलत हो जाए तो लोगों को फिर दूसरी बातों पर भी शक पैदा हो जाएगा। जब एक बात गलत हो सकती है बाइबिल की तो और बातों का क्या भरोसा! इसलिए हर बात सही होनी चाहिए।

वेद की एक बात गलत हो सकती है तो फिर दूसरी बातों का क्या भरोसा! और अगर राम एक बात गलत बोल सकते हैं तो फिर कौन जाने, और बातें भी संदिग्ध हो जाती हैं। श्रद्धा डांवाडोल हो जाती है। जरा सा झूठ पकड़ में आ जाए कि श्रद्धा का भवन गिरने लगता है। श्रद्धा के सारे भवन ही लोगों ने ताश के पत्तों की तरह बनाए हुए हैं। एक पत्ता खींच लो कि सारा भवन भूमिसात होने लगता है।

तो ईसाई बहुत घबड़ाए, मगर उन्होंने तरकीब खोज ली! इसको मैं कहता हूं तर्क का वेश्या होना। उन्होंने क्या तरकीब खोजी? उन्होंने यह तरकीब खोजी कि हां, यह बात सच है कि ये हड्डियां पचास हजार साल पुरानी मालूम पड़ती हैं, मगर हैं नहीं। परमात्मा ने जब दुनिया बनाई--जो परमात्मा दुनिया बना सकता है, क्या वह इतना सा काम नहीं कर सकता कि ऐसी हड्डियां बनाए जो पचास हजार साल पुरानी मालूम पड़ती हों? उसने ये हड्डियां इसलिए पचास हजार साल पुरानी बनाईं--प्रतीत होनी चाहिए--ताकि श्रद्धालु कौन है, अश्रद्धालु कौन है, इसका निर्णय हो सके। यह कसौटी है। अब भी जो श्रद्धा करेंगे कि दुनिया चार हजार साल

और चार वर्ष पहले ही बनाई गई, वे श्रद्धालु हैं, वे ही सच्चे ईसाई हैं। यह तो भक्तों की पहचान के लिए परमात्मा ने एक मापदंड रख दिया जमीन के भीतर।

खोज ली तरकीब उन्होंने! यह तो परमात्मा न हुआ...

मेरे एक मित्र हैं, वे नेपाल में एक फैक्टरी डाले हुए हैं। वहां वे प्राचीन चीजें बनाते हैं। मैं थोड़ा हैरान हुआ। मैंने कहा, प्राचीन चीजें बनाते हैं! उन्होंने कहा, हां। हजार-हजार, दो-दो हजार, तीन-तीन हजार साल पुरानी चीजें बनाते हैं। पहले बुद्ध की प्रतिमा बनाते हैं, फिर उस पर तेजाब और रासायनिक द्रव्य डाल कर उसकी ऐसी हालत कर देते हैं खराब कि ऐसी लगे कि तीन हजार साल पुरानी है। फिर उसको जमीन में गड़ा देते हैं। फिर साल, छह महीने उसको जमीन में गड़े रहने देते हैं। सो उसकी हालत और खराब हो जाती है। फिर उसको निकालते हैं। फिर वह एंटीक हो गई! फिर उस पर लिख भी देते हैं, किस संवत में बनी। उसी समय की भाषा में--पाली में, प्राकृत में। पंडित रख छोड़े हैं उन्होंने पाली-प्राकृत के, संस्कृत के। उस भाषा में, उसी लिपि में, ब्राह्मी लिपि में लिखवा देते हैं उस पर। वह भी ऐसा लिखवाते हैं कि अधूरा पुछ गया, अधूरा मिट गया, कुछ बचा, कुछ नहीं बचा। एकाध शब्द समझ में आता है, एकाध नहीं भी आता। प्रतिमा पूरी बनाते हैं, फिर हाथ तोड़ देते हैं, नाक तोड़ देते हैं, कान तोड़ देते हैं। क्योंकि नई वही प्रतिमा सौ, दो सौ रुपये में बिके। तीन हजार साल पुरानी होकर लाखों में बिकती है! पुराने का ऐसा मोह है, ऐसा पागलपन है! पुराना जैसे कुछ अपने आप में मूल्यवान हो जाता है!

मंगलदास, तुम कहते होः "मैं आपके नव-संन्यास से भयभीत क्यों हूं?"

इसीलिए भयभीत हो कि नया है। पहले कोई चला नहीं। पहले इस भांति से कोई जीया नहीं। पता नहीं ठीक हो या न हो। पहले के लोगों की गवाहियां नहीं हैं। पहले के लोगों के प्रमाण नहीं हैं। और तुम अनुभव से नहीं जानना चाहते; दूसरों के प्रमाणपत्र चाहते हो। तुम अपने अनुभव से नहीं खोजना चाहते सत्य को। तुम सस्ता सत्य चाहते हो। जिसको और सब लोग मानते हों, वह सत्य होगा ही--इतने लोग मानते हैं, हम भी माने लेते हैं। यह सत्य के अन्वेषी का लक्षण नहीं है। यह सत्य से बचने वाले का लक्षण है। जिसको सत्य को खोजना है, वह तो कहेगा, मैं खोजूंगा! और जो अपने अनुभव से जानूंगा वही मानूंगा। जो जानूंगा बस वही मानूंगा। जानने पर मेरी श्रद्धा होगी, मानने पर नहीं। तब तुम्हें मेरा नव-संन्यास आकर्षित करेगा, निमंत्रण देगा।

फिर और भी डर के कारण हैं।

मन का एक नियम हैः मन अतियों में जीता है। एक अति से दूसरी अति पर जाने में मन को कोई बाधा नहीं होती। मन घड़ी के पेंडुलम की तरह है। बाएं से दाएं चला जाता है, दाएं से बाएं चला जाता है; लेकिन बीच में नहीं रुकता। बीच में रुक जाए तो घड़ी रुक जाए। ऐसे बाएं-दाएं जाकर घड़ी को चलाए रखता है।

ऐसा ही हमारा मन हैः दाएं जाता, बाएं जाता। एक अति से दूसरी अति। दूसरी से फिर पहली अति। ऐसे ही हमारी जीवन की यह जो घड़ी है, यह जो जन्म-मरण का चक्कर है, इसको मन चलाता है। यह पेंडुलम है। यह अगर बीच में रुक जाए तो घड़ी बंद हो जाए; तुम मुक्त हो जाओ, तत्क्षण मुक्त हो जाओ! यह अगर सम हो जाए, मध्य में ठहर जाए, तुम अतिक्रमण कर जाओ संसार का। मैं उसी को संन्यास कहता हूंः संसार का अतिक्रमण, संसार का त्याग नहीं।

त्यागी और भोगी तो एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। कोई सिक्के को सीधा हाथ में रखे है, कोई उसी सिक्के को उलटा हाथ में रखे है; मगर दोनों के हाथ में सिक्का वही है। एक आदमी धन के पीछे दीवाना है; उसके लिए धन ही धन, और कुछ नहीं सूझता।

एक मारवाड़ी मरणशय्या पर पड़ा है। आखिरी घड़ी, सांझ आ गई जीवन की, पल दो पल की देर है। वह अपनी पत्नी से पूछता है कि मेरा बड़ा लड़का कहां है?

पत्नी कहती है, आपके बगल में ही बैठे हैं।

उसकी आंखें भी धुंधला गई हैं, प्राण सूखे जा रहे हैं। और मंझला कहां है?

कहा, वह आपके पैरों की तरफ बैठा हुआ है। आप चिंता न करें, आप निश्चिंत रहें।

मगर वह तो टेहुनी टेक कर उठने की कोशिश करने लगा और कहा, छोटा कहां है?

कहा, वह आपके इस तरफ बैठा हुआ है। हम सब यहीं मौजूद हैं। पत्नी की आंखें तो आर्द्र हो आईं। अंत क्षण में भी अपने बेटों की याद है, इतना प्रेम है!

लेकिन उस बेचारी को क्या पता! मारवाड़ी ने कहा, तीनों यहीं बैठे हैं! अरे उल्लू के पट्ठो, तो दुकान कौन चला रहा है? अभी मैं जिंदा हूं, तब यह हाल है। कल मैं मर जाऊंगा तो बस खतम, फिर दुकान नहीं चलनी! तुम मुझे चैन से मरने भी न दोगे! अरे जाओ दुकान चलाओ! मरना-जीना तो लगा ही रहता है, मगर दुकान चलती रहनी चाहिए।

क्या ज्ञान की बात कही--कि मरना-जीना तो लगा ही रहता है! यह तो संसार का क्रम है आना-जाना! अरे यह सब तो माया है! दुकान चलती रहनी चाहिए! तुम बुद्धुओं की तरह बैठे यहां क्या कर रहे हो?

मरते घड़ी तक पैसे की पकड़। दुकान चलनी चाहिए! मरने वाले को ही होती है, ऐसा नहीं है। मैंने एक और मारवाड़ी की कथा सुनी है। मारवाड़ियों की तो कथाओं पर कथाएं हैं। वे भी अपनी मरणशय्या पर पड़े थे। सारा परिवार इकट्ठा था।

छोटे बेटे ने कहा कि पिता ने जीवन भर बड़ी मेहनत की, कौड़ी-कौड़ी इकट्ठा करके करोड़पति हुए। जीवन भर आपा-धापी की। अंत समय में शवयात्रा शान से निकालनी चाहिए। रॉल्स रायस गाड़ी ले आनी चाहिए।

दूसरे बेटे ने, जो जरा ज्यादा होशियार था, मंझले ने कहा, पागल हो गए हो! अब आदमी जब मर ही गया तो तुम रॉल्स रायस में ले जाओ कि एंबेसेडर में, क्या फर्क पड़ता है? हां, जिंदा आदमी को फर्क पड़ता है। हो सकता है एंबेसेडर में ले जाओ तो जिंदा पहुंचे ही नहीं। मगर जो मर ही गया, अब इससे क्या फर्क पड़ता है कि एंबेसेडर है कि रॉल्स रायस है। एंबेसेडर से ही काम चल जाएगा। इतना खर्चा करने की जरूरत नहीं।

तीसरा, बड़ा भाई, उसने कहा, तुम फिजूल की बकवास में लगे हो! अरे सादगी बड़ी चीज है! और सादगी को साधुता कहा है। और ऐसे समय में ही तो परीक्षा होती है। एंबेसेडर वगैरह की कोई जरूरत नहीं है। हमारे पिता शुद्ध भारतीय थे। स्वदेशी में उनका विश्वास था। बैलगाड़ी में ही ले जाएंगे। और बैलगाड़ी अपने घर में ही है। फिजूल किराया लगाना! वैसे ही पेट्रोल के दाम बढ़ गए हैं, मिलता नहीं। अब एंबेसेडर लाओ!

बूढ़ा मारवाड़ी, मरणासन्न मारवाड़ी यह सब सुन रहा था। वह एकदम उठ कर बैठ गया। उसने कहा, मेरे जूते कहां हैं?

तीनों लड़के भी घबड़ा गए, क्योंकि वे तो समझे थे कि पिता जा ही चुके हैं। उन्होंने कहा, जूते का क्या करिएगा?

उसने कहा, अरे अभी मुझमें इतनी हिम्मत है कि मैं पैदल ही चल कर मरघट चला चलता हूं, वहीं मर जाऊंगा। बैलगाड़ी में नाहक कष्ट देना बैलों को! चारे के दाम बढ़ गए हैं, चारा मिलता कहां है!

एक है पागल, जो धन के पीछे दौड़ रहा है। यह भी मन की एक विक्षिप्तता है। फिर एक दूसरा पागल है, वह इन्हीं पागलों से पैदा होता है, वह धन छोड़ कर भागने लगता है। मगर दोनों की भाग जारी रहती है। एक

की धन की तरफ, एक की धन के विपरीत--मगर दोनों की नजर धन पर रहती है। दोनों का अटकाव धन में है। एक धन के लिए दीवाना है कि कितना इकट्ठा कर लूं! और एक दीवाना है, इतना डरा हुआ है धन से कि ऐसा भागता है कि पीछे लौट कर नहीं देखता। भागता ही चला जाता है। छूता नहीं धन को। साधु हैं, संन्यासी हैं, धन को नहीं छूते। जैसे धन काट लेगा! जैसे धन कोई बिच्छू-सांप है! नोट कागज के, क्या काट लेंगे? रुपये नहीं छूता।

यह नहीं छूने वाला, तुम सोचते हो धन से मुक्त हो गया है?

यह तो और भी रुग्ण हो गया। यह तो और विक्षिप्त हो गया। एक तरफ तो कहता है कि मिट्टी है सब, और दूसरी तरफ इतना डरता है!

विनोबा भावे के सामने रुपया ले जाओ तो वे आंख बंद कर लेते हैं। जरूर कहीं रुपये में कोई न कोई आसक्ति होगी। नहीं तो आंख बंद करने की क्या जरूरत? रुपये की क्या ताकत कि आंख बंद करवा दे? अरे आंख अपनी! रुपये की क्या हैसियत कि आंख बंद करवा दे? मगर एकदम आंख बंद कर लेते हैं, मुंह फेर लेते हैं। रुपया छूते नहीं, रुपया छूना पाप है! रुपये छूने में क्या पाप हो सकता है? और साधु-संत समझाए जाते हैं कि धन मिट्टी है; मगर मिट्टी को मजे से छूते हैं।

एक मुनि महाराज से मैंने कहा कि आप मिट्टी पर चलते हैं, शर्म नहीं आती? कुछ तो लाज-संकोच करो! उन्होंने कहा, आप क्या कहते हैं! अरे मिट्टी पर न चलें तो कहां चलें? मैंने कहा, कम से कम जूते तो पहनो! उन्होंने कहा, जूते हम पहन नहीं सकते। मैंने कहा, मिट्टी पैर को छुएगी। उन्होंने कहा, मिट्टी तो मिट्टी है, इसमें डर क्या है? मैंने कहा, डर यही है कि आप कहते हैं कि सोना-चांदी सब मिट्टी है। अगर सोना-चांदी छूने में डरते हो तो मिट्टी छूने में भी डरो। और अगर मिट्टी छूने में नहीं डरते तो सोना-चांदी से क्या डर है? या फिर झूठ ही कहते होओगे कि सोना-चांदी मिट्टी है। समझाते होओगे मन को कि अरे यह तो मिट्टी है, इसको क्या छूना! मगर भीतर ललक उठती होगी कि छू लें। ... कि अरे इसमें क्या सार है! मगर कोई बैठ कर नहीं सोचता कि मिट्टी में क्या सार है! कि भाइयो एवं बहनो, मिट्टी को मत छूना! कि मिट्टी बिल्कुल असार है! लेकिन धन असार है। धन को छूना मत, पकड़ना मत।

ये एक ही तरह के लोग हैं। तुम्हारे त्यागी और भोगी जरा भी भिन्न नहीं हैं। मन भोग से त्याग में चला जाए, यह बिल्कुल आसान है, क्योंकि एक अति से दूसरी अति। लेकिन मन मध्य में ठहर जाए, यह बहुत कठिन है। यह मध्य में ठहरना तलवार की धार पर चलने जैसा है।

मैं अपने संन्यासी को नहीं कहता हूं कि भाग जाओ। मैं कहता हूं, यहीं! जहां हो--दुकान में, बाजार में--यहीं मुक्त होना है! अगर मुक्ति है तो यहीं है। कहीं और नहीं। मुक्ति अगर है तो आंतरिक बोध में है, छोड़ने-छाड़ने में नहीं। मुक्ति अगर है तो भागने में नहीं, जानने में है। तो जागो, अपने चैतन्य को गतिमान करो, ऊर्ध्वगामी करो। अपने ध्यान को निखारो। बाहर की चीजों पर मत अटको--न भोग के लिए, न त्याग के लिए। न तो उनके लिए पागल हो जाओ कि नहीं मिलेंगी तो मर जाएंगे। और न पागल हो जाओ कि अगर मिल गईं तो मर जाएंगे। बाहर की चीजों का इतना तुम्हारे ऊपर वश हो तो तुम्हारी कोई हैसियत ही नहीं है।

इसलिए मैं कहता हूं, पत्नी, बच्चे, परिवार, कुछ छोड़ कर कहीं जाना नहीं है। तुम जहां हो, वहीं धीरे-धीरे शांत होना है, मौन होना है। और जो बाजार के कोलाहल में मौन हो जाता है, उसके मौन को कोई खंडित नहीं कर सकता। और हिमालय की गुफा में बैठ कर अगर तुम मौन हो भी गए, तो तुम्हारा मौन तुम्हारा नहीं है, हिमालय का है। बाजार में आओगे, टूट जाएगा, खंडित हो जाएगा। अगर तुम उपवास साध-साध कर मौन हो

भी गए, तो वह मौन तुम्हारा नहीं है। वह तो किसी को भी भूखा रखो तो बेचारा मौन हो जाए। वह कोई खास खूबी की बात नहीं है। तुम्हीं चार-छह दिन भूखे रहो तो बोलती बंद होने लगेगी। पंद्रह दिन, महीना भर भूखे रह गए, फिर बोलना क्या है! मगर वह मौन नहीं है। खाते-पीते, स्वस्थ जीते--अगर तुम्हारे भीतर मौन आ जाए तो कुछ बात हुई, तो कुछ क्रांति हुई, तो कुछ पाई संपदा अंतर की।

मैं बाहर के धन को छोड़ने को नहीं कहता; भीतर के धन को पाने को कहता हूं। और जिसने भीतर का धन पा लिया, उसे बाहर के धन में कुछ अड़चन ही नहीं रह जाती। महल हो तो महल में सोता है और झोपड़ा हो तो झोपड़े में सोता है। मस्ती उसकी अखंड होती है। उसकी मस्ती खंडित नहीं होती। कुछ न हो तो भी मस्त होता है और सब कुछ हो तो भी मस्त होता है। उसे तुम सिंहासन पर बिठाल दो तो कोई अड़चन नहीं है। और उसे झाड़ के नीचे बैठा रह जाना पड़े तो कोई बेचैनी नहीं है। इसको कहते हैं समता। इसको कहते हैं सम्यकत्व।

नव-संन्यास संन्यास की बड़ी क्रांतिकारी धारणा है। तुम भयभीत हो रहे होओगे। पुराने संन्यास से तौलते होओगे। तो और अड़चन खड़ी हो जाती है। क्योंकि लोग सोचते हैं, पुराना संन्यास बड़ा कठिन था। बात बिल्कुल गलत है। पुराना संन्यास बिल्कुल सुगम है।

इसलिए तुम हैरान न होओ मंगलदास कि "पुराने संन्यास से मुझे बिल्कुल भय नहीं लगता।"

पुराना संन्यास बिल्कुल सुगम है। मन कर सकता है बड़ी आसानी से। नया संन्यास बहुत कठिन है। शराबघर में बैठ कर और न पीओ, तब समझना कि कुछ बात है। और जहां शराब मिलती ही न हो वहां न पीओ, तो समझना कि कुछ खास बात नहीं है। रेगिस्तान में जाकर बैठ जाओ; जहां न कोई आता हो, न जाता हो; और वहां अगर तुम्हें क्रोध न आए, तो उसका कोई मूल्य नहीं है। आओ बाजार में--जहां गालियां पड़ती हों, अपमान होता हो, जहां हर आदमी चोट पहुंचाने को आतुर हो--वहां क्रोध न आए, वहां बोध संतुलित रहे, वहां भीतर सब थिर और मौन रहे। कोई कितने ही पत्थर फेंके, चट्टानें फेंके, तो भी भीतर लहरें न उठें, तो समझना कि कुछ उपलब्धि हुई।

पुराना संन्यास सुगम है; मन की भाषा के भीतर आता है। नया संन्यास कठिन है, क्योंकि मन का अतिक्रमण करना होगा। नये संन्यास का मौलिक आधार त्याग नहीं है, ध्यान है। नये संन्यास का मौलिक आधार अंतर्गमन है। पुराना संन्यास बहिर्मुखी है। वह कहता है, यह छोड़ो, वह छोड़ो। उसकी दृष्टि बाहर अटकी है। और तुम भी बहिर्मुखी हो और तुम्हारा संन्यास भी पुराना बहिर्मुखी है; दोनों बातों में तालमेल बैठ जाता है। और तुम इस तालमेल को जरा अगर आंख खोल कर देखोगे तो बहुत चकित होकर पाओगे, सब जगह बैठा हुआ मिलेगा।

मेरे एक प्रियजन हैं, दिगंबर जैन हैं। उनकी कपड़े की दुकान हैः दिगंबर क्लाथ शॉप। मैंने उनसे पूछा कि तुमने कभी इस पर विचार किया? एक शब्द तो संस्कृत का "दिगंबर" और "क्लाथ शॉप" दो शब्द अंग्रेजी के। इससे किसी को पता नहीं चलता, मगर इसका शुद्ध हिंदी में अनुवाद तो करो! इसका अर्थ होगाः नंग-धड़ंगों की कपड़े की दुकान। अब नंग-धड़ंगों को कपड़े की क्या जरूरत है?

वे भी कहने लगे, बात तो ठीक है।

मैंने कहा, और अगर तुम बुरा न मानो, अगर और ठेठ अनुवाद करना हो तो इसका अर्थ होगाः नंगे-लुच्चों की कपड़ों की दुकान।

उन्होंने कहा, आप क्या कहते हैं? नंगे-धड़ंगे तक भी ठीक था। नंगे-लुच्चे!

मैंने उनसे कहा, तुम्हें शायद पता नहीं कि नंगे-लुच्चे शब्द का पहली दफे प्रयोग जैन मुनियों के लिए ही किया गया। क्योंकि वे नंगे रहते हैं और बाल लोंचते हैं। लुच्चे यानी बाल लोंचने वाले। लुच्चे से मतलब कोई गुंडों से नहीं होता था। पुराना जो मौलिक अर्थ था लुच्चे का, वह था लोंचने वाला। जैन मुनि बाल कटवाता नहीं, लोंचता है।

पागलपन के भी कई ढंग होते हैं। पागलों को अक्सर... पागलखाने में तुम्हें कई पागल मिलेंगे बाल लोंचने वाले। और तुम्हारे घर में भी जब पत्नी बिफरा जाती है तो जो पहला काम करती है वह बाल लोंचने का करती है। वह समझो कि जैन मुनि हो रही है।

मैंने उनसे कहा कि तुमने कभी इस विरोधाभास पर ध्यान दिया कि सब दिगंबर जैन करीब-करीब कपड़ा बेचते हैं? उनके मुनि नंगे, श्रावक सब कपड़ा बेचते हैं। यह बड़ा मजे का मामला है! इसके भीतर कुछ न कुछ संबंध होना चाहिए। सब जैन धनी और उनके सारे मुनि धन के विपरीत, धन-विरोधी। पैसा छूते भी नहीं। कपड़ा पहनते नहीं। यह मामला क्या है! इसके भीतर जरूर कुछ राज होना चाहिए। सब जैन खाने-पीने में बहुत कुशल हैं। जितना गरिष्ठ भोजन जैन करते हैं, कोई और नहीं करता। और उनके मुनि उपवास करते हैं।

और यह बात सारे धर्मों के संबंध में सच है। खोज-बीन करने से तुम्हें पता चलेगी, कि जो संसारी है वह और उस संसारी का जो त्यागी है वह, उन दोनों के बीच एक तारतम्य है, एक गणित है। भोगी और त्यागी के बीच एक अंतर्संबंध है। ये कपड़ा बेचने वालों को नंगा रहने वाला आदमी आदृत मालूम पड़ता है, आदर-योग्य मालूम पड़ता है, कि भई गजब कर दिया! ये जो बहुत खाने-पीने वाले लोग हैं, इनको उपवास करने वाला व्यक्ति बहुत प्रभावित करता है। विपरीत में हमेशा आकर्षण होता है। इस नियम को स्मरण रखना। इसलिए तो स्त्री पुरुषों में आकर्षित होती है; पुरुष स्त्रियों में आकर्षित होते हैं; विपरीत का आकर्षण है। जैसे ऋण और धन विद्युत एक-दूसरे की तरफ खिंचते हैं, बस ऐसे विपरीत में आकर्षण होता है।

अमीरों के जो धर्म हैं, उनमें त्याग की महिमा है। और अमीरों के जो धर्म-दिवस होते हैं, उन दिनों में उपवास करना होता है। जैसे जैनों का पर्युषण आएगा, तो उपवास करो, अनशन करो। और गरीबों के जो धर्म-दिवस होते हैं, बिल्कुल उलटे होते हैं। जैसे मुसलमानों का धर्म-दिवस आएगा, तो मीठे चावल बनाओ, अच्छे कपड़े पहनो। साल में वे एक ही दफा कपड़े खरीदते हैं, जब ईद आई। फिर दिल खोल कर मना लेते हैं।

गरीब के धार्मिक उत्सव, उत्सव होते हैं। उस दिन वह जो भी भोगना है दिल खोल कर भोगता है। अमीर के धार्मिक दिन त्याग के होते हैं। साल भर तो भोगता है, तो भोग के विपरीत मन कहता है कुछ करो! क्या भोगी ही बने रहोगे? नरक में पड़ोगे! तो एक दिन तो उपवास कर लो। दस दिन तो उपवास कर लो। साल में कभी तो उपवास कर लो।

गरीब तो साल भर ही उपवासा रहता है। उसका मन कहता है कि यह तो साल भर ही चलता है धर्म तो। एक दिन तो दिल खोल कर... तो साल भर इकट्ठा करता है। एक दिन तो दीवाली मना लो। एक दिन तो हो जाए होली और हुल्लड़। एक दिन तो फिंक जाए रंग और गुलाल।

तुम अगर दुनिया के धर्मों का अध्ययन करोगे तो यह बात तुम्हें स्पष्ट दिखाई पड़नी शुरू हो जाएगी कि उनके त्यागी और उनके भोगियों के बीच एक संबंध होता है। भोगी और त्यागी किसी भीतरी गणित से जुड़े होते हैं।

मंगलदास, तुम्हें पुराने संन्यास से कोई भय नहीं लगता, क्योंकि वह तुम्हारी भाषा के भीतर आता है। मैं जिस संन्यास की बात कर रहा हूं, वह तुम्हें बेबूझ मालूम पड़ता है। वह तुम्हारी भाषा के भीतर नहीं आता है।

और चूंकि इतना नया है कि शास्त्रों में उसका कोई उल्लेख नहीं, उसकी कोई परंपरा नहीं, सदियों पुरानी कोई उसकी धारा नहीं, कोई कड़ियां नहीं, कोईशृंखला नहीं--तो भय लगता हैः इतने अज्ञात में उतरना या नहीं उतरना!

वह एक छोटा सा विहग
अपनी उमंगों में उमग
निज पंख फैला चल पड़ा
उस नील नभ को नापने।
उर में भरा उल्लास था,
स्वर में भरा उच्छवास था,
संगीत जीवन का रचा
उसकी विसुध प्रति सांस ने।
थे मौन वन-उपवन पड़े,
थे मौन गिरि-परवत खड़े,
वह गा रहा, वह जा रहा
था सामने--बस सामने।
ऊंचा अधिक उड़ता गया,
ओझल हुई उससे धरा
पर सामने निःसीम था
उसके लगे पर कांपने।
वह एक छोटा सा विहग
अपनी उमंगों में उमग
निज पंख फैला चल पड़ा
उस नील नभ को नापने।

हम छोटे-छोटे पंखों के लोग! विराट आकाश है। अनंत अज्ञात है। असीम सागर है। हमारी छोटी सी डोंगी, छोटी पतवारें! अज्ञात में उतरने में डर लगता है। हां, बहुत से यात्री जिस घाट से उतरते रहे हों और बहुत से यात्री उल्लेख छोड़ गए हों--कि भय न करना, हम उतरे और पहुंचे; तुम भी उतरोगे तो पहुंच जाओगे; उनकी गवाहियां हों, प्रमाणपत्र हों--तो थोड़ा ढाढस बंधता है। नये के लिए कोई साक्षी नहीं होती, कोई गवाही नहीं होती, कोई प्रमाणपत्र नहीं होता। कैसे हो सकता है!

और मैं तुमसे यह कहना चाहता हूं कि सत्य सदा नवीन है, नितनूतन है, ताजा है। ऐसा ताजा है जैसे सुबह की ओस! कि सुबह-सुबह खिले गुलाब के फूल की पंखुड़ियां! सत्य सदा वर्तमान है। उसका कोई अतीत नहीं है। उसकी कोई परंपरा नहीं होती।

सत्य में उतरने का साहस चाहिए, दुस्साहस चाहिए। भय लगेगा, यह स्वाभाविक है। भय के बावजूद उतरने का साहस जुटाना पड़ेगा। और जो भय के बावजूद उतरने को राजी है वह जरूर पहुंच जाता है। क्यों? क्योंकि अगर हम परमात्मा की तलाश कर रहे हैं, तो एक बात कभी मत भूलना कि परमात्मा भी तुम्हारी

तलाश कर रहा है। अगर हम अस्तित्व के सत्य को खोजने चले हैं, तो सत्य भी आतुर है कि हम उसे खोज लें। यह हमारे और सत्य के बीच लुका-छिपी का खेल है। यह लीला है।

घबड़ाने की कोई आवश्यकता नहीं है। और जितना विराट अज्ञात हो, उसमें उतरने से उतनी ही विराट तुम्हारी आत्मा हो जाएगी। जितनी बड़ी चुनौती स्वीकार करोगे, उतना ही बड़ा तुम्हारा नवजन्म हो जाएगा।

पुराने में चुनौती नहीं होती। पुराने में तो चुनौती हो ही नहीं सकती। जंग लगी होती है। नये में चुनौती होती है, धार होती है, चमक होती है, पुकार होती है। और नये पर चलने का साहस ही संन्यास है।

मैं तुम्हें कोई नक्शा भी नहीं देता, क्योंकि आकाश का कोई नक्शा नहीं होता। आकाश में पगडंडियां भी नहीं होतीं। राजपथ की तो बात ही दूर छोड़ दो, पगडंडियां भी नहीं होतीं। आकाश में पक्षी उड़ते हैं तो पैरों के चिह्न भी नहीं छूट जाते। ऐसा नहीं है कि तुमसे पहले लोग परमात्मा को नहीं पाए हैं। मगर बस आकाश में पक्षी बहुत उड़े हैं, मगर उनके पैरों के चिह्न नहीं छूट गए हैं। बुद्ध के, कि लाओत्सु के, कि जीसस के, कि मोहम्मद के, कोई चिह्न नहीं छूट गए हैं आकाश में। आकाश वैसा का वैसा खाली है। तुम भी उड़ोगे, तुम भी चिह्न नहीं छोड़ जाओगे। अच्छा ही है कि चिह्न नहीं छूटते। नहीं तो लोग सिर्फ नकलची होंगे। लोग दूसरों के पैरों पर पैर रख कर चलते रहेंगे! उनकी खुद की आत्मा का जन्म कब होगा! लोग केवल कार्बन कापी रह जाएंगे। लोग सिर्फ पाखंडी होंगे। लोगों के जीवन में धार कैसे आएगी! उनकी आत्मा का जन्म कैसे होगा! लोग थोथे रह जाएंगे, खोखे रह जाएंगे। उनके भीतर बल नहीं पैदा होगा। संघर्षों से बल पैदा होता है।

मैं जिस संन्यास की बात तुमसे कह रहा हूं, वह संघर्ष का निमंत्रण है। तुम्हें जूझना पड़ेगा। समाज तुम्हारे विपरीत होगा। भीड़ तुम्हारे विपरीत होगी। अतीत तुम्हारे विपरीत होगा। परंपराएं तुम्हारे विपरीत होंगी। मंदिर-मस्जिद तुम्हारे विपरीत होंगे। तुम अकेले रह जाओगे।

लेकिन अकेले होने का एक मजा है। अकेले चलने का एक अलग ही रस है। एक अलग ही मस्ती है। अकेले चलने में ही तुम्हारे भीतर सिंहनाद होगा। भेड़ें भीड़ में चलती हैं; सिंह तो अकेले चलते हैं। नहीं सिंहों के लेहड़े! उनकी कोई भीड़-भाड़ नहीं होती।

अकेले चलने का साहस हो, तो ही मेरा संन्यास तुम्हारे लिए मार्ग बन सकता है। सब तरह की लांछनाएं सहने का साहस हो, तो ही! पुराने संन्यास में तो सुविधा है, सम्मान मिलेगा। अहंकार की तृप्ति होगी। मेरे संन्यास में तो लोग कहेंगे, पागल हो! तुम विक्षिप्त हो गए। तुमने भी अपना होश खो दिया! तुम सम्मोहित हो गए। तुम भी किन बातों में पड़ गए हो! अरे अपने बाप-दादों की लीक को छोड़ दिए! और बाप-दादों की लीक का मतलब होता हैः भेड़ बने रहो। बाप-दादे उनके बाप-दादों की लीक पर चल रहे थे। और उनके बाप-दादे उनके बाप-दादों की लीक पर। बस भेड़ बने रहो!

एक छोटे बच्चे से स्कूल में पूछा उसके शिक्षक ने कि समझ लो कि तुम्हारे बाड़े में दस भेड़ें बंद हैं। एक बाड़े को छलांग लगा कर निकल गई, तो भीतर कितनी बचेंगी?

उस लड़के ने कहा कि बिल्कुल नहीं।

शिक्षक ने कहा, तू गणित समझता है कि नहीं समझता?

उस लड़के ने कहा, गणित मैं समझूं या न समझूं, मेरे घर में भेड़ें हैं, मैं भेड़ों को समझता हूं। एक अगर छलांग लगा गई, फिर गणित कुछ भी कहे--भेड़ें भी गणित नहीं समझतीं--वे सभी छलांग लगा कर निकल जाएंगी। आपका गणित काम नहीं आएगा। मैं भेड़ों को जानता हूं भलीभांति।

और वह बच्चा ठीक कह रहा है। बच्चे कभी-कभी ऐसे सत्य कह देते हैं जो बड़ों-बड़ों को भी नहीं सूझते। यह बात सच है, भेड़ों को क्या पता गणित का! भेड़ें तो अपनी भेड़चाल से चलती हैं।

संन्यास लीक छोड़ कर चलने का नाम है। लीक छोड़ कर चलने में थोड़ा भय तो लगेगा। भीड़-भाड़ में अच्छा लगता हैः इतने लोग साथ हैं, अकेले नहीं हो। लगता हैः कोई खतरा नहीं है; सुरक्षा है। अकेले हुए कि चारों तरफ खतरा दिखाई पड़ता है। कोई संगी नहीं, कोई साथी नहीं।

मगर अकेले होना हमारा आंतरिक सत्य है। हम अकेले ही पैदा हुए हैं। हम अकेले ही हैं। और अकेले ही हमें इस संसार से विदा हो जाना है। इस अकेलेपन को जिस दिन तुम जीने लगोगे, संन्यस्त हो गए। जुटाओ साहस!

जोड़ कर सौ तार, फिर-फिर तोड़ देता हूं!
धार पर नैया चढ़ा कर, मोड़ देता हूं!
जान कर निश्चय नियति का, है अनिश्चय क्यों?
आज से कल, यों समय का व्यर्थ विनिमय क्यों?
हो रहा अपनी लगन पर मुझे विस्मय क्यों?
हार कर मनुहार अपनी मोड़ देता हूं!
पहुंच कर सन्मुख तुम्हारे, विमुख हो जाता!
तोड़ने से टूटता भी नहीं यह नाता!
दूर खिंच कर, और भी खिंच पास यों आता
गूढ़ रेशम-गांठ से ज्यों होड़ लेता हूं!
जोड़ कर सौ तार, फिर-फिर तोड़ देता हूं!
धार पर नैया चढ़ा कर, मोड़ देता हूं!

अब इस बार न मोड़ो। धार पर नैया को चढ़ाओ और पीछे लौट कर मत देखो। आगे देखो! आगे है परमात्मा। आगे है निर्वाण। पीछे तो सिर्फ उड़ती हुई धूल है। मगर लोग यूं ही चल रहे हैं।

अगर लोगों के मनोविज्ञान को समझ कर हम कारें बनाएं तो हमें कारें ऐसी बनानी चाहिए कि ड्राइवर को आगे बिल्कुल दिखाई ही न पड़े। जहां कांच लगाते हैं ड्राइवर को देखने के लिए, वहां आईना लगाना चाहिए! पूरा आईना! उसको पीछे का दिखाई पड़े--उड़ती हुई धूल, छूट गए दरख्त! और फिर तुम समझ सकते हो, जो होगा सो होगा। दुर्घटना के सिवा कुछ भी नहीं हो सकता। देखेगा पीछे, चलेगा आगे।

चलना तो आगे ही पड़ता है; पीछे कोई गति होती ही नहीं। जवान हो तो अब बच्चे नहीं हो सकते। बूढ़े हो तो अब जवान नहीं हो सकते। जो बीता सो बीता। जो गया सो गया। समय में पीछे लौटने का उपाय ही नहीं है। मगर देखते पीछे हो, हमेशा पीछे देखते हो! और चलते आगे हो। इससे तुम्हारी जिंदगी में दुर्घटनाएं ही दुर्घटनाएं होती हैं। इससे जगह-जगह तुम्हारे हाथ-पैर टूटते हैं, सिर फूटते हैं। जगह-जगह तुम टकराते हो। तुम्हारी यह मूर्च्छा है।

थोड़े सम्हलो! जहां चल रहे हो वहां देखो। जहां से चल चुके हो, अब वहां क्या देखना! उड़ती धूल का क्या हिसाब रखना!

लेकिन लोग बैठे हैं, रामायण पढ़ रहे हैं। उड़ती धूल! और कब से तुम रामायण पढ़ रहे हो? सदियां हो गईं! गांव-गांव रामायण चल रही है। हर साल वही रामलीला। तुम ऊबते भी नहीं, जैसे तुम्हारी बुद्धि बिल्कुल पथरा गई है! जैसे कोई आदमी एक ही फिल्म को देखने रोज-रोज जाए, तो तुम उसको पागल कहोगे कि नहीं कहोगे? और नहीं होगा पागल तो हो जाएगा। रोज-रोज देखेगा... और भारतीय फिल्में! एक ही दिन आदमी देख लेता है तो बस काफी है। फिल्म वगैरह क्या है, हो-हुल्लड़ है, हंगामा है। सब तरह की गधा-पच्चीसी है। कोई सोचता भी नहीं कि इससे जिंदगी का क्या लेना-देना है! जहां देखो वहां गाने आ जाते हैं। ऐसा जिंदगी में तो कहीं होता नहीं। और गाना ही नहीं आता, बैंड-बाजे भी साथ में! जैसे भूत-प्रेत हमेशा आस-पास रहते हैं, जो तैयार रहते हैं कि तुम गाना गाओ... नायिका गाना गाती है, भूत-प्रेत एकदम सितार बजाने लगते हैं! और हर चीज का गाना! आंसू गिरें तो गाना, प्रेम हो जाए तो गाना, प्रेम टूटे तो गाना। फिल्म यहां से लेकर वहां तक गानों से भरी है। हर जगह नाच घुसेड़ देते हैं। ऐसा जिंदगी में कहीं दिखाई नहीं पड़ता--न कहीं कोई गाना गाता दिखाई पड़ता, न कहीं कोई नाच दिखाई पड़ता।

अगर कोई आदमी रोज-रोज एक ही फिल्म को देखे तो क्या तुम उसको कहोगे? और यह देश कितनी सदियों से एक ही कहानी को देख रहा है--वही रामलीला!

एक बार भर ऐसा हुआ एक गांव में... और मैं खुश हुआ जब मुझे पता चला, क्योंकि मैंने कहा चलो कुछ तो हुआ! जो आदमी रावण बना था, उसका, जो महिला सीता बनी थी, उससे सच में ही प्रेम था। मगर अलग-अलग जाति के थे। सीता थी ब्राह्मण और जो रावण बना था वह था बढ़ई। सो विवाह तो हो नहीं सकता था, विवाह की बात भी उठाना खतरनाक थी। मगर संयोग की बात कि बढ़ई रावण बना। वही था गांव में तगड़ा आदमी। चीरते-चारते लकड़ी, हो गया होगा तगड़ा। उसने यह मौका न चूका।

स्वयंवर रचा है। कथा के हिसाब से रावण भी आया है। राम भी गए हैं। और भी राजे-महाराजे इकट्ठे हुए हैं। और डर यह था कि रावण की सामर्थ्य थी यह कि वह शिव के धनुष को तोड़ देता और सीता का विवाह उससे होना था। इससे बचाने के लिए झूठी अफवाह... राजनीति, कूटनीति... अगर तुम रामायण को ठीक से देखो तो रावण पीछे जिम्मेवार है, पहले तुम्हारे ऋषि-मुनि बेईमानी करने में आगे हैं। उन्होंने खबर, झूठी खबर... एक संदेशवाहक चिल्लाता हुआ आता है कि रावण, तेरी लंका में आग लगी है! और रावण भागता है। लंका में आग लगी हो तो कहां का विवाह! वह गया है, इसी बीच राम धनुष तोड़ देते हैं और विवाह हो जाता है। इसी से सारी कथा उलझती है। रावण इसका ही बदला लेने के लिए चेष्टारत होता है, सीता को चुराता है। मगर भूल-चूक शुरुआत में राम की तरफ से होती है। राम की तरफ से न कहो तो राम के एजेंटों की तरफ से होती है--वे ऋषि-मुनि जिनको तुम कहते हो।

मगर इस बार मामला कुछ बदल गया। वह आया संदेशवाहक, उसने चिल्लाया कि रावण, तेरी लंका में आग लगी है! उसने कहा, लगी रहने दो।

जनता भी, जो करीब-करीब सोई थी, आंख खोल कर बैठ गई कि यह बात क्या है! यह कभी सुना नहीं। ऐसा कहीं होता है! अभी तक बहुत रामलीलाएं देखीं। ... लगी रहने दो, उसने कहा! संदेशवाहक ने कहा कि समझे नहीं आप, अरे लंका में आग लगी है, चलो! उसने कहा कि अब जाने वाला नहीं। और वह तो उठा और इसके पहले कि उसे कोई रोके... अब वह तो धनुष-बाण जो रखा था कोई शिव जी का धनुष-बाण था, ऐसे ही बांस का बना कर रख दिया था। उसने उठा कर उसके कई टुकड़े करके फेंक दिए। और जनक से कहा कि

निकालो, सीता कहां है? इस बार विवाह कर ही ले जाता हूं। आगे की झंझट ही क्यों करनी, कि फिर चुराओ, फिर यह करो, फिर वह करो!

वह तो जनक बूढ़ा आदमी था, कई दफे जनक का काम कर चुका था। एक दफे तो उसकी भी बुद्धि चकरा गई, कि अब करना क्या! और जनता ताली बजा रही, कि यह तो गजब हो गया! पहली दफा थोड़ा आनंद आया लोगों को कि कुछ हो रही है रामलीला! अब कुछ होकर रहेगा! वही पिटा-पिटाया बार-बार होता था, वही घिसा-पिटा। लोग सोते थे। उनको पहले से ही मालूम है, जाग कर करना भी क्या है! सब मालूम है कि अब क्या होगा, अब क्या होगा, अब क्या होगा। तो जनक होशियार आदमी था। उसने जल्दी से कहा कि भृत्यो, मालूम होता है तुम मेरे बच्चों के खेलने का धनुष-बाण उठा लाए। यह शंकर जी का असली धनुष-बाण नहीं है। पर्दा गिराओ!

और बामुश्किल, सबको लगना पड़ा--रामचंद्र जी और लक्ष्मण जी और जनक जी, क्योंकि वह रावण तगड़ा आदमी था, वह कहे, सीता कहां है? वह चिल्लाता ही रहा कि सीता कहां है? और यह अन्याय हो रहा है! यह मुझ गरीब के साथ अन्याय हो रहा है! मुझे लंका नहीं जाना।

जबरदस्ती उसको निकाल कर किसी तरह पीछे ले गए। उसको पकड़ कर बिठाया। मैनेजर ने हाथ-पैर जोड़े कि भैया, तू पागल है, क्या है? सब रामलीला खराब कर दी! जल्दी से दूसरे आदमी को रावण बनाया। फिर पर्दा उठा। फिर वही कहानी शुरू।

मैंने कहा कि कुछ तो उसने किया। सदियां-सदियां हो गईं, कुछ तो आदमी में मौलिकता थी। चलने देना थी कहानी थोड़ी आगे, अब क्या होना था देखते! अगर जरूरत पड़ती तो राम चुराते सीता को, और क्या होता! मगर कहानी में कुछ जान तो आती। मगर नहीं चलने दी कहानी।

पढ़ रहे हैं लोग रामायण, देख रहे हैं अतीत की धूल। जाना है भविष्य में और तुम बातें करते हो स्वर्णयुग की, जो पीछे था। सतयुग, जो पीछे था। और कदम आगे रख रहे हो। गड्ढों में न गिरोगे तो क्या होगा! यही तो हमारी मूर्च्छा है। यही हमारे जीवन का सबसे बड़ा रोग है। देखते पीछे हैं, चलना आगे है। इस देश के बड़े से बड़े दुर्भाग्य में यह दुर्भाग्य है।

चैतन्य कीर्ति ने मुझसे एक प्रश्न पूछा है कि ओशो, आपने आह्वान दिया है युवक-युवतियों को। सारी दुनिया से युवक और युवतियां आपके आह्वान को सुन कर आना शुरू हुए हैं। कम से कम पचास मुल्कों के लोग यहां मौजूद हैं। लेकिन भारतीय युवक-युवतियों के कान पर जूं भी नहीं रेंगती। उनका तो पता ही नहीं चल रहा! उनको आपका आह्वान सुनाई नहीं पड़ता है?

चैतन्य कीर्ति, भारत में युवक-युवतियां होते ही कहां हैं? या तो बच्चे या बूढ़े। कुछ बच्चे ही रह जाते हैं--जैसे राजनारायण इत्यादि। और कुछ बूढ़े ही पैदा होते हैं--जैसे मोरारजी देसाई इत्यादि। जवान भारत में होते ही नहीं, सदियों से नहीं हुए। आह्वान तो मैं देता हूं, लेकिन जवान कोई हो तो सुने। जो थोड़े-बहुत इक्के-दुक्के जवान हैं, वे आ गए हैं, आ जाएंगे। बाकी कुछ बचकाने हैं, वे जिंदगी भर के लिए बचकाने हैं। उनकी बुद्धि कभी प्रौढ़ नहीं होती। और कुछ पैदाइशी बूढ़े हैं, वे पैदाइश से ही बूढ़े होते हैं। वे पैदाइश से ही बिल्कुल चूड़ीदार पाजामा पहने, अचकन और गांधी टोपी लगाए--पैदाइश से ही! उनमें कुछ चुनौती, युवा होने की संभावना, नये

को अंगीकार करने की ऊर्जा--कुछ होती नहीं। मुर्दे हैं। या तो मुर्दे हैं या बच्चे हैं। यहां तीसरी चीज होती ही नहीं। जो बच्चे हैं वे फिर बूढ़े हो जाते हैं। जवानी घटती ही नहीं।

और ऐसा मैं ही नहीं कह रहा हूं, मनोवैज्ञानिक इस बात से राजी हो रहे हैं कि बहुत कम देश हैं जहां जवानी घटती है। नये देशों में जवानी घट रही है, जैसे अमरीका में जवानी घट रही है। लेकिन पुराने देशों में जवानी नहीं घटती। पुराने देशों में बूढ़ों का इतना आदर है। बूढ़ा यानी पुराना, बीता हुआ। उसका आदर है। तो बच्चे एकदम बूढ़े होने की कोशिश में लग जाते हैं। जिसका आदर है, वही होना चाहिए। उससे अहंकार को तृप्ति मिलती है। छोटे-छोटे बच्चे बूढ़ों की नकल करने लगते हैं। इसके पहले कि वे जवान हों, वे बूढ़े हो जाते हैं।

जवान को आदर नहीं है, क्योंकि नये को आदर नहीं है। युवा के लिए सम्मान नहीं है, क्योंकि ताजगी के लिए सम्मान नहीं है। हम तो जितना बूढ़ा और मरा हुआ आदमी हो, उसको उतना आदर देते हैं। जब बिल्कुल मर जाता है तो हम उसको महात्मा कहते हैं। जब बिल्कुल कब्र में ही पड़ जाता है, तब फिर उसके विरोध में कोई कुछ नहीं बोलता, सब उसके पक्ष में बोलने लगते हैं, सब उसका सम्मान करने लगते हैं। क्योंकि मुर्दे का सम्मान हमें सिखाया गया है।

चैतन्य कीर्ति, जवान कहां हैं? जवान हों तो आह्वान को सुनें। जवान हों तो उन्हें मेरी बात ख्याल में आए। अब यह मंगलदास ने पूछा है। अगर इनके भीतर थोड़ा भी युवापन होगा तो यह भय को एक तरफ सरका कर रख देंगे और संन्यास की चुनौती स्वीकार करेंगे। और अगर बुढ़ापा सघन हो गया होगा तो बहुत मुश्किल हो जाएगी।

मैंने सुना है, लखनऊ में ऐसा हुआ। एक महिला गर्भवती हुई। नौ महीने बीत गए, लेकिन फिर बच्चा पैदा ही नहीं हुआ। महिला की तकलीफ बढ़ती चली गई और बच्चा पैदा ही न हो। डाक्टरों ने बहुत जांच-परख की। डाक्टर और भी मुश्किल में पड़े। डाक्टरों ने कहा, बच्चा एक भी नहीं है भीतर, जुड़वां हैं, दो हैं। मगर वे पैदा ही न हों। कहते हैं, ऐसे साठ साल बीत गए। लखनऊ की कहानी है, सो जहां तक सच हो या जहां तक झूठ हो, तुम सोच लेना। मगर कहानी सार्थक है। जब साठ साल बीत गए और कोई उपाय न दिखा और स्त्री मरने के करीब आ गई, तो उसने कहा कि अब तो मेरे पेट को काट कर कम से कम बच्चों को तो बचा लो, मैं तो मर ही जाऊंगी। पेट उसका चीरा गया। छह-छह इंच के दो बूढ़े निकले। वही चूड़ीदार पाजामा, अचकन, खादी की टोपी--बिल्कुल गांधीवादी; और वे झुक-झुक कर एक-दूसरे से कह रहे थेः पहले आप!

इसी में साठ साल लगे गए। पहले आप! पहले कौन निकले! शिष्टाचार निभा रहे थे। लखनवी शिष्टाचार--पहले आप!

कुछ यहां पैदा ही नहीं हो पाते। कुछ पैदा भी होते हैं तो मुर्दा पैदा होते हैं। कुछ पैदा भी होते हैं और मुर्दा नहीं होते तो जल्दी ही सीख लेते हैं कि मुर्दा होने में सम्मान है।

तुम जिसको अब तक संन्यास कहते रहे हो, मंगलदास, वह सिर्फ मुर्दा होने की प्रक्रिया है। मैं जिसको संन्यास कहता हूं, वह जीवन है--अहोभाव है, आनंद है, उत्सव है, वसंत है।

हलका लाल, पियाबांसा है,
गहरा लाल पलाश!
फूल बन फूला फागुन-मास!
फागुन के गुन गाती कोकिल,

फूलों से अमराई बोझिल,
चटक रहे गोफन,
शुकदल सेहरा हुआ आकाश!
जौ की बाली दूध भरी है,
पीली सरसों हुई हरी है,
फसल अगाई पकने आई,
आज हुआ विश्वास!
डालों की जो लाज गई अब,
पहनेंगी पोशाक नई सब;
सूखे पत्तों पर चरमर कर
ऋतुपति आया पास!
लगा डोलने पवन पछइया,
होली गाने लगा गवइया;
अंग अंग में रंग नया है,
नस नस में रस-प्यास!
हलका लाल, पियाबांसा है,
गहरा लाल पलाश!
फूल बन फूला फागुन-मास!

मेरा संन्यास वसंत है। मेरा संन्यास फागुन मास है। मेरा संन्यास फूलों की भांति है। यह जीवन का उत्सव है। यह परमात्मा के प्रति धन्यवाद है, अनुग्रह का भाव है। यह त्याग नहीं है। यह भोग भी नहीं है। यह त्याग और भोग दोनों का अतिक्रमण है। यह इस भांति भोगना है कि भोगो भी और बंधने भी न पाओ। गुजरना है ऐसे संसार से कि गुजर भी जाओ और संसार की धूल तुम पर जमने भी न पाए। संसार तुम्हें छूने भी न पाए, अछूते निकल जाओ। गीत गाते हुए निकल जाओ। यह कोई रोता हुआ संन्यास नहीं है। यह कोई उदासीन संन्यास नहीं है। यह नाचता हुआ संन्यास है।

योग प्रीतम के ये शब्द तुम्हें सहयोगी होंगे--

इस महारास में घूंघर बन बोलूं रे
मैं तेरी लीला का नर्तन हो लूं रे
तू महासूर्य सम युग-नभ में समुदित है
तुझसे ही युग-सौभाग्य-कमल प्रमुदित है
तेरे उत्सव की हर धुन पर डोलूं रे
मैं तेरी लीला का नर्तन हो लूं रे
मेरे रहने का और अर्थ ही क्या है
मेरे जीवन की और शर्त ही क्या है
मैं तेरा संकीर्तन बन रस घोलूं रे

मैं तेरी लीला का नर्तन हो लूं रे
तू मिला, मुक्ति ही मुक्ति मिली जीवन में
मैं खिला कि जब से भक्ति खिली जीवन में
प्रिय, अब तो मैं घूंघट के पट खोलूं रे
मैं तेरी लीला का नर्तन हो लूं रे
तेरी बगिया का एक फूल बन जाऊं
बन तव सागर की एक लहर, लहराऊं
तेरे सावन का मधु-वर्षण हो लूं रे
मैं तेरी लीला का नर्तन हो लूं रे
इस महारास में घूंघर बन बोलूं रे
मैं तेरी लीला का नर्तन हो लूं रे

यह तो एक नृत्य है, एक उत्सव है, एक महारास है! तैयारी हो जीवन के आनंद को अंगीकार करने की, तो आओ, द्वार खुले हैं! तो आओ, स्वागत है! तो आओ, बुलावा है, निमंत्रण है! और अगर मृत्यु के पूजक हो तो फिर पुराना संन्यास ठीक होगा। वह मरने का ढंग है। वह आत्मघात है। वह दुखवादी है। सोच लो, विचार कर लो, तौल लो।

परमात्मा जीवन है। जगह-जगह प्रमाण है। पत्ते-पत्ते पर प्रमाण है। हर पत्ते की हरियाली उसकी हरियाली है और हर फूल का रंग उसका रंग है। चांद-तारों में है, सूरज में है, पहाड़ों में है, सागरों में है। सब तरफ जरा आंख खोल कर देखो, उत्सव ही उत्सव है, वसंत ही वसंत है! फूल पर फूल खिले हैं, दीये पर दीये जले हैं! सब तरफ दीवाली है।

लेकिन अगर तुम दुखवादी हो और तुम्हें दुख में ही रस आता है, तुम घावों में ही जीना चाहते हो, तुम आत्मघाती प्रवृत्ति से भरे हो, कि अपने को भूखा मारोगे, कि कांटों पर अपने को सुलाओगे, कि धीरे-धीरे क्रमशः अपनी हत्या करोगे, तो तुम्हारी मर्जी। मगर जान कर कि यह आत्मघात है--जिसको तुम पुराना संन्यास कहते रहे हो--इसमें सिर्फ रुग्ण लोग उत्सुक हुए हैं, इसमें विक्षिप्त लोग उत्सुक हुए हैं।

इसीलिए तो पृथ्वी धार्मिक नहीं हो पाई। और मैं तुमसे यह बात कह दूं कि इस पुराने संन्यास से बुद्ध का, या महावीर का, या नानक का, या कबीर का, या मीरा का कोई लेना-देना नहीं है। महावीर की प्रतिमा देखते हो? इतनी सुंदर! इतनी आनंदमग्न! और जैन मुनियों को देखते हो? इस प्रतिमा से और जैन मुनियों का कहीं कोई तालमेल दिखाई पड़ता है?

कृष्ण को देखते हो? जीवन रास ही रास है! यह मोर-मुकुट, यह आनंद, यह गीत, यह चांद-तारों के नीचे नृत्य, यह बांसुरी, ये बांसुरी पर बजी हुई धुनें, इनमें तुम उदासी देखते हो? इनमें उदासी है? इनमें कहीं उदासी की दूर की भी ध्वनि है? मगर वही संन्यासी हिंदुओं का, गीता पढ़ रहा है, उसका जीवन--न कहीं मोर-मुकुट दिखाई पड़ता है, न कहीं बांसुरी दिखाई पड़ती है, न कहीं कोई जीवन का उत्सव है, न कोई गीत, न कोई धुन, न कोई स्वर, न कोई संगीत। सब बासा और उदास!

तुम बुद्ध का मौन देखते हो, शांति देखते हो, अपूर्व प्रसाद देखते हो! बौद्ध भिक्षुओं में तो नहीं दिखाई पड़ता। वे तो मरे हुए पीले पत्ते मालूम पड़ते हैं। कुछ लोग जल्दी शीघ्रता से आत्महत्या करते हैं--जहर खा लेते

हैं, पहाड़ से कूद जाते हैं, फांसी लगा लेते हैं। और कुछ लोग इतनी हिम्मत नहीं जुटा पाते, वे क्रमशः, आहिस्ता-आहिस्ता, शनैः-शनैः आत्महत्या करते हैं।

मुल्ला नसरुद्दीन सिगरेट पर सिगरेट पी रहा था और बीच-बीच में शराब की भी चुस्कियां लेता जाता था। एक गांधीवादी समाज-सेविका, सर्वोदयी निकली। उसने कहा कि नसरुद्दीन, जब मैं पिछली बार आई थी तो मैं देख कर बहुत प्रसन्न हुई थी, आनंदित हुई थी, कि तुम न शराब पी रहे, न सिगरेट पी रहे। नसरुद्दीन ने कहा, बाई, उस दिन तुम प्रसन्न हो लीं, आज मुझे प्रसन्न हो लेने दो। तुम्हीं-तुम्हीं प्रसन्न होओ... । वह तुम्हारी खुशी का दिन था, आज मेरी खुशी का दिन है। कभी तो मुझे भी छुट्टी दो!

महिला तो क्रोध में आ गई। इस तरह के लोग बड़ी जल्दी क्रोध में आते हैं--ये जो दुनिया को सुधारने वाले लोग हैं, ये जो दुनिया के पीछे पड़े हैं, जो किसी को जीने न देंगे! खुद नहीं जीते, न किसी को जीने देंगे। वह तो क्रोध में आ गई और बोली, तुम्हें मालूम है कि तुम यह जो सिगरेट पी रहे हो, यह जहर है! निकोटिन! यह तुम्हें मार कर रहेगा। और यह शराब, यह तो बिल्कुल जहर है। तुम धीरे-धीरे आत्महत्या कर रहे हो।

मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, बाई, मुझे कोई जल्दी नहीं है। तू अपना काम कर।

मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, एक दफा मैंने जल्दी की थी, तब भी नहीं हो पाई।

एक बार उसने आत्महत्या करने की कोशिश की थी। बिल्कुल पक्का ही कर लिया था। और करे भी क्यों न! चार-चार पत्नियां हैं। मुसलमान होने में यही तो एक खतरा है कि तुम चार विवाह कर सकते हो। एक पत्नी काफी है, एक पति काफी है। चार-चार! आखिर घबड़ा गया। बिल्कुल पक्का करके गया कि आत्महत्या कर लेनी है। और आदमी गणितज्ञ है, होशियार है, तो उसने सारा इंतजाम कर लिया। मिट्टी का तेल ले गया एक पीपा भर, एक रस्सी ले गया, पिस्तौल भी ले गया, माचिस भी ले गया। सब इंतजाम कि कोई भी बचाव न रह जाए। चढ़ गया एक पहाड़ी पर। नीचे नदी बह रही है--गहरी नदी। पहाड़ी पर एक झाड़ से, उसकी लंबी शाखा है, जो पहाड़ी के बाहर तक चली गई है, उसमें उसने रस्सी बांधी। उसमें गर्दन बांधी कि पहले तो इसी में मौत हो जाएगी। नहीं हो, तो दूसरा उपाय भी उसने कर लिया। पूरा पीपा मिट्टी के तेल का अपने ऊपर डाल लिया। माचिस से आग लगा ली। मगर कौन जाने बच जाए! अरे जिंदगी में दुर्घटनाएं हो ही जाती हैं। तुम लाख उपाय करो, कुछ न कुछ गड़बड़ हो जाए। सो उसने पिस्तौल से गोली भी अपने सिर में मार ली। और दूसरे दिन जब मुझे मिला तो मैंने पूछा कि नसरुद्दीन, हुआ क्या?

उसने अपना सिर ठोंक लिया। उसने कहा, किस्मत! बदकिस्मती! मैंने तो गोली मारी सिर में, वह लगी रस्सी में। सो रस्सी टूट गई। नदी में धड़ाम से गिरा, सो आग बुझ गई। वह तो आपकी कृपा से कहो कि तैरना आता था, नहीं तो कल खात्मा था।

लोग दो तरह से आत्महत्याएं करते हैंः एक तो एकदम से, एक झटके में; और कुछ लोग धीरे-धीरे करते हैं। ये धीरे-धीरे आत्महत्या करने वाले लोग संन्यासी समझे जाते रहे।

मैं संन्यासी कहता हूं उसे, जो जीवन को उसकी परिपूर्णता में जीए; जो जीवन को ही परमात्मा मान कर जीए; जिसके लिए जीवन और परमात्मा पर्यायवाची हैं; जिसके लिए जीवन परमात्मा की भेंट है; जो उसे अहोभाव से जीता है; और जो अपने जीवन को जागरूकता से जीता है; और जो अपने जीवन को अतीत के लिए समर्पित नहीं करता, न भविष्य के लिए समर्पित करता है; वर्तमान में, वर्तमान की सघनता में, त्वरा में, तीव्रता में जीता है। बस जो वर्तमान में जीने की कला है उसका नाम ही संन्यास है। उससे ही महारास पैदा होता है।

उससे ही आता है वसंत और हजारों फूल खिल जाते हैं! कमल पर कमल तुम्हारी चेतना में खिल जाते हैं--होश के कमल! जागृति के कमल! समाधि के कमल!

मंगलदास, सोचो। मंथन करो। मनन करो। ध्यान करो। भय तो कट जाएगा। अगर थोड़ी भी आत्मा है भीतर तो भय कटेगा ही, संन्यास घटेगा ही। आत्मवान व्यक्ति बच नहीं सकता, जो मैं कह रहा हूं, उससे अनुरंजित होने से; जो मैं कह रहा हूं, उसमें बिना डूबे तुम भाग न सकोगे। तुम अगर यहां तक आ गए हो तो डूबो। मगर मेरी मान कर नहीं--अपने निज विचार से; अपने निज निर्णय से। मैं सिखाता हूं कि अपने दीये स्वयं बनो। अप्प दीपो भव!

आज इतना ही।

चौथा प्रवचन

जीवन एक अभिनय

पहला प्रश्नः ओशो, क्या इस बार फिर मैं आपको चूक जाऊंगा?

परितोष, "मैं" रहा तो चूक जाओगे। मैं के अतिरिक्त और कोई बाधा नहीं है। मैं की जरा सी भी रेखा रह गई तो चूकने के लिए पर्याप्त है।

और आश्चर्यों का आश्चर्य तो यही है कि मैं एक झूठ है। फिर भी इस झूठ के परदे में सत्य छिप जाता है। मैं है नहीं, सिर्फ भासता है। जैसे रस्सी में कोई सांप को देख ले और भाग खड़ा हो। सांप तो झूठ है, मगर भागना सच है। झूठ से सच का जन्म हो गया। और यूं भी हो सकता है कि इतना घबड़ा जाए, ऐसा भागे, गिर पड़े, चोट खा जाए, हाथ-पैर तोड़ ले, हृदय का दौरा पड़ जाए, मौत भी हो सकती है। और सांप था ही नहीं, बस रस्सी थी। अंधेरे में भ्रांति हो गई थी।

मैं है ही नहीं; सिर्फ अंधेरे में भ्रांति हो गई है।

ध्यान का अर्थ हैः भीतर रोशनी को जगा लेना। है तो अंगारा, लेकिन राख में दबा पड़ा है। जरा राख फूंक देनी है, जरा राख झाड़ देनी है--और अंगारा प्रज्वलित हो उठेगा, रोशनी हो जाएगी। और रोशनी में मैं नहीं पाया जाता है। जिस दिन पाया कि मैं नहीं है, उसी दिन पा लिया सब। मैं का खोना ही प्रभु का पाना है। और मैं में रमे रहना ही संसार है। मैं में उलझे रहना ही भटकाव है। और मैं बड़ी तरकीबें करता है अपने को बचाने की।

झूठ स्वभावतः हर तरह के उपाय करता है। सत्य दिखाई पड़ता रहे, इसके लिए झूठ सब आयोजन करता है। झूठ बड़ा कूटनीतिज्ञ है। प्रमाण जुटाता है, आधार बनाता है। एक धोखा टूटता है तो नये धोखे निर्माण करता है। एक तरफ से दीवाल गिरने लगती है तो नई दीवाल उठाता है, कि गिरती दीवाल में टेके लगाता है। झूठ मर नहीं जाना चाहता, झूठ भी जीना चाहता है।

सत्य को चिंता नहीं होती, क्योंकि सत्य मर ही नहीं सकता। झूठ को बड़ी चिंता होती है। सत्य अपनी सुरक्षा का कोई उपाय नहीं करता, क्योंकि सत्य तो सुरक्षित है ही। आग उसे जला नहीं सकती, शस्त्र उसे छेद नहीं सकते, मृत्यु उसे मिटा नहीं सकती। सत्य तो लापरवाह है। सत्य तो अलमस्त है। न सत्य प्रमाण जुटाता है, न तर्क। झूठ प्रमाण जुटाता है, तर्क जुटाता है। जितना बड़ा झूठ हो, उतना ही बड़ा आयोजन करना होता है।

यह मैं इस संसार में सबसे बड़े झूठों में एक है। यह कैसे-कैसे आयोजन करता है! इसके आयोजन पहचानो। इसकी चालबाजियां पहचानो। यह धन इकट्ठा करेगा, क्योंकि धन न हो तो मैं के लिए सहारा नहीं होता। मैं सहारे मांगता है। मेरे पास इतना है! जितना मेरे पास है उतना मैं हूं। मैं विस्तार मांगता है। इतनी मेरी शक्ति है, इतना मेरा पद है--उतना ही मैं हूं। मैं सीढ़ियां चढ़ता है महत्वाकांक्षा की। जितनी ऊंचाई पर खड़ा हो जाए उतना ही अकड़ जाता है, उतना ही आश्वस्त हो जाता है कि मैं हूं। मैं प्रसिद्धि मांगता है, यश मांगता है, सम्मान मांगता है। मैं अपमान से डरता है, लांछना से डरता है। मैं घबड़ाता है। जरा सी गाली, जरा सा अपमान, और तिलमिला जाता है। क्यों? क्योंकि मैं का जो गुब्बारा है, वह कोई जरा सी आलपीन भी चुभा दे तो फूट सकता है। खतरा है। गुब्बारा ही है, सिर्फ हवा ही भरी है। पानी का बबूला है, कोई छू भर दे तो नष्ट हो सकता है।

इसलिए मैं बड़ा छुई-मुई होता है, हमेशा बच कर चलता है--कोई छू न दे! सब तरह के आयोजन करता है--प्रतिष्ठा के, सम्मान के। लोग जैसा कहें वैसा ही करने को राजी हो जाता है--बस सम्मान मिले, सत्कार मिले। लोग मूढ़तापूर्ण कृत्य करने को कहें तो वे भी करने को राजी हो जाता है--अगर लोग सत्कार देते हों। क्योंकि सत्कार मैं का भोजन है। सम्मान मैं का भोजन है। पद से मिले तो पद और त्याग से मिले तो त्याग।

और तुम जरा देखना, तुम्हारे तथाकथित महात्मा तुम्हें समझाते हैं कि सच्चा सम्मान तो त्याग में ही है। सच्चा यश तो त्याग में ही है। सच्ची प्रतिष्ठा तो त्याग में ही है। वे तुम्हारे अहंकार को फुसला रहे हैं, वे तुम्हारे अहंकार को आमंत्रण दे रहे हैं कि धन में क्या रखा है! अरे धन तो क्षणभंगुर है! आज है, कल छूट जाए। हम तुम्हें ऐसा धन देते हैं कि कोई न छुड़ा सके।

तुम्हारा धन छीना जा सकता है, तुम्हारा त्याग कोई कैसे छीनेगा? त्याग ज्यादा सुरक्षित है। इसलिए त्यागी का जैसा अहंकार होता है वैसा अहंकार भोगी का नहीं होता। भोगी का बेचारे का अहंकार छोटा होता है। वह खुद ही भीतर पछताता होता है, वह खुद ही जानता है अपनी सीमाएं। त्यागी का अहंकार तो स्वर्णमंडित हो जाता है। वह तो मंदिरों पर चढ़े हुए शिखर जैसे चमकते हैं सूरज की रोशनी में, ऐसा चमकता है। त्यागियों का अहंकार तो बड़ी जोर से उदघोषणा करता है।

इसलिए तुम्हारे त्यागियों ने दुनिया में जितने संघर्ष करवाए हैं, जितने उपद्रव, जितने झगड़े, जितने दंगे-फसाद, उतने भोगियों ने नहीं करवाए। ये मंदिर जलते हैं, ये मस्जिदें जलती हैं, ये मूर्तियां टूटती हैं। ये कौन तुड़वाता है? ये तुम्हारे त्यागियों के अहंकार! ये तुम्हारे महात्माओं के अहंकार! इनकी अकड़ का कोई ठिकाना नहीं है। ये मिलने ही नहीं देते मनुष्य को मनुष्य से। ये मनुष्यता को खंडित किए हुए हैं, क्योंकि मनुष्यता खंडित रहे तो ही संभावना है इनके सम्मान की। अगर मनुष्यता अखंड हो जाए तो बहुत मुश्किल हो जाएगी; सबसे ज्यादा मुश्किल होगी तुम्हारे त्यागियों को।

इसे तुम थोड़ा सोचो। इस गणित को थोड़ा पहचानो। अगर सारी मनुष्यता अखंड हो जाए तो तुम्हारे त्यागियों को कौन सम्मान देगा? क्योंकि सारी मनुष्यता के अखंड होने का एक ही अर्थ होगा कि ये जो अलग-अलग मान्यताएं हैं हजारों तरह की, ये सब खो जाएंगी, इनका कोई मूल्य नहीं रह जाएगा। इन्हीं मान्यताओं के आधार पर तो त्यागी को तुम सम्मान देते हो।

जैसे ईसाइयों का एक संप्रदाय था रूस में, वह अपनी जननेंद्रियां काट लेता था। जो अपनी जननेंद्रिय काट लेता था वह महात्मा समझा जाता था। किसी दूसरे देश में पागल समझा जाएगा। किसी दूसरी जाति में पागल समझा जाएगा। ऐसा कोई करेगा तो हम पुलिस को खबर करेंगे कि इस आदमी को पकड़ो, इसका दिमाग खराब हो गया है।

लेकिन हमारा त्यागी जो करता है, वह हमें नहीं दिखाई पड़ता, वह दूसरों को दिखाई पड़ता है। हमारा त्यागी हमारे लिए त्यागी मालूम होता है; हमारी परंपरा, हमारे पक्षपात के अनुकूल होता है। कुछ भी उलटा-सीधा करता हो। कोई सिर के बल खड़ा है तो हम उसको कहते हैं कि योगीराज! महायोगी! घंटों सिर के बल खड़े रहते हैं!

अगर परमात्मा को आदमी को सिर के बल ही खड़ा करना था तो पैर के बल खड़ा उसने किया ही क्यों होता? तुम्हें सिर के बल ही खड़ा किया होता। सिर में ही पैर लगाए होते।

और सिर के बल घंटों खड़े रहने वाले लोगों में तुमने कभी कोई प्रतिभा देखी? कोई बुद्धिमत्ता देखी? इनके जीवन में कोई विवेक की चमक देखी? कोई ध्यान की आभा देखी?

हो ही नहीं सकती, क्योंकि ये प्रकृति के विपरीत कार्य कर रहे हैं। सिर के बल जो खड़ा होगा उसकी बुद्धि नष्ट हो जाएगी, वह जड़ हो जाएगा। क्योंकि मस्तिष्क इतने सूक्ष्म तंतुओं से बना है। इस छोटे से सिर में सात करोड़ तंतु हैं! तुम इनकी संख्या से ही अंदाज लगा सकते हो, कितने बारीक, कितने सूक्ष्म! अगर एक लाख तंतुओं को एक के ऊपर एक रखें तो एक बाल की मोटाई के होते हैं। खाली आंख से तो देखे ही नहीं जा सकते। और तुम सिर के बल खड़े हो गए! तो खून की जो प्रबल धार सिर की तरफ बहेगी, जमीन के गुरुत्वाकर्षण के कारण, वह उन सब सूक्ष्म तंतुओं को तोड़ देती है। उनके टूट जाने पर प्रतिभा नष्ट हो जाती है।

इस देश की प्रतिभा को नष्ट करने में तुम्हारे तथाकथित योग ने जितना काम किया है, और किसी बात ने नहीं। हां, यह हो सकता है कि योगी के पास देह मजबूत हो। लेकिन देह तो पशुओं के पास भी मजबूत होती है। जरा किसी भैंसे से जूझ कर देखो! तो तुम कितने ही दारासिंह हो, एक भैंसा ही तुम्हें ठिकाने लगा देगा। इससे तुम यह मत समझ लेना कि भैंसा योगीराज है। शरीर का बल--बड़ी कीमत पर। शरीर के बल का करोगे क्या? उसका मूल्य क्या है? मस्तिष्क को गंवा कर शरीर में बल आ ही जाएगा। इसीलिए तो पशु इतने मजबूत हैं। मस्तिष्क तो है नहीं, तो शरीर पर ही निर्भर रहना पड़ता है।

वैज्ञानिक कहते हैं कि आदमी में मस्तिष्क पैदा हुआ--सिर्फ इसीलिए कि वह दो पैर पर खड़ा हुआ। बंदरों में नहीं पैदा हो सका। वैज्ञानिकों के हिसाब से तो आदमी बंदरों से ही आया है, उसी जाति से आया है। सब आदमी हनुमान जी के वंशज हैं। अगर तुम हनुमान जी की पूजा करते हो तो समझो कि अपने पूर्वजों की पूजा कर रहे हो। किसी और की पूजा करने से हनुमान जी की पूजा ठीक; कम से कम अपने पूर्वजों का स्मरण तो कर रहे हो।

वैज्ञानिक कहते हैं, आदमी बंदर से ही आया। लेकिन आदमी के पास कैसी प्रतिभा है! और बंदरों के पास तो कोई प्रतिभा नहीं है। क्योंकि वे अभी भी चारों हाथ-पैर का उपयोग कर रहे हैं। जब तुम चारों हाथ-पैर से चलते हो तो तुम्हारा सिर गुरुत्वाकर्षण के विपरीत नहीं होता, अनुकूल होता है। इसीलिए तो रात सोने में लेट जाओ तो नींद जल्दी आ जाती है। क्योंकि लेटते ही तुम्हारा पूरा शरीर गुरुत्वाकर्षण के अनुकूल हो जाता है। खड़े होओ तो पैरों में खून ज्यादा जाता है, मस्तिष्क में खून कम जाता है। स्वभावतः, क्योंकि हृदय को खून को ऊपर भेजने के लिए मेहनत करनी पड़ती है। जमीन नीचे खींचती है। चूंकि मस्तिष्क में खून कम जाता है, इसलिए मस्तिष्क में सूक्ष्मतम तंतु विकसित हो गए हैं। जंगली आदमियों में, आदिवासियों में अल्बर्ट आइंस्टीन, रवींद्रनाथ टैगोर या गौतम बुद्ध जैसे लोग पैदा नहीं होते। होने तो चाहिए, क्योंकि वे बड़े भोले-भाले लोग हैं। लेकिन बहुत से कारणों में एक कारण है कि जंगली आदमी बिना तकिए के सोता है। तुम तकिए पर सोते हो। तकिए पर सोने के कारण रात भी तुम्हारा सिर तुम्हारे शेष शरीर से ऊंचा रहता है। ऊंचा रहता है तो खून कम पहुंचता है। कम पहुंचता है तो सूक्ष्म तंतु टूट नहीं पाते। अगर सूक्ष्म तंतु टूट जाएं तो तुम्हारी प्रतिभा दीन हो जाएगी, हीन हो जाएगी।

ये वैज्ञानिक सत्य हैं। मगर कितना ही कहो, सिर के बल खड़ा होने वाला आदमी योगी समझा जाएगा। कोई इसकी मूढ़ता को न देखेगा। शरीर को इरछा-तिरछा करेगा, तोड़ेगा-मरोड़ेगा और तुम कहोगे, बड़ी साधना कर रहा है! शरीर को सताना और साधना? कांटों पर लेट जाएगा, तो तुम एकदम पूजा में झुक जाओगे। श्रद्धा के फूल तुम्हारे झरने लगेंगे उसके चरणों में। और कांटों पर जो सो रहा है वह केवल अपनी देह को संवेदनशून्य कर लिया है। उसकी संवेदनशीलता क्षीण हो गई है। इसे क्षीण किया जा सकता है।

तुम्हारे पैर की चमड़ी तुम देखते हो, तलुवे, वे संवेदनशून्य हो गए हैं, क्योंकि उन पर चलना पड़ता है। चलते रहोगे तो उनको मजबूत हो जाना पड़ा है, खाल मोटी हो गई है। इसलिए बुद्धू आदमी को हम कहते हैंः मोटी खाल वाला। जिसकी समझ में कुछ न आए उसको कहते हैंः इसकी चमड़ी बड़ी मोटी है। अर्थ यह है कि इसमें संवेदनशीलता नहीं है। शरीर का जो अंग तुम चाहो, संवेदनशून्य हो सकता है, सिर्फ थोड़े अभ्यास की जरूरत है। मलते रहो राख अपनी पीठ में, लेटते रहो कंकड़ों पर, धीरे-धीरे अभ्यास बढ़ाना। पहले गोल-गोल कंकड़ों पर लेटना, फिर इरछे-तिरछे कंकड़ों पर लेटना, फिर लेटते रहना। फिर धीरे-धीरे मोटे खीलों पर लेटना। फिर कांटों पर लेटना। तुम सिर्फ इतना ही कर रहे हो कि अपनी पीठ को मुरदा कर रहे हो। तुम पीठ को मारे डाल रहे हो। उसमें जो-जो संवेदनशील तंतु हैं उनकी हत्या किए दे रहे हो, उनको समाप्त किए दे रहे हो। तुम पीठ को तलुवे की चमड़ी बना ले रहे हो। और कुछ भी कला नहीं है इसमें।

और इस आदमी को तुम सम्मान दे रहे हो! यह आदमी पागल है।

शरीर संवेदनशील होना चाहिए। जितना संवेदनशील हो शरीर उतना सुंदर है, उतना प्रसादयुक्त है। जितना संवेदनशील हो, उतनी ही भीतर भी सूक्ष्म प्रतिभा की संभावना बढ़ती है। अगर तुम शरीर की सारी संवेदना मार दो, तो शरीर ही द्वार है जिससे हम अस्तित्व से जुड़ते हैं, अगर शरीर के सब द्वार-दरवाजे बंद कर दिए तो अस्तित्व से हमारा नाता टूट गया, हम अपने में बंद हो गए; जैसे कछुआ। तुम कछुए की पीठ जैसी अगर अपनी पूरी देह को कर लो तो तुम मर ही गए, अपनी कब्र में समा गए, जिंदा ही जिंदा अपनी कब्र में बैठ गए।

लेकिन हम कछुओं को बड़ा सम्मान देते हैं। हम कहते हैंः कछुआ अर्थात महायोगी! सारी दुनिया हंसेगी, क्योंकि उनका यह पक्षपात नहीं है, यह हमारा पक्षपात है।

अगर सारी दुनिया, सारी मनुष्यता एक हो जाए तो ये छोटे-छोटे पक्षपात सब गिर जाएंगे और इनके साथ ही तुम्हारे मुनि, तुम्हारे त्यागी, तुम्हारे व्रती, तुम्हारे महात्मा गिर जाएंगे। उनकी दो कौड़ी कीमत हो जाएगी। इसलिए वे तुम्हें मिलने नहीं दे सकते। राजनीतिज्ञ भी तुम्हें मिलने नहीं देना चाहते और तुम्हारे धर्मगुरु भी तुम्हें मिलने नहीं देना चाहते। उन दोनों का बल ही यही है कि तुम बंटे रहो। तुम बंटे रहो तो वे तुम पर सत्ता करते रहें। तुम इकट्ठे हो जाओ, उनकी सत्ता समाप्त हो जाए।

यह मैं बड़े नये-नये रूप लेता है--धन का, पद का, त्याग का, तपश्चर्या का, उपवास का, व्रत का, नियम का। जो आदमी जितने उपवास कर लेता है, वह सोचता है, मैं दूसरों से उतना महान हो गया। जैसे कि भूखा मरना कोई कला हो! जैसे कि परमात्मा तुम्हें भूखा मारना चाहता हो। जैसे कि परमात्मा कोई दुष्ट प्रकृति का व्यक्ति है, जो तुम्हें सताने में रस लेता है; कि तुम धूप में खड़े रहो तो उसे मजा आता है; कि तुम सर्दी में ठिठुरते रहो नंगे तो उसे मजा आता है; कि तुम भूखे मरते रहो तो उसे मजा आता है; कि तुम्हें प्यास लगी है और तुम पानी न पीयो तो उसे मजा आता है। जरा तुम सोचो कि तुम्हारे परमात्मा की धारणा क्या है? परमात्मा है या कोई अडोल्फ हिटलर? यह परमात्मा है या कोई पागल?

मगर अहंकार ने ये सारी व्यवस्थाएं खोजीं। एक तरफ से व्यवस्था छूटती है तो अहंकार जल्दी दूसरी व्यवस्था खड़ी कर लेता है। धन इकट्ठा करो, नहीं तो ज्ञान इकट्ठा करो। लोग कितना ज्ञान इकट्ठा करने में लगे रहते हैं! शास्त्रों पर शास्त्र इकट्ठे करते चले जाते हैं। अपना कुछ भी नहीं। अपना जाना कुछ भी नहीं। सब उधार, सब बासा, सब कचरा। जो अपना जाना हुआ नहीं है वह कचरा ही है। जो अपनी अनुभूति से जन्मा नहीं है, उस पर विश्वास करना मूढ़ता है। सिर्फ मूढ़ों के अतिरिक्त और कोई विश्वास नहीं करता। बुद्धिमान व्यक्ति खोजता है, मूढ़ विश्वास करते हैं। बुद्धिमान व्यक्ति पाता है, तब मानता है। मूढ़ पहले ही मान लेते हैं, पाने का सवाल ही

नहीं उठाते, पाने की जरूरत ही नहीं रह जाती। मगर तुम जितना मान लेते हो उतनी ही तुम्हारी अकड़ हो जाती है।

आस्तिक को देखो, उसकी बड़ी अकड़ है। वह अकड़ कर चलता है। वह नास्तिक को ऐसे देखता है कि सड़ोगे नरक में! मेरा स्वर्ग निश्चित है! अप्सराएं स्वागत के लिए फूलमालाएं लिए तैयार खड़ी हैं, बस मेरे पहुंचने की देर है कि बजे बैंड-बाजे, देवतागण एकदम नाचेंगे मेरे चारों तरफ, अप्सराएं फूलमालाएं पहनाएंगी, कल्पवृक्ष के नीचे विश्राम करूंगा। स्वर्ग की उसने कल्पनाएं कर रखी हैं। और सब उधार कचरा है उसके पास। आस्तिकता उसकी सच्ची नहीं है; ईश्वर को वह जानता नहीं है, पहचानता नहीं है, कोई आमना-सामना नहीं हुआ। अपने से ही आमना-सामना नहीं हुआ, परमात्मा से क्या खाक होगा! लेकिन वेद उसे कंठस्थ हैं, उपनिषद उसे याद हैं, गीता दोहरा देता है, जैसे तोता दोहरा दे।

इन तोतों की तुमने कितनी कीमत की है! बहुत कीमत कर चुके। और इस कीमत के कारण अहंकार ज्ञान को इकट्ठा करता है। अहंकार इकट्ठा करने में लगा रहता है--कुछ भी हो, ज्ञान हो, धन हो, त्याग हो, मगर इकट्ठा करो, भरते रहो अपने को। क्योंकि अहंकार बिल्कुल खाली है; किसी न किसी चीज से भरो तो भरा हुआ मालूम पड़ता है। अपने आप में तो बिल्कुल खाली है। अगर बिल्कुल न भरो किसी चीज से तो जल्दी ही तुम्हें दिखाई पड़ जाएगा कि यह तो है ही नहीं। इसे भर-भर कर धोखा देते रहो।

तुम पूछते हो, परितोषः "क्या इस बार मैं फिर आपको चूक जाऊंगा?"

सब निर्भर है इस बात पर कि मैं को बल दोगे या नहीं! ज्ञान से बेहतर है अज्ञान। यह जानना ज्यादा उचित है कि मैं नहीं जानता हूं। यह जानना ज्यादा उचित है कि मेरा क्या पुण्य! मेरे जीवन में बहुत भूलें हैं, बहुत पाप हैं। मैं अज्ञानी हूं। यह जानना बहुत उचित है, क्योंकि अगर तुम समझो कि मैं अज्ञानी हूं तो अहंकार मरेगा। क्योंकि अज्ञान की कोई अकड़ तो होती नहीं। अज्ञान में क्या अकड़ोगे? अज्ञान में तो आदमी विनम्र होता है; ज्ञान में अकड़ता है।

अगर तुम देखोगे कि मेरा जीवन तो भूलों से भरा है, चूकों से भरा है। मेरे जीवन में पाप ही पाप हैं, पुण्य कहां, व्रत कहां, नियम कहां, उपवास कहां! तो तुम अहंकार से कैसे भरोगे? लेकिन हो आए मंदिर, कि मस्जिद, कि गुरुद्वारा, कि अकड़ कर लौटते हो घर। न गए होते मंदिर तो बेहतर था, कम से कम यह अकड़ तो न होती। यह रोज मंदिर क्या हो आते हो, तुम परमात्मा पर कृपा कर आते हो! और तुम और अकड़ कर आते हो, रोज अकड़ कर आते हो। तिलक लगा लिया, और देखो अकड़! जनेऊ पहन लिया, और देखो अकड़! है कुछ भी नहीं, तीन धागे! चुटैया रख ली, और अकड़! है कुछ भी नहीं, किन-किन चीजों पर अकड़े फिर रहे हो!

परितोष, जिस-जिस भांति अकड़ गिरती हो, उस-उस भांति अकड़ को गिरने में सहारा दो। जानो कि अज्ञानी हो। हटा दो शास्त्रों को। वे तुम्हारे जाने हुए नहीं हैं, इसलिए उनको जानने से कुछ अर्थ नहीं है। जानो कि मेरी सीमाएं हैं। जानो कि मैं ना-कुछ हूं। मत अपने को गौरवान्वित करो, कि मैंने इतने यज्ञ करवाए, इतने हवन करवाए, कि हर सप्ताह सत्यनारायण की कथा करवाता हूं, कि मैंने इतने मंदिर बनवाए, इतनी मस्जिदें बनवाईं। मत इन थोथी बातों में उलझो। जहां से भी मैं पकता हो, जहां से भी मैं भरता हो, जहां से भी मैं को थोड़ा सा पोषण मिलता हो, वहीं सजग हो जाओ।

इस सजगता को ही मैं ध्यान कहता हूं। और अगर कोई ठीक से जांच करता रहे, अपने भीतर जाग कर देखता रहे, तो जल्दी ही पहचान लेता है अहंकार की सारी कलाबाजियां। फिर अहंकार कहीं से भी नहीं घुस सकता, न सामने के द्वार से, न पीछे के द्वार से। उसके रास्ते बड़े सूक्ष्म हैं। लेकिन तुम अगर होश में हो तो वह

तुम्हें धोखा नहीं दे पाएगा। और जो अहंकार के धोखे में नहीं पड़ता, वह निश्चित चूकेगा नहीं। चूकने को कुछ है ही नहीं। अहंकार गया कि तुमने पा ही लिया।

मेरी भूलों से मत उलझो, जनम-जनम का मैं अज्ञानी!
कांटों से निज राह सजा कर
मैंने उस पर चलना सीखा,
श्वासों में निःश्वास बसा कर
मैंने उस पर पलना सीखा,
गलना सीखा मैंने निशि-दिन
निज आंखों का पानी बन कर,
अपने घर में आग लगा कर
मैंने उसमें जलना सीखा।
मुझे नियति ने दे रक्खी है
पागलपन से भरी जवानी;
मेरी भूलों से मत उलझो,
जनम-जनम का मैं अज्ञानी!
लगातार मैं पीता जाता,
भरता जाता मेरा प्याला!
मैं क्या जानूं क्या है अमृत?
क्या मधु है? क्या यहां हलाहल?
खारा पानी है सागर का
मीठा-मीठा है गंगाजल।
सुनने को तो सुन लेता हूं
कडुवे-मीठे बोल जगत के,
तड़प-तड़प उठती है बिजली
बरस-बरस पड़ते हैं बादल।
कौन पिलाने वाला बोलो?
कौन यहां पर पीने वाला?
लगातार मैं पीता जाता,
भरता जाता मेरा प्याला!
सीधा-सादा ज्ञान तुम्हारा,
बहकी-बहकी मेरी बातें।
एक तड़प उसकी हर धड़कन
जिसको तुम सब कहते हो दिल,
अरे स्वयं मैं एक लहर हूं
मैं क्या जानूं क्या है साहिल?

मेरे मन में नई उमंगें,
मेरे पैरों में चंचलता।
पिछली मंजिल छोड़ चुका हूं
ज्ञात नहीं है अगली मंजिल।
सबके सपने अलग-अलग हैं,
यद्यपि वही हैं सबकी रातें,
सीधा-सादा ज्ञान तुम्हारा,
बहकी-बहकी मेरी बातें!
मेरी भूलों से मत उलझो,
जनम-जनम का मैं अज्ञानी!
कांटों से निज राह सजा कर
मैंने उस पर चलना सीखा,
श्वासों में निःश्वास बसा कर,
मैंने उस पर पलना सीखा,
गलना सीखा मैंने निशि-दिन,
निज आंखों का पानी बन कर,
अपने घर में आग लगा कर
मैंने उसमें जलना सीखा।
मुझे नियति ने दे रक्खी है
पागलपन से भरी जवानी;
मेरी भूलों से मत उलझो,
जनम-जनम का मैं अज्ञानी!

अपनी भूलों को देखो। अपने गुणों को मत गिनो, अपने दुर्गुणों को पहचानो। अपनी संपदा की बात न करो, अपनी निर्धनता को गुनो। तुम्हारा ज्ञान दो कौड़ी का है, तुम्हारा अज्ञान बहुमूल्य है। तुम काश देख सको कि मैं अज्ञानी हूं। आस्तिकता मुझे आई कहां! जानता क्या हूं! प्रार्थना पहचानता क्या हूं! पूजा-पाठ का स्वाद मैंने कहां लिया! देखो अपनी भूलें। देखो अपनी सीमाएं। देखो अपनी नग्नता। अपने को निर्वस्त्र पहचानो। और तुम पाओगे कि मैं गलने लगा, मैं की बर्फ पिघलने लगी।

और जिस दिन मैं खो जाएगा, परितोष, उसी क्षण, तत्क्षण परमात्मा से मिलन हो जाता है। इधर मैं गया, उधर परमात्मा उतरा। यह एक छोटा सा मैं बाधा बना है।

प्रश्न उठ सकता हैः इतना छोटा सा मैं इतने विराट परमात्मा को कैसे रोक सकता है? इतना छोटा सा झूठ इतने विराट सत्य को कैसे आवरण में ले सकता है? और प्रश्न तार्किक मालूम होगा। लेकिन कभी तुमने ख्याल किया, एक जरा सा धूल का कण आंख में चला जाए तो बस काफी है, सामने हिमालय खड़ा हो, दिखाई नहीं पड़ेगा। एक धूल का कण आंख को इतना बेचैन कर देता है, बंद कर देता है, कि सामने खड़ा विशाल हिमालय, उत्तुंग शिखर उसके, सब खो जाते हैं। एक धूल के कण ने हिमालय को छिपा लिया। निकाल दो धूल

का कण और हिमालय प्रकट हो जाता है। हिमालय तो अपनी जगह है, कहीं गया नहीं, सिर्फ तुम्हारी आंख धूल के कण में छिप गई, दब गई।

अहंकार ने हमारी आंख को, भीतर की आंख को, ढांक लिया है। परमात्मा तो प्रकट है। परमात्मा तो प्रतिक्षण मौजूद है। वही तो है, और तो कुछ भी नहीं है। मगर मैं कहूं, इसलिए मत मानना, नहीं तो वह उधार होगा, बासा होगा। मेरा आग्रह यही है, सतत आग्रह यही है कि तुम अपने भीतर अहंकार की कंकड़ी को अलग कर दो। जरा सा श्रम चाहिए। आंख तुम्हारी अहंकार से खाली हो जाए, भीतर की दृष्टि निर्मल हो जाए, फिर तुम्हें जो दिखाई पड़ेगा वह परमात्मा ही परमात्मा है। उसके अतिरिक्त और कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता है।

परितोष, कोई कारण नहीं है कि तुम इस बार चूको। असल में, कोई कारण नहीं था कि तुम कभी भी चूकते। पहले भी चूकने का कोई कारण नहीं था। चूके तो बस इस मैं के कारण। अब इस मैं को जाने दो। इस मैं को विदा करो, अलविदा! इसे नमस्कार करो, काफी हो चुका।

दूसरा प्रश्नः ओशो, कल आपने मंगलदास को कहा कि पुराने संन्यास में डर नहीं है, नव-संन्यास में डर है। लेकिन मेरी पत्नी मेरे पुराने संन्यास के व्रत-नियम आदि से डरती थी और अब पांच वर्षों से मेरे नव-संन्यास से वह डरती नहीं है, बल्कि उसे श्रद्धापूर्वक लेती है। वह भी आपकी संन्यासिनी है और मस्त है।

जयपाल, अगर मंगलदास की जगह किसी मंगला ने प्रश्न पूछा होता तो मेरा उत्तर बिल्कुल भिन्न होता। पुराने संन्यास ने स्त्रियों को बहुत सताया है। पुराने संन्यास की सारी पीड़ा ही स्त्रियों ने झेली है। पुराना संन्यास स्त्रियों की छाती में छुरी की तरह था। पुराने संन्यास ने जितना अत्याचार स्त्रियों पर किया है, जितना बलात्कार स्त्रियों पर किया है, उतना किसी और चीज ने नहीं किया।

पहले तो तुम्हारे सारे महात्मा स्त्रियों को गाली देते रहे सदियों सेः स्त्री नरक का द्वार है! स्त्री नरक की खान है! स्त्री ही सारे पाप का मूल है! स्त्रियों की जितनी निंदा की जा सकती थी, तुम्हारे महात्माओं ने कुछ कमी नहीं छोड़ी। स्त्रियों का बहुत अपमान किया। और मजा यह था कि स्त्रियों का कोई कसूर न था। महात्माओं के भीतर स्त्रियों के प्रति जो अभी भी अटकी हुई आसक्ति थी, उससे वे डरे हुए थे। गालियां स्त्रियों को दे रहे थे, डर था स्त्री के आकर्षण का। लेकिन स्त्री के आकर्षण के लिए स्त्री जिम्मेवार नहीं है। अगर गुलाब के फूल में तुम्हें आकर्षण है तो गुलाब के फूल का कोई उत्तरदायित्व नहीं है। तुम्हारा आकर्षण तुम्हें परेशान कर रहा है, गुलाब का फूल क्या करे? गुलाब के फूल को तो शायद पता भी न हो कि आप आकर्षित हैं।

महात्मागण हमेशा यह भूल करते रहे। धन को गाली देते हैं, जैसे कि धन तुम्हें पकड़ता हो! बड़ी हैरानी की बात है, धन ने कब किसको पकड़ा! तुम धन को पकड़ते हो। गाली देनी हो अपने को दो--कि मैं कैसा पागल हूं कि धन को पकड़ता हूं। लेकिन वे गाली देते हैं धन को--धन मिट्टी है, छूना मत! छूना पाप है!

ये सब भीतर के भय हैं। जिस-जिस चीज से वे भयभीत थे... दो चीज से भयभीत रहे, कामिनी और कांचन। स्त्री और धन। दो चीज से बहुत पीड़ित रहे। क्योंकि दोनों ही चीजों को छोड़ कर महात्मा हुए थे। दोनों से भागे थे। और जिसे तुम छोड़ कर भागोगे, उसकी आकांक्षा भीतर रह जाएगी। असल में, दमन से आकांक्षा प्रबल होती है, कम नहीं होती। जितना दबाओगे उतनी आकांक्षा प्रबल होगी। किसी चीज को दबा कर देखो। जिस चीज को दबाओगे, उसी की आकांक्षा प्रबल हो जाएगी। जिस चीज का निषेध किया जाएगा, उसी में उत्सुकता जगेगी।

किसी दरवाजे पर लिख दो कि यहां झांकना मना है। फिर वहां से निकल जाए कोई त्यागी-व्रती, बिना झांके! बहुत मुश्किल है। निकल भी जाए अगर कोई लाज-संकोच में कि कोई देख न रहा हो, तो फिर आएगा, रात के अंधेरे में आएगा। ब्रह्ममुहूर्त में उठ कर आएगा कि अब तो देख लूं, इस वक्त कोई भी न होगा, सड़क भी खाली होगी, पता नहीं मामला क्या है! जहां लिखा है यहां झांकना मना है, वहां जरूर कुछ होना चाहिए, नहीं तो झांकना मना क्यों है? चाहे वहां कुछ भी न हो। और अगर हिम्मत न जुटा सका आने की, तो सपने में आएगा। सपने में देखेगा उसी दरवाजे को, जहां झांकना मना है। सपने में झांकेगा।

जिस चीज का निषेध किया जाता है, उसमें रस बढ़ जाता है, क्योंकि निषेध से जिज्ञासा जगती है, जो कि बिल्कुल स्वाभाविक नियम है। अगर किसी अखबार में किसी विज्ञापन के ऊपर बड़े अक्षरों में लिखा होः कृपया इस विज्ञापन को न पढ़िए। फिर तुम सारे विज्ञापन छोड़ कर उसको जरूर पढ़ोगे, पढ़ना ही पड़ेगा।

या कभी तुमने देखा हो, तुम्हारा एक दांत टूट गया। जीभ वहीं-वहीं जाती है। तुम कई बार समझाते भी हो अपनी जीभ को कि अरे मालूम है कि दांत टूट गया, बार-बार वहां जाने की क्या जरूरत है? मगर चौबीस घंटे, जब देखो तब चली जीभ वहीं देखने, कि क्या स्थिति है! वह जो खाली जगह है, वह जिज्ञासा जगाती है। जिंदगी भर दांत था, जीभ कभी न गई; आज दांत नहीं है, जीभ जाती है। और तुम रोको जीभ को, जितना रोकोगे उतना जाएगी; जितना रोकोगे उतनी ही तीव्र उत्तेजना उठेगी, आकर्षण जगेगा, रस पैदा होगा।

महात्मागण भाग गए थे दो चीजों से--कामिनी और कांचन से। दोनों को गाली देते रहे। ये गालियां इस बात का सबूत हैं कि उनके मन में अभी भी आसक्ति गहन थी; साधारण रूप से ही नहीं थी, बहुत गहन थी, बहुत रुग्ण हो गई थी, घाव बन गए थे। और स्वभावतः उनको बेचारों को डर लग रहा था कि यही स्त्री नरक ले जाएगी। यह स्त्रियों के संबंध में नहीं कह रहे हैं वे, अगर उनकी बात ठीक से समझो। उनके भीतर जो स्त्री के प्रति रस उमग रहा है, उसके लिए। वह जो भीतर स्त्री की प्रतिमा को सम्हाले हुए हैं, वह सुंदर से सुंदरतर होती जा रही है; जितनी दूर भागे हैं उतनी सुंदर होती चली गई है। असली स्त्री इतनी सुंदर होती ही नहीं, न असली पुरुष इतना सुंदर होता है। कल्पना! कल्पना की स्त्री का कहना ही क्या। कल्पना के पुरुष का कहना ही क्या।

तो ये महात्मा गाली देते रहे स्त्रियों को और लोगों को समझाते रहे कि छोड़ो! भागो! संसार! और संसार से मतलब क्या था? पत्नी, बच्चे, परिवार। और इन भगोड़ों को सम्मान दिया जाता रहा, आदर दिया जाता रहा। ये अपराधी थे। क्योंकि इनकी पत्नियों पर क्या गुजरी, इसकी कोई कथा नहीं कहता; इनके बच्चों पर क्या गुजरी, इसका कोई हिसाब नहीं रखा गया। लाखों लोग संन्यासी हुए हैं सदियों में। अभी भारत में पचास लाख हिंदू संन्यासी हैं। सदियों-सदियों में तो करोड़ों हुए होंगे। करोड़ों परिवार बरबाद हुए होंगे। इनकी स्त्रियों ने भीख मांगी, या इनकी स्त्रियां वेश्याएं हो गईं, या इनकी स्त्रियों को आत्महत्या कर लेनी पड़ी--क्या हुआ इनकी स्त्रियों का? क्या गुजरी इनकी स्त्रियों पर? इनके बच्चों की क्या हालत हुई? पढ़ पाए, लिख पाए, या भिखमंगे हो गए? या चोर-डाकू, बदमाश, लुच्चे हो गए?

स्वभावतः स्त्रियों के मन में पुराने संन्यास के प्रति भय है। वे कहें या न कहें, पुराने धर्म के प्रति स्त्री के मन में भय है, जो कि बिल्कुल स्वाभाविक है। पुराने धर्म ने स्त्री के लिए किया ही क्या है सिवाय अपमान के? पुराने धर्म ने स्त्री के लिए नरक पैदा कर दिया इस पृथ्वी पर।

और बड़े मजे की बात है कि जो लोग स्त्रियों की निंदा किए हैं जिन कारणों से, उन्होंने कभी भी विचार नहीं किया कि वे कारण तुम पर भी लागू हैं। स्त्री मल-मूत्र का ढेर है। और महात्मा, जो लिख रहे हैं यह, वे जैसे सोने-चांदी का ढेर हैं! स्त्री के शरीर में है ही क्या? मांस-मज्जा, मल-मूत्र, कफ-पित्त! उसका खूब वर्णन किया है।

जैसे ये सज्जन, जो वर्णन कर रहे हैं, इनके शरीर में कुछ और है! और मजा यह है कि स्त्री के शरीर से ही ये भी पैदा हुए हैं। नौ महीने उसी मल-मूत्र, मांस-मज्जा, कफ-पित्त, उसी से बने हैं, उसी से जन्मे हैं। वही इनके रग-रग रेशे-रेशे में है। लेकिन स्त्रियों को गालियां दे रहे हैं।

गाली दे रहे हैं भय के कारण। इतने डरे हुए हैं कि गाली दे-दे कर अपने को रोक रहे हैं। ये तुमको नहीं समझा रहे हैं कि स्त्री मल-मूत्र है, ये अपने को ही समझा रहे हैं कि स्त्री मल-मूत्र है! क्या पड़े हो? क्यों स्त्री-स्त्री की सोचते हो? स्त्री में कुछ भी नहीं है! चूंकि सारे धर्मशास्त्र पुरुषों ने लिखे, स्त्रियां तो लिखतीं कैसे! धर्मशास्त्र पढ़ने तक का अधिकार नहीं था, तो लिखने का अधिकार तो सवाल ही नहीं उठता। सारे धर्मशास्त्र पुरुषों ने लिखे, इसलिए एकतरफा हैं। इसलिए पुरुषों का वक्तव्य है। और स्त्रियों की तो कोई पूछ ही नहीं थी। उनका कोई हिसाब ही नहीं था, उनकी कोई गणना नहीं थी। स्त्रियों को हमने कभी मनुष्यता का अधिकार भी नहीं दिया था। तथाकथित धार्मिक लोग इतना भी न कर सके कि स्त्रियों को समान मनुष्यता का हक दे देते। स्त्री को कहते थेः स्त्री-धन। उसकी कीमत वस्तुओं से ज्यादा नहीं है। इसलिए स्त्री बाजारों में बिकती थी।

जिस रामराज्य का तुम गुणगान करते हुए नहीं अघाते हो, उस रामराज्य में स्त्रियां बाजारों में बिकती थीं। वह खाक रामराज्य था! जैसे पशु बिकते हैं बाजारों में, वैसे ही स्त्रियां बिकती थीं। और साधारण लोग ही स्त्रियां खरीदते थे, ऐसा नहीं; ऋषि-मुनि भी खरीदते थे।

उपनिषदों में कथा है एक ऋषि की--गाड़ीवान रैक्क। वे गाड़ी में ही चलते थे, इसलिए गाड़ीवान रैक्क उनका नाम हो गया। वे गए हैं एक बाजार में स्त्री खरीदने। एक सुंदर स्त्री पर उन्होंने दाम लगाया। बोली लगती थी, नीलामी होती थी। लेकिन सम्राट भी लेने आया था। वह स्त्री उसे भी जंच गई। अब सम्राट के साथ बोली लगी रैक्क की, तो रैक्क माना कि उसके पास भी धन था... । ऋषि-मुनियों के पास काफी धन था, क्योंकि लोग धन चढ़ाते थे। धन को गाली देते थे वे और लोग धन चढ़ाते थे। लेकिन सम्राट से तो नहीं जीत हो सकती थी। सम्राट बाजी मार ले गया। सुंदर स्त्री को अपने रथ में उठा कर वह महल चला गया। लेकिन रैक्क को बहुत क्रोध आया। ऋषि-मुनि क्रोधी भी बहुत थे। कोई दुर्वासा अकेले ही नहीं हैं, वे तो केवल प्रतीक हैं, उन सब में दुर्वासा छाए हुए थे।

जो व्यक्ति भी काम का दमन करेगा वह क्रोधी हो जाएगा, क्योंकि दमित ऊर्जा काम की क्रोध बनती है। ये मनोवैज्ञानिक सत्य हैं। जो व्यक्ति काम का दमन करेगा वह लोभी हो जाएगा, क्योंकि काम की ऊर्जा कहीं से तो प्रकट होगी। तुम झरने को एक जगह से बंद कर दोगे तो वह दूसरी तरफ से रास्ता खोजेगा; कहीं और से बहेगा, लेकिन बहेगा तो। तुम बंद करते जाओगे, वह नई-नई जगह खोजता जाएगा, नये रास्ते खोजता जाएगा। पहले शायद एक धार में बहता था, अब अनेक धाराओं में बहेगा, सहस्र-धारा हो जाएगा।

रैक्क बहुत क्रुद्ध था। अवसर की प्रतीक्षा करता रहा। फिर सम्राट को बुढ़ापा पकड़ा, उस परलोक में भी इंतजाम करने की आकांक्षा जगी। लोगों ने कहा कि ऋषि तो रैक्क है, उससे ही ज्ञान लो। वह बहुत धन लेकर, रथों में सोना-चांदी, जवाहरात भर कर ऋषि रैक्क के चरणों में गया। उसने सोना-चांदी, हीरे-जवाहरात रखे। रैक्क बैठा रहा। चरणों में वह झुका। रैक्क नहीं बोला, बैठा रहा। सम्राट ने पूछा कि आप कुछ कहते नहीं? आशीर्वाद दें! आपका आशीर्वाद लेने आया हूं!

रैक्क ने कहा, अरे शूद्र! धन-संपत्ति से आशीर्वाद नहीं मिलेगा।

इस घटना को हिंदू महात्मा उल्लेख करते हैं जगह-जगह कि रैक्व ने क्या गजब की बात कही! विनोबा भावे भी इसका उल्लेख करते हैं कि क्या गजब की बात कही! शूद्र कहा सम्राट को। इसीलिए शूद्र कहा कि वह धन लेकर आया था। कहा कि अरे शूद्र! धन इत्यादि से आशीर्वाद नहीं मिलेगा। यहां धन की कोई गति नहीं है।

लेकिन पूरी कहानी इनमें से कोई भी नहीं कहता। पूरी कहानी यह है कि तब वजीरों ने सम्राट को कहा कि महाराज, रैक्व को वह स्त्री चाहिए। इसलिए वे नाराज हैं, वे शूद्र कह रहे हैं। फिर सम्राट स्त्री को लेकर आया, तब रैक्व ने आशीर्वाद दिया और ब्रह्मज्ञान दिया। इतने हिस्से को कोई नहीं कहता। इस हिस्से को मैं कहता हूं तो मुझ पर मुकदमे अदालत में, कि मैंने धार्मिक भावना को चोट पहुंचा दी। मगर मैं क्या करूं, यह कहानी का हिस्सा है। यह तुम्हारे शास्त्रों में लिखा हुआ है कि जब स्त्री को लेकर आया और स्त्री चरणों में रखी और कहा कि मुझे क्षमा करें, मुझसे भूल हो गई, अब तो ब्रह्मज्ञान दें। तब उन्होंने ब्रह्मज्ञान दिया। गजब के ब्रह्मज्ञानी थे! फिर नहीं कहा शूद्र। अब दिलपसंद चीज ही ले आया!

मगर स्त्रियों को गाली देते रहेंगे। और इन स्त्रियों को... मालूम है तुम्हें, ऋषियों की एक तो पत्नी होती थी वैदिक काल में और अनेक वधुएं होती थीं। आजकल हम वधू का ठीक उपयोग नहीं करते। नवविवाहित स्त्री को हम कहते हैं नववधू। उचित नहीं है वह प्रयोग, क्योंकि पुराने समय में वधू का अर्थ होता थाः खरीदी गई स्त्री, नंबर दो की स्त्री। पत्नी की तरह ही उससे तुम व्यवहार कर सकते हो; वह तुम्हारी पत्नी ही है; मगर है गुलाम। तो पत्नी एक होती थी, वधुएं अनेक होती थीं। तो ऋषि के पास एक तो पत्नी होती थी और अनेक वधुएं होती थीं। जितनी ज्यादा वधुएं होती थीं, उतना ही बड़ा ऋषि समझा जाता था। सम्राट वधुएं भेंट करते थे, धनपति वधुएं भेंट करते थे। और यही ऋषि-मुनि गालियां दिए जा रहे हैं!

ये ऋषि-मुनि गालियां दिए जा रहे हैं और जिन देवताओं की ये पूजा करते हैं, वही देवता, कहानियां कहती हैं कि ऋषि-मुनि ब्रह्ममुहूर्त में चले जाते हैं स्नान करने गंगा मैया में और देवतागण आकर उनकी स्त्रियों का संभोग कर जाते हैं।

गजब के देवता थे! जब मैं ये कहानियां पढ़ा, तब मैंने समझा कि क्यों ब्रह्ममुहूर्त में स्नान करने का इतना महत्व है! नहीं तो ऋषि-मुनि जाएं ही नहीं कहीं, बैठे हैं अड्डा जमाए, धूनी लगाए वहीं, तो देवी-देवताओं को फिर मौका कब मिले! तो ऋषि-मुनियों को भेज दिया गंगा-स्नान करने, तब तक चंद्रमा, इंद्र इत्यादि-इत्यादि देवता ऋषि-मुनि का वेश बना कर आ गए, द्वार खटखटाया, पत्नी को धोखा दे दिया कि वे उसके पति हैं, उससे संभोग कर गए।

देवता तुम्हारे, ऋषि-मुनि तुम्हारे, गालियां भी चल रही हैं! यह सब भी चल रहा है!

इस सारे पागलपन को गौर से देखो, तो तुम एक बात से निश्चित हो जाओगे कि स्त्रियों के साथ दुर्व्यवहार हुआ है।

इसलिए जयपाल, तुम्हारी पत्नी अगर मेरे संन्यास को श्रद्धापूर्वक लेती है तो बुद्धिमान है। कोई भी बुद्धिमान स्त्री मेरे संन्यास को श्रद्धापूर्वक लेगी। और पुराने संन्यास के खिलाफ प्रत्येक स्त्री को होना चाहिए। स्त्रियों को पुराने संन्यासियों के चरणों में सिर झुकाना बंद करना चाहिए। यह अपमानजनक है। यह बात ही गलत है।

यही साधु समझाते फिर रहे हैं, स्त्रियों को गालियां देते फिर रहे हैं। और मजा यह है कि इन्हीं स्त्रियों के सहारे तुम्हारे साधु जीते हैं! करीब-करीब निन्यानबे प्रतिशत तुम्हारे साधु तुम्हारी स्त्रियों के कारण जीते हैं। वही इनकी सेवा करती हैं, वही भोजन बनाती हैं, वही इनके लिए वस्त्र लाती हैं। मंदिरों में भी स्त्रियों की भीड़! और

कुछ गुंडे पहुंच जाते हैं जो स्त्रियों को धक्का वगैरह देने के लिए जाते हैं। और कुछ पति पहुंच जाते हैं जो अपनी पत्नी की रक्षा के लिए, कि कुछ गड़बड़ न हो। बाकी अगर स्त्रियां न जाएं तो पुरुषों का पता ही न चले, स्वामी जी अकेले बैठे रहें।

स्त्रियां अदभुत रूप से सरलता का प्रमाण दी हैं। इतने अपमान, इतनी गाली-गलौज के बाद भी इन्हीं मूढ़ों को सम्मान देती चली जाती हैं, इन्हीं के चरणों में सिर झुकाए चली जाती हैं। उनको सिखाया गया है। उन्होंने भी मान लिया है अपने को कि हम गर्हित हैं।

जैन शास्त्र कहते हैं कि स्त्री-पर्याय से मोक्ष नहीं है। कोई स्त्री रह कर मुक्त नहीं हो सकता। पहले तो पुरुष होना ही पड़ेगा। स्त्रियों को तो एक बार जन्म लेना ही पड़ेगा, पुरुष होकर ही मोक्ष हो सकता है। मोक्ष में सिर्फ पुरुषों का ही प्रवेश है।

क्यों? पुरुष के पास ऐसी क्या खूबी है जिसकी वजह से मोक्ष में पुरुषों को प्रवेश है? दुनिया भर के उपद्रव पुरुषों ने किए हैं। स्त्रियां न कोई युद्ध करती हैं, न कोई युद्ध करवाती हैं, न कोई एटम बम, हाइड्रोजन बम बनाती हैं। बहुत गुस्सा आ गया तो बेलन उठा लिया, इससे ज्यादा कुछ... ऐसा कोई भारी नुकसान स्त्रियों ने किया नहीं है, कोई महापाप किया नहीं है। पुरुषों को मोक्ष मिल सकता है, स्त्रियों को नहीं। स्त्री होने में ही भूल है उनकी। और स्त्रियों ने भी मान लिया है, क्योंकि समझाने वाले पुरुष हैं, पंडित पुरुष हैं, महात्मा पुरुष हैं, साधु-संन्यासी पुरुष हैं, सभी पुरुष हैं समझाने वाले। बचपन से ही यह बात सिखाई जा रही है, समझाई जा रही है। मस्तिष्क में उनके बिठा दी गई है।

यह बात तोड़ने जैसी है। यह बात बिल्कुल तोड़ देने जैसी है।

अगर स्त्रियों को हम महात्माओं के चक्कर से छुड़ा लें तो महात्माओं का चक्कर ही समाप्त हो जाए, क्योंकि महात्मा जीते ही निन्यानबे प्रतिशत स्त्री के कारण हैं। स्त्री को ही सता रहे हैं, स्त्री के ही आधार पर जी रहे हैं। खूब खेल है!

जयपाल, अगर मेरे संन्यास को तुम्हारी स्त्री ने, तुम्हारी पत्नी ने सहजता से लिया और पुराने संन्यास से डरती थी, पुराने व्रत-नियम इत्यादि से डरती थी--स्वाभाविक है। असल में, पुराने ढंग से कोई आदमी घर में धार्मिक हो जाए, उपद्रव हो जाता है। एक आदमी धार्मिक हो जाए, पूरा घर नरक हो जाता है। जिनके घर में धार्मिक आदमी होंगे, उनको यह बात पता होगी। एक आदमी धार्मिक हो जाए... तो अभी वे पूजा कर रहे हैं, कोई बोले नहीं, आवाज न करे, रेडियो मत चलाओ, बच्चे खेल नहीं सकते, घर में सन्नाटा रहना चाहिए, शांति रहनी चाहिए, उनके ध्यान में बाधा पड़ जाएगी।

यह कोई ध्यान है जिसमें बाधा पड़ जाए? ध्यान का अर्थ ही यह होता है कि सारी बाधाओं के प्रति जागरूकता। क्या सारी दुनिया को बंद करोगे तब तुम्हारा ध्यान होगा? तो राह चलेगी, सड़क चलेगी, ट्रैफिक चलेगा, बसें निकलेंगी, हवाई जहाज उड़ेंगे, इनका क्या करोगे? ट्रेन भी गुजरेगी, इनका क्या करोगे? कुत्ते भौंकेंगे, इनका क्या करोगे? अगर बाधाओं से तुम्हारा ध्यान टूटता है तो ध्यान कभी लगने वाला नहीं है, क्योंकि बाधाएं ही बाधाएं हैं सब तरफ।

और तुम सोचते हो जंगल में जाकर बैठ जाओगे तो वहां बाधा नहीं होगी? इस भ्रांति में मत रहना। कभी जरा एकाध दफा अकेले जंगल में जाकर बैठ कर देखो। घर में इससे ज्यादा शांति थी, कम से कम डर तो नहीं था। बीच-बीच में आंख खोल कर देखोगे कि कोई जंगली जानवर वगैरह तो नहीं है। और कोई सिंह दहाड़ देगा, फिर? उससे थोड़े ही कह सकोगे कि चुप रहो! सिंह तुम्हारी कोई पत्नी नहीं है। और एक कौआ तुम्हारे ऊपर बीट

कर जाएगा, फिर क्या करोगे? और कौओं को कोई हिसाब थोड़े ही है कि कौन महात्मा है, कौन गैर-महात्मा है। कौए तो कौए ठहरे। नासमझ! अज्ञानी जनम के! न शास्त्र पढ़े, न संस्कृत जानें। वे देखेंगे ही नहीं कि तुम बिल्कुल बैठे हो सिर घोंट कर, माला लिए हाथ में। उन्हें फिक्र ही नहीं पड़ी है। वे तो घुटा हुआ सिर देख कर और भी प्रसन्न हो जाएंगे, कि वाह रे वाह, कैसा सुंदर स्थान मिला! तुम जंगल में जाकर बैठ कर तो देखो। तब तुम्हें पता चलेगा, इससे घर ही बेहतर था।

तो बाधाएं तो सब जगह रहेंगी। लेकिन धार्मिक आदमी बड़ी दिक्कत खड़ी कर देता है। अभी वे रामायण पढ़ रहे हैं! अभी वे गीता पढ़ रहे हैं! और गीता कम पढ़ रहे हैं, नजर इस पर रखे हैं वे कि दुकान चल रही है कि नहीं चल रही? मैं जानता हूं ऐसे लोगों को कि माला फेर रहे हैं, दुकान पर बैठे, और नजर डाल रहे हैं और इशारा कर देते हैं आंख से नौकर को कि वह कुत्ता जा रहा है, भगाओ। माला चल रही है! ग्राहक आ गया, इशारा कर देते हैं कि सम्हालो। माला चलती जाती है। लोग थैलियां बना लेते हैं, उसमें माला रखे रहते हैं, ताकि किसी को दिखाई न पड़े और उसके अंदर ही अंदर माला सरकाते रहते हैं। अब पता नहीं सरकाते भी हैं कि नहीं, क्योंकि वह थैली की वजह से... ! थैली का फायदा है, कभी न भी सरकाई तो किसी को पता नहीं है, चल रहा है, सरक ही रही होगी। लोग राम-राम राम-राम जपते रहते हैं।

तुम्हारी पत्नी अगर, जयपाल, डरती थी तुम्हारे व्रत-नियम से तो स्वाभाविक है।

एक महिला मेरे पास आई। उसने कहा कि मेरे पति को समझाएं। वे आपकी ही सुनें तो सुनें, और किसी की वे सुनने वाले नहीं हैं। मैं भी जानता था कि यह बात सच है। पति--सरदार! मुझे भी शक था कि वे मेरी भी सुनेंगे कि नहीं। और धार्मिक! पत्नी ने कहा कि जान लिए ले रहे हैं। दो बजे रात से उठ आते हैं और जपुजी का पाठ! दो बजे रात! बच्चे हैं, सोएं कि न सोएं? और इस जोर से करते हैं! और आप तो जानते ही हो--वह कहने लगी--कि मेरे सरदारजी, उनकी आवाज बुलंद है! मुहल्ले भर के लोग परेशान हैं। और मेरी जान खाते हैं मुहल्ले के लोग, कि भई इनको रोको! इनको रोको कैसे? वे कहते हैं कि धर्म में बाधा डालोगी, ठीक नहीं होगा।

मैंने उनके पति को बुलाया। वे मेरे पास आते थे कभी-कभी। मिलिट्री में मेजर थे, बड़े पद पर थे। मैंने पूछा कि मामला क्या है?

कहने लगे, कुछ बात नहीं, ब्रह्ममुहूर्त में उठता हूं।

ब्रह्ममुहूर्त! तुम्हारी पत्नी तो कहती थी दो बजे।

वे कहने लगे, हां, दो बजे। दो ही बजे तो ब्रह्ममुहूर्त होता है।

मैंने कहा कि तुम होश की बातें कर रहे हो? दो बजे ब्रह्ममुहूर्त!

उन्होंने कहा, हां। मैं तो अंग्रेजी महीने में मानता हूं, अंग्रेजी दिन में मानता हूं। बारह बजे दिन बदल जाता है। बारह बजे रात सुबह हो गई, दूसरी तारीख शुरू हो गई। सो दो बजे दूसरे दिन की सुबह है।

मैंने कहा, बात तो सरदारजी, बड़े पते की कर रहे हो! मगर मुहल्ले वालों का भी कुछ ख्याल रखो।

उन्होंने कहा कि आवाज मेरी बुलंद है। और इसमें हर्जा क्या है? उन सबको लाभ मिलता है धर्म का! धर्म-लाभ!

धर्म-लाभ तो लोग करवाते ही हैं, लाउडस्पीकर लगवा देते हैं, मुहल्ले भर को धर्म-लाभ करवा देते हैं। चौबीस घंटे अखंड कीर्तन! कीरंतन कहना चाहिए, मगर उसको कहते हैं कीर्तन। अखंड कीर्तन मचा देते हैं। जब चाहे तब लगवा दिया लाउडस्पीकर। न बच्चे पढ़ सकते हैं, न कोई दूसरा काम कर सकता है। और चौबीस घंटे। और कोई रोक भी नहीं सकता। क्योंकि धार्मिक कार्य में रोको, और इस देश में, तो बहुत मुश्किल हो जाए। धर्म

में तो किसी के बाधा डाल ही नहीं सकते। और अखंड कीर्तन हो रहा है, इसमें तो प्रसन्न होना चाहिए कि घर बैठे-ठाले तुम्हें भगवान का नाम सुनाई पड़ रहा है।

तो उन्होंने कहा कि मैं जपुजी जोर से पढ़ता हूं। बच्चों को भी सुनाई पड़ता है, पत्नी को भी, मुहल्ले वालों को भी लाभ हो जाता है।

उनकी धारणा यह है। व्रत-नियम करने वाले लोग इस तरह की बातें करते हैं कि किस-किस को सता रहे हैं, उनको पता नहीं; कौन-कौन परेशान हो रहा है, उनको पता नहीं। उनका व्रत-नियम पूरा हो रहा है। और वे तो इस आशा से भी करते हैं कि दूसरों को भी लाभ हो रहा है, अनायास लाभ मिल रहा है। पुण्य-कार्य में जितना बंटाओ उतना अच्छा।

एक महिला एक दूसरी महिला से कह रही थी कि मेरे पति बड़े असाधारण व्यक्ति थे, बड़े अद्वितीय पुरुष थे, बड़े धार्मिक व्यक्ति थे; लेकिन स्वर्गवासी हो गए।

उस महिला ने पूछा कि उनकी क्या खूबी थी? क्या असाधारणता थी?

तो कहा कि सिर्फ दो घंटे सोते थे। निद्रा पर तो उन्होंने विजय पा ली थी। और शेष बाईस घंटे सतत रामधुन में लगे रहते थे। बस राम-राम राम-राम राम-राम। ऐसा धार्मिक व्यक्ति मैंने देखा ही नहीं। बड़े पुण्यों से मेरा-उनका मिलना हुआ था।

उस महिला ने पूछा कि ऐसे महापुरुष इतनी जल्दी चल कैसे बसे? उनकी मृत्यु कैसे हो गई?

तो पत्नी ने कहा, यह न पूछो तो अच्छा। मैंने उनकी गर्दन दबा दी।

बाईस घंटे कोई राम-राम राम-राम करता रहेगा...

तो जयपाल, अच्छा हुआ कि तुम नये संन्यास में प्रविष्ट हो गए, नहीं तो पत्नी तुम्हारी गर्दन दबाती। तुम्हारे व्रत-नियम पता नहीं कौन सा उपद्रव करवा देते।

धार्मिक व्यक्ति चिढ़ पैदा करते हैं लोगों में। धार्मिक व्यक्ति का व्यवहार ही पूरा का पूरा अभद्र हो जाता है। और धर्म की आड़ में कुछ भी अभद्रता करो, चलती है। कितने ही घंटे बजाओ, घंटियां बजाओ, कितना ही शोरगुल मचाओ--धर्म की आड़ में होना चाहिए, तो सब ठीक है। धर्म की आड़ में क्या-क्या नहीं चलता है! सब ठीक है। बस नाम धर्म का होना चाहिए, फिर कोई तुम्हें रोक नहीं सकता। जो रोके सो नास्तिक। जो रोके उसके सब खिलाफ हो जाएं; लोग उसको परेशान करने लगें कि तुमने धर्म में बाधा दी। कौन रोक सकता है किसी को? मुहर्रम हो तो मुसलमान हुल्लड़ मचाएं, वह धर्म के नाम पर ठीक है, रोको तो झगड़ा। होली हो, हिंदू हुल्लड़ मचाएं। और देखते हो क्या-क्या हिंदू होली के नाम पर करते हैं! गालियां बकते हैं। नालियों का कीचड़ एक-दूसरे पर उछालते हैं। मगर सब चल रहा है। सब धर्म के नाम पर चलता है।

होलिका-दहन हुआ, उस दिन भक्त प्रहलाद बचे। भक्त प्रहलाद क्या बचे, यह कष्ट दे गए दुनिया को। न बचते तो बेहतर था, कम से कम यह होली का उपद्रव तो न होता। होलिका के साथ जल गए होते तो बेहतर था, बड़ी कृपा होती उनकी! मगर भक्त प्रहलाद बच गए। वे क्या बच गए, अब इन सबको गालियां देने के लिए छोड़ गए, कि तुम बको गालियां।

गालियां बकते हैं और कबीर का नाम लेते हैं! बेचारे कबीर का क्या कसूर? कबीर को क्यों घसीट रहे हो? गालियों में भी कबीर का नाम जोड़ दिया, तो उसमें भी थोड़ी धार्मिकता आ गई। गाली भी धार्मिक हो जाती है। कीचड़ उछाल रहे हैं एक-दूसरे पर। साल भर की दमित इच्छाएं, दमित वासनाएं, सब फूट कर बह

पड़ती हैं। और नाम धर्म का है। और कोई कुछ कहे तो कहते हैंः होली है, बुरा न मानो। बुरा माना तो गलती बात है तुम्हारी।

मैं छोटा था, तो "होली है, बुरा न मानो", इसका तो जितना उपयोग कर सकता था करता ही था; मैंने इसका उपयोग दीवाली पर भी शुरू कर दिया। कि लोगों के पीछे जाकर पटाखा छोड़ देना और कोई नाराज हो तो उससे कहनाः दीवाली है, बुरा न मानो। मेरे गांव के एक सेठ थे। उन्होंने कहा, हद हो गई! हमने बहुत देखे, जिंदगी हो गई, "होली है, बुरा न मानो" यह तो सुना था; मगर "दीवाली है, बुरा न मानो" यह नहीं सुना था। तेरी खोपड़ी में भी कहां-कहां की बातें आती हैं!

मैंने कहा, जब होली तक में बुरा नहीं मानते, तो यह तो दीवाली है, यह तो आनंद का उत्सव है, इसमें क्या बुरा मानना!

वे मुझसे परेशान थे ही। राम-भक्त थे, उन्होंने राम-मंदिर बनवाया हुआ है। और मैं जब भी उनके सामने से निकलता--और दिन में कम से कम पचास दफे निकलता, कहीं भी जाना तो उनके सामने से निकलना ही पड़ता--तो उनको जयरामजी! एक दफा, दो दफा, तीन दफा... चौथी दफा उन्होंने मुझसे कहा कि देखो, अगर पांचवीं दफा तुमने जयरामजी की तो मुझसे बुरा कोई भी नहीं होगा।

मैंने कहा कि मैं तो यह सोच कर कि आप राम के भक्त हैं, राम का मंदिर बनाया, राम के गुणगान से प्रसन्न होंगे। आप तो नाराज हो रहे हैं!

उन्होंने कहा, मैं तुम्हें बताए दे रहा हूं।

मैंने कहा, तो मैं भी आपको बताए दे रहा हूं कि मैं अकेला नहीं, दो हजार विद्यार्थी हैं स्कूल के, दो हजार ही कल सुबह से कहेंगे--जयरामजी!

और दूसरे दिन सुबह से विद्यार्थियों ने शुरू कर दिया। मैंने अफवाह उड़ा दी स्कूल में कि वे जयरामजी से बड़े प्रसन्न होते हैं। दूसरे दिन ही उन्होंने मुझे बुलाया कि भैया, तुझे मिठाई लेनी है? बिस्कुट चाहिए? क्या चाहिए, बोल! मगर मेरा पिंड छुड़वा। क्योंकि ये दो हजार लड़के अगर दिन में जितनी दफा निकलें--स्कूल के रास्ते में ही उनका घर था--तो मैं तो मारा गया! तू कहे तो मैं राम को बिल्कुल छोड़ने को राजी हूं।

भूल गए वह चौकड़ी राम-राम जपने की। बहुत मैंने कहा कि आप राम-राम जपते थे। मैंने कहा कि देखूं भी तो कि राम से लगाव कितना है? कि ऐसे ही बकवास मचा रखी है! जब मुझे देखते तो बिल्कुल चुप बैठ जाते, फिर वे राम-राम नहीं जपते, बिल्कुल चुप ही रहते। जब मैं निकल जाऊं उनके घर के सामने से तब वे फिर अपना राम-राम जपना शुरू करते।

धार्मिक नियम, व्रत, उपवास से तुम्हारी पत्नी घबड़ाती होगी और जानती होगी कि आज नहीं कल इसका अंतिम परिणाम तो यही होना है कि तुम घर छोड़ कर भाग जाओगे। तुम पत्नी को अकेला कर जाओगे। जीते जी, तुम जिंदा रहोगे और उसे विधवा कर जाओगे। बच्चों को अनाथ कर जाओगे, तुम जिंदा रहोगे और अनाथ कर जाओगे। इससे भयभीत होती रही होगी। सोच-विचार वाली महिला होगी।

इसलिए मेरा संन्यास तो उसकी समझ में आया। मेरा संन्यास स्त्रियों को सुगमता से समझ में आएगा, बजाय पुरुषों के। क्योंकि मैं कह रहा हूंः घर छोड़ना नहीं है, परिवार छोड़ना नहीं है। जीवन को नैसर्गिक बनाना है, स्वाभाविक बनाना है। जीवन को उदासीन नहीं करना है, आनंद-उत्सव बनाना है। जीवन पर जबरदस्ती व्रत-नियम नहीं थोपने हैं, प्रसादयुक्त बनाना है। सौंदर्य देना है जीवन को। जीवन को संवेदनहीन नहीं करना है, सृजनात्मकता देनी है। जीवन में काव्य हो, नृत्य हो, गीत हो। जीवन में प्रीति हो। तो किसी दिन

प्रार्थना हो सकती है। जीवन में प्रेम ही अंततः प्रार्थना में परिवर्तित होता है और प्रार्थना एक दिन परमात्मा से जोड़ देती है।

मैं जीवन का सत्कार करता हूं। मेरे मन में जीवन और परमात्मा पर्यायवाची हैं। और कोई परमात्मा नहीं है--जीवन को छोड़ कर। जीवन को अहोभाव से स्वीकार करो। और परमात्मा ने तुम्हें जहां, जैसा बनाया है, वहीं जीओ। और वहीं जीते-जीते शांत बनो, मौन बनो, शून्य बनो।

यह प्रश्न संसार को छोड़ने का नहीं है; प्रश्न अहंकार को छोड़ने का है। प्रश्न पत्नी को छोड़ने का नहीं है; प्रश्न पत्नी के प्रति मालकियत छोड़ने का है। इस भेद को समझो। पत्नी को छोड़ने का नहीं है; लेकिन पति होने की अकड़ छोड़ने का है। जरूर छोड़नी है; एक अकड़ छोड़नी है कि मैं पति हूं। पति का मतलब होता हैः स्वामी, मालिक। तुम मालिक हो और पत्नी तुम्हारी संपदा है! यह तो अधार्मिक व्यक्ति का लक्षण हुआ। एक आत्मवान स्त्री को संपदा मानना, वस्तु मानना...

अभी भी हम इस तरह के बेहूदे शब्दों का उपयोग करते हैं। बाप जब बेटी का विवाह करता है तो कहता हैः कन्यादान।

दान वस्तुओं का किया जाता है, व्यक्तियों का नहीं। कन्यादान? यह बात तो अभद्र है। प्रत्येक स्त्री को इसका विरोध करना चाहिए। दान? इसका तो मतलब यह हुआ कि स्त्री में कोई आत्मा नहीं है; वह कोई कुर्सी है, फर्नीचर है, सामान है।

और हम स्त्री-धन शब्द का अभी भी उपयोग करते हैं।

चीन में तो सदियों तक अगर पति अपनी पत्नी को मार डालता था तो उस पर अदालत में मुकदमा नहीं चल सकता था, क्योंकि पत्नी में आत्मा मानी ही नहीं जाती थी। कोई अपनी कुर्सी तोड़ डाले, इस पर क्या कोई अदालत में मुकदमा चलाओगे? कुर्सी अपनी, हमने तोड़ दी, इसमें कौन को बाधा हो सकती है? किसको बाधा हो सकती है?

और अब भी ऐसे कबीले हैं हिमालय में, अगर उनके घर कोई मेहमान हो तो वे अपनी पत्नी को रात के लिए दे देते हैं--मेहमान की सेवा के लिए। जैसे तुम घर की अच्छी से अच्छी चीज मेहमान के लिए दोगे, अच्छा भोजन बनाओगे, अच्छा बिस्तर लगाओगे, अच्छे कमरे में ठहराओगे, वैसे ही अपनी पत्नी भी रात भर के लिए मेहमान को दोगे। स्त्री की कोई आत्मा थोड़े ही है!

यह कहानी तो तुम जानते ही हो कि कैसे द्रौपदी के पांच पति थे। कहानी बेहूदी है, मगर शास्त्र बेहूदी कहानियों से भरे हैं। एक स्त्री के पांच पति! स्त्री को बांट लिया था। वस्तुएं बांटी जा सकती हैं। दिन बांट लिए थे कि आज एक पति है, कल दूसरा पति है, तीसरे दिन तीसरा पति है। पांचों में होड़ थी; पांचों भाई उसको चाहते थे; झगड़ा खड़ा न हो, इसलिए बांट लो।

स्त्री के प्रति हमारी धारणा क्या थी? और इनको हम कहते हैं--ये धार्मिक व्यक्ति थे; इसमें युधिष्ठिर भी सम्मिलित हैं, जिनको हम धर्मराज कहते हैं। कम से कम भैया युधिष्ठिर को तो कह देना था कि मैं नहीं बांटूंगा, क्योंकि यह तो बड़ी अधार्मिक बात हो जाएगी। मगर यह बात ही नहीं थी; यह तो धर्म की बात ही थी। स्त्री में है ही क्या, बांट लो! बांट भी ली स्त्री और फिर युधिष्ठिर ने जुए में दांव पर भी लगा दी। दांव पर हम लगाते ही किस चीज को हैं? धन लगा सकते हैं दांव पर, किसी व्यक्ति को दांव पर लगा सकते हैं? स्त्री को दांव पर भी लगा दिया जुए में! हार भी गए!

तो फिर दुर्योधन का ही ऐसा क्या कसूर है अगर वह इस स्त्री के वस्त्र उतारने लगा? अगर कसूर इन पांच का बांटने में नहीं है, अगर कसूर युधिष्ठिर का दांव पर लगाने में नहीं है, तो दुर्योधन को ही ऐसा क्या कसूर दे रहे हो! अगर वस्तु है स्त्री और बांटी जा सकती है और जुए में दांव पर लगाई जा सकती है, तो जिसने जीती है उसकी मर्जी, जो चाहे करे। ऐसा कौन सा जघन्य पाप हो रहा है फिर कि वस्त्र उतार रहा है? कुर्सी की खोल कोई बदलना चाहे तो इसमें कोई झगड़ा है?

लेकिन दुर्योधन को हम कहते हैं कि बुरा काम किया। और ये अब इसके पहले जो सब काम होते रहे वे शुभ कार्य हो रहे थे!

हम कभी विश्लेषण करते नहीं और न कभी बुद्धिमत्तापूर्वक विचार करते हैं, न कभी हम परख से देखते हैं कि हमारी मान्यताएं क्या हैं। इसलिए स्त्री को छोड़ कर चले जाने में कोई अड़चन ही न थी।

मैं स्त्री और पुरुष के बीच क्रांति तो चाहता हूं, निश्चित चाहता हूं; लेकिन वह क्रांति इतनी ऊपरी नहीं होगी कि तुम स्त्री को छोड़ कर चले गए। वह क्रांति गहरी होनी चाहिए। तुम्हारा स्त्री के प्रति पति-भाव नहीं होना चाहिए, मालकियत का भाव नहीं होना चाहिए। वह संपदा नहीं है, आत्मा है। तुम्हारे जैसी ही। न तुम उसकी संपदा हो, न वह तुम्हारी संपदा है। कोई किसी का मालिक नहीं है। मालिक तो बस एक परमात्मा है, बाकी कोई किसी का मालिक नहीं है। मालकियत की बात ही बेहूदी है, असंगत है, असभ्य है। और मालकियत में ही छोड़ना छिपा है। इस बात को ख्याल रखना।

एक पुराने ढब के संन्यासी मुझे मिलने आए थे। उन्होंने कहा, मैंने अपनी स्त्री का त्याग कर दिया। मैंने कहा, वह तुम्हारी थी जो तुमने त्याग कर दिया? त्याग तो उसका किया जा सकता है जो तुम्हारी हो। तुम कहां से लेकर आए थे उसे? कोई जन्म के साथ लेकर आए थे? तुम्हारा क्या था उसमें? वह अपनी थी, तुम अपने हो। त्याग कैसे कर दोगे? यह भ्रांति छोड़ो।

तीस साल हो गए उनको पत्नी को छोड़े, मगर यह भ्रांति अभी भी है कि मैंने त्याग कर दिया। अभी भी इस भ्रांति के भीतर पहली भ्रांति छिपी है कि वह मेरी थी। तुम हो कौन? पत्नी तुम्हारी नहीं है, न तुम पत्नी के हो।

स्त्री-पुरुष के बीच यह पति-पत्नी की मालकियत का संबंध जाना चाहिए। बच्चे भी तुम्हारे नहीं हैं, सब परमात्मा के हैं। तुम तो केवल उपकरण हो, माध्यम हो। तुम्हारे द्वारा आए हैं, तुम्हारे नहीं हैं। सम्मान करो उनका, सत्कार करो उनका। परमात्मा की भेंट हैं। उनके भीतर भी परमात्मा को देखो। परमात्मा को छोड़ कर तो कोई नहीं भागता। अगर पत्नी में परमात्मा दिखाई पड़ने लगे, अपने बच्चों में परमात्मा दिखाई पड़ने लगे, तो मैं कहूंगा कि तुम संन्यासी हो।

लेकिन बड़े मजे की बात है! पुरुषों ने शास्त्र लिखे, जिनमें समझाया है कि स्त्री पति में परमात्मा को देखे। लेकिन इनमें से एक ने भी यह नहीं लिखा कि पुरुष स्त्री में परमात्मा को देखे। यह बेईमानी देखते हो! और इनको तुम महात्मा कहे चले जाते हो! कब तक अंधापन जारी रहेगा? ये दोहरे मापदंड!

अगर पुरुष में कहते हो कि स्त्री परमात्मा को देखे, तो दूसरी बात भी कह देनी चाहिए कि पुरुष भी स्त्री में परमात्मा को देखे। या तो दोनों देखें या दोनों न देखें, मगर समता खंडित नहीं होनी चाहिए।

मेरे नये संन्यास की नई ही प्रक्रिया है, नया ही सोचने का आयोजन है, नये ही मूल्य हैं। छोड़ना कुछ भी नहीं है, क्योंकि हमारा कुछ है ही नहीं, सब उसका है। न हम छोड़ने वाले हैं, न हम पकड़ने वाले हैं। तो फिर जहां हम हैं, जहां परमात्मा ने हमें जो भी अभिनय करने को दे दिया है, इस महानाटक में जो भी पात्र हमें बना

दिया है, उसे हम पूरा करें, समग्रता से पूरा करें, उसे जी भर कर जीएं। और यह जानते हुए जीएं कि नाटक है, इसलिए तादात्म्य न बन पाए।

तुम देखते हो, रामलीला में सीता चोरी चली जाती है, तो राम चिल्लाते फिरते हैं जंगल-जंगल कि मेरी सीता कहां है? वृक्षों से पूछते हैं, मेरी सीता कहां है? असली राम को शायद पीड़ा भी हुई होगी, उनका तादात्म्य भी रहा होगा। लेकिन रामलीला में जो राम बनता है, वह भी आंसू बहाता है, वह भी चिल्लाता हैः हे सीता, तू कहां है? वृक्षों से पूछता है। लेकिन भीतर उसके कुछ नहीं है। सब बाहर-बाहर है। एक अभिनय कर रहा है। अभी परदा गिर जाएगा, बात खतम हो जाएगी। परदा गिरते ही से फिर पीछे बैठ कर वह चिल्लाता नहीं रहेगा कि हे सीता, तू कहां है!

कभी-कभी रामलीला होती हो तो परदे के पीछे जाकर भी देखना चाहिए, क्योंकि वहां असली चीज दिखाई पड़ती है। मेरे गांव में तो जब भी रामलीला होती थी, तो मैं बाहर से नहीं देखता था, भीतर से। रामलीला के जो मैनेजर थे वे मुझसे कहते थे कि रामलीला वहां बैठ कर देखो। मैं उनसे कहता कि मुझे तो यहीं बैठा रहने दो, मैं कुछ गड़बड़ नहीं करूंगा, सिर्फ देखता रहूंगा।

वहां मैंने गजब की चीजें देखीं। राम-रावण में युद्ध हो रहा है, सीता चोरी चली गई है। और जब परदा गिरता है तो सीता मैया राम-रावण दोनों को चाय पिला रही हैं! बात खतम हो गई। परदा गिर गया, बात खतम हो गई।

ऐसे ही जीवन का एक दिन परदा गिर जाएगा, न कोई दोस्त है, न कोई दुश्मन है; न कोई अपना है, न कोई पराया है। जब तक परदा नहीं गिरा है तब तक इस खेल को खेल समझ कर खेले चलो।

एक अभिनेता ने मुझसे पूछा कि अभिनय की कला के संबंध में आपका क्या कहना है?

तो मैंने उससे कहा, अभिनय की कला यही है कि जब अभिनय करो तो समझो कि यही जीवन है। और जीवन की कला यही है कि जब जीओ तो समझो कि यही अभिनय है। वही कुशल अभिनेता है, जो अभिनय करते वक्त ऐसा डूब जाए कि तुम्हें लगे कि यह उसका जीवन है; तुम भूल ही जाओ कि यह अभिनय है, तो ही वह कुशल है। और जीवन की कुशलता यह है कि तुम इस भांति जीओ कि सब अभिनय है।

मेरे देखे, अभिनय की कला जो व्यक्ति करता रहा है, उसे मेरे संन्यास को समझने में जरा भी कठिनाई नहीं होगी। इसलिए अगर विनोद को मेरी बात समझ पड़ी है, खूब गहराई में समझ पड़ी है, तो उसका कारण है।

मुझसे लोग आकर पूछते हैं कि इतने अभिनेता आप में क्यों उत्सुक होते हैं?

तो मैंने कहा कि मेरे संन्यास की परिभाषा यही हैः संसार को अभिनय समझो। और जो लोग अभिनय की दुनिया में हैं, उनको यह बात एकदम समझ में आ जाती है। यह बात एकदम समझ में आनी ही चाहिए कि अगर हम अभिनय कर सकते हैं जीवन मान कर, तो जीवन क्यों नहीं जी सकते अभिनय मान कर!

इसलिए जयपाल, तुम्हारी पत्नी को इसमें कोई अड़चन नहीं है, वह मस्त है, वह आह्लादित है। अच्छा हुआ तुम पुराने ढंग के संन्यास से बच गए। एक दुर्घटना होते-होते बच गई। तुम सौभाग्यशाली हो!

आखिरी सवालः ओशो, कल आपने वह प्यारी लखनवी कहानी कही। उत्सुकता है जानने की कि फिर उन छह-छह इंच ऊंचे और साठ-साठ वर्ष बूढ़े दोनों भाइयों का आगे क्या हुआ?

दिनेश, भैया, ऐसे कठिन सवाल नहीं पूछते। कहानी तो कहानी है। आगे जरूर कुछ हुआ, मगर तुम मुझे झंझट में डालोगे।

दोनों भाइयों का नाम रखा गया चंगू-मंगू। चंगू-मंगू थे ही। साठ वर्ष तक जो इसी बात में उलझे रहे कि पहले आप, पहले आप। चंगू-मंगू ही थे। पहुंचे हुए उल्लू के पट्ठे थे! वैसे उनके बाप का नाम लल्लू था, सो अच्छा होगा कहेंः लल्लू के पट्ठे थे!

फिर चंगू-मंगू दोनों ही जो साठ वर्ष तक सभ्यता का ऐसा पाठ सीखे हों, तो जरूर संसार पर अपनी छाप तो छोड़ ही जाएंगे। दोनों भारत के प्रधानमंत्री हुए। चंगू बने चरणसिंह, मंगू बने मोरारजी देसाई। कहानी का अंत बड़ा दुखांत हुआ।

मगर ऐसे कठिन सवाल न पूछा करो। इसी तरह के सवालों से मैं झंझट में पड़ जाता हूं। मुझे उत्तर देना पड़ता है। अब चरणसिंह नाराज होंगे और मोरारजी नाराज होंगे। हालांकि उनकी नाराजगी से कुछ फर्क नहीं पड़ता; वे सत्ता में भी थे और नाराज थे तो क्या फर्क पड़ गया! अब तो बेचारे कहीं भी नहीं हैं। अब तो दया के पात्र हैं। अब तो फिर चंगू-मंगू हो गए। वह तो सत्ता में पहुंच जाएं चंगू, तो चौधरी चरणसिंह; सत्ता में पहुंच जाएं मंगू, तो मोरारजी भाई देसाई। सत्ता गई तो फिर चंगू के चंगू, मंगू के मंगू!

आज इतना ही।

पांचवां प्रवचन

हंसा, उड़ चल वा देस

पहला प्रश्नः ओशो, प्रश्न कुछ बनता नहीं। पता नहीं कुछ पूछना भी चाहती हूं या नहीं। पर आपसे कुछ सुनना चाहती हूं--मेरे लिए। मेरा नाम मत लेना।

योग हंसा, जैसी तेरी मर्जी! नहीं लेंगे नाम। ऐसे भी किसी का कोई नाम नहीं है। नाम तो बस एक झूठ है! जैसे और बहुत झूठों में हम जीते हैं, वैसे ही नाम को भी अपना मान कर जी लेते हैं। अपना कुछ पता नहीं। और यह बात खलती है, अखरती है कि हमें अपना पता नहीं। तो झूठा पता, झूठा नाम, समझा लेते हैं अपने मन को कि नहीं-नहीं, पता है।

नाम लेकर तू आई नहीं थी, नाम लेकर तू जाएगी भी नहीं। नाम तो बस बीच का झमेला है। दे दिया औरों ने; दे देना जरूरी था; जगत-व्यवहार है। पर भ्रांति हमारी ऐसी है कि व्यवहार को हम सत्य समझ लेते हैं। लोग नामों के लिए जीते हैं और नामों के लिए मरते हैं। नाम, जो कि सरासर झूठ है! किसका क्या नाम है? हम सब अनाम हैं। हमारे भीतर के सत्य का न तो कोई रूप है, न कोई व्याख्या है, न कोई सीमा है। हम असीम हैं, अनिर्वचनीय हैं, अव्याख्य हैं। हमारा होना विराट है। नाम से बंध कर हम छोटे हो जाते हैं।

नींद में भी तुझे तेरा नाम भूल जाता है, तो मौत की तो बात ही क्या! न मालूम कितने तेरे जन्म हुए होंगे और न मालूम कितने तेरे नाम हुए होंगे, अब किसी की भी याद नहीं है। सब पानी पर पड़ी हुई लकीरों जैसे मिट गए। रेत पर बनी लकीर भी नहीं है नाम, क्योंकि रेत पर बनी लकीर भी थोड़ी देर टिके, टिक सकती है, पानी पर खींची गई लकीर है, टिकती ही नहीं। और कितनी बार नहीं हम उसी-उसी भ्रांति में पड़ते हैं।

सूफियों की कहावत है कि आदमी ही अकेला एक गधा है जो उसी गड्ढे में दोबारा गिरता है। कोई गधा नहीं गिरेगा--उसी गड्ढे में। एक दफा गिर गया तो समझ गया। गधे भी इतने गधे नहीं हैं। गधों में भी कुछ सूझ-बूझ है। और किसी गड्ढे में गिर जाए, मगर उसी गड्ढे में नहीं गिरेगा। एक दफा गिर कर देख लिया। लेकिन आदमी ऐसा गधा है, गड्ढे भी नहीं बदलता; उन्हीं-उन्हीं गड्ढों में बार-बार गिरता है, फिर-फिर गिरता है। जैसे आदमी होश में ही नहीं है!

मुल्ला नसरुद्दीन एक रात खूब पीकर लौटा। एक ही झाड़ उसके मकान के सामने है--एक नीम का झाड़। डोल रहा था, आंखें चकरा रही थीं, तो एक झाड़ अनेक झाड़ दिखाई पड़ता था। उसे तो लगा कि नीम का एक जंगल लगा हुआ है। बहुत घबड़ाया कि कैसे इस जंगल से निकल पाऊंगा! कहीं टकरा न जाऊं किसी झाड़ से! इतने झाड़! बहुत बचने की कोशिश की, मगर टकरा गया। झाड़ से चोट खाई, पीछे हटा, फिर सम्हला। अब की बार सम्हल कर निकलने की कोशिश की। मगर झाड़ ही झाड़ थे, चारों तरफ झाड़ ही झाड़ थे, बचे भी तो कैसे बचे! फिर टकरा गया। और जब चार-छह बार ऐसा टकराया तो जोर से चिल्लाया कि भाई कोई है, बचाओ! मैं जंगल में खो गया हूं! उसकी पत्नी ने ऊपर से खिड़की खोली और कहा कि कुछ होश की बातें करो। एक नीम का झाड़ है। आवाज मैं भी सुन रही हूं तुम्हारे टकराने की। उससे बचने की कोई जरूरत भी नहीं है।

किसी तरह उसे घर के भीतर ले जाया गया। पूछा पत्नी ने कि एक ही झाड़ था, उससे इतना टकराने की क्या जरूरत थी?

तो नसरुद्दीन ने कहा, आत्मरक्षा के लिए।

जैसे झाड़ कोई हमला कर रहा हो! और एक झाड़ से कैसे कोई बार-बार टकरा रहा है? उसे एक नहीं दिखाई पड़ रहा है। और यहां तुम्हीं भटके हो, ऐसा नहीं है। यहां सभी भटके हैं। तुम जिनसे सलाह लो, वे भी भटके हैं, उन्हें भी बहुत झाड़ दिखाई पड़ रहे हैं।

नसरुद्दीन को उसकी पत्नी ले गई मनोचिकित्सक के पास और कहा कि इनके लिए कुछ करिए, इन्हें कुछ दिनों से एक चीज तीन दिखाई पड़ती है। मनोवैज्ञानिक ने नीचे से ऊपर और चारों तरफ गौर से देखा और कहा, पांचों की तीन चीजें दिखाई पड़ती हैं?

उसको एक की पांच चीजें दिखाई पड़ती हैं। यहां तुम्हीं नहीं भ्रांत हो, तुम्हारे सलाहकार तुमसे और भी ज्यादा भ्रांत हैं। तुम्हारे पंडित तुमसे और भी गहरे गड्ढों में गिरे हैं--शास्त्रीय गड्ढों में गिरे हैं, शाब्दिक गड्ढों में गिरे हैं। और उन्होंने अपने गड्ढों को सुंदर नाम भी दे रखे हैं--कोई हिंदू, कोई मुसलमान, कोई ईसाई, कोई जैन, कोई बौद्ध। उन्होंने अपने गड्ढों को सजा भी लिया है। उन गड्ढों पर मंत्र लिख दिए हैं--गायत्री, नमोकार; कुरान की आयतें खोद दी हैं। फिर तो गिरना ही पड़ेगा। ऐसे पवित्र गड्ढों में नहीं गिरोगे तो कहां गिरोगे!

आदमी बेहोश है, आदमी के मार्गदर्शक बेहोश हैं। आदमी अंधा है, आदमी के मार्गदर्शक अंधे हैं। अंधे अंधों को चला रहे हैं। किसी को कुछ सूझ नहीं रहा है।

हंसा, तेरा नाम कहां! नाम से ही छुड़ाने को तो यहां तुम्हें निमंत्रण दिया हूं। तुम्हारा नाम इसीलिए तो बदल देता हूं संन्यास देते वक्त। इसलिए नहीं कि नया नाम पुराने नाम से ज्यादा सच्चा है। नाम तो सब एक से झूठे हैं। लेकिन नाम पुराना जड़ हो गया है। बदल देता हूं। पुराना नाम तो तुम्हें मिला था, तब तुम इतने छोटे थे कि तुम्हें उसका होश भी नहीं है। सुनते-सुनते सम्मोहित हो गए हो। नाम बदल देता हूं--इस बात का स्मरण दिलाने को कि नाम तो ऊपरी चीज है, कभी भी बदला जा सकता है। यूं चुटकी में बदला जा सकता है। जब चाहो तब बदल ले सकते हो।

तुम नाम नहीं हो, यह बोध दिलाने के लिए ही संन्यास में तुम्हारा नाम बदला जाता है। क्योंकि बदलाहट के बीच के क्षण में शायद तुम्हें दिखाई पड़ जाए कि अगर मैं नाम ही होता तो बदलाहट कैसे हो सकती थी!

मगर मूर्च्छा हमारी गहरी है। मूर्च्छा हमारी ऐसी है कि पुराने नाम से हम छूट नहीं पाते तो नये से पकड़ लेते हैं, नये से जकड़ जाते हैं। फिर नये को हम जोर से पकड़ लेते हैं। हमारी मुट्ठी नहीं खुलती। कुछ न कुछ पकड़ने को चाहिए। हम मुट्ठी खोलने से घबड़ाते हैं कि कहीं, मुट्ठी खाली है, ऐसा दिखाई न पड़ जाए!

इस दुनिया में सबसे बड़ी पीड़ा यही है कि कहीं यह न दिखाई पड़ जाए कि मुझे मेरा पता नहीं है, कि मैं अपने से अजनबी हूं! कहीं यह पता न चल जाए कि मैं मूर्च्छित हूं, कि मुझे इतना भी होश नहीं कि मैं कौन हूं! इससे बड़ी मूर्च्छा और क्या होगी?

तो आदमी अपने को समझाता रहता है। तुम पागल से पागल आदमी को कहो कि तुम पागल हो, वह कहेगाः क्या कहा? पागल होओगे तुम। मैं और पागल! कोई मूढ़ से मूढ़ व्यक्ति भी अपने को मूढ़ मानने को राजी नहीं। बेहोश से बेहोश आदमी अपने को बेहोश मानने को राजी नहीं। बेहोश से बेहोश आदमी भी यही चेष्टा करता है कि मैं होश में हूं।

एक और रात मुल्ला नसरुद्दीन घर लौटा है। ताला खोलने की कोशिश करता है, मगर चाबी नहीं लगती, क्योंकि हाथ कंप रहे हैं। पुलिसवाला खड़ा देख रहा है चौराहे पर। जब बहुत देर हो गई तो उसने कहा, बड़े मियां, लाओ चाबी मुझे दो, मैं खोल दूं।

नसरुद्दीन ने कहा कि चाबी तुम्हें देने की जरूरत नहीं है। चाबी तो मैं अपने सगे बाप को भी नहीं देता। तुम जरा मकान को सम्हाल लो, यह मकान बहुत कंप रहा है, चाबी तो मैं ही लगा लूंगा।

दया करके पुलिसवाला पास आया, टार्च जलाई, तो देखा, चाबी भी कहां है वहां! वह तो सिगरेट से ताला खोलने की कोशिश कर रहा है।

तब तक पत्नी भी जाग गई। उसने ऊपर खिड़की से पूछा कि दूसरी चाबी फेंक दूं? पहली चाबी कहीं भूल आए होओगे।

नसरुद्दीन ने कहा, चाबी की कोई चिंता न कर, तू दूसरा ताला फेंक दे। चाबी तो मेरे पास है, यह ताला ही कुछ गड़बड़ है।

कोई यह मानने को राजी नहीं कि मैं गड़बड़ हूं, कि मेरे हाथ में जो है वह गलत है, कि मैं भूल में हूं। सारी दुनिया होगी भूल में। सारी दुनिया होगी मूर्च्छित। सारी दुनिया होगी पागल। आदमी खुद अपने को बचाए चला जाता है।

हंसा, नहीं तेरा कोई नाम है। नहीं तेरा कोई गाम है। नहीं कुछ पता-ठिकाना है। इस सत्य का उदभावन हो जाए, तो हमारे जीवन में पहली दफा थोड़ी सी मूर्च्छा टूटती है, थोड़ा सा होश जगना शुरू होता है।

चहल-पहल की इस नगरी में हम तो निपट बिराने हैं,
हम इतने अज्ञानी निज को हम ही स्वयं अजाने हैं।
इसीलिए हम तुमसे कहते
दोस्त हमारा नाम न पूछो,
हम तो रमते-राम सदा के
दोस्त हमारा गाम न पूछो,
एक यंत्र सा जो कि नियति के
हाथों से संचालित होता--
कुछ ऐसा अस्तित्व हमारा,
दोस्त हमारा काम न पूछो।
यहां सफलता या असफलता--ये तो सिर्फ बहाने हैं;
केवल इतना सत्य कि निज को हम ही स्वयं अजाने हैं।
चरणों में कंपन है, मस्तक पर शत-शत शंकाएं हैं;
अंधकार आंखों में, उर में चुभती हुई व्यथाएं हैं!
अपनी इन निर्बलताओं का--
हम कहते हैं--हमें ज्ञान है,
इसीलिए हम ढूंढ़ रहे हैं
जो शाश्वत है, जो महान है।
जितने देखे--मिटने वाले,
जितने देखे--मरने वाले,
जीवन औ" निर्माण लिए जो--

प्रेम अकेला शक्तिवान है।
बुरा न मानो जनम-जनम के हम तो प्रेम दिवाने हैं।
इसीलिए हम तुमसे कहते हम तो निपट बिराने हैं।
एक जलन सी है सांसों में, एक पुलक है प्राणों में,
हमें नहीं कुछ भेद दीखता कलियों में, पाषाणों में।
कोमलता का प्रश्न सदा से
इन आंखों में कितना जल है?
औ" कठोरता पूछ रही है--
मन में बोलो कितना बल है?
हमें दूसरों से क्या मतलब?
अपने से उत्तर पाना है,
उलझे-उलझे केवल हम हैं,
यह दुनिया तो सहज सरल है।
पाप-पुण्य, यश-अपयश, सुख-दुख सब जाने-पहचाने हैं,
एक अकेले हम ही जग में अपने लिए अजाने हैं।
नहीं किसी से हमको कटुता, नहीं किसी पर क्रोध हमें;
नत-मस्तक, श्रीहत कर देना अपना ही अवरोध हमें।
दोस्त हमारी तरह विश्व के
सब प्राणी हैं खोए-खोए।
अरे हंसे कब अपने मन से?
अपने मन से कब वे रोए?
निरुद्देश्य से, लक्ष्यहीन से
सब अभाव में भटक रहे हैं,
करुणा-दया मांगते हैं वे
अपनी अपनी व्यथा संजोए।
देख चुके हम गिरते-लुटते कितने महल-खजाने हैं,
और इसी से हम कह उठते हम तो निपट बिराने हैं।
हम ममता लेकर आए हैं, ममता देने आए हैं,
ममता वालों के बोलो कब अपने और पराए हैं।
इसीलिए हम तुमसे कहते
दोस्त व्यर्थ का नाम-गाम है,
हम फकीर युग-युग के हमको
बंधन से क्या यहां काम है?
कैसा संचय? खाली हाथों,
आना और चले जाना है;

धन-वैभव हो तुम्हें मुबारक,

अपना दाता दोस्त, राम है।

भले हमें तुम मूरख समझो, हम तो बड़े सयाने हैं,

इस अज्ञान भरी दुनिया में, हम भी बड़े अजाने हैं।

एक ही बात ख्याल में आ जाए--

चहल-पहल की इस नगरी में हम तो निपट बिराने हैं,

हम इतने अज्ञानी निज को हम ही स्वयं अजाने हैं।

नहीं हमें हमारा परिचय है, नहीं हमें हमारा बोध है, नहीं हमें हमारी पहचान है। धर्म और क्या है? आत्म-साक्षात्कार की प्रक्रिया! भीतर एक दीये को जलाना है, ताकि जो हम हैं उसे भर आंख देख सकें, पहचान सकें। साक्षी बनना है, जागरूक होना है। और तब तुम पाओगेः न तो देह हो तुम, न मन हो तुम। तो नाम क्या? जाति क्या? देश क्या? धर्म क्या?

इसीलिए हम तुमसे कहते

दोस्त हमारा नाम न पूछो,

हम तो रमते-राम सदा के

दोस्त हमारा गाम न पूछो,

एक यंत्र सा जो कि नियति के

हाथों से संचालित होता--

कुछ ऐसा अस्तित्व हमारा,

दोस्त हमारा काम न पूछो।

जब तक मनुष्य साक्षी नहीं है, जब तक स्वयं के भीतर जागृति का दीया नहीं जला है, जब तक ध्यान की ज्योति नहीं जगमगाई है, तब तक तुम एक यंत्र हो। होश में नहीं, बेहोश चले जा रहे हो। तुम जो भी कर रहे हो, तुम नहीं कर रहे हो, बस प्रकृति की अंधी शक्तियां तुमसे करवाए लिए जा रही हैं। तुम प्रेम करो कि घृणा, तुम मैत्री बनाओ कि शत्रुता, तुम परिवार बसाओ, आकांक्षाएं संजोओ, महत्वाकांक्षाओं की यात्राएं करो, या कि ऊब कर, थक कर सब छोड़-छाड़ कर जंगल भाग जाओ, इससे कुछ भी न होगा। यह सब अंधी शक्तियों की दौड़ है।

यहां सफलता या असफलता--ये तो सिर्फ बहाने हैं;

केवल इतना सत्य कि निज को हम ही स्वयं अजाने हैं।

तुम सफल हो जाओ तो, तुम असफल हो जाओ तो--सब बहाने हैं; अपने को भुलाए रखने के अलग-अलग ढंग हैं। और लोगों ने बहुत ढंग ईजाद कर लिए हैं। करने पड़ते हैं, नहीं तो कहीं न कहीं से यह बात कांटे की तरह चुभने ही लगेगी कि यह जीवन हाथ से ही निकला जा रहा है, क्षण-क्षण करके जीवन की गागर रीती जा रही है, बूंद-बूंद करके--और अभी तक अपने से पहचान भी नहीं हुई! और कौन जाने मौत कब द्वार पर दस्तक दे दे! एक क्षण का भरोसा नहीं है, वहां हम कितने आश्वस्त हैं, कितनी व्यर्थ की बातों में लगे हैं! जैसे कि हमें सदा यहां रहना है! कितने दीवाने हैं हम! और हमारी जीवन-प्रक्रिया क्या है? यंत्र से ज्यादा नहीं। जैसे बटन दबाओ, बिजली जल जाए; बटन दबाओ, बिजली बुझ जाए--ऐसी तुम्हारी बटनें हैं। दबा दो, क्रोध में आ गए; दबा दो, प्रसन्न हो गए; दबा दो, दुखी हो गए; दबा दो, सुखी हो गए।

तुम भी भलीभांति जानते हो कि तुम्हारी बटनें हैं। हर आदमी अपना-अपना स्विच-बोर्ड टांगे हुए चल रहा है। और तुम यह भी जानते हो कि दूसरों की भी बटनें हैं। और रोज तुम्हारी बटनें दबाई जाती हैं और तुम भी दूसरों की बटनें दबाते हो। और तुम जानते हो कि दूसरे भी यंत्रवत व्यवहार करते हैं और तुम भी यंत्रवत व्यवहार करते हो।

बाल्या भील, जो पीछे बाल्मीकि बना, हत्यारा था, लुटेरा था। लूटने गया था--और उस दिन लुट गया। क्योंकि नारद से मुलाकात हो गई।

कभी-कभी ऐसे व्यक्ति मिल जाते हैं, जिनके हाथों लुट जाना होता है। तुम चाहे लूटने ही जाओ, तो भी लुट जाते हो। कभी-कभी ऐसे होश से भरे व्यक्ति मिल जाते हैं, जिनके सामने झुक ही जाना होता है। नारद को उसने तो पकड़ लिया। उसने तो अपनी तलवार निकाल ली। मगर न नारद को उसकी तलवार की फिक्र है, न उसके खूंखार चेहरे की, न उसकी आंखों की। वे तो अपनी वीणा बजा रहे हैं, सो बजा रहे हैं। वह जो वीणा से स्वर चल रहा था, अखंड चल रहा है। उसमें व्याघात नहीं हुआ। अंगुलियां रुकी नहीं, तार थमे नहीं, गीत ठहरा नहीं।

चौंका बाल्या। उसने दो ही तरह के लोग देखे थेः एक, जो उसकी तलवार देख कर अपनी तलवार निकाल लेते थे; उनसे वह परिचित था। और दूसरे, जो उसकी तलवार देख कर पूंछ दबा कर भाग खड़े होते थे; वह उनसे भी परिचित था। वे दोनों ही यांत्रिक व्यवहार की बातें हैं। लेकिन यह कोई तीसरी ही तरह का आदमी है, न तलवार निकाली, न भागा। भागना तो दूर, तलवार निकालना दूर, वीणा पर चलता हुआ इसका गीत है उसमें व्याघात भी नहीं पड़ा। वही आनंद, वही मस्ती! हाथ से इशारा किया बाल्या को कि तू ठहर, पहले मेरा भजन पूरा होने दे!

भजन पूरा हुआ। पूरा होते-होते बाल्या पूरा हो गया। इस आदमी को गौर से देखा। यह आदमी उन आदमियों में से नहीं है जिनकी बटनें दबाई जा सकती हैं। इसको तुम काट भी दो तो भी इसके चेहरे पर भजन रहेगा, यही भाव रहेगा। यह मर भी जाए तो भी गीत खंडित नहीं होगा, गीत चलता ही रहेगा--किसी और लोक में, किसी और तल पर, किसी और आयाम में!

बाल्या झुक गया। बाल्या ने कहा कि क्षमा करें, एक प्रश्न मेरे मन में उठा है। मैं दो तरह के लोगों को जानता हूं। मैं अपढ़ आदमी हूं, गंवार। मगर इतनी मुझे भी पहचान है, दो ही तरह के लोग दुनिया में मैंने अब तक देखे थे। आप कुछ तीसरी तरह के आदमी मालूम होते हैं!

और नारद ने कहा कि तीसरी तरह का आदमी ही आदमी होता है। वे जो तलवार निकाल लेते हैं या भाग खड़े होते हैं, वे तो एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। कोई डराता है, कोई डरता है; मगर दोनों ही डर के ही रूप हैं। दोनों ही भय के ही रूप हैं। अपने से कमजोर हो तो दबाओ, डराओ। अपने से ताकतवर हो तो डर जाओ, भयभीत हो जाओ। लेकिन तुम मुझे न मिटा सकते हो... तुम मेरा बाल भी बांका नहीं कर सकते। क्योंकि मैंने उसे पहचान लिया है जो शाश्वत है। इसलिए तुम मुझे संचालित नहीं कर सकते, तुम मेरे मालिक नहीं हो, मैं अपना मालिक हूं।

और बाल्या ने पूछा, ऐसी मालकियत मुझे कैसे मिल सकती है?

और ऐसे बाल्या के जीवन में बाल्मीकि होने की यात्रा शुरू हुई। यह मालकियत मुझे कैसे मिल सकती है? यंत्र तो मालिक नहीं हो सकता अपना। मालिक तो सिर्फ वही हो सकता है जो समग्ररूपेण चैतन्य है।

हंसा, जागो! बेहोशी छोड़ो! यंत्रवत गति छोड़ो!

अपने सिवा और भी कुछ है
जिस पर मैं निर्भर हूं!
मेरी प्यास हो न हो जग को,
मैं प्यासा निर्झर हूं!
हटा शैल पर शैल निरंतर
अपने वक्षस्थल से,
व्यक्त कराता रहा व्यथा की
कथा तरंगित जल से!
पृथ्वी पर पथ खोज रहा जो,
मैं वह नीलांबर हूं!
चरणचिह्न जिस प्रभापुरुष के
अगम गगन के तारे;
पहुंच नहीं पाता मन जिस तक,
नयन ज्ञान के हारे;
मैं उस प्रभु की द्रवित दया का
दृगजल-बिंदु अमर हूं!
लहरों के युग भुज फैलाए,
युग-युग का संवेदन!
भुजा-पाश में आन समाए
उत्पीड़ित हतचेतन!
नव करुणायन महाकाव्य का
मैं पहला अक्षर हूं!

जो तुम ऊपर से दिखाई पड़ते हो, वह तुम नहीं हो। तुम्हारी देह तो वस्त्रों से ज्यादा नहीं है। और तुम्हारा मन भी, समझो कि थोड़े भीतर के वस्त्र। देह और मन अलग-अलग नहीं हैं। मन देह का ही भीतरी हिस्सा है; देह मन का ही बाहरी रूप है। तुम दोनों नहीं हो। तुम तो अक्षर हो--जो न कभी जन्मा, जो न कभी मरता! तुम तो उस महाकाव्य के हिस्से हो, जिसको कोई परमात्मा कहता है, कोई मोक्ष, कोई निर्वाण। तुम तो उस प्रभु की आंखों का टपके हुए मोती की तरह एक दृगजल-बिंदु हो। तुम तो उस परमात्मा का ही अंग हो, हिस्से हो; अलग नहीं। तुम्हारा नाम क्या होगा!

इसलिए उपनिषद के ऋषि अपने ब्रह्म होने की घोषणा करते हैं--अपने होने की नहीं; ब्रह्म के होने की घोषणा करते हैं।

इसलिए अलहिल्लाज मंसूर अनलहक का उदघोष करता है--अनलहक! मैं सत्य हूं! मैं नहीं हूं, सत्य है।

हमारा नाम हमें भिन्न करता है। अपने अनाम को स्मरण करो, ताकि यह भिन्नता मिटे। इस अस्तित्व से अभिन्नता सधे। हमारा रूप, हमारा रंग, हमारी जाति, हमारा वर्ण--हमें तोड़ता है। और जो भी तोड़ता है वह धर्म नहीं है। जो जोड़ता है, अनंत से जोड़ता है, वही धर्म है।

तूने पूछा, हंसाः "प्रश्न कुछ बनता नहीं। पता नहीं कुछ पूछना भी चाहती हूं या नहीं।"

ऐसी ही दशा है। तुम्हें पक्का भी नहीं--कुछ पूछना भी है या नहीं? कुछ-कुछ धुंधला-धुंधला लगता है। कुछ अंधेरे में टटोलता-टटोलता सा हमारा जीवन है। कोई स्पष्ट प्रश्न भी नहीं है। और जो पूछते हैं, वे प्रश्न भी उनके अपने नहीं होते, वे भी उधार होते हैं। जितने लोग स्पषृट प्रश्न पूछते हैं, वे उधार होते हैं। और जो लोग सच में ही अपना प्रश्न पूछना चाहते हैं, उनकी दशा हंसा जैसी ही होगी; उन्हें लगेगा कि क्या पूछना है!

अक्सर स्पष्ट प्रश्न वे ही होते हैं, जो तुम्हारे नहीं हैं। जैसेः संसार को किसने बनाया?

तुम्हें क्या लेना-देना? किसी ने बनाया हो--अ ने, कि ब ने, कि स ने--क्या फर्क पड़ेगा? और किसी ने न बनाया हो तो भी क्या फर्क पड़ेगा? व्यर्थ के प्रश्न बिल्कुल स्पष्ट होते हैं लोगों को। मगर ये उधार प्रश्न हैं। ये तुमने सुन लिए हैं। तुम्हारे उत्तर ही उधार नहीं हैं, तुम्हारे प्रश्न तक उधार हैं। ऐसी दयनीय दशा है।

उत्तर भी तुम दूसरों से सीख लेते हो। कोई कहता हैः ईश्वर ने बनाया। कोई कहता हैः यह किसी ने नहीं बनाया, यह तो सनातन है। यह तो शाश्वत है। यह तो सदा से चला आया है। जैन घर में पैदा हुए तो तुम यह बात सुनोगे कि यह तो सदा से चला आया है।

प्रकृति शब्द हिंदुओं को उपयोग नहीं करना चाहिए; वह जैनों और सांख्यों का शब्द है। प्रकृति का अर्थ है कि जो कृति के पहले से है; जिसकी कभी कृति नहीं हुई; जिसको कभी बनाया नहीं गया। जो प्र-कृति है! कृति के भी पूर्व से मौजूद है! जो सदा से ही मौजूद है! हिंदुओं को प्रकृति शब्द का, या मुसलमानों को या ईसाइयों को प्रकृति शब्द का उपयोग नहीं करना चाहिए। और जैनों को, बौद्धों को सृष्टि शब्द का उपयोग नहीं करना चाहिए। क्योंकि सृष्टि का अर्थ होता हैः जो बना, बनाया गया। लेकिन सब गड्ड-मड्ड हो गया है। लोगों को कुछ भी साफ नहीं है। जैन सृष्टि शब्द का प्रयोग करते हुए मालूम पड़ते हैं। हिंदू प्रकृति शब्द का प्रयोग करते हुए मालूम पड़ते हैं। उन्हें साफ नहीं रहा कि ये शब्द पारिभाषिक हैं। इन शब्दों के पीछे पूरा दर्शन छिपा है।

अगर तुम जैन घर में पैदा हुए हो या बौद्ध घर में पैदा हुए हो, तो परमात्मा है ही नहीं, प्रकृति है। प्रकृति के साथ परमात्मा हो ही नहीं सकता। परमात्मा और प्रकृति का क्या लेना-देना? परमात्मा होगा तो सृष्टि के साथ हो सकता है, क्योंकि वह स्रष्टा है। प्रकृति के साथ तो उसकी कोई जरूरत ही नहीं; वह बिल्कुल गैर-जरूरी परिकल्पना हो गया। उसका कोई उपयोग नहीं है। उसका कोई स्थान नहीं है। अगर जैन घर में पैदा हुए तो तुमने यही सुना है कि यह अस्तित्व सदा से है। इसलिए जैन नहीं पूछता कि यह संसार किसने बनाया। यह प्रश्न जैन नहीं पूछता। यह प्रश्न हिंदू पूछते हैं, मुसलमान पूछते हैं, ईसाई पूछते हैं; बौद्ध नहीं पूछते, सांख्यवादी नहीं पूछते। नास्तिक तो पूछेंगे ही क्यों! कम्युनिस्ट तो पूछेंगे ही क्यों! वैज्ञानिक भी नहीं पूछते कि यह संसार किसने बनाया। क्योंकि प्रश्न में ही तो कहीं उत्तर छिपा होता है। यह पूछते ही वे लोग हैं जिनको सिखाया गया है कि संसार परमात्मा ने बनाया।

अगर तुम हिंदू घर में पैदा हुए हो तो तुम्हें यह धारणा बैठ जाएगी कि संसार परमात्मा ने बनाया। और अगर तुम रूस में पैदा हुए तो यह धारणा बैठ जाएगी कि परमात्मा है ही नहीं, आत्मा है ही नहीं। सब मिट्टी का खेल है! मिट्टी से ज्यादा कुछ भी नहीं है।

इसीलिए तो स्टैलिन लाखों लोगों को काट सका--बेरहमी से, बिना किसी दिक्कत के। जब मिट्टी ही है तो मिट्टी के घड़े फोड़ने में क्या दिक्कत? कोई पीड़ा न हुई उसे, कोई चिंता न पकड़ी। निश्चिंत काटता रहा। अनुमान किया जाता है कि उसने अपने पूरे शासन काल में कम से कम एक करोड़ लोग मारे। शायद दुनिया में किसी आदमी ने इतने लोग नहीं मारे। मगर एक करोड़ लोग मार कर उसके प्राणों में कहीं भी कोई पीड़ा न उठी, कोई तीर न छिदा, कोई दंश न उठा! कोई, भाले की तो बात छोड़ो, कांटा भी नहीं अटका।

उसका कारण हैः उसका दर्शनशास्त्र; मार्क्सीय विचार-परंपरा। ईश्वर तो है नहीं, आत्मा तो है नहीं; मनुष्य तो केवल बस मिट्टी का पुतला है। जो चार्वाकों की भारत में धारणा थी वही मार्क्स की धारणा है। रूस में बच्चा-बच्चा जानता है कि ईश्वर नहीं है, क्योंकि वही सिखाया गया है। जिस परंपरा में तुम पैदा हुए हो, जो संस्कार तुम पर डाला गया है, वही उत्तर तुम सीख लेते हो। और आश्चर्य तो यह है कि प्रश्न भी तुम्हारे उधार हैं। उधार प्रश्न ही साफ-सुथरे होते हैं।

इस बात से मैं खुश हूं हंसा, कि तुझे पता नहीं कि कुछ पूछना भी चाहती हूं या नहीं। इसका अर्थ है कि अब तू उधार प्रश्नों और उत्तरों से मुक्त हो रही है। यह अच्छा लक्षण है। अब तू अपने धुंधलके में प्रवेश कर रही है। ऐसे ही जैसे बाहर की धूप से कोई बहुत दुपहरी में घर लौटे, तो घर के भीतर एकदम अंधेरा मालूम होता है। बैठे थोड़ा, सुस्ताए थोड़ा, तो धीरे-धीरे रोशनी दिखाई पड़ने लगती है। क्योंकि आंखों को समायोजित होना पड़ता है। जब तुम धूप में होते हो बाहर, तो तुम्हारी आंखों के जो लेंस हैं, वे छोटे हो जाते हैं, ताकि ज्यादा धूप भीतर प्रवेश न कर जाए। स्वचालित तुम्हारी आंखों के लेंस हैं। तुम्हारी पुतली छोटी हो जाती है। कभी धूप से आकर आईने के सामने देखना, तुम पाओगे कि तुम्हारी काली पुतली बिल्कुल छोटी हो गई है; जितनी धूप होगी उसी अनुपात में छोटी हो गई है। उतनी छोटी पुतली लेकर जब तुम घर में प्रवेश करोगे तो एकदम अंधेरा मालूम पड़ेगा। अब पुतली बड़ी होनी चाहिए, तब तुम्हें रोशनी मालूम पड़ेगी। लेकिन पुतली को बड़ा होने में थोड़ा सा समय लगेगा। बैठो, सुस्ताओ, थोड़ा जलपान करो, धीरे से आंख की पुतली बड़ी हो जाएगी, लेंस बड़ा हो जाएगा। अब ज्यादा खुल जाएगी तुम्हारी आंख। तो जहां अंधेरा था वहां रोशनी दिखाई पड़ने लगेगी।

ठीक ऐसी ही घटना हमारे अंतर्जगत में घटती है। तुम बाहर ही बाहर भटके हो--सदियों से, जन्मों-जन्मों से--तो तुम्हारी आंख की पुतलियां बाहर के लिए आदी हो गई हैं। जब भीतर आओगे तो पहले अंधेरा मिलेगा। यह निरंतर ध्यानियों का अनुभव है। समस्त बुद्धपुरुष कहते हैं कि भीतर प्रकाश ही प्रकाश है। और जब भी कोई ध्यान करता है तो पहले उसे अंधेरा मिलता है।

मेरे पास लोग आकर कहते हैं कि यह तो बात बड़ी उलटी है! हम तो जब भी आंख बंद करके बैठते हैं तो अंधेरा ही अंधेरा! और समस्त जाग्रत पुरुषों की, सभी प्रज्ञावान पुरुषों की एक ही उदघोषणा है कि भीतर प्रकाश ही प्रकाश है। कबीर तो कहते हैंः जैसे हजारों सूरज एक साथ उग जाएं, इतनी रोशनी है! कहां है वह रोशनी? हमें तो अंधेरा दिखाई पड़ता है।

वह अंधेरा तुम्हें दिखाई पड़ता है, क्योंकि तुम बहुत जन्मों के बाद भीतर जा रहे हो। बहुत दिन धूप में रह लिए हो, आंखें तुम्हारी धूप की आदी हो गई हैं, बाहर की आदी हो गई हैं। थोड़ा समय लगेगा। थोड़ी प्रतीक्षा करनी होगी। थोड़ा धैर्य रखना होगा। कोई तीन महीने से नौ महीने का समय लग जाता है तब कहीं भीतर की रोशनी की थोड़ी सी झलक मिलनी शुरू होती है।

यह अच्छा लक्षण है हंसा कि तू कहती है, मुझे कुछ पता नहीं क्या पूछना है। पूछना भी है या नहीं पूछना, यह भी पता नहीं।

यह शुभ लक्षण इसलिए है कि यह उधारी से मुक्ति की शुरुआत है। अब बासे प्रश्न तो तेरे पास नहीं हैं जो औरों ने सिखाए हैं और न बासे उत्तर तेरे पास हैं। अब पहली बार निर्भार होकर भीतर गति हो रही है।

तू कहती हैः "प्रश्न कुछ बनता नहीं।"

जैसे-जैसे शांत होती जाएगी, जैसे-जैसे अंतर्गमन होगा, प्रश्न बनेगा ही नहीं। लोग सोचते हैं कि जब हम भीतर पहुंच जाएंगे, आत्म-साक्षात्कार होगा, तो हमें सभी प्रश्नों के उत्तर मिल जाएंगे। गलत सोचते हैं, बिल्कुल

गलत सोचते हैं। उन्हें भीतर का कुछ भी पता नहीं है। जब तुम भीतर पहुंचोगे तो सभी प्रश्नों के उत्तर नहीं मिलेंगे; सभी प्रश्न गिर जाएंगे, समाप्त हो जाएंगे। उत्तर नहीं मिलेगा, प्रश्न नहीं बचेंगे। और जब निष्प्रश्न हो जाते हो, उसी दशा का नाम समाधान है, समाधि है। उत्तर कुछ भी नहीं है, लेकिन चूंकि प्रश्न नहीं बचा, इसलिए समाधान है, समाधि है। निष्प्रश्न हो जाना ही ध्यान की चरम अवस्था है।

लेकिन यहां बहुत लोग पूछते हैं, तो हंसा के मन में भी होता होगाः सब पूछते हैं, मैं भी पूछूं। कुछ पूछना चाहिए। जिज्ञासा, कुतूहल, कि इतने लोग पूछते हैं तो जरूर कुछ पूछने योग्य है!

पूछने योग्य कुछ भी नहीं है। मैं भी तुम्हें जो उत्तर दे रहा हूं, वे उत्तर नहीं हैं; तुम्हारे प्रश्नों की हत्याएं हैं। मेरा काम उत्तर देना नहीं है; मेरा काम तुम्हारे प्रश्नों को जड़ से काटना है।

इस भेद को तुम ठीक से समझ लेना। उत्तर देते हैं पंडित। उनसे तुम पूछो। उनके पास उत्तर तैयार होते हैं, रेडीमेड होते हैं। तुम पूछो नहीं कि उनका उत्तर आया। इधर तुमने पूछा कि उधर उत्तर शुरू। तुम पूरा पूछ भी नहीं पाओगे, उनका उत्तर शुरू, कि निकले गीता के श्लोक, कि उपनिषद के वचन, कि वेद की ऋचाएं, उद्धरण पर उद्धरण।

पश्चिम का एक बहुत बड़ा विचारक, कर्नल इंगरसोल, जो कि पश्चिम के श्रेष्ठतम वक्ताओं में से एक था इस सदी के, जब भी खड़ा होकर बोलता था तो पहले हाथ से कुछ इशारा करता, अंगुलियां हवा में घुमाता। लोग बड़े हैरान होते थे कि वह करता क्या था! हमेशा! जैसे कोई जादू-मंतर! और जब खतम करता व्याख्यान, तब दूसरे हाथ से अंगुलियां हवा में घुमाता और बैठ जाता। बार-बार लोग उससे पूछते, वह हंसता और चुप रह जाता। जब मर रहा था इंगरसोल, तो उसके साथियों ने पूछा कि अब तो बता जाओ! महाराज, अब तो तुम चले भी! अब तो बता दो कि वह क्या मंतर, क्या जादू? जरूर कुछ राज होगा, क्योंकि तुम जैसा बोलने वाला देखा भी नहीं। तुम बोलते क्या थे, जैसे फूल झरते थे! तुम बोलते क्या थे, तुम्हारे शब्द-शब्द में गीत था। तुम बोलते क्या थे, कि जो सुने वही मोहित हो, वही मुग्ध हो जाए। मगर इस बात का रहस्य तुम हमेशा छिपाए रहे। अब तो जा रहे हो, अब तो बता जाओ!

इंगरसोल हंसा और उसने कहा, उसमें कुछ रहस्य नहीं था, न कोई जादू-मंतर। जब मैं बोलता था, शुरू करता था, तो अपने बाएं हाथ से उद्धरण के चिह्न बनाता था--उद्धरण के चिह्न! और जब बोलना बंद करता था तो अपने दाएं हाथ से उद्धरण के चिह्न बंद करता था। मैं यह कह रहा था कि इसमें मेरा कुछ भी नहीं है, सब उधार है। यह सब किसी और का है, सब बासा है। मगर यह मैं कहना भी नहीं चाहता था साफ-साफ और छिपाना भी नहीं चाहता था। छिपाता तो मेरी अंतरात्मा को दुख होता था और कहता तो मेरे अहंकार को चोट लगती थी। सो बिना कहे सूचना दे देता था कि जो समझ सकते हों समझ लें।

पंडित के पास तो जो भी होता है, सब उद्धरणों का, अपना कुछ भी नहीं है।

मेरे पास तुम्हें देने को कोई उत्तर नहीं है। न मुझे कुरान से कुछ लेना है, न बाइबिल से, न गीता से। मेरे पास एक अंतर्दृष्टि है, एक अनुभव है, एक स्वानुभूति है। तुम जब प्रश्न पूछते हो तो मैं उत्तर देता हुआ मालूम पड़ता हूं, उत्तर देता नहीं। हां, तुम्हारा प्रश्न पकड़ कर तुमको जितना झकझोर सकता हूं उतना झकझोरता हूं। प्रश्न के बहाने तुम्हारी जड़ें जितनी काट सकता हूं काटता हूं। प्रश्न के बहाने तुम्हारे मन को जितना मिटा सकता हूं मिटाता हूं। तुम कुछ पूछो तो, तुम कुछ न पूछो तो।

अब देखते हो, हंसा ने कुछ पूछा ही नहीं। और यह घंटा पूरा होने आ गया। अब मैं हंसा की पिटाई किए ही जा रहा हूं!

हंसा कहती है: "प्रश्न कुछ बनता नहीं।"

बनने की आवश्यकता भी नहीं है। प्रश्न तो खुजलाहट की तरह हैं। खुजाओ, अच्छा लगता है। मगर थोड़ी ही देर में लहू निकल आएगा। अच्छा तो यही है कि न खुजाओ। मुश्किल होता है। जब खुजलाहट उठे तो न खुजाना बहुत मुश्किल होता है। बड़े संयम की जरूरत पड़ती है। उपवास करना आसान है, खुजलाहट उठे और न खुजाना बहुत मुश्किल है। ऐसी मिठास मालूम होती है खुजलाहट में, ऐसा लगता है कि नहीं खुजलाएंगे तो कुछ चूक जाएगा; खुजा लेंगे तो कुछ अमृत की वर्षा होने को है। और पता है तुम्हें कि खुजलाहट से कुछ मिलने वाला नहीं। और हो सकता है चमड़ी छिल जाए, कहीं ज्यादा लोभ में ज्यादा खुजा जाओ।

और खुजलाहट भी बड़े अजीब समयों पर उठती है, जब नहीं उठनी चाहिए। जैसे ध्यान करने बैठो। वैसे कभी न उठे। कभी पालथी मार कर ध्यान करने बैठे? सिद्धासन लगाया कि बस कहीं पैर में चींटी चलेगी। देखोगे उघाड़ कर तो चींटी वगैरह कुछ भी नहीं है। कोई कल्पना। कहीं पीठ में खुजलाहट।

एक अमरीकी महिला तो मुझ पर दया करके एक प्लास्टिक का हाथ ले आई। उसमें बैटरी भी लगी हुई थी। मैंने पूछा, यह क्या है? उसने कहा कि मैं तो जब भी ध्यान करने बैठती हूं तो मेरी पीठ में खुजलाहट उठती है। तो अमरीकी तो अमरीकी हैं, वे तो हर चीज के लिए साधन बना लेते हैं। हाथ से क्या खुजाना! और फिर पीठ में कई दफा हाथ पहुंचता भी नहीं। तो उन्होंने प्लास्टिक का हाथ बना लिया है और बैटरी उसमें लगी है। बस प्लास्टिक का हाथ कर दिया पीठ पर और बटन दबा दी तो वह प्लास्टिक का हाथ खुजला देता है। वह कहने लगी कि मुझे तो ध्यान में बड़ी झंझट एक ही होती है कि बस पीठ में खुजलाहट उठती है और ध्यान के ही वक्त उठती है। तो मैंने सोचा कि आपकी क्या दशा नहीं होती होगी! चौबीस घंटे ध्यान में रहते हैं, कितनी खुजलाहट नहीं उठती होगी पीठ में! सो इस हाथ को मैं ले आई।

वह जो खुजलाहट उठती है--कभी पैर में, कभी हाथ में, कभी पीठ में, कभी यहां, कभी वहां--वह सिर्फ शरीर कह रहा है कि मुझ पर ध्यान दो। कहां जाते हो? ऐसे कैसे चले! इतनी आसानी से न जाने दूंगा। ऐसे नाता तोड़ लोगे जन्मों-जन्मों का? चलो, वापस लौटो! यह रही खुजलाहट, आना ही पड़ेगा।

मन में भी खुजलाहट उठती है। जब तुम ध्यान करने बैठोगे, न मालूम कैसे-कैसे प्रश्न उठेंगे, जो कभी नहीं उठते। जिंदगी हो गई, काम में, धाम में लगे रहते हो। लेकिन जब शांत होकर बैठोगे तो मन न मालूम कैसे-कैसे प्रश्न खड़े करेगा! तुम खुद ही चौंकोगे कि कभी सोचा भी न था कि मेरे पास भी ऐसा दार्शनिक मन है! कि मैं भी ऐसा अदभुत विचारक हूं! कि ऐसे-ऐसे विचारों की तरंगें और लहरें आ रही हैं! लेकिन वह मन सिर्फ कह रहा है कि कहीं इतनी आसानी से जाने न देंगे। दोस्ती यूं छोड़ दोगे? नाते-रिश्ते ऐसे तोड़ दोगे? विवाह करना आसान है, तलाक देना आसान नहीं है। विवाह तो किसी से भी करना हो तो कर सकते हो। जब तलाक देने जाओगे, तब मुसीबतें आनी शुरू होती हैं। फिर अदालत है, और वकील हैं, और संपत्ति का बंटवारा है, और बच्चों का बंटवारा है, और हजार झंझटें।

मुल्ला नसरुद्दीन अपनी पत्नी को तलाक देना चाहता था। दोनों में झगड़ा बहुत हो गया। गए वकील के पास। वकील ने कहा कि ठीक है, आधा-आधा बांट लो।

नसरुद्दीन ने कहा कि देखो, कमाया सब मैंने, खून-पसीना मैंने किया और आधा-आधा!

पत्नी ने कहा कि तुम इसमें ही भला मानो कि इतने पर भी मैं राजी हूं।

ठीक, नसरुद्दीन ने कहा कि ठीक, आधा-आधा बांट लेते हैं। सवाल अड़ गया इस पर कि तीन बच्चे हैं, इनको कैसे आधा-आधा बांटें? तो पत्नी ने पकड़ा हाथ नसरुद्दीन का और कहा कि चलो घर, अगले साल आएंगे।

वकील भी बहुत चौंका! वकील ने भी कहा कि स्त्री है होशियार, कि चार करके आएंगे तब बंटवारा कर लेंगे, ऐसी क्या जल्दी पड़ी है!

वकील ने कहा कि तुझे पक्का है कि साल भर में चार हो जाएंगे?

उसने कहा, बिल्कुल पक्का है।

और वकील ने कहा, तू तो अभी कह रही थी कि तेरा पति तुझे बिल्कुल प्रेम ही नहीं करता और रात-रात भर नदारद रहता है और शराबखाने में पड़ा रहता है और आता भी है तो इतना पीए रहता है कि प्रेम इत्यादि करने का सवाल ही नहीं उठता। उसको होश ही नहीं रहता कि कौन कौन है, क्या क्या है। एक दिन रात को सूटकेस खोल कर बैठा हुआ था और मैंने पूछा कि क्या कर रहे हो? तो बोला, कुरान पढ़ रहे हैं।

एक रात रास्ते में कुट-पिट कर आया था, तो बचाने के लिए कि कहीं सुबह पता न चले, दर्पण के सामने खड़े होकर सारे मुंह पर उसने मलहम लगा ली। और सुबह पत्नी ने कहा कि उठ! सारा दर्पण खराब कर दिया! दर्पण पर क्यों मलहम लगाई? होश ही कहां था उनको, वह तो सोच रहा था कि अपने मुंह पर लगा रहा है, लगा रहा था दर्पण पर, जहां-जहां मुंह दिखाई पड़ रहा था वहां-वहां बेचारा लगा रहा था।

तो इसको जब इतना ही होश नहीं है कि कहां दर्पण, कहां मुंह, तुझे पक्का है कि अगले साल तक चार बच्चे हो जाएंगे?

पत्नी ने कहा कि अब तुमने बात ही छेड़ दी है तो मैं सत्य ही कहे देती हूं। अगर इस पर मैं निर्भर रहती तो तीन भी नहीं होते। इस पर निर्भर ही कौन है! तुम बेफिक्र रहो, मैं चार लेकर आऊंगी।

विवाह तो आसान है, तलाक मुश्किल मामला है। और जब तुम शरीर से और मन से तलाक देने लगते हो--और वही संन्यास है, वही ध्यान है--तो दोनों उपद्रव खड़े करते हैं, सब तरह के उपद्रव खड़े करते हैं। शरीर खींचता हैः मेरी तरफ ध्यान दो! मन खींचता हैः मेरी तरफ ध्यान दो! मन नई-नई वासनाएं उठाता है, मन नई-नई अभीप्साएं-आकांक्षाएं जगाता है। मन कहता हैः अभी तो जवान हो। ये कोई दिन हैं ध्यान करने के? अरे ध्यान तो बुढ़ापे में किया जाता है! यह कोई समय है संन्यास का? संन्यास तो पचहत्तर साल के बाद लिया जाता है!

बड़े होशियार लोग रहे होंगे जिन्होंने तय किया था कि पचहत्तर साल के बाद संन्यास लेना। जैसे कि पचहत्तर साल के बाद भी कुछ बच रहता है संन्यास लेने को! पचहत्तर साल के बाद क्या संन्यास लेने को बच रहता है? पहली तो बात यह कि पचहत्तर साल तक तुम ही न बचोगे। वैज्ञानिक खोजें कहती हैं कि आज से पांच हजार साल पहले आदमी चालीस साल से ज्यादा जिंदा ही नहीं रहता था। जितने भी अस्थिपंजर मिले हैं अब तक आदमी के, पांच हजार साल पुराने, उनमें कोई भी चालीस साल से ज्यादा उम्र का नहीं मिला। और यह बात ठीक भी मालूम पड़ती है।

अभी भी औसत उम्र भारत जैसे देश की कितनी है? अभी भी यहां मुश्किल से कभी कोई पचहत्तर के पार हो पाता है। और कैसे-कैसे कठिन काम करने पड़ते हैं! जैसे मोरारजी देसाई बेचारे स्वमूत्र पी-पी कर जीने की कोशिश कर रहे हैं--और जी लें, और जी लें! क्या-क्या नहीं आदमी करने को राजी है! और जीकर क्या करोगे? और स्वमूत्र पीओगे! स्वमूत्र पीएंगे और जीने के लिए, और जीकर क्या करेंगे? और स्वमूत्र पीएंगे!

कभी-कभी कोई जीता रहा होगा पचहत्तर साल तक। लेकिन आम आदमी तो पचहत्तर साल के पहले कभी का खतम हो जाता है। वेदों में आशीर्वाद भी ऋषि देते हैं कि सौ वर्ष जीओ। अगर लोग आमतौर से ही सौ वर्ष जीते थे, तो यह आशीर्वाद तो आशीर्वाद नहीं होगा, अभिशाप हो जाएगा। अगर लोग आमतौर से ही सौ

वर्ष जीते थे, तो किसी से कहो कि सौ वर्ष जीओ, तो वह नाराज हो जाएगा, कि यह कोई आशीर्वाद हुआ! अरे सौ वर्ष तो हम खुद ही जीएंगे, इसमें तुम्हारा आशीर्वाद क्या है? और शायद एक सौ दस वर्ष जीते, तो तुम और हमारा सौ किए दे रहे हो!

पुरानी व्यवस्था थीः पच्चीस वर्ष गुरुकुल, पच्चीस वर्ष गृहस्थ, फिर पच्चीस वर्ष वानप्रस्थ। वानप्रस्थ का मतलब जंगल जाना नहीं। वानप्रस्थ का अर्थ हैः जंगल जाने की तैयारी। पच्चीस साल लगाओगे? हद हो गई! फिर पचहत्तर साल में संन्यास। पच्चीस साल फिर संन्यास, आखिरी। पचहत्तर से सौ। जैसे कि हरेक आदमी सौ साल जीता रहा हो।

लोग चालीस साल से ज्यादा नहीं जीते थे। हां, लेकिन यह हो सकता है कि उनको उम्र लंबी मालूम पड़ती हो। कई कारणों से। एक तो जिंदगी बहुत शिथिल थी। जिंदगी इतनी शिथिल थी, इतनी धीमी गति थी, बैलगाड़ी की गति थी, कि जिंदगी बहुत लंबी मालूम पड़ती हो। क्योंकि हमारी प्रतीतियां गति पर निर्भर होती हैं। अभी जिंदगी में बहुत त्वरा है, बहुत गति है। सब चीजें भागी जा रही हैं! तब हर चीज ऐसी धीमी-धीमी बह रही थी कि लगता था कि बहुत समय है। और लोगों को समय का बोध भी नहीं था। लोगों को गिनती भी नहीं थी। अब भी गांव का, देहात का आदमी, गैर पढ़ा-लिखा आदमी नहीं जानता उसकी उमर कितनी है। कौन रखे हिसाब! कैसे रखे हिसाब! उसका हिसाब उसकी दस अंगुलियों पर खतम हो जाता है। उसकी गिनती बस दस पर पूरी हो जाती है। दस पर बस आ जाता है। तो हो सकता है उसे चालीस साल ऐसे लगते हों कि बहुत जी लिया।

लोग कहते हैं कि विवाहित आदमी अविवाहित आदमियों से ज्यादा जीते हैं। ऐसा मुझे नहीं लगता। मुझे तो लगता है कि विवाहित आदमी को जिंदगी लंबी मालूम पड़ती है। काटे नहीं कटती, कि हे प्रभु, कब कटे! प्रार्थना कर-कर के... ! बहुत लंबी मालूम पड़ती है।

मनोवैज्ञानिक इस सत्य से राजी हैं कि दुख में समय लंबा मालूम होता है, सुख में छोटा मालूम होता है। तुम अगर अपनी प्रेयसी के पास बैठे हो, तो घंटा ऐसे बीत जाता है जैसे मिनट। तुम्हें शक होता है कि घड़ी धोखा तो नहीं दे गई! कि घड़ी भी तो दुश्मनी नहीं कर गई! और तुम अपनी पत्नी के पास बैठे हो, तो मिनट ऐसे बीतते हैं जैसे घंटा। बीतते ही नहीं लगते। घड़ी को तुम बार-बार देखते हो, बस लगता है... कई दफा कान में लगा कर देखते हो कि बंद तो नहीं हो गई! जब कोई किसी स्त्री के पास बैठ कर घड़ी को कान में लगा कर सुनने लगे, तो समझ लेना उसकी पत्नी है। उसे शक हो रहा है कि घड़ी बंद तो नहीं हो गई! समय बीतता ही नहीं मालूम हो रहा है।

दुख में समय नहीं बीतता। सुख में समय तीव्रता से बीतता है। और दुनिया बहुत दुख में रही होगी अतीत में। तब चालीस साल सौ साल जैसे लगते रहे होंगे। लेकिन सौ साल आदमी अतीत में भी जीया नहीं था कभी। अभी भी बहुत थोड़े से लोग जी पाते हैं। और बहुत समृद्ध देश में ही लोग सौ साल की उम्र पार कर पाते हैं। लेकिन मन बहाने खोजता है। मन ने खूब बहाना खोज लिया कि पचहत्तर साल के बाद संन्यास लेना। न रहेगा बांस, न बजेगी बांसुरी! तुम निश्चिंत किए जाओ जो करना है, पचहत्तर साल के बाद संन्यास लेंगे। बचोगे ही नहीं तो संन्यास कौन लेगा?

इस मन और तन की, दोनों की तैयारी नहीं होती तुम्हें छोड़ देने की। दोनों खींचते हैं। सब तरह के प्रलोभन और आकर्षण देते हैं। ऐसे मन में प्रश्न उठते हैं। प्रश्न बस ऐसे ही हैं जैसे शरीर में खुजलाहट उठे। प्रश्न उलझाने के उपाय हैं। मैं उनके उत्तर नहीं देता। मैं तो सिर्फ तुम्हें सचेत कर रहा हूं कि इन प्रश्नों में मत पड़ना।

और मैं जो उत्तर देता मालूम पड़ रहा हूं, वे उत्तर नहीं हैं, वे केवल प्रश्नों का निरसन है, उनका विसर्जन है। उनको काट कर फेंक देना है।

तू कहती है, हंसाः "प्रश्न कुछ बनता नहीं।"

बनाना ही क्यों? बनाने की उत्सुकता क्यों? मत बनने दे। अच्छा ही है कि नहीं बनता। अच्छी घड़ी करीब आ गई। अब निष्प्रश्न में छलांग ले।

और तू कहती हैः "पता नहीं कुछ पूछना भी चाहती हूं या नहीं।"

यह भी अच्छी सूचना है कि तू भीतर के संध्या-काल में प्रवेश कर रही है, जहां सब धुंधला होता है, कुछ साफ नहीं होता। सब रहस्यमय होता है। और थोड़े गहरे, और थोड़े गहरे--और चीजें स्पष्ट होने लगेंगी। फिर न कुछ सुनने को रह जाता है, न कुछ पूछने को रह जाता है, न कुछ जानने को रह जाता है। हां, सदगुरु के साथ बैठने का रस होता है। सत्संग का रस होता है।

सत्संग का अर्थ समझते हो न! बस साथ बैठना। मस्तों की टोली जहां बैठ जाए! दीवाने जहां इकट्ठे हों। परवाने जहां बैठें। जहां परवाने डोलें--आनंद में, उल्लास में। जहां रसधार बहती हो, मधु-धार बहती हो। जहां सबके हृदय एक-दूसरे से जुड़े हों और तरंगित होते हों। फिर सत्संग ही रह जाता है। सदगुरु के साथ उठना-बैठना या सहयात्रियों के साथ उठना-बैठना। धीरे-धीरे सत्संग ही बचेगा। यह पूर्व-तैयारी है। जो मैं तुमसे बातें कर रहा हूं, वे सिर्फ इसलिए हैं कि तुम्हारे मन के जाल कट जाएं। मकड़ी के जाल हैं, कुछ बड़े कठिन नहीं हैं काट देने। तुमने ही बुन लिए हैं। जरा सा श्रम चाहिए--जरा सा! और जाल की तरह टूट जाएंगे, मकड़ी के जाल की तरह टूट जाएंगे।

लेकिन हम हैं अलाल। हम उतना सा भी श्रम नहीं लेते। हम तो मकड़ी के जाल को घना करते जाते हैं, और बुनते चले जाते हैं। धीरे-धीरे अपने ही बनाए हुए जालों में खो जाते हैं--अपने ही शब्दों में, अपने ही शास्त्रों में, अपनी ही धारणाओं में, अपने ही पक्षपातों में, मान्यताओं में, विश्वासों में, अंधविश्वासों में। इतनी भीड़ लग जाती है हमारे चारों तरफ कि हम उन्हीं में खो जाते हैं। फिर हमें पता ही नहीं रहता कि हम कौन हैं, किसलिए हैं, क्या प्रयोजन है। यह जीवन का मेला हम झमेले में बदल लेते हैं।

यह मेला रह सकता है--और बड़ा आनंदपूर्ण मेला है! मगर हमारे भीतर इतना झमेला हो जाता है कि कुछ भी हमें फिर सूझता नहीं; और जो भी सूझता है, गलत सूझता है। हमारी आंखों में इतने परदे हो जाते हैं, जालियों पर जालियां हो जाती हैं, कुछ का कुछ दिखाई पड़ने लगता है।

न तो प्रश्न पूछो, न उत्तर इकट्ठे करो। शून्य में चलना है। हंसा, उड़ चल वा देस! शून्य के देश में चलना है। शून्य की यात्रा करनी है। क्योंकि शून्य में ही पूर्ण का अवतरण है।

दूसरा प्रश्नः ओशो, हमें किसी से प्रेम है या मोह है, यह कैसे जाना जा सकता है?

दीपिका, प्रेम हो तो प्रश्न उठेगा ही नहीं। प्रश्न उठता है तो मोह ही होगा। जैसे कोई पूछे कि प्रकाश है या अंधेरा है, हम कैसे जानें? अगर तुम्हारे पास आंखें हैं, तो यह प्रश्न उठेगा ही नहीं। और अगर तुम्हारे पास आंखें नहीं हैं, तो ही यह प्रश्न उठ सकता है। अंधा ही पूछ सकता है कि प्रकाश है या अंधेरा? दिन है या रात? अंधे को पूछना ही पड़ेगा। अंधे के पास अपनी आंख नहीं है; उसे दूसरों की आंखों पर निर्भर रहना पड़ता है।

प्रेम तो हृदय की आंख है। प्रेम तो हृदय का खुल जाना है कमल की भांति। प्रेम का फूल खिलेगा और तुम्हें पता न चलेगा! यह असंभव है। ऐसा कभी हुआ ही नहीं। ऐसा नियम नहीं है जीवन का। जब प्रेम का फूल खिलता है तो पता चलता ही चलता है। छिपाना भी चाहो तो नहीं छिपता। तुम्हीं को पता नहीं चलेगा, औरों को भी, जिनको प्रेम की थोड़ी सी भी झलक मिली है, उनको भी पता चल जाएगा। क्योंकि उनको भी गंध लग जाएगी, उन तक भी तुम्हारी किरणें पहुंचने लगेंगी। जिन्होंने प्रेम को जाना है वे भी तुम्हें देख कर पहचान लेंगे कि इस व्यक्ति के जीवन में भी प्रेम जगा है, ज्योति जगी है, नूतन का आविर्भाव हुआ है।

प्रेम क्रांति है। प्रेम मृत्यु है अहंकार की। इससे बड़ी कोई क्रांति होती ही नहीं। क्योंकि जहां अहंकार मरा वहां परमात्मा आया। अहंकार ने जगह खाली की कि परमात्मा के आने के लिए अवकाश बना। प्रेम है प्रार्थना। प्रेम है परमात्मा।

लेकिन प्रश्न उठता है। प्रश्न इसीलिए उठता है कि जिसे हम जी रहे हैं वह प्रेम नहीं है, मोह है। मोह अंधा है; प्रेम के पास आंख होती है। जो लोग कहते हैं कि प्रेम अंधा होता है, गलत कहते हैं। प्रेम ही बस अंधा नहीं होता, और सब अंधा होता है।

लेकिन उनका कहना भी ठीक है। वे जब प्रेम कहते हैं तो उनका मतलब मोह से होता है, क्योंकि उनका अनुभव भी मोह का है, प्रेम का अनुभव नहीं है। वे मोह के लिए अंधा कहना चाहते हैं, प्रेम को अंधा कह रहे हैं। तुम्हारे शब्दकोशों में प्रेम और मोह में कोई भेद नहीं है। तुम्हारे जीवन के कोश में भी कोई भेद नहीं है। बस तुम्हारी हालत अंधे जैसी है। तुम चाहो भी तो भेद कैसे करोगे प्रकाश में और अंधकार में?

एक अंधा आदमी रात विदा हो रहा है एक मित्र के घर से। मित्र ने दया करके कहा कि रात अंधेरी है, अमावस की रात है, तुम हाथ में लालटेन लेते जाओ।

वह अंधा आदमी हंसने लगा। उसने कहा, मैं लालटेन का क्या करूंगा? मैं तो अंधा हूं, मुझे तो दिन में भी रात ही है। पूर्णिमा हो तो भी अमावस है। मुझे तो पूर्णिमा और अमावस में कोई भेद दिखाई पड़ता नहीं। मुझे तो दिन और रात में भी भेद नहीं दिखाई पड़ता। लालटेन का मैं क्या करूंगा? लालटेन क्या मेरे काम आएगी?

लेकिन मित्र भी तार्किक था, उसने कहा कि यह तो मैं भी समझता हूं कि तुम अंधे हो, तुम्हारे हाथ में लालटेन तुम्हारे किसी काम की नहीं। लेकिन दूसरे तो तुम्हें देख लेंगे अंधेरे में कि तुम आ रहे हो, तो कोई दूसरा तुमसे अंधेरे में न टकरा जाए। इतना ही बचाव हो जाए तो क्या कम है!

यह तर्क सही मालूम पड़ा, उचित मालूम पड़ा। अंधा राजी हो गया। लेकर लालटेन चला था। सौ ही कदम गया होगा कि एक आदमी आकर टकरा गया। अंधा तो बड़ा हैरान हुआ। उसकी लालटेन भी गिर गई और फूट गई, वह खुद भी गिर पड़ा और उसने कहा कि भई क्या है? क्या तुम भी अंधे हो? इस गांव में तो मैं अकेला ही अंधा हूं, तुम क्या परदेश से आ गए कोई और?

वह आदमी हंसने लगा, उसने कहा कि मैं अंधा नहीं हूं, लेकिन तुम्हारी लालटेन बुझ गई। तुम बुझी लालटेन लिए चल रहे हो।

अंधे आदमी को पता भी कैसे चले कि लालटेन जली है कि बुझी! उसको लालटेन पकड़ा दी तो वह चल पड़ा। ऐसे ही तुम सिद्धांतों को पकड़े हुए हो; वे बुझी हुई लालटेनें हैं। कृष्ण के हाथ में जिस गीता में ज्योति थी, तुम्हारे हाथ में उसी गीता में कोई ज्योति नहीं है। तुम्हारे हाथ उसकी ज्योति को बुझा देने के लिए पर्याप्त हैं। तुम काफी हो। तुम्हारे हाथ में और गीता में ज्योति रह जाए, यह असंभव है। तुम्हारे हाथ में तो जो पड़ेगा, तुम्हारा रंग ले लेगा। कुरान पड़ेगी तो लड़खड़ा जाएगी। बाइबिल तुम्हारे हाथ में पड़ेगी, अंधी हो जाएगी। वेद

तुम्हारे हाथ में पड़ेंगे, मूर्च्छित हो जाएंगे। तुम गजब के हो! तुम्हें सिद्धांत और शास्त्र नहीं बदल पाएंगे; तुम सिद्धांत और शास्त्रों को बदल दोगे। तुम्हारे साथ तुम्हारे शास्त्र भी लड़खड़ा रहे हैं, जगह-जगह नालियों में पड़े हैं--तुम्हारे साथ। तुम जहां हो वहीं तुम्हारे शास्त्र भी होंगे।

एक आदमी रात खूब पी लिया; होशियार आदमी था, दार्शनिक था, बड़ा विचारक था। तो घर से सोच कर आया था कि जब ज्यादा पी लूंगा तो कहीं ऐसा न हो कि रास्ते में रास्ता भटक जाऊं, कि दिखाई न पड़े। तो घर से ही लालटेन लेकर गया था। जब डट कर पी ली, उठाई अपनी लालटेन और चल पड़ा। गिरा एक नाली में। टकराया एक भैंस से। उठा कर अपनी लालटेन देखी कि बात क्या है! है तो लालटेन! किसी तरह सम्हला, फिर उठा, फिर एक दीवार से टकराया। कई जगह गिरा, घुटने तोड़ लिए। सुबह उसे उठा कर लोगों ने घर पहुंचाया। बेहोश पड़ा था। और दोपहर को शराबघर का मालिक आया और कहा कि महाराज, आप रात को मेरे तोते का पिंजरा उठा लाए। यह आपकी लालटेन वापस लो और मेरा तोता मुझे वापस करो।

तब उसने गौर से देखा, खोजबीन की, तो पता चला कि हां। मगर तोता तो मर चुका था। इतना टकराया--भैंसें, दीवारें! बेचारा तोता कैसे बचता! उसने कहा कि भई यह पिंजरा ले जाओ, तोता तो चल बसा।

मगर तोते के पिंजरे को वह लालटेन समझता रहा!

तुम जब तक प्रेम को जानो न, तभी तक ऐसा सवाल उठ सकता है। दीपिका, यह पूछना कि हमें किसी से प्रेम है या मोह है, यह कैसे जाना जा सकता है? यह प्रश्न ही बताता है कि मोह है। प्रेम तो नहीं है। प्रेम हो तो तत्क्षण जाना जाता है। कुछ लक्षण इतने स्पष्ट होते हैं! जैसे जब किसी से मोह होता है तो हम उस पर निर्भर हो जाते हैं, उसके बिना सुख नहीं मिलता, अकेलापन खलता है, काटता है, दूभर होता है। लेकिन जब हमें किसी से प्रेम होता है तो हम उस पर निर्भर नहीं होते। हमारी स्वतंत्रता अखंडित रहती है। हम अकेलेपन में भी उतने ही आनंदित होते हैं जितने साथ। हमारे आनंद में कोई भेद नहीं पड़ता।

सच तो यह है कि मोह व्यक्तियों से होता है, मोह एक संबंध है; और प्रेम एक स्थिति, संबंध नहीं। प्रेम व्यक्तियों से नहीं होता। प्रेम की एक भावदशा होती है। जैसे दीया जले, तो जो भी दीये के पास से निकलेगा उस पर रोशनी पड़ेगी। वह कुछ देख-देख कर रोशनी नहीं डालता कि यह अपना आदमी है, जरा ज्यादा रोशनी; कि यह अपना चमचा है, जरा ज्यादा; कि यह तो पराया है, मरने दो, जाने दो अंधेरे में! रोशनी जलती है तो सब पर पड़ती है। फूल खिलता है, सुगंध सबको मिलती है। कोई मित्र नहीं, कोई शत्रु नहीं।

प्रेम एक अवस्था है, संबंध नहीं। मोह एक संबंध है। प्रेम तो बड़ी अदभुत बात है। जब तुम्हारे भीतर प्रेम होता है तो तुम्हारे चारों तरफ प्रेम की वर्षा होती है--जिसको लूटना हो लूट ले; जिसको पीना हो पी ले; जो पास आ जाए उसकी ही झोली भरेगी; जो पास आ जाए उसकी ही प्याली भर जाएगी। फिर न कोई पात्र देखा जाता, न अपात्र। फिर न कोई अपना है, न कोई पराया।

प्रेम तुम्हारी आत्मा का जाग्रत रूप है। और मोह तुम्हारी आत्मा की सोई हुई अवस्था है। मोह में तुम अपने से दुखी हो। इसलिए सोचते हो कि दूसरे के साथ रह कर शायद सुख मिल जाए। खुद तुम सुखी नहीं हो। अकेले में सिवाय नरक के और कुछ भी नहीं है। इसलिए दूसरे की तलाश करते हो। और बड़ा मजा यह है कि दूसरा भी तुम्हारी तलाश इसीलिए कर रहा है कि वह भी अकेले में दुखी है। अब दो गलतियां मिल कर कहीं एक ठीक होता है! दो गलतियां मिल कर दो गलतियां हो जाती हैं; दो ही नहीं, दुगनी ही नहीं, गुणनफल हो जाता है। तुम भी भिखमंगे, दूसरा भी भिखमंगा। वह इस आशा में है कि तुमसे मिलेगा आनंद; तुम इस आशा में हो कि उससे मिलेगा आनंद। दोनों एक-दूसरे को आशा दे रहे हो। दोनों लगाए अपने-अपने कांटे में आटा बैठे हो।

दोनों फंसोगे। और जल्दी ही पाओगे कि कांटा निकला, आटा था नहीं। आटा ऊपर-ऊपर था; वह तो कांटे को छिपाने के लिए था। और जब कांटा छिद जाएगा, तब बड़ी देर हो गई। तब भाग निकलना मुश्किल हो गया।

पहले अकेले दुखी थे, अब दो जन मिल कर इकट्ठे दुखी होओगे। और स्वभावतः, जब दो जन इकट्ठे मिल कर दुखी होंगे तो ज्यादा दुखी होंगे। क्योंकि दोनों की कुशलता मिल जाएगी, दोनों का गणित मिल जाएगा, दोनों एक-दूसरे पर टूट पड़ेंगे और दोनों एक-दूसरे से बदला लेंगे।

मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी मरी, तो जब उसके ताबूत को उतारा जा रहा था घर से, तो जीने पर ताबूत--जीना संकरा था--ताबूत जरा टकरा गया। ताबूत को धक्का लगा, ढक्कन खुल गया ताबूत का और पत्नी उठ कर बैठ गई! वह अभी मरी नहीं थी। शायद बेहोश हो गई होगी, कोमा में हो गई होगी। वह तीन साल और जिंदा रही। फिर मरी। फिर सच में ही मरी। फिर ताबूत में रखी गई। और जब लोग उतारने लगे जीने से तो मुल्ला ने कहा, भाइयो, जरा सम्हाल कर! जरा जीने का ख्याल रखना। क्योंकि हमको भी जीने दो! तुम्हारी जरा सी भूल के लिए तीन साल जो हमने भोगा है... ।

पहले लोग अकेले दुखी हैं, फिर दोहरे दुखी हो जाते हैं।

मोह दुख लाता है। मोह तुम्हारी पीड़ा को सघन करता है। हां, शुरू-शुरू में जब तक आटा थोड़ा सा रहता है... ज्यादा देर नहीं रहता, कितनी देर रहेगा! सचाई तो कांटे की है, जो भीतर छिपा है। जब प्रेमी एक-दूसरे से मिलते हैं शुरू-शुरू में तो क्या बातें करते हैं! क्या कविताएं! क्या रोमांस! चांद-तारे तोड़ लाऊंगा तुम्हारे लिए, प्रेमी कहता है।

एक प्रेमी अपनी प्रेयसी से कह रहा था कि हिमालय लांघ जाऊंगा तेरे लिए। अरे आग बरसती हो तो भी आ जाऊंगा। तुझे बिना देखे एक क्षण नहीं रह सकता।

जब विदा होने लगे तो प्रेयसी ने कहा कि कल सांझ आ रहे हो न?

उसने कहा कि निर्भर करता है, अगर पानी न गिरा।

पहाड़ लांघना और आग की वर्षा में आ जाना, वे सब बातें हैं, प्यारी बातें हैं! अच्छी लगती हैं सुनने में, कहने में। लोग प्रफुल्लित होते हैं एक-दूसरे से इस तरह की बातें कह कर। मगर जल्दी ही इन बातों का रंग उड़ जाता है, असलियतें जाहिर हो जाती हैं। लोग रंग-रोगन लगा कर मिलते हैं, मुखौटे ओढ़ कर मिलते हैं। फिर जल्दी ही मुखौटे उतर जाते हैं। फिर असलियत दिखाई पड़नी शुरू होती है कि दोनों तरफ दुखी जन हैं, दोनों तरफ अंधकार है, दोनों तरफ भिखमंगे हैं। और अब बड़ी मुश्किल हो गई, अब छूटें कैसे! छूट कर भी जाएं तो कहां जाएं! क्योंकि और तरफ भी सब तरफ भिखमंगे ही हैं।

मोह सिर्फ एक धोखा है, थोड़ी देर को खा सकते हो। प्यारा भ्रम है, थोड़ी देर भरमा सकते हो। मगर जल्दी ही दुख पाओगे और जल्दी ही भ्रम टूटेगा।

बुझ गई न जो बन एक आह अधरों पर
ऐसी तो कोई चाह नहीं जीवन में।
मेरे पैरों को मिली थकन की सीमा
मेरे मस्तक को गुरुता की नादानी
दिल में घिर आया करता एक धुआं सा
आंखों में घिर आता है अक्सर पानी।

अनजानी दुनिया का अनजाना क्रम है,
अनजाना सा ही सकल ज्ञान औ" भ्रम है,
अनजान दिशा का मैं अनजाना पंथी
केवल असफलता है जानी-पहचानी।
खो गई न हो जो अंधकार में सहसा
ऐसी तो कोई राह नहीं जीवन में।
उल्लास-तरंगों से जो अधर
विचुंबितवे लिए हुए हैं चुभती जलन तृषा की,
आंसू में उमड़ा जो अभाव का सागर
उनमें ही लहरें हैं छवि की सुषमा की।
मेरे पीछे अगणित खंडहर के क्रंदन
मेरे आगे बस धुंधला सा सूनापन
यह राग-रंग, यह चहल-पहल सब कुछ है,
पर अपने अंदर मैं कितना एकाकी।
पल भर को जो अवलंब मुझे दे सकती
ऐसी तो कोई थाह नहीं जीवन में।
जिसको देखा वह खोया अपने-पन में
जिसको पाया वह बेसुध यहां जलन में।
पागल सा मैंने अलख जगाया दर-दर।
जिससे पूछा है वही एक उलझन में।
प्रत्येक मौन में कुछ घुटता सा भय है
प्रति स्वर में कुछ कांपता हुआ संशय है।
कितने निःश्वासों से बोझिल है धरती
हैं डूब चुके कितने उच्छवास गगन में।
विचलित कर सकती जो कि नियति के क्रम को
ऐसी तो कोई आह नहीं जीवन में।
बुझ न गई जो बन एक आह अधरों पर
ऐसी तो कोई चाह नहीं जीवन में।

जरा अपने जीवन को देखा, दीपिका। जरा सजग होकर, साक्षी होकर अपने जीवन की जांच-परख करो। यहां दुख के अतिरिक्त और क्या पाया है? जिन-जिन से आशा की थी सुख की, उन-उन से दुख पाया है। जिनसे जितनी आशा की थी सुख की, उनसे उतना ज्यादा दुख पाया है। जितनी बड़ी अपेक्षा थी, उतना ही बड़ा नरक निर्मित हुआ है।

मोह नरक-निर्माण की कला है। मोह नरक है और प्रेम स्वर्ग।

लेकिन दीपिका, तेरे प्रश्न को भी मैं समझता हूं। क्योंकि लोग तो मोह को ही प्रेम कहे चले जाते हैं। मैं भी जब प्रेम की बात करता हूं तो मैं प्रेम की बात करता हूं, तुम मोह की ही बात समझते हो। तुम तो वही समझ

सकते हो, जिससे तुम परिचित हो। वही तुम्हारी भाषा है। मैं कहता हूंः प्रेम करो। तुम सुनते होः मोह करो। तुम सोचते हो मैं तुम्हारे मोह का समर्थन कर रहा हूं। तुम्हारे मोह के लिए मुझसे बड़ा दुश्मन खोजना मुश्किल है। लेकिन मैं प्रेम का निश्चित ही समर्थक हूं।

इस प्रेम और मोह के भेद को तुम भी नहीं कर पाते हो, तुम्हारे तथाकथित महात्मागण भी नहीं कर पाते हैं। उनको जब भी मोह को गाली देनी होती है, वे प्रेम को गाली देते हैं। तुमको जब मोह की प्रशंसा करनी होती है, तुम प्रेम शब्द का उपयोग करने लगते हो। दोनों की भ्रांति एक ही है। तुम्हारे महात्मा मोह से इतने डर गए हैं कि प्रेम से घबड़ा गए हैं। वे भाग खड़े हुए हैं। उन्होंने प्रेम के जगत से सारे संबंध तोड़ लिए हैं। मगर ध्यान रहे, उनके जीवन में निराशा के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है, हो भी नहीं सकता। उनका परमात्मा से जोड़ने वाला जो सेतु था, वह भी टूट गया।

प्रेम के अतिरिक्त तुम परमात्मा से जुड़ भी न सकोगे, और कोई उपाय नहीं है। प्रेम और ध्यान एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जितने ध्यानी बनोगे उतने प्रेमी हो जाओगे। और जितने प्रेमी बनोगे उतने ध्यानी हो जाओगे। ध्यान अर्थात जागरण। और प्रेम अर्थात उस जागरण से तुम्हारे भीतर जो आनंद-उल्लास होगा, उसे बांटना।

बुद्ध ने कहा हैः जो ध्यान को उपलब्ध होता है, जो ध्यान की प्रज्ञा को उपलब्ध होता है, उससे करुणा, प्रेम की धाराएं बहने लगती हैं।

बहेंगी ही। भीतर ध्यान होगा तो बाहर तुम्हारे जीवन में प्रेम की तरंगें उठेंगी। लेकिन जिसने मोह के डर से प्रेम से ही दुश्मनी कर ली, उसके जीवन में तो सिवाय अंधकार के, रिक्तता के, और कुछ भी नहीं होगा। इसलिए तुम्हारे महात्माओं के जीवन बिल्कुल खाली हैं, थोथे हैं--तुमसे भी ज्यादा थोथे हैं। तुम्हारी जिंदगी में कुछ तो है, कम से कम दुख तो है। दुख है तो सुख भी कभी हो सकता है। नरक तो है। नरक है तो कभी-कभी स्वर्ग की भी संभावना है। सीढ़ी लगा लेंगे। लेकिन तुम्हारे महात्मा बिल्कुल रिक्त हैं; उनके भीतर कुछ भी नहीं है। तुमसे गालियां उठती हैं, घबराने की कोई जरूरत नहीं है; क्योंकि जिन शब्दों से गालियां बनती हैं उन्हीं शब्दों से गीत बन जाते हैं। तुम्हारे महात्माओं से गालियां नहीं उठतीं, मगर गीत भी नहीं उठते। तुम्हारे महात्मा बिल्कुल ही खाली हो गए हैं--शून्य के अर्थों में नहीं, रिक्तता के अर्थों में। शून्य तो बड़ी अदभुत घटना है; वह तो केवल समाधिस्थ को उपलब्ध होती है। रिक्तता तो कोई भी कर ले सकता है।

तुम्हारे महात्मा शांत नहीं हैं। मरघट का सन्नाटा शांति नहीं है। ऐसी शांति चाहिए जो नाचती हो, गाती हो, गुनगुनाती हो। ऐसी शांति चाहिए जहां फूल खिलते हों, पक्षी गीत गाते हों, मोर नाचते हों, कोयल पुकारती हो, पपीहा पी-कहां की टेर देता हो। ऐसी शांति चाहिए। मरघट की शांति... तुम्हारे महात्मा मरघट की शांति से भरे हुए हैं। मुर्दा है वह शांति। जैसे लाश पड़ी हो तो शांत हो जाती है। मगर उसको तुम शांत थोड़े ही कहते हो, कि देखो महात्मा जी कैसे शांत लेटे हुए हैं! अभी-अभी तक संसारी थे, अब महात्मा हो गए। अभी तक बोलते थे, चालते थे; अभी तक उलझे थे संसार के माया-मोह में। अब देखो कैसे शांत पड़े हैं--बिल्कुल निर्लिप्त, अनासक्त!

नहीं, लाश को तुम महात्मा नहीं कहते। लेकिन तुम जिनको महात्मा कह रहे हो, वे करीब-करीब लाशें हैं। और भ्रांति कहां से पैदा हो रही है? प्रेम और मोह के बीच भेद नहीं किया जा सक रहा है। महात्मा मोह के डर से प्रेम से भी भाग जाते हैं। उनको डर लगता है कि जहां प्रेम होगा वहां कहीं मोह न हो जाए। और तुम प्रेम की आकांक्षा में मोह में पड़ जाते हो। दोनों ही एक सी भूल कर रहे हो।

मैं चाहता हूं, दीपिका, तुम इस भेद को स्पष्ट समझ लो। मोह वह है जो दुख लाए, बंधन लाए, परावलंबन लाए। मोह वह है जो तुम्हें दूसरे पर निर्भर कर दे। तुम्हारा सुख जब दूसरे में हो तो मोह है। और तुम्हारा आनंद जब अपने भीतर हो और आनंद को बांटने की गहन अभीप्सा उठे, तो प्रेम। मोह संबंध है; प्रेम तुम्हारी सहज स्वाभाविक अवस्था है।

अंतिम प्रश्नः ओशो, लल्लू के पट्ठों के संबंध में थोड़ा कुछ और कहें!

मधुकर, अब और नहीं। अब कुछ और नहीं। कहने को बचा भी क्या है! सांप निकल गया, लकीर रह गई है। कि रस्सी जल गई, ऐंठ रह गई है। कहने योग्य क्या है अब? लल्लू के पट्ठे जितना उपद्रव कर सकते थे, कर चुके; जितना ऊधम कर सकते थे, कर चुके।

लल्लू के पट्ठे लोग इसलिए उनको कहने लगे कि उल्लू के पट्ठे कहना ठीक नहीं मालूम पड़ता। बाप का नाम लल्लू था, सो लल्लू के पट्ठे। उसी तरह अब कहते हैं लोगः लल्लू मर गए, औलाद छोड़ गए। तर्जुमा तुम कर लो।

साठ साल तक लल्लू के पट्ठे गर्भ में रहे और कहते रहेः पहले आप! पहले आप! फिर साठ साल के अनुभव से उन्होंने यह सीखा कि ये साठ साल बेकार गए, तो बाहर निकलते ही से कहने लगे--पहले मैं! सो बात आप-आप से शुरू हुई और मैं-मैं तू-तू पर समाप्त हुई।

लेकिन राजनीति का सारा संसार ही मैं-मैं तू-तू का संसार है, झगड़े-झांसे का, उपद्रव का, कोलाहल का। चलता है, क्योंकि तुम सब मूर्च्छित हो। तुम मूर्च्छित हो तो तुमसे ज्यादा मूर्च्छित लोग चाहिए जो तुम्हारे नेता हो जाएं। तुमसे थोड़ी ज्यादा ही मूर्च्छा चाहिए, तो ही नेता हो सकते हैं। तुम अगर अंधकार में हो तो तुमसे भी ज्यादा अंधे लोग चाहिए। तुम अगर अहंकार में हो तो तुमसे ज्यादा अहंकारी लोग चाहिए जो तुम्हारा नेतृत्व करें। तुम अपने ही जैसों को खोज लेते हो; जिम्मेवारी किसी और की नहीं, तुम्हारी ही है। कसूर उनका क्या है? जहां मांग होती है वहां पूर्ति शुरू हो जाती है। तुम्हारी मांग है गलत लोगों की।

एक मित्र ने पूछा है कि इस देश के सारे राजनेता स्वयं को और अपने सगे-संबंधियों को तो संपन्न करके प्रसन्न हो गए, मगर इस देश की पूरी गरीब जनता का क्या होगा? इनका उद्धार कौन करेगा?

जब तक तुम इस आशा में रहोगे कि कोई इनका उद्धार करे, तब तक उद्धार होने वाला नहीं। उस आशा में ही भूल है। कोई उद्धार करे! क्यों? किसी ने ठेका लिया है तुम्हारे उद्धार का? तुम उपद्रव खड़े करो, उद्धार कोई करे! क्या बुरा किया तुम्हारे राजनेताओं ने, बेचारों ने कम से कम अपना उद्धार कर लिया! स्वावलंबन इसी का तो नाम है। सर्वोदय इसी को तो कहते हैं! गांधी जी की यही तो महान शिक्षा है! चलो इतना ही हुआ कि वे, उनके सगे-संबंधी संपन्न हो गए। कुछ तो हुआ! कुछ गरीबी तो मिटी! कुछ लोगों की तो मिटी! किसकी मिटी, यह इतनी महत्वपूर्ण बात नहीं है।

लेकिन यह तुम्हारी आशा--कि करोड़ों-करोड़ों गरीबों का उद्धार कौन करेगा? यह धारणा ही गलत है। तुम सदियों-सदियों से इसी आशा में बैठे हो, इसीलिए तो दीन हो, इसीलिए दरिद्र हो, कि कोई उद्धार करना चाहिए तुम्हारा।

अपने पैरों पर खड़े होओ। अपना भरोसा करो। अपना अंधापन छोड़ो। अपनी मूढ़ताएं छोड़ो। तुम तो मूढ़ताएं करो, उद्धार कोई और करे! तुम बच्चे पैदा करो, तुम बच्चों की कतार लगाए चले जाओ, तुम गरीबी बढ़ाए चले जाओ, और उद्धार कोई और करे! तुमने बड़ी कृपा की।

तुम्हारी गरीबी के कारण तुम हो। तुम्हारी सारी धारणाएं मूढ़तापूर्ण हैं। और अगर कोई तुम्हारी धारणाओं को गलत कहे तो तुम नाराज हो। और तुम्हारी धारणाएं जब तक न टूटें, तब तक तुम्हारे जीवन में कोई सूर्योदय नहीं हो सकता।

पहली तो बात, तुम गरीबी को सम्मान देते रहे हो सदियों से। तो रहो गरीब अब। जिसको सम्मान दोगे वही हो गया। खूब तुमने प्रार्थना की परमात्मा से, उसने सुन ली! अब इसमें उसका क्या कसूर है? दरिद्रनारायण! महात्मा गांधी गरीब को कहते हैं--दरिद्रनारायण! सो अच्छा ही है, सभी दरिद्र हैं सो सभी दरिद्रनारायण हैं, सो देवता ही देवता समझो! अछूत हैं, सो हरिजन हैं।

हरिजन हम कहते थे भक्तों को--कबीर को, नानक को, रैदास को, फरीद को, बुल्लेशाह को। इनको हम कहते थे हरिजन। लेकिन अब बाबू जगजीवन राम हरिजन हैं!

अभी राम जी बड़ी मुश्किल में पड़े हैं। अब कोशिश कर रहे हैं कि किसी तरह सीता मैया के चरणों में कैसे जगह मिल जाए! देख रहे हो राम जी की कैसी गति है!

हरिजनों को कह दिया कि तुम तो प्रभु के प्यारे हो। अछूत शब्द अच्छा था; उसमें चोट थी, उसमें दंश था, उसमें पीड़ा थी। कोई अछूत नहीं होना चाहता था। हरिजन तो कोई भी होना चाहे। गरीब को कह दिया--दरिद्रनारायण! हम तो अच्छे शब्द खोजने में बड़े कुशल हैं! हम तो शब्दों में ही सब मामला हल कर लेते हैं। और दरिद्रता का तुम बड़ा सम्मान करते हो। अगर कोई आदमी नंगा खड़ा हो जाए--महात्मा! तो तुम अगर सब नंगे हो गए तो सब महात्मा हो गए, ऐसी परेशानी की बात क्या है? कोई धन-दौलत छोड़ देता है--महावीर ने धन-दौलत छोड़ी, बुद्ध ने राज छोड़ा, तब बेचारे जाकर महात्मा हो पाए। छोड़ने की झंझट करनी पड़ी। तुम्हारे पास है ही नहीं, तुम उस झंझट से भी बचे। तुम तो बुद्ध-महावीर हो ही! जरा तुम सोचो तो तुम पर परमात्मा की कृपा कैसी है! उनको तो बेचारों को झंझट करनी पड़ी--छोड़ो पहले। पिछले पापों के फल से उनको धन मिला होगा; सो पुण्य करने के लिए उसको छोड़ा। तुमने कोई पाप कभी किए नहीं, सो धन तुम्हें मिला नहीं, छोड़ने का कोई सवाल नहीं। तुम मुक्त ही पैदा हुए हो!

यह ख्याल छोड़ो कि तुम्हारा कोई और उद्धार करेगा। इसी उद्धारक की तलाश में तो तुम पांच हजार साल से दीन-दरिद्र हो। यह दरिद्रता तुम्हारी कोई आज की है? तुम सदा से पीड़ित और दुखी हो। और जिम्मेवारी तुम्हारी है। और यह आशा रखना कि कोई उद्धार करेगा, बस अपने को भुलावा देना है। कोई तुम्हारा उद्धार नहीं करेगा। किसी को क्या पड़ी?

एक मां, एक ईसाई मां अपने बच्चे को समझा रही थी कि बेटा, दूसरों की सेवा करनी चाहिए। परमात्मा ने तुम्हें इसीलिए बनाया है कि दूसरों की सेवा करो।

छोटे बच्चे कभी-कभी बड़े महत्वपूर्ण सवाल पूछते हैं। उस बेटे ने कहा, अच्छा! तो माने लेते हैं कि परमात्मा ने मुझे इसलिए बनाया है कि दूसरों की सेवा करूं। दूसरों को किसलिए बनाया? इसलिए कि मैं उनकी सेवा करूं? या कि इसलिए कि वे मेरी सेवा करें?

मां जरा दिक्कत में पड़ी। उसे भी सूझा नहीं एकदम से कि अब क्या कहे! बच्चे कई दफे दिक्कत में डाल देते हैं तुम्हें। उनके पास दृष्टि साफ होती है। उसने बात बिल्कुल सीधी देख ली। उसने कहा, यह भी क्या उलटी-सीधी

बात है! मुझे बनाया इसलिए कि उनकी सेवा करूं; उनको बनाया इसलिए कि मेरी सेवा करें। अरे भैया तो तुम अपनी सेवा करो, मैं अपनी सेवा करूं। क्यों इतनी झंझट खड़ी करनी!

उद्धार कौन तुम्हारा करेगा? क्यों करेगा?

नहीं लेकिन, लोग बैठे हैं--यदा-यदा हि धर्मस्य... कि जब-जब धर्म की ग्लानि होगी, कृष्ण भगवान आएंगे। सो होने दो ग्लानि! और करो ग्लानि! अभी पूरी नहीं हुई, नहीं तो आते। जाहिर है कि पूरी नहीं हुई ग्लानि। और ग्लानि करो! और जितना उपद्रव मचा सको, मचाओ! तब कृष्ण भगवान आएंगे और तब तुम्हारा उद्धार करेंगे।

जैसे उस समय उन्होंने कोई उद्धार कर दिया था! उस समय कौन सा उद्धार हो गया था? महाभारत का युद्ध हुआ, उद्धार क्या हुआ? लोग मरे, कटे, पिटे; उद्धार क्या हुआ? हजारों-लाखों स्त्रियां विधवा हो गईं; उद्धार क्या हुआ? हजारों बच्चे, लाखों बच्चे अनाथ हो गए; उद्धार क्या हुआ? और कृष्ण के मरने के बाद कृष्ण के अनुयायियों का, यादुकों का क्या हुआ? एक-दूसरे को मार-काट कर खतम हो गए सब! उद्धार किसका हुआ?

कि क्या तुम सोचते हो रामचंद्र जी तुम्हारा उद्धार कर गए? कौन किसका उद्धार कर सकता है! सीता मैया का उद्धार करने में ही बड़ी मुश्किल पड़ी उनको। और वह भी पूरा नहीं हो पाया, एक धोबी ने बीच में दिक्कत दे दी। और फिर सीता मैया को जंगल भेजा। क्या उद्धार? किसका उद्धार? कौन कब किसका उद्धार कर पाया है! यह धारणा ही गलत है।

दूसरे देशों में यह धारणा नहीं है, इसलिए वे अपना उद्धार करने में समर्थ हो सके। अमरीका में कोई नहीं सोचता कि हमारा कोई उद्धार करे। प्रत्येक व्यक्ति मेहनत कर रहा है, श्रम कर रहा है। तो अमरीका ने इतनी समृद्धि पैदा कर ली! और समृद्धि को सम्मान दे रहा है।

तुम दरिद्रता को सम्मान दो और चाहो कि समृद्ध हो जाओ, यह कैसे होगा? अभी भी तुम नंगों को पूज रहे हो--कोई मुनि, महामुनि, कोई महात्मा--क्योंकि वे लंगोटी ही लगाए हुए हैं। कोई करपात्री, क्योंकि वे हाथ में भोजन करते हैं। तुम्हारी सारी की सारी चेष्टाएं और तुम्हारे आदर-सम्मान बता रहे हैं कि तुम दीनता के पुजारी हो। तो तुम दीन रहोगे। तुम्हारी ये धारणाएं गिरनी चाहिए। अगर तुम समृद्ध होना चाहते हो तो समृद्धि का सम्मान करो, तो तुम समृद्ध हो सकते हो। क्योंकि तुम जिसका सम्मान करोगे, उसको तुम पैदा करोगे।

तुम्हारे राजनेताओं का इतना कसूर नहीं है। वे तो तुम्हारी ही पैदाइश हैं। वे लल्लू के पट्ठे हैं, तुम लल्लू हो! तुमको अपनी जिम्मेवारी अपने हाथ में लेनी होगी।

मैं व्यक्ति का सम्मान करता हूं। मेरा भरोसा व्यक्ति में है। समाज, समूह, राजनीति, धर्म, इन सब बातों में मेरा भरोसा नहीं है। मेरा भरोसा है व्यक्ति की आत्मा में, व्यक्ति के जागरण में। तुम जागो! तुम होश से भरो! तुम अपने जीवन को व्यवस्था दो! तुम अपने जीवन से गलत धारणाएं अलग करो। तुम अपने पक्षपात छोड़ो। तुम अतीत से अपना छुटकारा करो।

तुम सड़े जा रहे हो अतीत के बोझ के नीचे, मगर अहंकार है कि घोषणा किए जाता है कि हम महान! दो कौड़ी पास नहीं, मगर हम महान! कि भारत-भूमि पुण्य-भूमि! देवता यहां पैदा होने को तरसते हैं! मैं तो सोच ही नहीं पाता कि देवता क्यों यहां पैदा होने को तरसेंगे? किस कारण? और अगर देवता यहां पैदा होने को तरसते हैं तो उनका दुर्भाग्य, तो उनकी मति मारी गई।

मगर तुम इस तरह के अहंकारों से भरे हुए हो। ये सब अहंकार छोड़ने जरूरी हैं। यह जाति अहंकार से सड़ रही है। और यह जाति भ्रांत धारणाओं में उलझी हुई है। प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन को संयोजित करना जरूरी है। ऐसे ही यह समाज संयोजित हो सकता है।

और सब से बड़ी धारणा जो तुम्हें सता रही है, वह यह कि कोई उद्धारक आए। किसको क्या पड़ी? कोई उद्धारक न कभी आया है, न कभी आएगा। बुद्ध ने अपना उद्धार किया। और जिनको अपना उद्धार करना था, उन्होंने बुद्ध से सीख ले ली। महावीर ने अपना उद्धार किया। और जिनको अपना उद्धार करना था, उन्होंने महावीर की रोशनी से अपने दीये जला लिए।

यहां एक रोशनी जली है। तुम्हें अपना दीया जलाना हो, जला लो। लेकिन व्यर्थ की बातों में मत पड़ो--कि इस देश का उद्धार कौन करेगा? कौन उद्धारक आएगा? अवतार कब होगा परमात्मा का? ईश्वर क्यों चुप है?

आज इतना ही।

छठवां प्रवचन

मुझको रंगों से मोह

पहला प्रश्नः ओशो, आसक्ति क्या है? हम चीजों, विचारों और व्यक्तियों से इतने आसक्त क्यों हो जाते हैं? और क्या आसक्ति से छुटकारा भी है?

आनंद मैत्रेय, आसक्ति केवल इस बात का लक्षण है कि हमें स्वयं की संपदा का कोई पता नहीं। आसक्ति आत्म-साक्षात्कार का अभाव है। जैसे अंधकार प्रकाश का अभाव है। अंधकार की अपनी कोई सत्ता नहीं है। इसलिए अंधकार के साथ सीधा कुछ भी करने का कोई उपाय नहीं है। अंधकार को हटाओ, हटा न सकोगे; भीतर लाना चाहो, भीतर न ला सकोगे। अंधकार के साथ कुछ किया ही नहीं जा सकता। कुछ करना हो अंधकार के साथ, तो प्रकाश के साथ कुछ करना होगा। अंधकार चाहिए, प्रकाश बुझाओ। अंधकार नहीं चाहिए, प्रकाश जलाओ। क्योंकि अंधकार केवल प्रकाश की अनुपस्थिति है। ऐसी ही आसक्ति है।

जो व्यक्ति अपने भीतर नहीं झांकता, उसके जीवन में आसक्ति होगी। जो व्यक्ति अपने भीतर झांक लेगा, उसके जीवन से आसक्ति समाप्त हो जाएगी। क्योंकि जिसने भीतर झांका, उसने पाया--संपदाओं की संपदा, साम्राज्यों का साम्राज्य! न उससे बड़ा कोई आनंद है, न उससे महत्वपूर्ण कोई अनुभूति है, न उससे बड़ा कोई आशीष। चूंकि हम भीतर नहीं झांकते, इसलिए लगता है कि भीतर तो हम खाली-खाली हैं। भ्रांति है। भीतर लगता है हम रिक्त हैं। और इस रिक्तता से घबराहट होती है। इस रिक्तता को कैसे भरें, इसी आकांक्षा से आसक्ति पैदा होती है। वस्तुओं से, व्यक्तियों से, विचारों से, ज्ञान से, त्याग से, भोग से, तप से--किसी भी तरह इस खालीपन को भर लें! खालीपन खलता है। खालीपन काटता है। खालीपन में दीनता मालूम पड़ती है, हीनता मालूम पड़ती है--मैं और खाली! खोखा! जिसके भीतर कुछ भी नहीं! हीरे-जवाहरात तो दूर, कंकड़-पत्थर भी नहीं! तो हम अपने को भरने में लग जाते हैं।

हालांकि हम कभी भर नहीं पाते। इस तरह भरने का कोई उपाय नहीं है। और भर हम कभी पाएंगे भी नहीं। क्योंकि भीतर तो हम भरे ही हुए हैं, वहां जगह भी नहीं है। लेकिन बाहर हम चीजें इकट्ठी कर ले सकते हैं, अंबार लगा ले सकते हैं। और फिर डर लगता है कि कोई छीन न ले, कोई चुरा न ले, कोई झपट न ले। तो छाती से लगा कर बैठते हैं।

सोचते तो हैं लोग कि धन पास होगा तो चैन होगा, विश्राम होगा। लेकिन जितना धन पास होता है, उतनी ही बेचैनी बढ़ती है, घटती नहीं। एक नई बेचैनी शुरू होती है कि कहीं छिन न जाए! कम से कम गरीब को छिनने की बेचैनी तो न थी! कम से कम गरीब को कोई लूट तो सकता न था!

पाम्पेई का प्रसिद्ध नगर ज्वालामुखी में जला। आधी रात ज्वालामुखी फूटा। लोग भागे। जिसको जो बन सका, ले सका अपने साथ, लेकर भागा। जिसके पास सोना था, चांदी थी, धन था, हीरे-जवाहरात थे, जो जिसके पास था। जिनके पास कुछ ज्यादा नहीं था--कोई अपना बिस्तर ही लिए है, कोई अपना फर्नीचर ही लिए है। लोग ढो रहे हैं और भाग रहे हैं!

सिर्फ एक आदमी, एक गांव का मस्त फकीर बस अपने हाथ की छड़ी घुमाते हुए, जैसे सुबह टहलने निकला हो--ऐसे ही वह रोज टहलने निकलता था--ऐसे ही चल पड़ा। जिसने देखा उसी को हैरानी हुई; उसने कहा, कुछ भी बचा नहीं पाए?

फकीर ने कहा, मजे की बात यह है कि बचाने को अपने पास कुछ था नहीं। हम से ज्यादा सुखी इस गांव में कोई भी नहीं है। सभी रो रहे हैं--उस सब के लिए जो छूट गया। अपने पास कुछ था ही नहीं, पहले से ही नहीं था। हम पहले से ही होशियार रहे। ज्वालामुखी कभी न कभी फूटेगा ही; आज नहीं कल, कल नहीं परसों, कितनी देर टालोगे! मौत तो आएगी न! हम निश्चिंत थे कि ज्वालामुखी आएगा ही, सो हमने कुछ इकट्ठा न किया था। इसलिए हम मस्त हैं। तुम दुखी हो, हालांकि तुम बड़ा बोझ भी ढो रहे हो। बोझ से भी दुखी हो और जो पीछे छूट गया उससे भी दुखी हो। और जब तुम्हारे पास था, तब भी मैंने तुम्हें कभी सुखी नहीं देखा।

है तो लोग सुखी नहीं हैं। छिन जाए तो लोग दुखी हैं। जैसे दुख को लोगों ने जीवन की शैली बना लिया है!

आसक्ति दुखी आदमी का लक्षण है। अनासक्ति आनंदित व्यक्ति की आभा है। इसलिए मैं तुमसे यह नहीं कहता कि आसक्ति छोड़ो। तुम कैसे छोड़ोगे, जब तक कि तुम अंतर की संपदा को न पहचान लो! इसलिए मेरी शिक्षा भिन्न है। तुम्हें सदियों से कहा गया हैः आसक्ति छोड़ो। मैं तुमसे आसक्ति छोड़ने को नहीं कहता, क्योंकि मैं जानता हूं कि तुम छोड़ोगे भी तो कैसे छोड़ोगे! अगर छोड़ोगे भी तो तुम किसी नई आसक्ति की आशा में छोड़ोगे--स्वर्ग मिले, स्वर्ग के सुख मिलें। और शास्त्र कहते हैंः यहां एक रुपया दान करो तो वहां करोड़ रुपये मिलेंगे।

देखते हो, धर्मशास्त्र न हुआ, लाटरी हुई! एक रुपया--और करोड़ रुपये! लाटरी में भी इतने नहीं मिलते। और लाटरी में भी निश्चित नहीं होता; करोड़ों लोग लगाएंगे, तब एक को मिलेंगे। यहां तो जो लगाए, उसी को मिलता है। सभी के नाम लाटरी खुलती है।

तो जो लोग यहां दान करते हैं--इस आशा में कि करोड़ गुना होकर मिलेगा परलोक में--वे दान नहीं कर रहे हैं, सिर्फ सौदा कर रहे हैं, सिर्फ व्यवसाय कर रहे हैं। वे उस लोक में भी अभी से अपने पैर जमा लेना चाहते हैं। मौत के पार भी वे अपनी धन-संपदा अभी से संगृहीत करने में लग गए हैं। यहीं नहीं, वहां भी उन्होंने पैर फैला दिए हैं। उनकी आसक्ति कम नहीं है।

इसलिए तुम्हारे महात्माओं की स्थिति को मैं अनासक्त नहीं कहता। हां, उनकी आसक्ति जरा सूक्ष्म है, तुम्हारी आसक्ति स्थूल है। तुम धन को पकड़ते, पद को पकड़ते; वे परलोक को पकड़ते हैं। तुम इसी लोक में पकड़ते हो; तुमको वे नासमझ समझते हैं, क्योंकि तुम क्षणभंगुर को पकड़ते हो। और वे ऐसी चीज को पकड़ते हैं जो सदा-सदा रहेगी। वे ज्यादा होशियार हैं, ज्यादा चालबाज हैं, ज्यादा चतुर हैं। वे भीतर ही भीतर तुम पर हंसते हैं कि कर लो तुम दो दिन गुलछर्रे, फिर पीछे पछताओगे; जब हम मजा करेंगे, तब तुम पछताओगे; तब नरक में सड़ोगे, जब हम स्वर्ग में अप्सराओं के साथ बैठेंगे शराब के झरनों के किनारे। आखिर यहां छोड़ा है तो वहां मिलेगा!

जो यहां शराब नहीं पीता, वह ख्याल रखे, उसको स्वर्ग में शराब के झरने मिलने वाले हैं। थोड़ा सा छोड़ोगे, यहां तो कुल्हड़ में पीओगे, वहां झरनों में डूबोगे। अगर झरनों से बचना हो तो कुल्हड़ में पी ही लेना; नहीं तो झरनों से बचने का उपाय नहीं है।

यहां स्त्रियों को छोड़ोगे और वहां अप्सराओं को पाओगे। अप्सराओं की देह स्वर्ण की देह है, उसमें पसीना नहीं आता। सोने में पसीना कहीं आता है! दुर्गंध नहीं होती। अप्सराएं बूढ़ी नहीं होतीं। उर्वशी अभी भी सोलह ही साल की है। हजारों साल हो गए, उम्र जो ठहरी है सो ठहरी है! सोलह तक भी कैसे वहां पहुंची, यह सवाल है। सोलह तक बढ़ती रही उम्र, फिर सोलह पर एकदम ठहरी है! जैसे घड़ी बंद हो जाती है! जैसे बैटरी चुक गई! सदा युवा!

जरा सावधान रहना! जो तुम्हारे महात्मागण यहां छोड़ रहे हैं, वे भीतर-भीतर बड़ा गणित बिठा रहे हैं; भीतर-भीतर सोच रहे हैं कि कौन मिलेगी? उर्वशी मिलेगी, कि मेनका मिलेगी, कि कौन मिलेगी?

एक महात्मा मरे। संयोग की बात, उनका प्रमुख चेला भी मरा। उसी दिन, कुछ ही घंटों बाद। नहीं जी सका बिना अपने गुरु के। चेला भी मस्ती में पहुंचा एकदम स्वर्ग। सोचा कि मेरे गुरु के आस-पास तो उर्वशी होगी, मेनका होगी। कैसा आनंद नहीं लूट रहे होंगे! जब मुझ तक को स्वर्ग मिल रहा है--जो कि मैं ना-कुछ था, अपात्र, उनके चरणों की धूल! बस उनकी सेवा की, इतना ही मेरा पुण्य था। और उन्होंने तो कैसी-कैसी साधनाएं कीं! कैसे-कैसे योग, तप, यम-नियम, व्रत साधे! और वहां जाकर देखा कि हां, एक बहुत सुंदर स्त्री, ऐसी सुंदर स्त्री उसने देखी नहीं थी, उनकी गोद में बैठी है--महात्मा जी की! महात्मा जी नंग-धड़ंग बैठे हैं।

वह तो एकदम उनके पैरों पर गिर पड़ा और कहा कि धन्य हो गुरुदेव, मुझे तो पहले ही से पता था। बाई कौन है--मेनका कि उर्वशी?

महात्मा ने कहा, अबे उल्लू के पट्ठे, चुप रह!

उसने कहा, अभी नहीं चुप रह सकूंगा। एक जिज्ञासा तो आपको जवाब देनी ही पड़ेगी--यह किस पुण्य का फल है? मैं भी यह पुण्य कैसे करूं कि ऐसे ही सुख को उपलब्ध होऊं? यह राज आपने मुझे कभी बताया नहीं।

महात्मा ने कहा, तू समझता ही नहीं, तू बुद्धू का बुद्धू रहा। पहले भी तू बुद्धू था, अब भी बुद्धू है। यह सुंदर स्त्री मेरे पुण्यों के कारण मुझे नहीं मिली है; इसके पापों के कारण मैं इसे मिला हूं। यह दंड भोग रही है।

महात्माओं का भी उपयोग है! एकदम गैर-उपयोगी नहीं हैं। उर्वशी, मेनका इत्यादि को अगर दंड देना हो तो दोगे भी कैसे? भेज दिए कोई मुक्तानंद, अखंडानंद, कि दलो मूंग छाती पर मेनका की!

आसक्ति ऐसे नहीं छूटेगी। ऐसे तो तुम छोड़ोगे भी तो नई आसक्ति निर्मित करोगे। मैं तुमसे कहता ही नहीं कि आसक्ति छोड़ो। मैं तुमसे कहता हूंः आत्मा को जानो। आत्मवान बनो। आत्मवान बनते ही आसक्ति छूट जाती है--बिना किसी हेतु के छूट जाती है; बिना किसी लक्ष्य के छूट जाती है। ऐसे ही जैसे रोशनी होती है, अंधेरा चला जाता है, बचता ही नहीं।

पहली बात ख्याल करोः आसक्ति इसलिए है कि हम रिक्त अनुभव हो रहे हैं। इसलिए किसी तरह अपने को भरते हैं। जितना खालीपन लगता है, उसको किसी भी तरह भरते हैं। भर नहीं पाते, यह बात और। धन से, पद से, प्रतिष्ठा से--करते रहते हैं दौड़-धूप, दांव-पेंच। हालांकि कभी कोई सफल नहीं हुआ है, लेकिन आशा बनी रहती है कि शायद हम सफल हो जाएं, शायद हम अपवाद हों। प्रत्येक व्यक्ति का अहंकार उसे यह समझाए रखता है कि तू अपवाद है; जो नियम सब पर लागू होते हैं, तुझ पर लागू नहीं होते।

गूंजती है विजन-वीणा,
गूंजती है सघन वन की सायं-सायं
निपट एकाकी विजन में,

हम किसे अपनी कहानी कह सुनाएं?

दीप आंचल में छिपाए
दूज की संध्या गई पश्चिम दिशा को,
सौंप सुधि का दीप मुझको
और तम का बोझ इस धूमिल निशा को!
गीत हम कब तलक गाएं?

बुझे से जल रहे तारे,
रात-दिन के बीच की अंतिम घड़ी है!
सौंप अपना शून्य मुझको
रात भी, मुंह फेर, जाने को खड़ी है!
हम यहां से कहां जाएं?

प्रत्येक व्यक्ति दिग्भ्रमित है, किंकर्तव्यविमूढ़ है। हर व्यक्ति चौराहे पर खड़ा है; समझ नहीं पड़ता--कहां जाएं! कोई लक्ष्य सूझता नहीं। क्या पाने योग्य है, इसकी भी कोई सुधि नहीं, कुछ बोध नहीं। तो एक ही उपाय है कि जो दूसरे कर रहे हैं वही हम भी करें; भीड़ जो कर रही है वही हम भी करें। भीड़ इन्हीं कामों में लगी है--रेत के घर बना रही है, कागज की नावें चला रही है। तो हम भी भीड़ के साथ भेड़चाल हो जाते हैं। हम भी उसी चाल से चलने लगते हैं। हम भी अपने चारों तरफ के लोगों से सीख लेते हैं--क्या करना! लोग धन के पीछे दौड़ते हैं, तो हम सोचते हैंः धन में कोई मूल्य होगा, तभी तो दौड़ते हैं। इतने लोग पागल नहीं हो सकते। तो दौड़ो। सोचने का समय किसको है! क्योंकि तुमने खड़े होकर सोचा, इतनी देर में पिछड़ जाओगे, इतनी देर में तो आगे निकल जाते। न मालूम कौन आगे निकल जाए! इसलिए सोच-विचार कर लेंगे पीछे, पहले दौड़ो, पहले पा लो, फिर पा लेने के बाद सोच-विचार कर लेंगे।

लेकिन वह शुभ दिन कभी आता नहीं, क्योंकि जिंदगी छोटी है और आकांक्षाएं अनंत हैं। और वह शुभ दिन इसलिए भी नहीं आता कि तुम जितना पा लो उतनी ही पाने की प्यास और प्रबल हो जाती है। जैसे कोई घी को डालता हो आग में--आग बुझाने को! ऐसे ही हम जितनी आसक्ति को गहराते हैं उतने ही ज्यादा बाहर उलझ जाते हैं। बाहर उलझ जाते हैं तो भीतर जाना मुश्किल हो जाता है। और भीतर बिना जाए कोई उपाय नहीं है--न कभी था, न कभी होगा।

लेकिन बाहर की असफलता देखने योग्य बुद्धिमत्ता भी हमारी नहीं है। हमारी बुद्धि भी बुरी तरह मारी गई है। हमारी बुद्धि मारने के लिए सारा आयोजन किया गया है। समाज है, राजनीति है, चर्च है, धर्म-संप्रदाय हैं--सब मिल कर यह कोशिश करते हैं कि हमारी बुद्धि नष्ट हो जाए। क्योंकि जहां बुद्धि है वहां विद्रोह है। जहां बुद्धि है वहां बगावत है। जहां बुद्धि है वहां तुम जबरदस्ती लोगों को आज्ञाकारी नहीं बना सकते; तुम उनसे मूढ़तापूर्ण आज्ञाएं नहीं मनवा सकते। अगर लोगों में बुद्धि की प्रखरता होगी तो कौन तुम्हारे बुद्धू राजनेताओं के पीछे चलेगा? और कौन तुम्हारे दो कौड़ी के पंडित-पुरोहितों से धर्मज्ञान लेगा? तोते हैं तुम्हारे पंडित-पुरोहित। यंत्रवत दोहराए चले जाते हैं।

मैंने सुना, मुल्ला नसरुद्दीन एक तोता खरीदने बाजार गया। बहुत तोते देखे। एक तोता बहुत सुंदर लगा--स्वस्थ, सुंदर, रंगीन। पूछा दाम। दाम देख कर मुल्ला एकदम चौंक गया। दुकानदार ने कहा, हजार रुपये। नसरुद्दीन ने कहा, तोते के दाम हजार रुपये? दस-पांच रुपये तक बात ठीक। अरे पचास तक, सौ तक बात ठीक। लेकिन हजार रुपये जैसा इसमें क्या है? उस दुकानदार ने कहा, तोते से ही पूछ लो कि इसकी कीमत कितनी है। तो मुल्ला ने उससे पूछा कि तोते मियां, आपके दाम हजार रुपये हैं? उस तोते ने कहा, इसमें क्या शक!

उसने इतने बल से कहा "इसमें क्या शक!" कि मुल्ला को मानना ही पड़ा। अब और तोते से क्या विवाद करना। और लोग हंसने लगे, दुकान पर जो लोग खड़े थे, और ग्राहक भी थे, दुकानदार भी था। कहा, देखा!

हजार रुपये चुकाए और तोते को घर ले आया। घर आकर तोते से पूछा, तोते मियां, तुम्हारा नाम? उसने कहा, इसमें क्या शक! मुल्ला ने कहा, अरे, मैं तुम्हारा नाम पूछ रहा हूं! उसने कहा, इसमें क्या शक! मुल्ला ने जो भी पूछा, उसने कहा, इसमें क्या शक! उसे उतना ही कहना आता था। मुल्ला ने सिर पीट लिया और उसने कहा कि मैं तुझे खरीद लाया, मैं भी महाबुद्धू हूं। उसने कहा, इसमें क्या शक!

पंडित हैं तुम्हारे--तोतों की तरह। कौन इन पंडितों से ज्ञान की आशा रखेगा! इनके पास खुद क्या है? हां, शास्त्रों का उद्धरण दे सकते हैं। लेकिन स्वानुभूति कहां है? स्वयं की ज्योति कहां है? कहां सुना है आत्मा के संगीत को? कहां अनुभव किया है विश्व में व्याप्त चैतन्य को? ये गवाह हैं परमात्मा के? और परमात्मा के गवाह भी हिंदू होंगे, मुसलमान होंगे, ईसाई होंगे, जैन होंगे?

मुनि होकर भी आदमी जैन बना रहता है। मौन होकर भी जैन! मुनि कहते हैं उसको जो मौन हो गया। जब मौन ही हो गया तो अब क्या जैन! जब मौन हो गया तो शब्द गए। वह सब जैन इत्यादि होना तो शब्दों की बात थी। शास्त्र गए। लेकिन मुनि हो गए, तो भी जैन। जैन ही नहीं, उसमें भी श्वेतांबर और दिगंबर! उसमें भी तेरापंथी और बीस पंथी--और पंथ पर पंथ हैं! मौन हो जाने के बाद भी यह सब बकवास जारी है!

मौन वगैरह कुछ भी नहीं हुए हैं। मुनि बस ऊपर का थोथापन है, भीतर सब वही कोलाहल, वही दुकानदारी, वही सब उपद्रव, वही चालबाजियां, वही बेईमानियां--कहीं भी नहीं गई हैं, सिर्फ अब भीतर सरक गईं। बाहर थीं तो कम से कम दिखाई पड़ती थीं; अब दिखाई भी नहीं पड़तीं। औरों को भी दिखाई नहीं पड़तीं और खतरा यह है कि शायद खुद को भी दिखाई न पड़ें--इतने भीतर अचेतन में सरक जा सकती हैं। लेकिन तुम्हारे व्यक्तित्व को वहीं से प्रभावित करेंगी, वहीं से आंदोलित करेंगी।

नहीं, अगर लोगों में बुद्धिमत्ता हो तो लोग पंडित-पुरोहितों के पीछे न जाएंगे। न हिंदू मुसलमानों की मस्जिदें जलाएंगे और न मुसलमान हिंदुओं की मूर्तियां तोड़ेंगे। यह मूढ़ता और धार्मिक व्यक्ति कर सकते हैं? जिनमें थोड़ी भी समझ है... तुममें भी जब कभी थोड़ी सी समझ का झरोखा खुलता है तो तुमको भी लगता है कि यह बात मूढ़तापूर्ण है कि हिंदू मुसलमानों को काटें, कि मुसलमान हिंदुओं को काटें। लेकिन वह समझ का झरोखा ज्यादा देर खुला नहीं रह सकता, क्योंकि सारे समाज के न्यस्त स्वार्थ तुम्हें बुद्धू रखना चाहते हैं। उन सबकी प्रतिष्ठा इसमें है कि तुम बुद्धू रहो, तो तुम आज्ञाकारी रहोगे, तुम गुलाम रहोगे, तुम दास रहोगे। तुम कहोगेः जी हुजूर, जो आज्ञा!

जी हुजूरों का एक समाज बनाया गया है सारी दुनिया में। इससे बड़ा कोई और दूसरा शड्यंत्र नहीं है। यह पूरी मनुष्य-जाति की चेतना को अवरुद्ध किए है। और इसीलिए जीसस को सूली देनी पड़ी, क्योंकि यह आदमी बगावती था। और सुकरात को जहर पिलाना पड़ा, क्योंकि इस आदमी ने लोगों से सत्य-सत्य कहना शुरू कर दिया।

सत्य खतरनाक है। खतरनाक है उनके लिए, जिनके न्यस्त स्वार्थ झूठ से जुड़े हैं।

तो तुम्हारे पास बुद्धिमत्ता बचने नहीं दी जाती। हर बच्चा बुद्धिमान पैदा होता है। तुम हर बच्चे की आंख में झांक कर देखो और तुम वहां बुद्धिमत्ता के लक्षण पाओगे--अपूर्व लक्षण पाओगे! हर बच्चे में प्रतिभा होती है। प्रतिभाहीन बच्चे पैदा ही नहीं होते। परमात्मा के घर से तो सभी लोग प्रतिभा लेकर आते हैं। लेकिन जैसे ही समाज उन्हें दीक्षित करता है--हिंदू बनाता, मुसलमान बनाता, ईसाई बनाता... बस... भारतीय बनाता, पाकिस्तानी बनाता, चीनी बनाता, ब्राह्मण-शूद्र... फिर उनको बनाए जाता है। घेरों पर घेरे। इतने कारागृहों की दीवारें खड़ी कर देता है कि छोटी सी चेतना कहां खो जाती है, पता नहीं चलता। वह निर्दोष बालक कहां खो जाता है, पता नहीं चलता। उसकी जगह पैदा होता है एक बिल्कुल मूढ़ किस्म का व्यक्ति, बिल्कुल परवश।

बुद्धिमत्ता अगर हो तो तुम अपने भीतर ही लौटोगे। बुद्धिमत्ता अगर हो तो पहले तुम अपने भीतर खोजोगे, इसके पहले कि बहिर्यात्रा पर निकलो। इसके पहले कि तुम अपनी रिक्तता को भरने लग जाओ, तुम पहले जानना चाहोगेः यह रिक्तता क्या है? यह मेरे भीतर का खालीपन क्या है? और जिन्होंने भी भीतर के खालीपन में उतर कर झांका, वे चकित हो गए। वह खालीपन नहीं है, वहां परमात्मा विराजमान है।

बाहर तुम जब तक भटके हो तब तक भीतर खालीपन लगता है। हां, वहां धन नहीं है और मकान नहीं है और पद नहीं है। लेकिन वहां परम पद है और परम धन है। वहां ध्यान है, समाधि है, जीवन की सारी समस्याओं का समाधान है। वहां शांति है, मौन है। वहां दिव्य शाश्वत जीवन का अनुभव है, जिसका न कोई जन्म है, न कोई मृत्यु है। जब तुम उससे परिचित हो जाओगे तो आसक्ति गिर जाएगी।

आसक्ति लक्षण है। और लक्षणों का इलाज सिर्फ मूढ़ करते हैं और मूढ़ करवाते हैं। जैसे किसी को बुखार चढ़ा, शरीर गर्म है। यह लक्षण है--शरीर का गर्म होना। इसका यह मतलब नहीं है कि उसको डुबाओ ठंडे पानी में, कि दो डुबकी पर डुबकी गंगा मैया में! बीमारी तो शायद ही जाए, बीमार चला जाएगा। शरीर गर्म है, यह बीमारी नहीं है, यह केवल लक्षण है। यह लक्षण है कि भीतर उत्पात मचा है, भीतर देह में कोई संघर्ष पैदा हुआ है। उस संघर्ष के कारण शरीर उत्तप्त है। यह उत्तप्त होना खबर दे रहा है कि भीतर चिकित्सा की जरूरत है, कहीं जड़ में बीमारी है। चिकित्सा भीतर करनी होगी।

मनुष्य की आसक्ति भी सिर्फ बुखार है, बस शरीर की गर्मी है। और तुम्हारे सारे तथाकथित धर्मगुरु कहते हैंः आसक्ति छोड़ो। यह ऐसे ही है जैसे किसी बुखार से भरे हुए आदमी से कहो कि देख, बुखार छोड़! वह बेचारा क्या करेगा? तुम कहोगे तो मान तो लेगा। और अगर सभी कहेंगे तो इनकार भी नहीं कर सकेगा। शायद अपराधी भी अनुभव करे कि मैं भी कैसा दीन-हीन हूं कि बुखार तक नहीं छोड़ सकता, जब कि सब कह रहे हैं समझदार कि बुखार छोड़। तो वह कहेगाः मैं अपात्र हूं। जन्मों-जन्मों के कर्मों का दुष्फल है कि नहीं छोड़ पाता। छोड़ना है मुझे भी। छोड़ना मैं भी चाहता हूं, मगर नहीं छोड़ पा रहा हूं। आएगा शुभ दिन, जब होगी परमात्मा की कृपा, भाग्य में लिखा होगा, तो छोड़ूंगा। ये सारे बहाने खोज लेता है--सिर्फ एक बात से बचने के लिए कि यह मूढ़तापूर्ण बात, कि बुखार छोड़, गलत है। बुनियादी रूप से गलत है।

बुखार छोड़ा नहीं जाता। बुखार की चिकित्सा करनी होती है। बुखार केवल लक्षण है। लक्षण का इलाज नहीं होता, उपचार नहीं होता। लक्षण तो मित्र है। उसके कारण ही तो पता चलता है कि भीतर कहीं छिपी बीमारी है। वह तो बाहर खबर लाता है। लेकिन अक्सर लोग लक्षणों में ही उलझ जाते हैं। कोई क्रोध से लड़ रहा है; वह भी लक्षण है। कोई काम से लड़ रहा है; वह भी लक्षण है। कोई आसक्ति से लड़ रहा है, मोह से, लोभ से--लोग लड़े जा रहे हैं! सब लक्षण हैं ये। और बीमारी एक है कि हमें आत्मज्ञान नहीं है। और जब तक आत्मज्ञान

नहीं होगा तब तक ये कोई भी बीमारियां जाने वाली नहीं हैं। तुम जितना दबाओगे उतनी ही उभर-उभर कर वापस लौट आएंगी।

तुम्हारी पूरी जिंदगी इसी असफलता की कहानी है। मगर तुम्हें फुरसत भी तो नहीं कि तुम लौट कर देखो। अपनी असफलता कोई देखना भी नहीं चाहता। आदमी असफल भी हो जाता है तो दूसरों को जिम्मेवार ठहराता है। अगर तुम्हारे जीवन से कामवासना नहीं जाती तो तुम अपनी पत्नी को जिम्मेवार ठहराते हो--कि क्या करें, कह ही गए हैं महात्मागण कि स्त्री-जाति नरक का द्वार है! अब जब तक यह स्त्री-जाति बंधी है, पीछे पड़ी है, तब तक तो कैसे कामवासना छूटेगी! महात्मा कह ही गए हैं। तुम्हारे लिए शास्त्रों में सुरक्षा मिल जाती है। तुम इनकी आड़ में अपने को बचा लेते हो।

स्त्रियां तुम्हें नरक ले जा रही हैं, स्त्रियों को कौन नरक ले जा रहा है? तुम सोचते हो स्त्रियां कुछ स्वर्ग में हैं? स्त्रियां तुमसे ज्यादा दुखी हैं, तुमसे ज्यादा परेशान हैं। तुमने तो उनकी हालत और भी खराब कर दी है। उनको तो तुमने विकास का कोई भी अवसर नहीं दिया है, कोई स्वातंष्य नहीं दिया है। उनसे तो तुमने चेतना बिल्कुल छीन ली है। उनको तो आत्मज्ञान का अधिकार तक नहीं दिया है। ऐसे धर्म हैं जिनमें वे मंदिरों में प्रवेश नहीं कर सकतीं।

यहूदी सिनागॉग में स्त्रियों के बैठने के लिए एक अलग ही ऊपर बालकनी होती है। स्त्रियां प्रधान-कक्ष में नहीं बैठ सकतीं, प्रधान-कक्ष में प्रवेश नहीं कर सकतीं। उससे मंदिर अपवित्र हो जाएगा। यह तो खूब अदभुत बात हुई! यह तो ऐसे हुई कि अगर बीमार को दवा दोगे तो दवा बीमार हो जाएगी! मंदिर अपवित्र हो जाता है, यह क्या खाक लोगों को पवित्र करेगा! मस्जिद में स्त्रियों के प्रवेश का हक नहीं है। जैन शास्त्र कहते हैं कि स्त्रियों को मोक्ष का कोई अधिकार नहीं; पुरुष-पर्याय से ही मोक्ष मिलेगा।

तुमने देखा, हिंदुओं ने मछली को मान लिया अवतार, कछुए को मान लिया अवतार, मगर एक स्त्री को अवतार नहीं माना। जानवर भी बेहतर, कछुआ भी चलेगा, मगर स्त्री! स्त्री नहीं। स्त्री एक भी अवतार नहीं मानी गई। नरसिंह अवतार हैं--आधे आदमी, आधे जानवर--चलेगा। लेकिन कोई स्त्री अवतार की तरह स्वीकृत नहीं हो सकी।

जैनों में चौबीस तीर्थंकर हुए, उनमें एक स्त्री थी--मल्लीबाई। मगर जैनों ने उसका नाम बदल कर मल्लीनाथ कर दिया। क्योंकि स्त्री--और तीर्थंकर! रही होगी अदभुत हिम्मत की स्त्री। रही होगी अदभुत प्रतिभा की स्त्री। रहा होगा उसका गौरव और गरिमामंडित व्यक्तित्व, कि उसकी मौजूदगी में इनकार भी नहीं कर सके, मानना भी पड़ा। मगर उसके मरते ही नाम बदल दिया। इतना तो कम से कम कर ही सकते हो, मल्लीबाई क्या करेगी! पीछे तुम मल्लीनाथ कहने लगे।

मैं तो जैन घर में पैदा हुआ, तो बचपन से ही मुझे पढ़ाया गया कि चौबीस तीर्थंकर। मुझे पता ही नहीं था कि इसमें एक स्त्री है, क्योंकि मल्लीनाथ कैसे स्त्री! मैं तो यही जानता था कि सभी पुरुष हैं। यह तो बहुत बाद में मुझे पता चला, इसमें एक स्त्री थी।

चालबाजी की भी सीमा होती है! एक स्त्री अगर हो भी गई तीर्थंकर तो स्वीकार न कर सके पुरुष। उसको तत्क्षण मल्लीनाथ कर दिया। उसको इनकार कर दिया कि स्त्री वह थी ही नहीं।

स्त्रियों को कौन नरक ले जाता है, अगर स्त्रियां तुम्हें नरक ले जाती हैं? लेकिन अपनी जिम्मेवारी दूसरे पर डाल देने की हमारी इच्छा होती है। यह मनुष्य के मन का बुनियादी दोष है, हमेशा दूसरों पर टाल देता है।

पुरुष कहेगाः स्त्रियों की वजह से परेशान हो रहा हूं। स्त्रियों से पूछो, तो स्त्रियां कहेंगीः ये पुरुष हैं, जिनकी वजह से बरबादी हो रही है। जिससे पूछो वही दूसरे पर टाल देगा।

और जीवन में धर्म की शुरुआत तभी होती है जब तुम दूसरों पर टालना बंद कर देते हो; जब तुम कहते होः जो भी मैं हूं, उसका कारण मेरे भीतर ही होना चाहिए। इस उत्तरदायित्व के अंगीकार से ही जीवन में क्रांति का प्रारंभ होता है। अपनी असफलता को दूसरे पर मत टालो।

सो गई है ज्योति, जागा है अहं का अंधकार!
बिंध गया है तीर तम का चेतना के आर-पार!
मौन मेरी बीन, नीरव मृत्यु के विश्वास-सी,
क्यों न जाए टूट मन की मूर्च्छना का तार-तार?
क्षुद्रता मेरी दमकती जुगनुओं के दीप-सी,
फले मुक्ताफल न जिसमें, उस निरर्थक सीप-सी!
हाय रे, निस्सारता का शून्यता का बोझ भी--
हो गया सुस्सह कि जीवन बन गया है भीम भार!
सांझ का अंगार-सूरज डूब जाता सिंधु में,
प्यास आंखों की न डूबी पर नयनजल-बिंदु में!
शेष होते हैं दिवस नित, कुछ न शेष विशेष हैं;
बह रही धारा समय की टूटते जाते कगार!
यंत्रवत जड़वत जिओ, पर यंत्र जड़ होता नहीं;
आज फिर भी मार खाकर रिक्त मन रोता नहीं
स्नेह सूखा, दृष्टि-दीपक किंतु जलता जा रहा--
भूख कैसी है, निगलती जो विफलता बार-बार!

हम विफल होते हैं रोज-रोज, फिर भी निगल जाते हैं, फिर भी अपनी विफलता को स्वीकार नहीं करते। फिर भी दौड़े चले जाते हैं! क्षितिज कभी मिलता नहीं; पास ही दिखाई पड़ता है कि यह रहा, और घड़ी दो घड़ी की बात है, और दौड़े चले जाते हैं। मगर जितना तुम दौड़ते हो, क्षितिज उतना ही दूर होता चला जाता है। तुम्हारे और क्षितिज के बीच की दूरी हमेशा उतनी की उतनी ही रहती है, क्योंकि क्षितिज कहीं है ही नहीं। तुम्हारे पास दस रुपये हैं तो तुम चाहते हो सौ हो जाएं; सौ होते हैं तो चाहते हो हजार हो जाएं; हजार हैं तो चाहते हो दस हजार हो जाएं; दस हजार हैं तो सोचते हो कि लाख हो जाएं। यह दौड़ बंद होती ही नहीं। यह दौड़ कभी किसी की बंद नहीं हुई। क्षितिज दूर का दूर ही बना रहता है।

इस विफलता को जो देखता है, स्वीकार करता है, उसकी अंतर्यात्रा शुरू होती है। जिसके बाहर का जीवन विफल हो गया है, ऐसा जिसे स्पष्ट बोध हो जाता है, जिसके मन में कहीं कोई शंका नहीं रह जाती कि बाहर का जीवन पूरा का पूरा विफल हो गया है--वही व्यक्ति अंतर्यात्रा पर निकलता है।

आसक्ति बाहर की दौड़ है और अनासक्ति अंतर्यात्रा है। आसक्ति के त्याग से अनासक्ति नहीं फलती; लेकिन जैसे ही तुम भीतर उतरते हो, जैसे ही तुम शांत होते हो, जैसे ही तुम मौन होते हो, जैसे ही तुम अपने विचारों

के साक्षी बनते हो, जैसे ही तुम थोड़े से ध्यान में डूबते हो--वैसे ही वैसे अनासक्ति की सुगंध उठनी शुरू हो जाती है। आसक्ति कहां खो जाती है, पता ही नहीं चलता।

और इससे यह अर्थ नहीं है कि जब आसक्ति खो जाती है तो तुम्हें घर छोड़ना पड़ेगा, पत्नी छोड़नी पड़ेगी, बच्चे छोड़ने पड़ेंगे। अरे आसक्ति ही खो गई तो अब किसको छोड़ना! किसको पकड़ना! तुम जहां हो वहीं रहोगे। हां, बिल्कुल अन्य होकर रहोगे, बिल्कुल भिन्न होकर रहोगे। सब कुछ वैसा ही रहेगा, सिर्फ तुम्हारे भीतर का भाव-बोध नया हो जाएगा। अब तुम्हें कुछ भी न छुएगा। तुम जल में कमलवत होओगे। यही मेरे संन्यास की परिभाषा हैः ध्यान और ध्यान से उठती अनासक्ति की सुगंध।

लेकिन अनासक्ति का अर्थ विरक्ति नहीं है। विरक्ति का अर्थ तो है आसक्ति से उलटी। तुम्हारे साधु-संन्यासी, तथाकथित महात्मा विरक्त हैं। विरक्त का अर्थ है, वे आसक्ति से घबड़ा गए, तो आसक्ति छोड़ कर भाग गए हैं। आसक्त व्यक्ति और विरक्त व्यक्ति में भेद नहीं होता। उनकी भाषा एक होती है। एक पैर के बल खड़ा है, एक सिर के बल खड़ा है; मगर दोनों एक ही जैसे आदमी हैं। सिर के बल खड़े होने से कुछ परिवर्तन होता है? विरक्त उलटे ढंग से आसक्त हो गया है। वह घबड़ाया रहता है, डरा रहता है।

चीन की बड़ी प्रसिद्ध कहानी है। एक महिला ने एक फकीर की जीवन भर सेवा की, तीस वर्षों तक। जब वह मरने को थी तो उसने एक बड़ी अजीब बात की। उसने गांव की सुंदरतम वेश्या को बुलाया और कहा कि मैंने इस फकीर की सेवा करते-करते तीस वर्ष व्यतीत किए हैं, अब मैं मरने के करीब हूं, मैं यह जानना चाहती हूं कि यह सच में ही अनासक्त हुआ है या अभी भी विरक्त ही है।

वेश्या ने भी पूछा कि अनासक्ति और विरक्ति में क्या भेद है?

उस स्त्री ने कहा, विरक्ति का अर्थ यह है कि अभी भी आसक्ति है और आसक्ति का डर है और आसक्ति से बचने की चेष्टा है। और अनासक्ति का अर्थ होता है--न आसक्ति रही, न विरक्ति रही; न डर रहा, न लोभ रहा; दोनों का अतिक्रमण; द्वंद्व का अतिक्रमण।

तो तू एक काम कर--उसने वेश्या को कहा--कि जो तुझे लेना हो उतने पैसे मैं दूंगी। तू आधी रात आज चली जा। वह फकीर आधी रात को ध्यान करता है। तीस साल से कर रहा है, अभी तक हुआ ध्यान या नहीं, यह मैं जानना चाहती हूं। मरने के पहले यह पक्का कर लेना चाहती हूं कि जिसकी सेवा की, व्यर्थ ही तो नहीं की। तो तू चली जाना भीतर। उसकी झोपड़ी का द्वार अटका ही रहता है, क्योंकि कोई कभी जाता ही नहीं। तू द्वार खोल लेना। और वह कुछ भी कहे, एक-एक बात का ख्याल रखना, मुझे तुझे बताना पड़ेगा। और जाकर एकदम उसका आलिंगन कर लेना। वह क्या कहता है, क्या करता है, बस तू लौट कर मुझे बता देना। मरने के पहले मैं यह जान लेना चाहती हूं।

वह वेश्या गई। उसने दरवाजा खोला। दरवाजा खोला तो साधु एकदम घबड़ाया। उसने आंख खोल कर देखा साधु ने। ध्यान करने बैठा था, एकदम चिल्लाया कि अरी दुष्ट स्त्री! तू यहां क्यों? बाहर निकल! आधी रात को तुझे यहां आने की क्या जरूरत?

लेकिन उसकी जबान लड़खड़ा गई। उसके शरीर में कंपन हो गया। लेकिन वह स्त्री तो पैसा लेकर आई थी, वह तो चलती ही आई। वह चिल्लाया कि दूर रह! पास क्यों आ रही है? वह इतने जोर से चिल्लाया कि पास-पड़ोस के लोग सुन लें। लेकिन उस स्त्री को तो अपना काम पूरा करना था, वह तो आकर उसको गले लगाने लगी। तो वह भागा, उछल कर एकदम दरवाजे के बाहर हो गया और चिल्लाया कि मुहल्ले के लोगो, इस वेश्या को पकड़ो! यह मुझे भ्रष्ट करने आई है।

वह वेश्या लौट कर आई। उसने बुढ़िया को सारी बात कही।

बुढ़िया ने कहा, तो मैंने तीस साल व्यर्थ ही गंवाए। मैं इस मूढ़ की सेवा करती रही। यह विरक्त ही है अभी, अनासक्त नहीं।

अनासक्त का अर्थ होता हैः आसक्ति भी गई, विरक्ति भी गई। आसक्ति-विरक्ति एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, उनमें कुछ भेद नहीं है। एक धन के पीछे दौड़ता है, एक धन से भागता है; मगर दोनों की नजर धन पर लगी होती है। एक स्त्रियों के पीछे भागता है, एक स्त्रियों से भागता है; मगर दोनों की नजर स्त्रियों पर लगी होती है। दोनों भगोड़े हैं! दिशाएं अलग-अलग हैं, मगर दोनों भाग रहे हैं। अभी दौड़ दोनों की जारी है।

और ध्यान तो उसका है, जो थिर हो जाता है, ठहर जाता है। दौड़ गई तो ध्यान। चित्त न अब इधर जाता न उधर, न पक्ष में न विपक्ष में। जैसे-जैसे व्यक्ति भीतर ठहरता है, थिर होता है, स्थिर होता है, वैसे-वैसे अनासक्त होता है।

अनासक्ति अपूर्व है! उसका सौंदर्य अदभुत है, अनूठा है। विरक्ति तो कुरूप है। इसलिए तुम्हारे महात्मा एक तरह की कुरूपता में डूब जाते हैं। वे गाली ही देते रहते हैं चौबीस घंटे। कामिनी-कांचन को गाली देने में ही उनका काम बीतता है। वे गाली इसलिए नहीं देते कि कामिनी और कांचन का कोई कसूर है। सोने को गाली देने से क्या फायदा? सोने ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है? सोने को तुम्हारा पता भी नहीं है। सोना तुम्हारे पीछे दौड़ता भी नहीं है। सच तो यह है कि स्त्रियां भी तुम्हारे पीछे नहीं दौड़तीं।

मुल्ला नसरुद्दीन सुबह ही सुबह चाय पी रहा था, पत्नी केतली से चाय डाल रही थी, तभी कुछ बात पर विवाद हो गया।

पति-पत्नी जहां हों वहां विवाद न हो, यह असंभव है। बात करो तो विवाद; बात न करो तो विवाद। मुल्ला से कोई कह रहा था, उसका मित्र, कि मेरी पत्नी अदभुत है, बस एक शब्द बोल दो कि फिर वह घंटों बोलती है। मुल्ला बोला, यह कुछ भी नहीं। अरे मेरी पत्नी ऐसी है कि बोलो ही मत और वह घंटों बोलती है। इसी पर बोलती है कि बोलते क्यों नहीं!

तो विवाद हो गया। पत्नी एकदम गुस्से में आ गई और कहा कि मैं मायके चली। एकदम चाबियों का गुच्छा फेंक दिया। और बोली कि तुम्हीं मेरे पीछे पड़े थे, तुम्हीं चक्कर काटते थे, मैं तुम्हारे पीछे नहीं पड़ी थी।

मुल्ला ने कहा, यह बात सच है, कि चूहादानी चूहे के पीछे नहीं पड़ती, चूहा खुद ही मूरख चूहादानी में जाता है। यह बात बिल्कुल सच है। तू मेरे पीछे कभी नहीं पड़ी, यह बात सच है। तू तो चूहादानी है, मैं चूहा हूं। मैं ही फंसा हूं। और अब फंस कर पछता रहा हूं।

मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी संयोगवशात मर गई। पत्नियां बहुत मुश्किल से मरती हैं!

तुम्हें मालूम होना चाहिए कि पत्नियां पतियों से पांच वर्ष ज्यादा जीती हैं। स्त्रियां मजबूत होती हैं। ख्याल लोगों के गलत हैं। लोग सोचते हैं स्त्रियां कमजोर होती हैं, बिल्कुल गलत ख्याल है। पुरुषों से उनकी उम्र पांच वर्ष ज्यादा होती है, औसत उम्र। अगर पुरुष जीए सत्तर साल तो स्त्री जीती है पचहत्तर साल। और ये पांच साल और भी ज्यादा हो जाते हैं, क्योंकि विवाह करते वक्त हम चार-पांच साल का फासला रखते हैं। पुरुष होना चाहिए बीस-इक्कीस का तो लड़की होनी चाहिए सोलह की। या लड़की अठारह की हो तो पुरुष होना चाहिए बाईस-तेईस का। वे पांच साल और जोड़ लो तो स्त्रियां दस साल ज्यादा जीती हैं। इसलिए पुरुष सिर पीटते रहते हैं और प्रार्थनाएं करते रहते हैं परमात्मा से कि हे प्रभु, उठाओ अब इसको! मगर प्रभु भी क्या करें, वह दस

साल का फासला! ये प्रार्थना करते-करते खुद ही उठ जाते हैं पहले। इसलिए दुनिया में तुम्हें विधवाएं तो मिलेंगी, विधुर शायद ही मिलें।

मुल्ला की पत्नी लेकिन मर गई। कभी-कभी सौभाग्य की घटनाएं भी घटती हैं! तो मैंने उससे कहा कि अब तो तू प्रसन्न हो, प्रसाद बांट, आनंदित हो। और अब देर क्या है, संन्यास ले ले! अब तो कोई अड़चन भी न रही। अब तक तो तू पत्नी का बहाना लेता था कि वह नहीं लेने देती, वह बहुत उपद्रव मचाएगी, वह बहुत शोरगुल करेगी, वह गांव भर में बदनामी करवा देगी, वह मेरे पीछे पड़ जाएगी, मेरा जीना दूभर हो जाएगा। अब तो कुछ अड़चन न रही।

वह एकदम सिर नीचा करके बैठ गया।

मैंने कहा, बात क्या है?

उसने कहा, अब आपसे क्या छिपाना! मैं दूसरा विवाह कर रहा हूं।

मैंने कहा, अरे पागल, तुझे पक्का पता चल चुका कि पत्नी चूहादानी साबित हुई और तू चूहा, अब फिर दूसरी चूहादानी!

मुल्ला ने कहा, क्या करूं, अनुभव पर आशा की विजय हुई जा रही है!

अनुभव पर सदा आशा की विजय हो जाती है। देर नहीं लगती। यहां पत्नी को मरे देर नहीं हुई कि बस... । कहते तो यह हैं कि जब वह लौट रहा था मरघट से तो बहुत रो रहा था, छाती पीट-पीट कर रो रहा था। तो उसके मित्रों ने कहा कि भई, इतने मत रोओ! अरे पत्नी ही थी, मर गई तो मर गई! मर्द बच्चा हो। अभी जवान हो। दूसरी शादी हो जाएगी। अच्छी से अच्छी लड़कियां बैठी हुई हैं, जिनको वर नहीं मिल रहे हैं। घबड़ाते क्यों हो? और चार-छह महीने दुख रहता है, समय सब घाव भर देता है। ज्ञान की बातें, जो लोग करते हैं, कीं... कि समय सब घाव भर देता है, एक चार-छह महीने की बात है।

मुल्ला ने कहा कि बकवास बंद करो! अरे चार-छह महीने! आज रात क्या करूंगा? मैं कोई वह जो मर गई उसके लिए रो रहा हूं? जो आने वाली है वह कब आएगी, उसके लिए रो रहा हूं।

मरघट पर ही लोग नये विवाह का इंतजाम रचाने लगते हैं।

न तो धन तुम्हारे पीछे दौड़ रहा है, न स्त्रियां इतनी अभद्र हैं कि तुम्हारे पीछे दौड़ रही हैं। तुम ही उनके पीछे दौड़ रहे हो। और फिर एक दिन जीवन में जब तुम बहुत ज्यादा घबड़ा जाते हो, बहुत ज्यादा दुखी हो जाते हो, विषादग्रस्त हो जाते हो, तो तुम दूसरी अति पकड़ लेते हो। फिर तुम धन छोड़ कर भागने लगते हो। फिर तुमने स्त्री देखी कि तुम ऐसे भागते हो जैसे कि किसी ने सांड को लाल झंडी दिखा दी हो। एकदम भागे! फिर तुम रुकते ही नहीं। फिर तुम पीछे लौट कर देखते ही नहीं। मगर यह भागना भी बताता है कि तुम डर रहे हो, तुम भयभीत हो। नहीं तो ऐसे भागने की क्या जरूरत थी? स्त्री कुछ खा न जाती।

विरक्ति केवल आसक्ति की विपरीत दशा है। इसलिए मैं विरक्ति की शिक्षा नहीं देता हूं। मैं चाहता हूंः तुम्हारे जीवन में आसक्ति जाए, विरक्ति जाए। और इनका जाना तभी संभव है, जब तुम्हारे जीवन में आत्म-अनुभव हो और अनासक्ति की सुगंध उठे। आत्मज्ञान का दीया जलता है तो अनासक्ति का प्रकाश फैलता है। और अंधकार--क्रोध का, मोह का, लोभ का, काम का--सब तिरोहित हो जाता है। वे सब अंधकार के वासी हैं, अंधकार के ही अलग-अलग खंड हैं।

दूसरा प्रश्नः ओशो, मैं प्रार्थना करना चाहती हूं। क्या प्रार्थना करूं, कैसे प्रार्थना करूं--इसका मार्गदर्शन दें।

करुणा, प्रार्थना कृत्य नहीं है। इसलिए करना चाहोगी तो जो भी करोगी वह गलत होगा। प्रार्थना की नहीं जाती। प्रार्थना भाव-दशा है। प्रार्थना में हुआ जाता है, डूबा जाता है।

प्रार्थना उन शब्दों में नहीं है जो तुम दोहराती हो--गायत्री, कि नमोकार मंत्र, कि कुरान की आयतें। उन शब्दों में प्रार्थना नहीं है। वे तो कितने लोग दोहरा रहे हैं! सारी पृथ्वी दोहरा रही है। और पृथ्वी पर कहीं तुम्हें प्रार्थना का उत्सव दिखाई पड़ता है? कहीं प्रार्थना की कोई छाप दिखाई पड़ती है? प्रार्थना का रस कहीं झरता हुआ मालूम होता है? शब्द दोहरा रहे हैं लोग; कंठस्थ कर लिए हैं। लेकिन हृदय में कुछ भी नहीं है।

प्रार्थना भाव-दशा है।

यह मैं पहली बात जितनी गहराई से तुम्हारे भीतर अंकित कर सकूं, करना चाहूंगा। प्रार्थना भाव-दशा है। शब्दों की बात नहीं है, हृदय की बात है। प्रार्थना कृतज्ञता का बोध है।

प्रार्थना शब्द में थोड़ी भूल है। हमने कर दी है भूल खड़ी। प्रार्थना शब्द में ही ऐसा लगता है कि जैसे हम कुछ मांग रहे हैं--प्रार्थी--मांगने वाला। हम प्रार्थना ही तब करते हैं जब हमें कुछ मांगना होता है। जब हमें कुछ नहीं मांगना होता, हम प्रार्थना करते ही नहीं।

एक छोटे बच्चे से उसकी शिक्षिका ने पूछा कि बेटे, तुम रात सोते समय प्रार्थना करते हो?

उसने कहा, बिल्कुल, रोज करता हूं, नियम से करता हूं।

और सुबह उठ कर सुबह की प्रार्थना करते हो?

उसने कहा, कभी नहीं करता।

उसने कहा, यह मेरी कुछ समझ में नहीं आया। रात जब तुम नियम से करते हो तो सुबह की प्रार्थना क्यों नहीं करते?

उसने कहा, रात मुझे डर लगता है, सुबह मुझे डर लगता ही नहीं।

रात के अंधेरे में बच्चे को डर लग रहा होगा। स्वाभाविक। परमात्मा को याद करता है कि हे प्रभु, बचाओ! लेकिन दिन के उजाले में क्यों करे प्रार्थना?

बच्चे कभी-कभी ठीक बात कह देते हैं, बिल्कुल ठीक बात, जो तुम्हारे संबंध में सूचना देती है। क्योंकि तुम्हारे भीतर भी बचकानापन है। तुम्हारी प्रार्थना क्या है? बस कुछ मांग। यह मिल जाए, वह मिल जाए। हे प्रभु, यह दो। हे प्रभु, वह दो। कि तुम दाता हो, मैं याचक हूं। कि तुम दानी हो और मैं दीन हूं। और तुम करुणा के सागर हो।

तुम्हारी सारी स्तुति एक तरह की खुशामद है। स्तुति का मतलब ही खुशामद होता है। इसीलिए तो इस देश में, जो कि सदियों से स्तुति करता रहा परमात्मा की, खुशामद और रिश्वतखोरी सहजता से चल पड़ी। रिश्वत इस देश में अशोभन नहीं मालूम होती, बिल्कुल धार्मिक कृत्य मालूम होती है। जब परमात्मा तक के साथ तुम रिश्वत का नाता रखते हो--कि हे हनुमान जी, एक नारियल चढ़ा देंगे! और जब हनुमान जी तक एक नारियल से मान जाते हैं, तो बेचारे पुलिसवाले का क्या कसूर है, अगर इनको एक नारियल चढ़ा दिया! तो चपरासी से लेकर और राष्ट्रपति तक सबकी कीमतें हैं। और तुम्हें देने में कोई संकोच नहीं होता, क्योंकि तुम सदियों से इस बात के आदी रहे हो कि जब परमात्मा तक लेता है, तो औरों की बात क्या! आदमी आखिर आदमी है! और जब परमात्मा तक को लेने में शर्म नहीं, तो आदमी क्यों शरमाए! कोई आदमी परमात्मा से ऊपर थोड़े ही है!

स्तुति हमारा सहज जीवन का क्रम रहा है। इसलिए हम खुशामद में भी बहुत कुशल हैं। जैसे चमचे हम इस देश में पैदा करते हैं, दुनिया में कहीं कोई पैदा नहीं करता। इतने कुशल! और इस तरह की स्तुति करते हैं जिसमें सत्य का अंश भी नहीं हो, झूठ ही झूठ!

मगर हम झूठ बोलने के आदी रहे हैं। तुम्हें परमात्मा का पता नहीं है, पहली बात। और फिर भी तुम परमात्मा को प्रार्थना कर रहे हो। यहीं झूठ की शुरुआत हो गई। तुम्हें परमात्मा का कोई अनुभव नहीं है और हाथ जोड़े बैठे हो, घंटी बजा रहे हो। किसके लिए घंटी बजा रहे हो? फूल लगा रहे हो। किसके लिए? जिसका कोई पता नहीं तुम्हें, जिसका कोई अनुभव नहीं। उसे घंटी पसंद भी आती है कि नहीं, यह भी सवाल है। मैं तो नहीं सोचता कि पसंद आती होगी। और इतनी घंटियां सारे देश में लोग बजा रहे हैं, उसकी खोपड़ी फटी जाती होगी। अगर कहीं कोई परमात्मा है तो या तो मर गया होगा या ऐसा भागा होगा कि वह पीछे लौट कर नहीं देखता होगा, भागता ही जा रहा होगा। क्योंकि इतने भक्त क्या-क्या अंट-शंट कर रहे हैं! यह सब उसको झेलना पड़ता होगा।

एक ऐसे ही भक्त मरे तो उनको नरक ले जाया जाने लगा। तो वे बहुत नाराज हुए और उन्होंने कहा, मैं भक्त हूं, जिंदगी भर भक्ति की है और मेरे साथ यह अनाचार! हमने तो सुना थाः देर है, अंधेर नहीं। देर भी है और अंधेर भी है। जनम भर प्रतीक्षा हो गई, देर लगी इतनी। और अब यह अंधेर दिखाई पड़ रहा है कि हम चौबीस घंटे राम-राम राम-राम जप-जप कर मर गए और हमें नरक ले जाया जा रहा है! इसके पहले कि नरक ले जाओ, मुझे परमात्मा से मिलना है।

बहुत उपद्रव मचाया। भक्त थे। उछलकूद मचाई, शोरगुल किया। एकदम धरना ही देकर बैठ गए। तो आखिर उनको परमात्मा ने बुलवाया। बहुत नाराजगी में बोले परमात्मा से, कि हद हो गई, जिंदगी भर राम-राम राम-राम, तुम्हारा ही नाम जप-जप कर मैं... ओंठ सूख गए, कंठ सूख गया, प्राण सूख गए, सब जीवन कुर्बान कर दिया तुम्हारे लिए--और अब मुझे नरक भेजा जा रहा है!

परमात्मा ने कहा, अगर तुम सच पूछो तो उसी कारण भेजा जा रहा है। क्योंकि तुम मेरी जान खा गए। मेरी खोपड़ी पक गई! और अब अगर तुम्हें स्वर्ग में रहना है तो मैं नरक चला। मैं तुम्हारे पड़ोस में नहीं रह सकता। या तुम यहां रहो, या मैं यहां रहूं। जब तुमने उतनी दूर से मुझे इतना सताया, तो तुम यहां क्या मेरी दुर्गति करोगे!

भक्तों का कुछ न पूछो, लाउडस्पीकर लगा लेते हैं! खुद ही नहीं करते भक्ति-भजन, गांव भर को करवा देते हैं। अखंड पाठ करवा देते हैं। रात में भी चलता रहता है! और सोचते हैं बड़ी कृपा कर रहे हैं, गांव पर बड़ी कृपा कर रहे हैं। किसी को सोने नहीं दे रहे हैं; गांव भर गाली दे रहा है। उनको ही गाली नहीं दे रहा है, उनके भगवान को भी गाली दे रहा है। मगर वे अपनी भक्ति में तल्लीन हैं। वे नास्तिकों तक को पार करने का इंतजाम कर रहे हैं, जाना हो कि न जाना हो!

एक मस्त-तड़ंग आदमी एक बूढ़ी स्त्री को धक्के मार रहा था। आखिर भीड़ इकट्ठी हो गई। किसी ने पूछा हिम्मत करके कि भई, बात क्या है? क्यों इस बुढ़िया को सता रहे हो?

उसने कहा, सता नहीं रहे, इसको रास्ता पार करवा रहे हैं। मगर यह जाना ही नहीं चाहती। और हमें चर्च में पादरी ने कहा कि कुछ न कुछ अच्छे काम करने चाहिए। तो मैंने पूछा, कैसे अच्छे काम? तो उसने कहा, जैसे किसी बुढ़िया को रास्ता पार करना हो तो करवा देना। अब मैं सुबह से खड़ा हूं, कोई बुढ़िया रास्ता पार नहीं करना चाहती। और अच्छा काम मुझे करना ही है! इस बुढ़िया को मैं नहीं छोडूंगा।

उसने जब तक उसे पार न करवा दिया, तब तक उसने नहीं छोड़ा। वह चिल्लाती रही बुढ़िया, चिल्लाते रहो। अरे जिसको सेवा करनी, धर्म करना, पुण्य कमाना, वह कोई ऐसे चिल्लाने वगैरह से रुकने वाला है! ऐसी बाधाएं तो सत्संग में आती ही हैं! सत्कर्मों में इस तरह के उपद्रव आते ही हैं। उसने पार करवा दिया। जब पार करवा दिया, तब निश्चिंत गया कि अब मैं दूसरे काम करूं, कि अब इसी में उलझा रहूं! जिस बुढ़िया को पूछता हूं, वही कहती है कि हमें जाना ही नहीं है उस तरफ। आज बुढ़ियाओं को न मालूम क्या हो गया है! किसी को नहीं जाना है। आज मैंने शुभ कार्य करने का क्या निर्णय किया, किसी बुढ़िया को पार नहीं होना है!

तुम्हारे धार्मिक लोग पुण्य करने पर उतारू हैं--इसकी बिना फिक्र किए कि क्या पुण्य है। प्रार्थना-पूजा करने में लगे हैं। घंटे बजा रहे हैं, शोरगुल मचा रहे हैं। झूठे शब्द, जिनका उनके प्राणों से कोई नाद नहीं है, दोहरा रहे हैं। सदियों पुरानी लकीरें पीट रहे हैं। मुर्दा शास्त्रों को सिर पर ढो रहे हैं।

नहीं, करुणा, प्रार्थना की नहीं जाती। करोगी, चूक हो जाएगी। प्रार्थना एक भाव-दशा है, मौन की भाव-दशा है। शब्द होते ही नहीं प्रार्थना में। मौन-भाव में झुक जाना--अकारण, अहेतुक, बिना कुछ मांगे। क्योंकि इतना तो मिला है, इसका अनुग्रह तो कर लो! जीवन दिया है। नहीं हो परमात्मा का पता, कोई फिक्र नहीं। लेकिन किसी अज्ञात ऊर्जा ने जीवन दिया है, इतना तो तय है। यह धड़कन छाती की कुछ कहती है। यह चलती श्वास कुछ कहती है। कोई अज्ञात हाथ, कोई अज्ञात शक्ति प्रतिपल तुम्हें जीवन दे रही है। उसके प्रति धन्यवाद तो कर लो!

लेकिन धन्यवाद शब्दों में नहीं हो सकता। शब्द छोटे हैं, बहुत छोटे हैं। अनुग्रह बहुत बड़ा है। इसलिए निःशब्द ही हो सकती है प्रार्थना। निःशब्द भाव से झुक जाओ। परमात्मा की फिक्र छोड़ो। यह अस्तित्व, जो तुम्हारे चारों तरफ फैला है, यह उसका प्रत्यक्ष रूप है। ये वृक्ष, ये तारे, ये पक्षियों के गीत, ये झरने, ये पहाड़, ये लोग, यह सब कुछ जो तुम्हें घेरे है, इसके प्रति अनुग्रह के भाव से झुक जाओ--मौन, शून्य, शांत। और उस शांति में वह जो तुम्हारे हृदय की धड़कन है, वही प्रार्थना है। वह जो श्वासों का आना-जाना है, वही माला का फेरना है। इससे बेहतर और क्या माला होगी! यह श्वास का आना और जाना, यही तो गुरिए का आवर्तन है। यह धक-धक हृदय की, और इससे प्यारा क्या गीत होगा! इससे और सुमधुर क्या संगीत होगा! और वह तुम्हारे भीतर शून्य में बैठा हुआ साक्षी! अनुग्रह के भाव में ओत-प्रोत! भरा-पूरा! लबालब!

प्रार्थना शब्द नहीं है--निःशब्द मौन है, निःशब्द साक्षी-भाव है। मेरे लिए प्रार्थना और ध्यान दो शब्द हैं--एक ही अवस्था को इंगित करने वाले। तो चाहे ध्यान कहो, चाहे प्रार्थना कहो।

मुझको रंगों से मोह, नहीं फूलों से।
जब ऊषा सुनहली जीवन-श्री बिखराती,
जब रात रुपहली गीत प्रणय के गाती,
जब नील गगन में आंदोलित तन्मयता,
जब हरित प्रकृति में नव सुषमा मुसकाती,
तब जग पड़ते हैं इन नयनों में सपने;
मुझको रंगों से मोह, नहीं फूलों से।
जब भरे-भरे से बादल हैं घिर आते,
गति की हलचल से जब सागर लहराते,

विद्युत के उर में रह-रह तड़पन होती,
उच्छवास भरे तूफान कि जब टकराते,
तब बढ़ जाती है मेरे उर की धड़कन,
मुझको धारा से प्रीति, नहीं कूलों से।
जब मुग्ध भावना मलय भार से कंपित,
जब विसुध चेतना सौरभ से अनुरंजित,
जब अलस लास्य से हंस पड़ता है मधुबन,
तब हो उठता है मेरा मन आशंकित--
चुभ जाएं न मेरे बज्र सदृश चरणों में,
मैं कलियों से भयभीत, नहीं शूलों से।
जब मैं सुनता हूं कठिन सत्य की बातें,
जब रो पड़ती हैं अपवादों की रातें,
निर्बंध मुक्त मानव के आगे सह
साजब अड़ जाती हैं मर्यादा की पांतें
जो सीमा से संकुचित और लांछित है,
मैं उसी ज्ञान से त्रस्त, नहीं भूलों से।

ज्ञान से निर्भार हो जाओ। शास्त्र से निर्भार हो जाओ। शब्द से निर्भार हो जाओ। और तुम्हारे भीतर प्रार्थना का फूल खिलेगा, निश्चित खिलेगा! प्रतीक्षा करो। और भरोसा रखो। आएगा वसंत, सदा आया है। जिसने प्रतीक्षा की है उसने ही पाया है।

लेकिन जल्दबाजी से कुछ न होगा। तुम्हारे करने की बात नहीं है। क्या करोगे? बीज बो दिए, अब प्रतीक्षा करो। समय पर अंकुर फूटेंगे। फिर वसंत आएगा, कलियां लगेंगी, फूल खिलेंगे, सुगंध आकाश में उड़ेगी।

प्रार्थना ऐसा ही आयाम है, जहां मौन के बीज बोकर चुपचाप प्रतीक्षा करनी होती है।

लेकिन अपने ज्ञान से सावधान रहना। मत अपने ज्ञान को प्रार्थना बना लेना।

तू ही कह, मैं तेरे संग-संग कब तक भटकूं, मन!
कलि-कुसुमों पर अलि-तितली बन कब तक अटकूं, मन?
रागमयी माया को कब तक अपनी प्रिया कहूं?
अपने शव को नाव बना कर धारोधार बहूं?
तेरे कारण मरा सांप बन कब तक लटकूं, मन?
अब न रही माया से माया, मन मुझको पहली,
अभ्यर्थना-भर्त्सना उसके अभिनय की शैली;
पात्री के पांवों पर कब तक यों सिर पटकूं, मन?
तेरी नहीं, राम की चेरी वह मोहन-माया!
बन तेरा पर्यंक, रंक, पंकिल मेरी काया!
जग की आंखों में, तुझमें मैं कब तक खटकूं, मन?

गजरा बना न मुझको गणिका, हरि की दासी का!

शूलपाणि का शूल, नहीं मैं फूल विलासी का!

मैं ब्रह्मा का अहम्, न तुझसे कब तक छटकूं, मन?

नाच नर्तकी की अंगुली पर थका न तू अब तक?

प्रेरक मायावर के पद पर धरा नहीं मस्तक!

मैं माया के आवर्तन पर कब तक मटकूं, मन?

अपने मन से पूछो कि कब तक भटकना है? कब तक शब्दों में अटकना है? कब तक वासना में जीना है? क्योंकि तुम्हारी प्रार्थना भी वासना है; मांग है उसमें तो वासना है। और जहां वासना है वहां प्रार्थना कैसी? इतने तो मन के साथ जी लिए, अब बेमन के होकर भी जीकर देखो! कम से कम घड़ी भर को तो बिना मन के हो जाओ, अ-मन हो जाओ!

कबीर ने, नानक ने, फरीद ने, प्रार्थना को अ-मनी अवस्था कहा है, जहां मन नहीं होता। जहां ज्ञान नहीं, शब्द नहीं, वहां मन नहीं। जहां वासना नहीं, कामना नहीं, वहां मन नहीं। और जहां मन गया वहां कुछ अनिर्वचनीय घटित होता है। उस अनिर्वचनीय का नाम ही प्रार्थना है।

और तुम्हारा हृदय जब प्रार्थना से भरा है, तब परमात्मा निकट है--निकट से भी निकटतम है। जब तुम्हारा हृदय प्रार्थना से आपूरित है तो परमात्मा का प्रत्यक्ष प्रमाण है। उसके अतिरिक्त और कोई प्रमाण नहीं है। उसके अतिरिक्त सब तर्कजाल है।

जो लोग परमात्मा को सिद्ध करते हैं तर्कों से वे उतने ही नासमझ हैं जितने वे लोग जो परमात्मा को असिद्ध करते हैं तर्कों से। तर्कों से परमात्मा न सिद्ध होता, न असिद्ध होता। आस्तिक और नास्तिक व्यर्थ के विवादों में उलझे हैं। जो प्रार्थना को जानता है वही परमात्मा को जानता है।

आखिरी प्रश्नः ओशो, आप दलबदलुओं के संबंध में क्यों कुछ नहीं कहते हैं? इनके कारण ही तो देश की बरबादी हो रही है।

नारायणदास,

एक जगह कुछ कुत्ते

बड़ी शांति के साथ

जूठन खा रहे थे,

न भौंक रहे थे

न गुर्रा रहे थे।

आश्चर्यचकित होकर मैंने पूछा,

"आप लोग

आपस में लड़ते क्यों नहीं?

एक-दूसरे पर झपटते क्यों नहीं?"

उनका नेता बोला,

"अब हम आपस में नहीं लड़ते,

शर्म के मारे हैं,
इस कला में हम
आदमी से बुरी तरह हारे हैं।"

कुत्ते भी शर्माते हैं! गधे भी सिर नीचा कर लेते हैं! आदमी राजनीति में अपना सबसे ज्यादा उथलापन, ओछापन, थोथापन जाहिर करता है। राजनीति आदमी की नग्न अवस्था है। जैसा आदमी भीतर है, वैसा राजनीति में सब ऊपर आ जाता है--सब कूड़ा-करकट!

जो लोग राजनीति में नहीं हैं वे कुछ उनसे बेहतर हैं, ऐसा मत सोच लेना। उनका कूड़ा-करकट भीतर है। उनकी छोटी-छोटी राजनीतियां हैं। पति पत्नी को दबा रहा है, पत्नी पति को दबा रही है; वह उनकी राजनीति है। उनका बड़ा हिसाब नहीं है। बाप बेटे को दबा रहा है, बेटा भी अपनी तरकीबें निकालता है बाप को दबाने की।

छोटे-छोटे बच्चे भी राजनीति में कुशल हो जाते हैं! छोटा बच्चा भी जानता है कि शोरगुल मचाओ, उपद्रव करो, तो फिल्म में जाने के लिए पैसे मिलने वाले हैं। बाप पहले तो मना करता ही है। और अगर उसकी मना मान ली, तो गए काम से। और मचाओ शोरगुल! हर बेटा जानता है कि कितनी सीमा है बाप के सामर्थ्य की। जब तक बाप की सामर्थ्य न टूट जाए, तब तक वह शोरगुल मचाए चला जाता है। आखिर एक बरदाश्त होती है, आखिर बाप घबड़ा जाता है और कहता है कि ये ले पैसे, छुटकारा कर! जा, भाड़ में जा! जहां जाना हो जा! मगर मेरे सामने से टल। वह लड़के ने राजनीति की। उसने बाप के ऊपर दबाव डाला। पैर पटका, उछला, कूदा, किताब फाड़ दी, स्लेट तोड़ दी। आखिर बाप ने देखा कि यह उपद्रव शांत होने वाला नहीं है।

पत्नियां उपद्रव मचा देती हैं। जिस दिन उनको साड़ी चाहिए उस दिन ज्यादा बर्तन टूटते हैं घर में, प्लेटें गिर जाती हैं, बच्चों की पिटाई होती है। आखिर पति को समझ में आ जाता है कि साड़ी के बिना काम नहीं चलेगा। जिस दिन पति साड़ी लेकर घर आता है, आइसक्रीम लेकर घर आता है, उस दिन पत्नी समझ जाती हैः कुछ गड़बड़ है, कुछ दाल में काला है। दिखता है टाइपिस्ट के साथ कुछ गड़बड़ चल रही है। नहीं तो एकदम साड़ी लेकर आना घर! मतलब? वैसे हम सिर पटक-पटक कर मर जाते हैं और साड़ी का पता नहीं चलता। और जब भी साड़ी का नाम लो, तभी झगड़ा-झांसा। आज अपने आप साड़ी लेकर चले आ रहे हैं!

मुल्ला नसरुद्दीन हमेशा अपनी पत्नी के संबंध में कहता रहता था कि दुखी ही दुखी बनी रहती है। और दुखी रहती है तो मेरी जान खाती है। रात देर तक मैं शराबखाने में इसीलिए बैठा रहता हूं, इसीलिए पीता रहता हूं। मैंने उससे कहा, ऐसा कर... तूने कभी पत्नी को प्रेम भी दिया कि नहीं? कहीं ऐसा तो नहीं है कि वह सिर्फ तेरे प्रेम के अभाव में इस तरह परेशान हो रही है? एक दिन ऐसा कर, साड़ी खरीद, फूल ले जा, आइसक्रीम ले जा, मिठाई ले जा। और एकदम जाकर गले लगा लेना और एकदम उसके सौंदर्य की प्रशंसा करना। कब से तूने उसके सौंदर्य की प्रशंसा नहीं की?

उसने कहा कि आपने भी याद दिलाई! यह तो जमाने हो गए। यह तो शुरू-शुरू में जब बंबई में चौपाटी पर मिला करते थे, तब भेल-पूड़ी के साथ-साथ यह बात भी कुछ... । अब तो याद भी नहीं रहा कि क्या-क्या उन जमानों में कह गए! जो कह गए उसका फल अब तक भोग रहे हैं। अब आप क्या चाहते हो, फिर से कहें?

मैंने कहा, तुम एक दफा करके तो देखो। प्रेम दोगे तो शायद यह उपद्रव शांत हो जाए।

उसने कहा, आज ही करके देखता हूं।

लिया उसने... साड़ी खरीदी, मिठाई खरीदी, फूल, गुलदस्ते, आइसक्रीम और लेकर घर पहुंचा भारी... । दरवाजा खोला, पत्नी देख कर एकदम दंग रह गई। ऐसा तो कभी हुआ नहीं था! और मुल्ला ने एकदम उसको गले लगा लिया और कहा कि तू क्या है, चांद का टुकड़ा है!

पत्नी ने एकदम भौचक्का होकर देखा और एकदम जमीन पर बैठ कर एकदम छाती पीटने लगी।

अरे, मुल्ला ने कहा, यह तू क्या करती है?

उसने कहा कि क्या करती हूं? नौकरानी सुबह से आई नहीं है। बेटा गिर पड़ा है, उसके तीन दांत टूट गए हैं। लड़की घर लौटी है युनिवर्सिटी से, कहती है गर्भवती है। अब तुम आए हो! कितनी पीकर आए हो? मेरी जिंदगी तो नरक है!

कोई पति ऐसी साड़ी और फूलमालाएं एकदम से लेकर आ जाए तो पत्नी को शक ही होगा कि पीकर आ गए, कि कुछ गड़बड़ है, कि अपने होश में नहीं हैं, मामला क्या है!

छोटी-छोटी राजनीतियां सबकी चल रही हैं। अब दफ्तर में मालिक है तो वह अपने नौकरों को दबा रहा है। चपरासी छोटे चपरासी को दबा रहा है। बड़ा क्लर्क छोटे क्लर्क को दबा रहा है। हेड मास्टर मास्टरों को दबा रहे हैं। मास्टर लड़कों को दबा रहे हैं। लड़के अपने से छोटे लड़कों को दबा रहे हैं। सब तरफ राजनीति है। अगर तुम गौर से देखो तो सिर्फ राजनीतिज्ञ ही राजनीतिज्ञ नहीं हैं। फिर इन्हीं छोटे-छोटे राजनीतिज्ञों में से बड़े राजनीतिज्ञ पैदा होते हैं। यह अभ्यास होता है यहां। यह जिंदगी पूरा का पूरा अभ्यास है। फिर इस अभ्यास में जो बहुत कुशल हो जाते हैं, वे फिर ऊंचे खेल खेलने लगते हैं; फिर वे प्रदेशों की राजधानी में ऊधम मचाते हैं। फिर घिराव करते हैं, धरने देते हैं, अनशन करते हैं, हड़तालें करवाते हैं। फिर जो जितना ज्यादा बड़ा उपद्रवी होता है वह उतने जल्दी दिल्ली पहुंच जाता है। फिर कोई पार्टी अगर सत्ता में आ जाती है तो उसमें सबसे ज्यादा जो उपद्रवी लोग होते हैं, वे सब केबिनेट के मंत्री हो जाते हैं। उनको बनाना ही पड़ता है; न बनाओ तो वे उपद्रव खड़ा करेंगे; न बनाओ तो तोड़-फोड़ खड़ी करेंगे।

दलबदल तोड़-फोड़ है, नाराज लोगों की। जिनको आशा थी कि मिलेगा पद और नहीं मिला। और इस देश में किसी तरह की निष्ठा नहीं है। इस देश में किसी तरह की वैचारिक निष्ठा न कभी थी, न आज है। इस देश में विचार के प्रति कोई सम्मान ही नहीं है। हम कहते तो अपने को बड़े आध्यात्मिक लोग हैं, मगर हमसे ज्यादा भौतिकवादी लोग पृथ्वी पर खोजने मुश्किल हैं। हम निरे भौतिकवादी हैं। हमारे सारे सोचने-समझने की प्रक्रिया भौतिकवादी है। हम बातें बड़ी ऊंची करते हैं। हम बातों में बड़े कुशल हो गए हैं। वह भी सिर्फ हमारी कुशलता ही है। उन ऊंची-ऊंची बातों के नीचे जो हम चलाते हैं, वह बिल्कुल और है।

तुम जिनको नेता मान लेते हो और उनसे तुम आशा रखते हो कि वे कोई विचार की निष्ठा बताएंगे। तुम्हारी आशा गलत है। वे नेता किसी विचार की निष्ठा के लिए नहीं हैं, वे नेता हुकूमत करने के लिए हैं, वे तुम पर मालकियत करने के लिए हैं। विचार इत्यादि के तो बहाने हैं; वे तो नारे हैं। अगर समाजवाद हवा में है तो समाजवाद का नारा दो, क्योंकि समाजवाद को मत मिलेंगे। अगर कोई और चीज हवा में है तो जल्दी से हवा के साथ हो जाओ। जो हवा का रुख पहचानता है, उसको ही होशियार राजनीतिज्ञ कहते हैं।

मगर मैं समझता हूं नारायणदास, बरबादी तो उनसे हो रही है और होती रहेगी, क्योंकि तुम्हारी भी कोई वैचारिक निष्ठा नहीं है। विचार ही नहीं है। बुद्धिमत्ता ही नहीं है, तो विचार कहां से होगा! इस देश में कोई सोचता-समझता है? कोई सोच कर जी रहा है?

एक महिला एक जीप में सवार हुई। पिकनिक को जा रही थी, कोई सत्रह-अठारह बच्चे ले कर। ड्राइवर कुछ पीए हुए था। एक तो पीए हुए, और फिर भारतीय ड्राइवर! तो भारतीय ड्राइवर तो बिल्कुल स्वतंत्रता में विश्वास करते हैं। जहां जगह मिले वहीं से निकल जाते हैं। न बाएं में मानते, न दाएं में मानते। मध्यमार्गी होते हैं। रास्ते के बिल्कुल बीच में चलते हैं। कहा ही है भगवान बुद्ध नेः मज्झिम निकाय। बीच में चलो! सो वे बीच में ही चलते हैं। और वह कहीं से भी जा रहा था। महिला एकदम घबड़ा रही थी, बच्चे गिरे जा रहे थे। सिर बच्चों के फूटे जा रहे थे। आखिर उसने कहा कि भैया, जरा होश से चल। तो उस ड्राइवर ने पीछे की तरफ देखा और कहा कि बाई, ये सब बच्चे तेरे हैं? उसने कहा, हां। तो उसने कहा, जब तू होश नहीं रख सकी, तो मैं क्यों होश रखूं! पहले खुद ही होश रखो। फिर दूसरों को शिक्षा देना।

तुम कितने बच्चे पैदा करते जाते हो, कुछ होश है? और कहते हो कि देश बरबाद हो रहा है। इतनी भीड़! बुद्ध के जमाने में भारत की आबादी दो करोड़ थी, तो स्वभावतः लोग प्रसन्न थे। दो करोड़ के लिए यह भूमि बहुत थी। तो स्वभावतः लोगों के लिए भोजन था, दूध था, खाने-पीने का सामान था, कोई अड़चन न थी। आज सत्तर करोड़ के करीब पहुंची जा रही है आबादी। और देश उतना का उतना। उतना का उतना भी नहीं है, देश में से बहुत सा हिस्सा कट गया है। अगर पाकिस्तान की आबादी भी और बंगला देश की आबादी भी इसमें जोड़ लें, तो नब्बे करोड़ के करीब आबादी पहुंच रही है। करीब-करीब पचास गुनी आबादी हो गई और जमीन उतनी ही!

और जमीन की उपजाऊ शक्ति क्षीण होती चली गई, क्योंकि तुमने फिक्र ही नहीं की। तुम तो समझते रहे कि बस गऊमाता का गोबर डाल दिया कि सब ठीक हो गया। तुम्हारा गोबर में ऐसा भरोसा है, ऐसी श्रद्धा है कि अगर देश गोबर-गणेशों से भर गया है तो कुछ आश्चर्य नहीं है। सब गऊ-पुत्र, गऊमाता के वंशज! तुमने जमीन पर कभी ध्यान नहीं दिया कि इसको जितना हम इससे ले रहे हैं, इतना वापस देने की जरूरत है। पच्चीस सौ साल में तुमने जमीन को चूस लिया। उसमें कुछ बचा नहीं, जमीन बांझ हो गई है। और संख्या बढ़ती चली जाती है।

अब इस उपद्रव की हालत में, तुम जिनको राजनेता बना कर भेजते हो वे आश्वासन तो देते हैं; वे भी जानते हैं कि पूरे नहीं कर सकेंगे और तुम भी अगर होश में हो तो तुम भी जानते हो कि पूरे नहीं कर सकेंगे। इसमें किसी का कसूर भी नहीं है। पूरे हो नहीं सकते, तुम्हारी समस्याएं इतनी बड़ी हैं। तो तुम जिसको भी सत्ता में भेजोगे वह आश्वासन देगा और चार-छह महीने में तुमको लगेगा कि यह तो गड़बड़ हो गई। लेकिन पांच साल फिर प्रतीक्षा करो।

लेकिन पांच साल में तुम दस करोड़ की आबादी और बढ़ा लोगे। पांच साल बाद जो राजनेता आश्वासन देगा, वह और भी मुश्किल में दे रहा है। मगर उसको सत्ता करनी है। उसको सत्ता का मजा लेना है। उसको भी फिक्र नहीं तुम्हारी समस्या की। तुमको भी फिक्र नहीं तुम्हारी समस्या की। किसी को समस्या की फिक्र नहीं है। उसको आश्वासन देना पड़ता है, क्योंकि तुम मत न दोगे। तुम जो कहो, वह कहता है--हां। तुम जैसा कहो, वह कहता है--हां, यही करेंगे, ऐसा ही करेंगे। लेकिन जैसे ही वह सत्ता में पहुंचता है, उसको दिखाई पड़ता है कि यह मामला तो इतना बड़ा है, यह हो कैसे सकता है? इसकी संभावना कहां है?

और अगर कोई राजनेता करने की कोशिश करे तो तुम उसको खूब फल चखाते हो। तुमने इंदिरा को जो कष्ट दिया तीन साल तक, उसका कुल कारण इतना था कि उसने कुछ करने की कोशिश की थी। उसने चेष्टा की थी कि तुम्हारी जनसंख्या रुक जाए। तो तुम नाराज हो गए, कि हमारे साथ जबरदस्ती हो रही है, कि हमें बांझ किया जा रहा है, कि हमें पकड़-पकड़ कर नसबंदी की जा रही है। नसबंदी इंदिरा को ले डूबी। अब इंदिरा को

भी सोचना पड़ेगा कि नसबंदी करनी कि नहीं। और अगर नसबंदी नहीं होती है तो तुम्हारी समस्याएं रोज बढ़ती जाएंगी। तुम बरबादी के कगार पर खड़े हो। तुम आत्महत्या करने के कगार पर खड़े हो। और अगर वह नसबंदी की कोशिश करेगी तो तुम फिर उसे दिक्कत दोगे।

इसलिए मोरारजी ने तीन साल में कुछ भी नहीं किया, संख्या को बढ़ने दिया मजे से। अरे, मजा करो! बाल-गोपाल बढ़ाओ! यह तो बाल-गोपालों का देश ही है। बाल-गोपाल तो बढ़ते जा रहे हैं, न कहीं दूध है, न कोई मटकी है। कंकड़-पत्थर फेंकने का भी सवाल नहीं है। मोरारजी तो चुपचाप... कुछ किए नहीं तीन साल। मोरारजी लोगों को ठीक जमे कि कुछ गड़बड़ तो नहीं करते। भले आदमी हैं। इंदिरा अखरी, क्योंकि उसने कुछ करने की कोशिश की।

मैं तो इंदिरा को कहूंगा कि फिर करने की कोशिश करो! और जोर से कोशिश करो! क्योंकि इस देश को सीधे-सीधे रास्ते पर लाया जा सकता नहीं; इसकी समस्याएं काफी तिरछी हो गई हैं। अमरीका जैसे देश प्रसन्न हैं, क्योंकि बीस करोड़ की आबादी है और जमीन हम से बहुत ज्यादा है। रूस प्रसन्न है, क्योंकि बीस करोड़ की आबादी है और जमीन हम से बहुत ज्यादा है। हम कैसे प्रसन्न हो सकते हैं? मगर अमरीका में फिक्र है कि कोई दो बच्चे से ज्यादा न पैदा करे। कोई करता नहीं, इसलिए कोई जबरदस्ती की जरूरत नहीं है।

हम अभी लोकतंत्र के योग्य भी नहीं हैं। लोकतंत्र के योग्य होने योग्य प्रतिभा नहीं है हमारी। लोकतंत्र का अर्थ होता है--लोग इतने बुद्धिमान हैं, सोच-विचारशील हैं कि उनको छोड़ा जा सकता है, वे खुद ही इस तरह के काम नहीं करेंगे। लेकिन नहीं; तुम समस्याएं खड़ी करते जाओ, फिर ऊपर जो हैं उनको दिखाई पड़ता है कि कुछ हल तो हो सकता नहीं, किसी का तो हल हो सकता नहीं, तो कम से कम अपनी मुसीबत तो हल कर लो। चार दिन की जिंदगी है, अब यहां तो कुछ हल होने वाला नहीं है, यहां तो मुसीबत बढ़ती जाने वाली है, तो चार दिन खुद तो कम से कम बंगले में रह लो। चार दिन खुद तो सुख के बिता लो। और कोई हम ठेका लेकर आए हैं!

राजनेता तुमको आश्वासन देता है, क्योंकि तुमसे वोट चाहिए। वोट मिल जाने के बाद तुम्हारी उसे कोई चिंता नहीं है। और तुम्हारी अगर वह चिंता करे तो तुम उसे टिकने नहीं दोगे। इस देश की मूढ़ता का अंत नहीं है। इस देश को अगर बदलना हो तो केवल वे ही लोग बदल सकते हैं, जो सूली पर चढ़ने को राजी हों, जो गोली खाने को राजी हों। यह देश उनको मारेगा। मुझको इतनी गालियां पड़ती हैं, सारे मुल्क में गालियां पड़ती हैं; उसका सिर्फ कारण इतना है कि मैं सीधी-सीधी वही बात कह रहा हूं जो कही जानी चाहिए। लेकिन तुम चाहते हो तुम्हारी खुशामद हो। तुमसे कहा जाए कि तुम महान हो, बहुत धार्मिक हो, बड़े बुद्धिमान हो, तुम जैसा बुद्धिमान पृथ्वी पर कोई नहीं। तब तुम बिल्कुल प्रसन्न होते हो।

मगर तुम जैसा बुद्धू कोई नहीं है आज जमीन पर। और मुझे तुमसे कोई वोट नहीं चाहिए, इसलिए कोई फिक्र नहीं है।

तुम पूछते हो, नारायणदास, कि आप दलबदलुओं के संबंध में कुछ क्यों नहीं कहते?

क्या कहने को है! सब तो तुम्हें पता है।

निरादरणीय दलबदलू जी!
बार-बार धिक्कार!
सुना है आपने दूसरा दल भी छोड़ दिया
अपना भाग्य फोड़ा या उनका फोड़ दिया

लोग व्यर्थ ही
संशय करते हैं कि आप कैसे हैं
किंतु आप क्या करें!
आपके संस्कार ही ऐसे हैं
अस्पताल में पैदा होते ही आप उछल कर
बगल की चारपाई पर जा चढ़े थे
वह तो वहां नर्स और डाक्टर खड़े थे
नहीं तो आप जड़ से ही स्वयं को बदलते
एक के यहां जन्मे दूसरे के यहां पलते

हे परिवर्तन प्रेमी!
कल तक आप अडिग चट्टान थे
आज पथ के रोड़ों में जा मिले
अपनी पार्टी के गरीब गधों को छोड़ कर
तेज दौड़ने वाले घोड़ों में जा मिले
आपका क्या भरोसा
घोड़ों को छोड़ कर कल आप खच्चरों में जा मिलेंगे
आप तो सच्चे पद-प्रेमी हैं
मच्छर यह कहें कि आओ यह रही कुर्सी
तो आप मच्छरों में जा मिलेंगे

धर्मात्मा जी!
गीता का यह "वासांसि जीर्णानि" श्लोक
आपने कब पढ़ डाला
संपूर्ण जीवन में एक काम की चीज पढ़ी
उसके ही अर्थ का यह सार निकाला
शरीर और वस्त्र बदलने के स्थान पर
दल बदल गए
कुर्सी की भूख में
कृष्ण जी की गीता को ही निगल गए

हे बहुरूपिए!
कभी एकांत में आपको शर्म तो अवश्य आती होगी
पर क्या करे, बेचारी!

कुर्सी पर सर पटक कर चली जाती होगी
सोते समय आप उधर थे
उठते समय इधर हैं
आप तो एक घूमते हुए लट्टू हैं
कोई बता नहीं सकता कि आपका मुंह किधर है

हे परम देशभक्त!
आप देश की भलाई के लिए
कितना कष्ट उठा रहे हैं
चैन से बैठ कर न पी रहे हैं, न खा रहे हैं
जब देखो भागे जा रहे हैं
आप एक सच्चे राष्ट्रनेता का दायित्व निभा रहे हैं
आपने देश के लिए बहुत कुछ किया है
अपना सर्वस्व ही देश को दे दिया है
मेरा विनम्र निवेदन है कि आप
देश की जनता के लिए इतना और कर जाइए
शीघ्र ही किसी गंदे नाले में डूब जाइए।

और दलबदलुओं के संबंध में क्या कहो! कहने योग्य क्या है! खुद ही गिर रहे हैं नालियों में। रोज उनकी प्रतिष्ठा कम होती जा रही है। तीस साल में भारत में दो चीजों के दाम गिरे--एक तो रुपये का दाम गिरा और एक नेता का दाम गिरा। रुपये का भी इतना नहीं गिरा जितना नेता का गिरा। रुपये का तो फिर भी कुछ कौड़ी मूल्य रहा, नेता का कौड़ी भी मूल्य नहीं रहा। तीस साल में उन्होंने अपनी मटियामेट कर ली है। मगर तुम उनकी बातों में आ जाते हो। भूल तुम्हारी है, कसूर तुम्हारा है।

एक नेता जी व्याख्यान दे रहे थे, बड़े जोश-खरोश में थे। सो बिना आगे देखे बोलते गए और जोश में थे सो चलते भी गए। कह रहे थेः तुम अमर बढ़े चलो! तुम अजर बढ़े चलो! आन पर चढ़े चलो! और गड़ाप से मंच के नीचे चले गए।

मुल्ला नसरुद्दीन भीड़ में था, खड़ा हो गया और कहा, खड्ड में गिरे चलो!

और क्या करोगे, वे गड़ाप से गिर ही रहे हैं। अब कुछ कहने को ज्यादा उनके लिए है नहीं।

मैंने सुना है कि मोरारजी देसाई अभी हाल के चुनाव के बाद उदासी में एक दिन जरा ज्यादा पी गए। क्या पी गए, सो तुम जानते ही हो! जब बहुत नशा चढ़ गया तो अपनी ही टंगी शेरवानी को रात के अंधेरे में समझे कि अरे, यह कौन खड़े हैं! सो बोले--

"श्रीमान चमत्कार जी,
आपको बारंबार नमस्कारजी,
आप इस देश के छंटे हुए बदमाश हैं

पुरुषों को हाथ देते हैं
महिलाओं का साथ देते हैं।"
यह सुन कर चमत्कार मुस्कुराया
और बोला--
"जब बहुगुणा दल बदल सकते हैं
चौधरी साहब छल कर सकते हैं
फर्नांडीज बिदक सकते हैं
तो हम भी उधर खिसक सकते हैं।"

हमने कहा--
"जवाब नहीं तुम्हारे ठाठ का
हमें घर का छोड़ा न घाट का
ऐसी हालत बनाई है
आगे कुआं है
पीछे खाई है
बीच में "आई" है।"

चमत्कार बोला--
"आप तो लड़ रहे हैं
आप बिना बात बिगड़ रहे हैं
जब राजनारायण सरकार तोड़ सकते हैं
हरिजन जग और जीवन को छोड़ सकते हैं
तब हम भी अपनी सुरक्षा के लिए
यह चमत्कारी घड़ा आपके सिर पर फोड़ सकते हैं।"

मैंने कहा--"बकवास बंद करो!"
वह बोला--"जेल के फाटक खोलूं?"
इससे पहले कि मैं कुछ बोलूं
बोला--"तीन साल में आपने किया क्या?
अंधेरे में लाठी मारते रहे।
केवल गड़े मुर्दे उखाड़ते रहे
सत्य से आंख मींचते रहे
एक-दूसरे की टांग खींचते रहे।"

मैंने कहा--

"अबे चमत्कार
वापस कर मेरा नमस्कार
जानता है टांग खींचना
राजनीति का नहीं
व्यायाम का अंग होता है।"

वह बोला--"बेटा!
अब सारी जिंदगी व्यायाम करो।"

मैंने कहा--
"भाई साहब
तैश मत खाइए
कृपया यह बतलाइए
कि यह दो-तिहाई बहुमत कैसे आया है?"

बोला--"पांच रुपये किलो प्याज ने दिलवाया है।"

मैंने कहा--"क्या बकता है?
क्या प्याज किसी को प्रधानमंत्री बना सकता है?
यदि यह सत्य है
तो हम राजनारायण को बताएंगे
वह अपने चेहरे पर दाढ़ी नहीं
प्याज उगाएंगे
यदि यह सत्य है तो अब
माताएं मंदिरों में जाकर
पुत्र के स्थान पर प्याज की कामना करेंगी
हमारे भारतीय योगी विदेशों में
अब अध्यात्म का नहीं
प्याजात्म का प्रचार करेंगे
अब कोई क्रांति या संपूर्ण क्रांति नहीं होगी
केवल प्याज की खेती होगी।"

यह सुन कर चमत्कार गंभीर हो गया और बोला--
"सुनिए जी,
असलियत यह है कि--

इस देश का चिंतन प्याज-प्रधान हो गया है
आदमी के बोलने में भी बदबू आती है
आदमी के सोचने में भी बदबू आती है।
लोग बदबू ही पसंद करने लगे हैं
और सारा परिवेश हो गया है बदबूदार
भाई जी,
जहां का वर्तमान अतीत से सबक नहीं लेता
वहां का भविष्य फूट-फूट कर रोता है
ऐसी स्थितियों में कुछ नहीं
केवल चमत्कार होता है।"

बस नेता तुमसे चमत्कार की बातें करते रहते हैं। आशा बंधाएं रखते हैं कि होगा चमत्कार। चमत्कार न कभी हुआ है, न कभी होता है। मगर समस्याएं इतनी बड़ी हैं कि सिवाय चमत्कार के और कोई बात तुम्हें समझ में भी नहीं आ सकती, सूझ में भी नहीं आ सकती।

अभी भी कुछ बिगड़ नहीं गया है। अभी भी बात बदली जा सकती है। अभी भी नया पृष्ठ उघाड़ा जा सकता है। इस देश को इतने अध्यात्म की आवश्यकता नहीं है जितने विज्ञान की आवश्यकता है। इस देश को चरखों की आवश्यकता नहीं है और न खादी की। इस देश को नई टेक्नॉलॉजी की, नये उद्योगों की आवश्यकता है। इस देश को स्वदेशी इत्यादि की मूढ़तापूर्ण बातें छोड़ देनी चाहिए, सारी दुनिया की संपत्ति को आमंत्रित करना चाहिए। दुनिया में संपत्ति है और उस संपत्ति के लिए, लगाने के लिए स्थान नहीं है। भारत के पास संपत्ति नहीं है, लगाने के लिए बहुत अवकाश है। लेकिन हम बाहर की संपत्ति को रोकते हैं। और तो और, बेचारे गरीब कोकाकोला को रोक दिया! हम ऐसे भयभीत लोग हो गए हैं कि हम एकदम छुईमुई हो गए हैं, दीवालें बद कर ली हैं।

हमें दुनिया को विश्वास दिलाना चाहिए। हमारे पास श्रम है, सुविधा है, विकास का अवसर है। और सारी दुनिया के पास संपत्ति है। वे यह संपत्ति इस मुल्क में लगाने को राजी हो सकते हैं। अमरीका ने जितनी संपत्ति सारी दुनिया में लगाई है, उसका केवल एक प्रतिशत भारत में है। यह बड़ी हैरानी की बात है। कम से कम पचास प्रतिशत यहां लग सकता है। मगर हम आश्वस्त नहीं होने देते। और हम टुच्ची बातें करते हैं। और यहां भी हम व्यक्तिगत उद्योगों को विकसित नहीं होने देते हैं। समाजवाद की थोथी बकवास लगा रखी है।

समाजवाद पूंजीवाद की अंतिम अवस्था है। जब पूंजीवाद इतनी पूंजी पैदा कर देता है कि सब में बांटी जा सके, तब समाजवाद का कुछ अर्थ होता है। यहां क्या है बांटने को? और अगर यहां बांट लोगे तो गरीबी ही बांट सकते हो, और क्या बांटने को तुम्हारे पास है? अभी बांटने की बात ही मत करो, अभी पैदा करने की बात करो। समाजवाद पैदा नहीं कर सकता, सिर्फ पूंजीवाद पैदा कर सकता है। पूंजीवाद का अर्थ ही होता है, पूंजी पैदा करने की प्रक्रिया है वह। जब पूंजी पैदा हो जाए तो बांट लेना। फिर समाजवाद स्वाभाविक परिणाम है।

रूस साठ साल से समाजवादी है और अभी तक भी अमीर नहीं हो पाया है। अभी तक भी अमरीका से हजारों मील पीछे है। अमरीका की समृद्धि का राज क्या है? सीधा सा राज हैः व्यक्तिगत उद्योग को अधिक से अधिक मूल्य दिया जा रहा है। और अमरीका ने सारी दुनिया से संपत्ति को आमंत्रित कर लिया है।

इस देश की समस्या हल हो सकती है। ऐसी कोई समस्या ही नहीं होती जो हल न हो सके। एक तीन बातें ख्याल रखने जैसी हैं।

एकः इस देश की जनसंख्या नीचे गिरनी चाहिए। जिनको भी समझ हो थोड़ी, उन्हें संतान से सावधान हो जाना चाहिए। अब वह नारा भी काम नहीं चलेगा कि दो या तीन बस। जो लोग बिल्कुल बिना बच्चों के रह सकें, उनको सम्मान दिया जाना चाहिए। उनको हर तरह से सुविधाएं दी जानी चाहिए। उनको पहले नौकरियां दी जानी चाहिए। उनको तनख्वाहें ज्यादा दी जानी चाहिए। उनको इनकमटैक्स में सुविधा दी जानी चाहिए। अभी उलटा हैः जितने ज्यादा बच्चे हों उतनी इनकमटैक्स में सुविधा मिलती है।

एक तो संख्या कम हो। दूसरेः व्यक्तिगत उद्योगों पर बल हो। क्योंकि जो-जो उद्योग राष्ट्रीय हो जाता है वही उद्योग बरबाद हो जाता है। उसी उद्योग में हानि होने लगती है। जब तक व्यक्तियों के हाथ में होता है, लाभ होता है; और जैसे ही राष्ट्र के हाथ में गया, वैसे ही हानि शुरू हो जाती है। क्योंकि यहां राष्ट्र की धारणा ही नहीं है। इस देश में राष्ट्र का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। यह देश कभी राष्ट्र रहा नहीं। सदियों से नहीं रहा है। यह पहला मौका है आजादी के बाद, जब हम एक राष्ट्र बने हैं; नहीं तो यह खंडित टुकड़ों में बंटा रहा है। और यहां हर आदमी स्वार्थी है। तो जब तक उसका स्वार्थ तब तक ठीक। जैसे ही उसका स्वार्थ गया कि फिर उसको फिक्र नहीं है।

एक आदमी को मैंने बगीचे में देखा, वह बैठा हुआ चाकू से, जिस बेंच पर बैठा था उसको खोद रहा है, कुरेद रहा है। मैंने कहा कि भई, यह तू क्या करता है? उसने कहा, यह आपकी है? मैंने कहा, नहीं, मेरी तो नहीं है। सार्वजनिक है।

उसने कहा, सार्वजनिक है तो क्या फिक्र? सार्वजनिक है तो कुरेदो चाकू से, किसी के बाप की है?

किसी के बाप की नहीं है, यह बात तो सच्ची है। तो फिर क्या फिक्र है? सार्वजनिक चीज का तो कोई सम्मान ही नहीं है! हमारे देश में सार्वजनिक की कोई धारणा नहीं है। इसलिए इस देश में व्यक्तिगत उद्योग को जितना हम मूल्य दे सकें उतना उपयोगी है।

और तीसरी बातः हम आश्वस्त कर सकें दुनिया को कि तुम्हारी संपत्ति अगर यहां लगेगी तो नष्ट नहीं होगी। इस तरह की टुच्ची बातें हम नहीं करेंगे कि कोकाकोला पर कब्जा कर लें या फलाने को बंद कर दें या ढिकाने को बंद कर दें, ये फिजूल की बातें हम नहीं करेंगे। तुम्हारी संपत्ति सुरक्षित रहेगी।

लेकिन हमारी जान इसमें अटकी है कि वे कुछ कमा न लें। हमें इसकी फिक्र कम है कि हमें कितना लाभ होगा। हमें इसकी चिंता ज्यादा है कि वे कुछ कमा न लें। ठीक है वे कुछ कमाएंगे। मगर वे कुछ कमाएंगे तो हम बहुत कमाएंगे।

मगर इस देश के सोचने का ढंग गलत हो गया है। यहां इस बात की ज्यादा फिक्र है कि कोई हमसे कमा न ले। चाहे हम लंगोटी में ही रह जाएं, मगर कोई हमसे कमा न ले!

वे कमाएंगे जरूर तो हम भी कमाएंगे। दुनिया की सारी संपत्ति को आमंत्रित किया जाना चाहिए। और देश में एक विचार की निष्ठा पैदा होनी चाहिए। सोच-विचार का जन्म होना चाहिए। तुममें सोच-विचार की निष्ठा होगी तो तुम्हारे नेताओं में होगी। तुम्हारे नेता तो केवल तुम्हारे झंडे हैं। तुम जो हो वैसे तुम्हारे नेता हैं।

और मजा यह है कि इन दलबदलुओं को, जिनके लिए तुम पूछते हो नारायणदास, फिर भी तुम वोट दिए जाते हो! इन दलबदलुओं की पिटाई भी नहीं होती! इन दलबदलुओं को कोई फेंकता भी नहीं उठा कर। ये दलबदलू यहां से वहां हो जाते हैं और फिर ये नेता के नेता बने रहते हैं। ये फिर पद पर बने रहते हैं।

अभी जगजीवन राम कोशिश में लगे हैं कि अब किस तरह से फिर घुस जाएं पद पर। चालीस साल से पद पर हैं। हरिजनों के नाम से पद पर हैं। किस हरिजन का कौन सा लाभ हुआ इन चालीस साल में, कुछ कहा नहीं जा सकता। और चालीस साल में बस एक ही तिकड़मबाजी हैः किसी भी तरह पद पर रहना है। इंदिरा हारी, हारने के लक्षण दिखाई पड़े, भाग गए, जनता पार्टी के हो गए। अब जनता पार्टी हार गई, जनता पार्टी छोड़ दी। अभी जनता पार्टी के प्रधानमंत्री होने की कोशिश मेंलगे रहे। अब हार गए तो जनता पार्टी में सब खराबियां आ गईं। अब कोशिश में लगे हैं कि अब फिर से कोई दरवाजा खुल जाए तो फिर किसी पद पर पहुंच जाएं। फिर सांठ-गांठ बिठा रहे हैं।

इस देश में चमार बहुत हैं, मगर जगजीवन राम जैसा चमार दूसरा नहीं। ये तो चमारों के चमार हैं। और क्या चमारी होती है? मगर फिर भी चलेगा। फिर पद पर हो जाएंगे और फिर तुम कहने लगोगे--बाबू जी! और ठीक ही है वैसे, बाबू का मतलब होता है--जिससे बदबू उठे। बू-सहित। बाबू कोई सम्मानवाचक शब्द नहीं है, गाली है। जिसका सम्मान करना हो उसको बाबू मत कहना। जिसको गाली देना हो, उसको कहना कि बाबू। और जी लगा देना, जिसमें वह बुरा न माने।

आज इतना ही।

सातवां प्रवचन

युवा होने की कला

पहला प्रश्नः ओशो, आपने अक्सर भारत के बुढ़ापे की और उससे पैदा हुई उसकी जड़ता की चर्चा की है। कृपया बताएं कि क्या यह जाति फिर से युवा हो सकती है? और कैसे?

आनंद मैत्रेय, जीवन को सतत ताजा रखने की प्रक्रिया एक ही है--फिर चाहे वह व्यक्ति का सवाल हो, जाति का या राष्ट्र का, इससे कुछ भेद नहीं पड़ता। जीवंत रहने की कला का आधारभूत सूत्र हैः अतीत के प्रति मर जाना। अतीत के प्रति रोज-रोज मरते जाना। प्रतिपल मरते जाना। अतीत को संगृहीत न करना।

अतीत को संगृहीत करने से ही जड़ता पैदा होती है। जितना अतीत हमारे सिर पर लद जाता है उतने ही हम बोझ से दब जाते हैं; उतने ही हमारे पैर, नृत्य तो दूर, चलने में भी असमर्थ हो जाते हैं। और जीवन नृत्य है। जीवन अहर्निश नृत्य है। हमने ऐसे ही परमात्मा की नटराज की तरह कल्पना नहीं की; बहुत सोच कर की। द्रष्टाओं की अनुभूति का सार उसमें छिपा है। पृथ्वी के किसी भी और हिस्से में परमात्मा को नर्तक की तरह नहीं देखा गया। परमात्मा की यह भाव-भंगिमा हमारा दान है जगत को। क्योंकि नृत्य की कुछ खूबियां हैं, जो किसी और कृत्य में नहीं होतीं।

पहली खूबी, कि नृत्य और नर्तक को अलग-अलग नहीं किया जा सकता। परमात्मा को चित्रकार कहो, तो चित्रकार चित्र से अलग हो जाता है, द्वैत पैदा हो जाता है। चित्रकार मर भी जाए तो भी चित्र बना रहेगा। चित्र बेचा जा सकता है। चित्रकार और चित्र अलग-अलग हैं। परमात्मा को मूर्तिकार कहो, मूर्ति मूर्तिकार से अलग हो जाती है। मूर्तिकार मूर्ति में समा नहीं पाता। मूर्ति मूर्तिकार से आविष्ट नहीं होती। मूर्तिकार मूर्ति की आत्मा नहीं बन पाता; बाहर-बाहर रह जाता है।

नृत्य अनूठी बात है। नर्तक नृत्य की आत्मा है। वह उसके भीतर है, बाहर नहीं। चित्रकार बाहर से तूलिका उठाता है, चित्र बनाता है। मूर्तिकार छैनी उठाता है, हथौड़ी उठाता है, पत्थर को खोदता है--लेकिन बाहर से। नर्तक भीतर से, अंतरतम से नृत्य को जन्माता है। नृत्य के भीतर होता है, केंद्र पर होता है। मूर्तिकार परिधि पर होता है, नर्तक केंद्र पर होता है। और नर्तक और नृत्य एक हैं। उन्हें अलग करने का कोई उपाय नहीं। वे अद्वैत की जितनी ठीक-ठीक अभिव्यक्ति करते हैं, कोई और दूसरी चीज नहीं करती।

परमात्मा नर्तक है, अस्तित्व उसका नृत्य है। और जिस दिन आदमी बोझिल हो जाता है, उस दिन परमात्मा से टूट जाता है। और भारत की बोझिलता बहुत पुरानी है। हम पुराने में रस लेते हैं। हम अपने को पुराने से पुराना सिद्ध करने में बड़ा श्रम उठाते हैं। हमारी सारी चेष्टा यह है कि हम सिद्ध कर दें कि दुनिया में हमसे ज्यादा पुराना कोई भी नहीं। इसका अर्थ होता है कि हम सिद्ध कर रहे हैं कि हमसे ज्यादा मुर्दा और कोई भी नहीं। हमारा बोझ भारी है। हिमालय की तरह हमारे सिर पर बोझ है। हम इंच भर सरक नहीं पा रहे हैं, सदियों से नहीं सरक पा रहे हैं। हम जहां के तहां रह गए हैं। यह हमारी जड़ता है। इस बोझ को उतारना होगा।

भारत युवा हो सकता है--होना चाहिए। युवा हुए बिना भारत का कोई भविष्य भी नहीं है। मेरा सारा प्रयास यहां यही है कि तुम्हें युवा होने की कला का अनुभव होने लगे। फिर बूढ़ा से बूढ़ा आदमी भी युवा हो

सकता है। क्योंकि युवा से युवा आदमी भी बूढ़ा हो सकता है। यह सब निर्भर करता है इस बात पर कि कितना बोझ तुम्हारे सिर पर है।

अगर युवा आदमी के सिर पर बहुत बोझ हो, तो वह बूढ़ा हो गया; वह नाच न सकेगा, चल न सकेगा। उसका भविष्य अंधकारमय हो गया। उसका भविष्य बचा ही नहीं। उसका वर्तमान सिर्फ एक दुख है--एक दुख-स्वप्न। उसके लिए अगर कोई सुख है तो एक ही है कि स्मृतियों में, अतीत की याददाश्तों में थोड़ा सा अपने मन को समझा ले, बुझा ले; याद कर ले राम के युग की; याद कर ले वेद की, उपनिषदों की; सोच ले मन में, कि कैसा स्वर्ण-युग था, कैसा सतयुग था और किसी तरह आज को झेल ले। आज तो कलियुग है। पीछे था सतयुग। यह बूढ़े होने का लक्षण है।

युवा होने का लक्षण हैः आज है सतयुग। क्योंकि आज ही सत्य है। और जो सत्य है वही सतयुग हो सकता है। कल तो झूठ हो चुका। कल कैसे सतयुग हो सकता है? सतयुग शब्द का अर्थ तो समझो। कल है कहां? कहीं कोई रेखा भी नहीं छूट गई है। सिर्फ तुम्हारी स्मृति में है। तुम जो गठरी बांधे हो अपने सिर पर कूड़े-करकट की, उसमें है। कल तो जा चुका। कुछ बचा नहीं। आने वाला कल अभी आया नहीं। सतयुग न तो पीछे हो सकता है, न आगे हो सकता है। और दुनिया में दो ही तरह के पागल हैं--कि कुछ का सतयुग पीछे होता है और कुछ का सतयुग आगे होता है। जो पुराने ढंग के पागल हैं उनका सतयुग पीछे है; भारत उन्हीं में है। और जो नये ढंग के पागल हैं--जैसे कम्युनिस्ट, सोशलिस्ट, रूस, चीन--उनका सतयुग आगे है, भविष्य में है।

सतयुग का अर्थ ही यह होता है--जो सत्य है। सत्य क्या है? न तो अतीत, न भविष्य; वर्तमान सत्य है। सतयुग अभी है, यहां है। लेकिन इसके लिए जरूरी होगा कि हम अतीत का पूरा बोझ उतार दें। अतीत की हम सारी स्मृतियों को हटा कर रख दें। हम अपनी आंखों को साफ करें, अपने चश्मे को पोंछ लें। बहुत धूल जम चुकी है उस पर।

एक बुढ़िया सुबह-सुबह उठ कर, खिड़की तो बंद थी, लेकिन खिड़की के कांच से झांक कर बाहर देख रही थी। उसका छोटा पोता भी पास ही खड़ा था। उस बुढ़िया ने कहा, बड़ा धुंधलका है आज! वह छोटा सा बच्चा हंसने लगा, उसने कहा कि नहीं, धुंधलका नहीं है दादी। खिड़की का कांच धूल से भरा है। खिड़की का कांच धूल से लदा है। धुंधलका नहीं है। मैं बाहर होकर आया हूं। सब साफ-सुथरा है, बिल्कुल ताजा है।

वह जो कांच पर जमी हुई धूल है, वृद्धा की आंखों में ख्याल में नहीं आ रही। कांच धुंधला है और धुंधले कांच से वह जगत को देख रही है, तो सारा जगत धुंधला दिखाई पड़ रहा है।

तुम्हारा चश्मा धुंधला है। तुम्हारे देखने की दृष्टि धुंधली हो गई है। पर्त पर पर्त धूल की जमती चली गई है। और हम हटाते नहीं धूल को। हम तो धूल को और बढ़ाते हैं। हम तो धूल को ऐसे पकड़ते हैं जैसे स्वर्ण है, कहीं छूट न जाए! कहीं शास्त्र हमसे खो न जाएं! हम तो अतीत का गुणगान करने में लवलीन रहते हैं।

भारत युवा हो सकता है। लेकिन हिम्मत जुटानी पड़ेगी। युवा होना हिम्मत का काम है, साहस का काम है। वर्तमान की चुनौती अंगीकार करनी होती है।

वर्तमान की चुनौतियां क्या हैं?

वर्तमान की पहली चुनौती तो यह है कि हम एक पाठ सीखें, कि हमने अब तक जो किया है उसमें कहीं कुछ भूल थी। जब तक तुम अतीत को सिर पर रखे रहते हो, तब तक तुम उसका विश्लेषण भी नहीं कर सकते। विश्लेषण करने के लिए दूरी चाहिए, फासला चाहिए, थोड़ी तटस्थता चाहिए। हमने कुछ भूलें की हैं, लेकिन हम उन भूलों को स्वीकार नहीं करना चाहते, क्योंकि उन भूलों को स्वीकार करने का अर्थ होता है हमारे अहंकार

को चोट लगती है। हम उन भूलों के साथ अपना तादात्म्य किए बैठे हैं। कोई अगर हमें हमारी भूलें सुझाए तो दुश्मन मालूम पड़ता है। उसकी बात हमें जहर लगती है! हम तो उनकी बातें सुनना चाहते हैं जो हमारा गुणगान करें, हमारा गौरव गाएं।

इसलिए तुम हमेशा उन महात्माओं के वचनों को सुन कर खूब गदगद होते हो, जो तुम्हारी प्रशंसा किए चले जाते हैं--कि तुम दुनिया के सबसे ज्यादा धार्मिक लोग हो! तुम पुण्यवान हो! तुमने अतीत जन्मों में कई बार न मालूम कितने पुण्य किए होंगे, तब इस पवित्र भूमि में तुम्हारा जन्म हुआ है! सुन कर तुम्हारा चित्त गदगद होता है कि अहा! और तो कुछ तुम्हारे पास है ही नहीं; बस इसी तरह की बातें हैं जिनमें अपने को उलझाए रखते हो। भूलें तुम अपनी देखोगे कैसे?

अगर युवा होना है तो बोझ को सामने रखो उतार कर, उसका विश्लेषण करो। इस गठरी में बहुत भूलें हैं। भूलें ज्यादा हैं। हीरे-जवाहरात तो बहुत कम हैं, कंकड़-पत्थर ज्यादा हैं। उन्हीं कंकड़-पत्थरों में हम दबे जा रहे हैं, मरे जा रहे हैं।

भारत ने जो भूल की है, वह भूल थी कि हमने भीतर के जगत को बाहर के जगत से बहुत ज्यादा मूल्य दे दिया। जैसा आज पश्चिम में भूल हो रही है--उलटे छोर पर--कि बाहर के जगत को भीतर के जगत से बहुत मूल्य दिया जा रहा है। ये दोनों भूलें एक जैसी हैं। इन भूलों की बुनियाद एक है, सूत्र एक है।

कार्ल मार्क्स कहता है कि आत्मा नहीं है, परमात्मा नहीं है। है तो पदार्थ; आत्मा-परमात्मा तो आभास मात्र हैं। और हमारे तथाकथित धर्मगुरु कहते हैं कि परमात्मा और आत्मा सत्य हैं; जगत मिथ्या है, आभास मात्र है, माया है।

ये दोनों एक बात पर राजी हैं कि दो में से एक माया है और एक सत्य है। पश्चिम भी एक भूल कर रहा है कि बाहर जो है वही सत्य है और भीतर कुछ भी नहीं। इसलिए पश्चिम बाहर से समृद्ध होता जा रहा है और भीतर से दरिद्र, दीन-हीन। बाहर महल खड़े होते जा रहे हैं, अंबार लगते जा रहे हैं--धन के, वैभव के। और भीतर? भीतर अंधकार घना होता जा रहा है--अमावस, जहां एक तारा भी नहीं दिखाई पड़ता। तारे तो दूर, एक मिट्टी का दीया भी नहीं जलता। और भारत ने यही भूल की--दूसरे छोर से। कहाः बस भीतर सब ठीक है, बाहर सब झूठ है। तो हम भीतर की तो थोड़ी-बहुत खोज-बीन कर पाए, कुछ हीरे-जवाहरात हम लाए, डुबकी मारी, हम गहरे बैठे। लेकिन बाहर हमारा एकदम दरिद्र हो गया, दीन हो गया, रुग्ण हो गया, उदास हो गया। दोनों पंगु हैं।

मेरे देखे, बाहर उतना ही सत्य है जितना भीतर। बाहर और भीतर एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। परमात्मा और उसका संसार दो नहीं हैं। इसलिए कोई भी असत्य नहीं है। न जगत असत्य है, न ब्रह्म असत्य है। दोनों सत्य हैं और समान रूप से सत्य हैं। क्योंकि संबंध नर्तक और नृत्य का है। अगर नर्तक सत्य है तो उसका नृत्य भी सत्य है। अगर नृत्य सत्य नहीं होगा तो नर्तक को नर्तक भी कैसे कहोगे? और अगर नृत्य सत्य है तो नर्तक के बिना सत्य हुए कैसे सत्य हो सकता है? या तो दोनों सत्य हैं, या दोनों असत्य हैं। मगर दोनों समान हैं। दोनों में जरा भी मूल-भेद किया, तराजू में जरा भी तुमने बेईमानी की और डांडी मारी, कि एक पलवा नीचे और एक ऊपर, कि तुम्हारे जीवन में संतुलन खो जाएगा। और जहां संतुलन खो जाता है, वहीं जीवन उदास हो जाता है, रुग्ण हो जाता है।

पंचतंत्र की पुरानी कथा हैः एक जंगल में आग लगी। उस जंगल में दो भिखारी रहते थे, एक अंधा और एक लंगड़ा। दोनों बचना चाहते थे। दोनों में दुश्मनी थी। भिखमंगे थे दोनों। एक ही धंधे में थे। एक ही धंधे में तो

लोग दुश्मन होते ही हैं। एक-दूसरे से गलाघोंट प्रतियोगिता थी, भारी प्रतियोगिता थी। लेकिन दोनों जल्दी ही समझ गए कि खतरा भारी है; अभी धंधे का सवाल नहीं है, अभी सब झगड़े मिटा कर संग-साथ अगर न हो लिए तो दोनों मरेंगे। अभी जीवन और मृत्यु का सवाल है। न तो अंधा बच सकता था। हालांकि उसके पास पैर थे, भाग सकता था। लेकिन कहां भागे? उसे दिखाई नहीं पड़ता था। जंगल में चारों तरफ आग बढ़ती जा रही थी। कहीं लपटों में घुस जाए! कहीं लपटों से टकरा जाए! गिर पड़े किसी खाई-खड्ड में जहां आग लगी हो! पैर उठाना खतरे से खाली नहीं था। अब यह कोई ऐसा समय नहीं था सुविधा का कि टटोल-टटोल कर निकल जाए। टटोलने में ही खतरा था। और आग बढ़ती जा रही थी, उत्ताप बढ़ता जा रहा था। लपटें करीब आती मालूम हो रही थीं। लंगड़ा देख सकता था कि अभी भी बचने का उपाय है, लेकिन भाग नहीं सकता था, क्योंकि पैर ही न थे।

दोनों ने समझ का काम किया। दोनों ने कहा, छोड़ें पुराना झगड़ा, हम संगी-साथी हो जाएं, हम सहयोग करें, हम साझीदार हो जाएं। लंगड़े ने कहा कि मुझे तुम अपने कंधों पर उठा लो, मैं तुम्हारी आंखें बन जाऊं, तुम मेरे पैर बन जाओ, तो हम दोनों बच जाएं। और दोनों बच गए। अंधे ने लंगड़े को कंधे पर उठा लिया। आंख और पैर दोनों हो गए साथ।

आज दुनिया की यही पीड़ा है। पश्चिम अतिशय जवान है। जवानी की अपनी भूलें होती हैं। जवानी अंधी होती है। जवानी जीने की क्षमता तो रखती है, लेकिन बुद्धिमत्ता नहीं रखती। पूरब बूढ़ा है। बुढ़ापे की अपनी झंझटें हैं। बुढ़ापे के पास बुद्धिमत्ता तो होती है, जीने की कला का तो उसे बोध होता है, लेकिन जीने की क्षमता खो गई होती है, ऊर्जा खो गई होती है। जरूरत है कि पूरब और पश्चिम दोनों मिल जाएं। जंगल में आग लगी है। अगर ये अंधे और लंगड़े नहीं मिले तो खतरा भारी है। अब भारत चाहे कि हम अकेले बच जाएं तो गलती में है और अमरीका चाहे कि हम अकेले बच जाएं तो गलती में है। न तो भौतिकवादी अकेला बच सकता है, न अध्यात्मवादी अकेला बच सकता है।

इसलिए मैं एक नई जीवन-दृष्टि तुम्हें दे रहा हूं, जो भौतिकवाद और अध्यात्म का समन्वय है। इस समन्वय में ही सारी मनुष्यता का बचाव है। भारत को युवा होना होगा और अमरीका को थोड़ी वृद्धावस्था की समझ, थोड़े पके बालों की समझ, थोड़ा अनुभव! पूरब को थोड़ी ऊर्जा, पश्चिम को थोड़ा अनुभव। पूरब को थोड़ा विज्ञान, पश्चिम को थोड़ा अध्यात्म। और काश यह मेल बैठ सके तो पृथ्वी पर एक नये ढंग का सूर्योदय हो सकता है। और यह मेल बैठ सकता है। यहां कोई चालीस-पचास देशों के लोग मौजूद हैं। यह मेल बैठ रहा है। यहां कोई पूछता ही नहीं कि कौन किस देश से है। महीनों बीत जाते हैं, पता नहीं चलता कि कौन किस देश से है, कौन किस जाति का है। कभी आकस्मिक पता चल जाए तो चल जाए, नहीं तो पता ही नहीं चलता। कोई किसी से पूछता ही नहीं। यह बात पूछने की है ही नहीं। कौन हिंदू है, कौन मुसलमान है, कौन ईसाई है, कौन यहूदी है, कौन पारसी है--किसी को कुछ लेना-देना नहीं है। एक नई मनुष्यता, जहां मनुष्य होना काफी है!

मेरे संन्यास का विरोध पूरब में भी होगा और पश्चिम में भी होगा। हो रहा है। पूरब में विरोध हो रहा है, क्योंकि पूरब के लोग समझते हैं कि मैं संन्यास को सांसारिक बना रहा हूं। उनकी बात में थोड़ी सचाई है। निश्चय ही मैं संन्यास को सांसारिक बना रहा हूं। और पश्चिम के देशों में मेरी आलोचना चलती है। इटली में, जर्मनी में सैकड़ों लेख निकले हैं। हालैंड में, अब इंग्लैंड में भी शुरुआत हुई है। खासकर इटली के अखबारों में जो लेख निकले हैं, उनमें यह बात विशेष रूप से कही जा रही है कि मैं इटली के युवकों को भौतिकवादी दृष्टि से--जो कि सच्ची दृष्टि है, क्योंकि इटली के युवक कम्युनिज्म के बड़े प्रभाव में हैं--मैं इटली के युवकों को...

और इटली के युवकों और युवतियों की बड़ी संख्या है यहां। मेरे संन्यासियों में इटली का नंबर करीब-करीब तीसरा है। पहला अमरीका, दूसरा जर्मनी, तीसरा इटली। और इटली के बहुत से युवक और युवतियां वहां के कम्युनिस्ट आंदोलन से ही आए हैं। तो वहां बड़ी बेचैनी है कि मैं कम्युनिस्टों को भ्रष्ट कर रहा हूं। मैं उनको अध्यात्म की शराब पिला रहा हूं। क्योंकि मार्क्स ने कहा हैः अध्यात्म अफीम का नशा है। मैं भौतिकवादियों को दिग्भ्रमित कर रहा हूं। मैं क्रांतिकारियों को धर्म का नशा पिला कर उनकी क्रांति नष्ट कर रहा हूं।

यहां पूरब के लोग कहते हैं कि मैं धार्मिक व्यक्तियों को सांसारिक बना रहा हूं। उनसे कहता हूंः त्यागो मत! भागो मत! जहां हो, जीओ! और मौज से जीओ! और जीवन में दुख को अंगीकार करना कोई धर्म नहीं है। भीतर भी आनंद हो, बाहर भी आनंद हो। अधूरा क्यों? आधा-आधा क्यों? जहां पूरा चांद हमारा हो सकता है, वहां आधे चांद से क्यों राजी हों?

दोनों की आलोचना में थोड़ी सचाई है। सचाई इस बात की है कि यही मैं कर रहा हूं। पूरब को जरूरत है कि थोड़ा भौतिकवाद... नहीं तो पूरब के पैर उखड़ गए हैं। भारत को भौतिकवाद चाहिए, विज्ञान चाहिए, टेक्नॉलॉजी चाहिए, उद्योग चाहिए। पश्चिम को धर्म चाहिए, अध्यात्म चाहिए, ध्यान चाहिए, योग चाहिए, तंत्र चाहिए। और तब एक संतुलन होगा।

आनंद मैत्रेय, भारत युवा हो सकता है, लेकिन अतीत से हमें अपने मोह छोड़ने पड़ेंगे। अतीत से हम बुरी तरह बंधे हैं। हम जो कुछ भी करते हैं, अतीत के आधार से कर रहे हैं। हम आज नहीं जीते। हम उधार जी रहे हैं। हमारे उत्तर कल के हैं, बीते कल के हैं। और परिस्थिति बिल्कुल बदल गई है। न तो कृष्ण का उत्तर काम का है आज, न बुद्ध का उत्तर काम का है आज, न महावीर का उत्तर काम का है आज। हां, उसमें से सार ले लो, सुगंध ले लो। उससे बोध ले लो। लेकिन लकीर के फकीर नहीं। नहीं तो मुश्किल में पड़ोगे।

जैसे कृष्ण ने कहा अर्जुन को कि कर युद्ध! आज यह बात नहीं कही जा सकती। अगर कृष्ण आज फिर पैदा हों तो आज के अर्जुन से यह बात नहीं कह सकते। जैसे जिमी कार्टर से कहो कि कर युद्ध! कृष्ण इस तरह की भूल नहीं करेंगे। उस दिन ठीक था; तीर-कमान का युद्ध हो रहा था, क्या बनता-बिगड़ता था! कुछ लोग मरेंगे कि कुछ लोग बचेंगे, बहुत फर्क नहीं पड़ता था। खेल था, लीला थी। अब मामला खेल का और लीला का नहीं है। अब तो चुकता ही विनाश हो जाएगा। अब तो समग्र विनाश हो जाएगा। अब यह कोई तीर-धनुष की बात नहीं है कि गांडीव गिर गया हाथ से अर्जुन के। एटम बम गिर जाए, हाइड्रोजन बम गिर जाए, तो गीता पैदा ही न हो; न कृष्ण बचें, न अर्जुन। इसके पहले कि कृष्ण अर्जुन को विराट रूप दिखाएं, एटम बम दोनों को विराट रूप दिखा दे। आज नहीं यह बात कही जा सकती। आज की परिस्थितियों में, आज की बदली हुई परिस्थितियों में यह संदेश सार्थक नहीं हो सकता।

मगर यहां मुर्दा गीता ही पढ़े जा रहे हैं। जैसे-जैसे आदमी बूढ़ा हो जाता है, वह एक ही काम करता है कि बस गीता पढ़ता है। अभी मोरारजी देसाई अचानक गीता-ज्ञान-मर्मज्ञ हो गए हैं। मर क्या गए, मर्मज्ञ हो गए! अब और तो कोई पूछता नहीं। वेदांत-सत्संग-मंडल! वहां गीता पर प्रवचन करते हैं। कुछ बूढ़े-ठूढ़े सुनते हैं।

उत्तर बहुत पुराने हो गए हैं। और मैं यह नहीं कहता कि गीता में सार नहीं है। लेकिन लकीर के फकीर अब नहीं हुआ जा सकता।

महावीर ने छोड़ा, घर-द्वार छोड़ा। बुद्ध ने घर-द्वार छोड़ा। उन परिस्थितियों में यह बात ठीक रही होगी। क्योंकि दोनों शोषक घरों में पैदा हुए थे। उनके पास जो भी था, सब चूसा हुआ था। उनके पास जो भी था, सब

खून में सना हुआ था। इस सत्य को कोई ख्याल नहीं करता--कि बुद्ध और महावीर ने जो छोड़ा, वह शोषण था, जबरदस्ती थी, लूट-खसोट थी।

लेकिन अगर आज सभी लोग छोड़ने को ही तत्पर रहें, तो यह जीवन समृद्ध कैसे हो? और ये सभी भगोड़ों को कौन पाले, कौन पोसे? ये बुद्ध और महावीर भी इसीलिए जिंदा रह सके कि और सबने नहीं छोड़ दिया था। और सब काम में लगे हुए थे। बुद्ध और महावीर को भी भिक्षा तो मांगनी ही पड़ेगी। बुद्ध और महावीर को भी कपड़े तो मांगने ही पड़ेंगे, कहीं छत्रछाया तो मांगनी ही पड़ेगी। औषधि भी मांगनी पड़ेगी, जरूरत पड़ेगी। बीमार भी होंगे, वृद्धावस्था भी आएगी। अगर और सब भी छोड़ कर भाग गए होते, तो कौन भोजन कराने वाला होता?

मगर यह मूढ़तापूर्ण उत्तर अगर दोहराया जाए आज की परिस्थिति में तो खतरनाक साबित होता है। जैन मुनि चलता है... तो जैन मुनि सिर्फ जैनों के घर से ही भोजन ले सकता है। अब कई गांव हैं जहां जैन घर होते ही नहीं, क्योंकि जैनों की संख्या ही कितनी है? कोई तीस-पैंतीस लाख, सत्तर करोड़ के मुल्क में! सैकड़ों गांव हैं जहां कोई जैन नहीं होते। और जैन मुनि को तीर्थयात्रा करनी पड़ती है, तीर्थों तक जाना पड़ता है, बीच में अनेक गांव पड़ते हैं जहां जैन नहीं होते। और वह जैनों के अतिरिक्त और कहीं भोजन ले नहीं सकता। वह सिर्फ जैनों के घर ही भोजन ले सकता है। तो साथ में चौके चलते हैं।

अब मजा देखना। यह आदमी ने घर छोड़ दिया, घर में एक ही चौका काफी था, एक ही चूल्हा काफी था। लेकिन जैन मुनि का नियम यह है--महावीर चूंकि भिक्षा मांगते थे--एक ही घर से भिक्षा न मांगी जाए। ठीक थी बात, क्योंकि एक ही घर पर बोझ ज्यादा न पड़े। यह बात समझ में आती है। महावीर की बात में बल है। चार-छह घर से मांग लेना। कहीं से रोटी मांग ली, कहीं से दाल मांग ली, कहीं से चावल मांग लिया। किसी पर बोझ न पड़े। थोड़ा-थोड़ा मुट्ठी-मुट्ठी भर चार-छह जगह से मांग लिया। मुट्ठी भर कोई भी दे सके। किसी को विशेष रूप से भोजन निर्माण भी न करना पड़े, यह भी महावीर की आयोजना थी। क्योंकि मेरे लिए ही विशेष रूप से भोजन तैयार हो, तो फिर मेरे छोड़ने का क्या अर्थ हुआ? इसलिए अचानक किसी के भी द्वार पर खड़े हो जाएंगे। और जब अचानक खड़े हो जाएंगे तो तैयारी हो न हो, लेकिन जिस घर में चार-छह आदमी रहते हैं, वहां इतना भोजन तो बनेगा ही कि एक मुट्ठी भर किसी को भी दिया जा सके। एक मुट्ठी देने में कोई अड़चन न आ जाएगी। इतना तो फिंक ही जाएगा। इतना तो वैसे ही बच जाएगा। इसलिए चार-छह घर से मांग लिया। यह बात समझ में आती है।

लेकिन अब यह जैन मुनि चार-छह घर से मांगेगा, यह नियम हो गया। देखते हैं लकीर के फकीर किस तरह लोग पैदा हो जाते हैं! तो इसके साथ एक चौका नहीं चलता, इसके साथ दस-पंद्रह चौके चलते हैं, सो दस-पंद्रह परिवार! और जहां यह ठहरेगा वहां दस-पंद्रह परिवार अलग-अलग तंबू बांध कर रोज भोजन बनाएंगे। एक आदमी के लिए पंद्रह परिवार भोजन बनाएंगे! क्योंकि यह पुराने नियम का पालन करेगा। फिर यह मांगने जाएगा भिक्षा। इसके लिए ही इंतजाम हो रहा है। सब इसके साथ चल रहे हैं। इसको भी पता है, उनको भी पता है। मगर क्या धोखा! कैसा धोखा! फिर यह मुट्ठी-मुट्ठी लेगा। एक जगह से नहीं लेगा, क्योंकि किसी पर भार न पड़े।

अब यही उचित होगा कि एक जगह से ले ले, कम भार पड़ेगा; क्योंकि पंद्रह जगह भोजन बनेगा, सब फिंकेगा। और यह मुट्ठी-मुट्ठी लेगा, और पंद्रह चूल्हे जलेंगे, पंद्रह जगह ईंधन लगेगा, पंद्रह जगह लकड़ी जलेगी। यह सब हिंसा होगी। और पंद्रह परिवारों का चलना... तो लश्कर चलेगा पूरा का पूरा। एक नंगे आदमी को

भोजन कराने के लिए लश्कर चलेगा, एक पूरा नगर! जहां जाएगा वहीं एक उपद्रव! लकीर के फकीर होने से खतरा पैदा हो जाता है।

तो मैं यह नहीं कहता कि अतीत से हम सीखें न। अतीत से सीखना जरूरी है। लेकिन अतीत को हम दोहराएं न। अतीत से बोध लो। उन सब फूलों की गंध ले लो। मगर उन सड़े-गले फूलों को मत ढोए फिरो। गंध पहचान लो। और जो भूलें की हों वे पहचान लो।

बड़ी एक भूल की है हमने इस देश में कि हमने बाहर को मिथ्या कहा, झूठा कहा, असत्य कहा। जब तुम बाहर को मिथ्या कह दोगे तो फिर हमने बाहर की कोई खोज न की। यह जान कर तुम हैरान होओगे कि गणित की सबसे पहले खोज हमने की। मगर आइंस्टीन फिर हमारे यहां क्यों पैदा नहीं हुआ? हम कभी का आइंस्टीन पैदा कर सकते थे। गणित की पहली खोज हमने की थी। इसीलिए गणित के जो अंक हैं, वे भारतीय हैं सारी दुनिया में। अंग्रेजी में भी एक, दो, तीन, चार, पांच जो तुम लिखते हो, वे सब भारतीय ही अंकों के अलग रूप हैं। अंग्रेजी में भी एक, दो, तीन, चार के लिए जो शब्द हैं वे भी भारतीय रूपी हैं। त्रि के लिए थ्री। अष्ट के लिए एट। नौ के लिए नाइन। दो के लिए इटेलियन में तो दो ही है; अंग्रेजी में दो टू हो गया। चलते-चलते, यात्रा होती है शब्दों की। दो से द्व हुआ, द्व से ट्व हुआ, ट्व से टू हो गया, लेकिन वह है दो का ही रूप।

सबसे पहले गणित की खोज भारत ने की। फिर हम पिछड़ क्यों गए? हम पिछड़ इसलिए गए कि बाहर तो सब मिथ्या है। इस मिथ्यावाद की धारणा ने, इस मायावाद की धारणा ने हमारे प्राण ले लिए। नहीं तो हम आज दुनिया में सबसे ज्यादा समृद्ध कौम होते। क्योंकि सबसे पहले हमने शुरुआत की थी, हम होते पहले जो चांद पर पहुंचते। मगर हम चांद पर पहुंचें कैसे, बाहर तो सब मिथ्या है! हमारे महात्मागण एक ही बात समझाते रहेः मिथ्या-मिथ्या! माया-माया! यहां जो देखो वही कह रहा है कि माया-ममता में न उलझो। बाहर क्या रखा है!

जीओगे बाहर, श्वास बाहर से लोगे--और बाहर सब माया है! पानी बाहर का पीयोगे, नहीं तो मर जाओगे। भोजन बाहर से ले जाओगे भीतर, नहीं तो खात्मा। और बाहर मिथ्या है! मिथ्या भोजन कर रहे हो रोज! और महात्मा भी कर रहे हैं मिथ्या भोजन रोज!

मैं रायपुर में रहता था। एक महात्मा द्वार पर आकर भिक्षा मांगने खड़े हो गए। मैंने कहा कि जरूर भिक्षा दूंगा, आपका बाहर के संबंध में क्या ख्याल है?

उन्होंने कहा, सब मिथ्या है।

तो मैंने कहा कि मिथ्या काम मुझसे करवाइएगा! और भोजन की जरूरत क्या है? मिथ्या भोजन! जब मिथ्या ही भोजन करना है तो यह रही थाली, यह डाल दिया मैंने भोजन, तुम करो और मजा करो। न भोजन डालने की जरूरत है, न थाली लगाने की जरूरत है। और जब मिथ्या ही है तो सिर्फ कल्पना ही कर लो। बैठ गए अपने, कल्पना कर ली, भोजन कर लिया, खतम हो गई बात। प्यास लगी, कल्पना कर ली, पी लिया, तृप्त हो गए। जब बाहर सब माया ही है तो क्या भीख मंगानी! क्या भोजन करना! क्या... !

लेकिन बाहर मिथ्या नहीं है। तुम्हारे महात्मा भी भलीभांति जानते हैं कि बाहर मिथ्या नहीं है। किसी महात्मा को एकाध चपत लगा कर देखो, फौरन डंडा उठा लेगा। और तुम फिर कितना ही कहो कि बाहर तो सब मिथ्या है, चपत का क्या! अरे कैसी चपत, किसने मारी, सब सपना है! सपने में चपत लगी है, आप नाहक डंडा उठा रहे हैं, नाहक शोरगुल मचा रहे हैं! इतना क्या शोरगुल?

शंकराचार्य कहते हैं बाहर माया है। वे माया के सबसे बड़े प्रचारक। और एक शूद्र ने उनको छू लिया और एकदम नाराज हो गए, एकदम क्रुद्ध हो गए। ब्राह्मण की तो नाक पर ही क्रोध रखा रहता है। एकदम शाप देने को ही थे कि उस शूद्र ने कहा कि ठहरिए! आप तो कहते हैं बाहर सब मिथ्या है। तो मैं भी मिथ्या। कौन शूद्र, कौन ब्राह्मण! आप क्यों इतने नाराज हो रहे हैं?

लेकिन उस नाराजगी में उनको याद भी न रहा अपना वेदांत, दर्शन और मायावाद। उन्होंने कहा कि मैं नहा कर अभी गंगा से लौटा, तूने सब गड़बड़ कर दिया।

उसने कहा, गंगा! नहाना! सब मिथ्या, सब माया। कहां की गंगा, किसने नहाया, किसने धोया! आप भी क्या बातें कर रहे हैं!

शंकराचार्य को तब थोड़ा होश आया कि वह बात तो ठीक कह रहा है। और जो बात बड़े-बड़े पंडित शंकराचार्य को नहीं समझा सके थे, वह उस शूद्र ने समझा दी। झुक कर उसे नमस्कार किया और कहा कि मुझे क्षमा करना। ठीक ही तो कहते हो, कौन शूद्र, कौन ब्राह्मण! क्या पवित्रता, क्या अपवित्रता!

मगर इससे कुछ भेद नहीं पड़ गया। यह सब समझने के बाद वे फिर गंगा गए। क्योंकि शूद्र ने छू लिया तो फिर नहाना पड़ेगा न। यह सब समझ जैसे काम नहीं करती! फिर गंगा में नहाया कि शूद्र ने छू दिया तो सब छुटकारा-सफाई तो हो जाए। फिर मंदिर की पूजा करनी है।

तुम्हारे महात्मा भी मानते तो सत्य ही हैं, कहते रहते हैं माया। क्योंकि सत्य है; तुम्हारे कहने से असत्य हो जाएगा?

इस देश की बड़ी से बड़ी भूल हो गईः मायावाद। हमें मायावाद से छुटकारा पाना होगा और हमें जीवन के सत्य को स्वीकार करना होगा, अंगीकार करना होगा, स्वागत-अभिनंदन करना होगा। आत्मा सत्य है, देह भी सत्य है! अंतर का जगत सत्य है, बहिर्जगत भी सत्य है। दोनों परमात्मा के रूप हैं। यह संसार परमात्मा की काया है और इसमें छिपी हुई जो चेतना है वह परमात्मा की आत्मा है। यह उसका नृत्य हो रहा है। वह नर्तक है।

तो भारत अभी जवान हो सकता है। और भारत जवान हो जाए तो भारत के ही हित में न हो, सारी मनुष्य-जाति के हित में हो। क्योंकि भारत का मतलब होता है दुनिया का कम से कम एक बटा छह हिस्सा। इतना बड़ा हिस्सा अगर जड़ रहे, मुर्दा रहे... तुम्हारे शरीर का एक बटा छह हिस्सा अगर मुर्दा हो जाए तो तुम्हें मुश्किल हो जाएगी। एक बटा छह हिस्से को समझ लो कि लकवा लग गया, तो तुम लंगड़ाओगे, चल न पाओगे, उठोगे तो मुश्किल होगी। भारत बड़ा देश है! करीब-करीब एक महाद्वीप है। इसकी पंगुता सारी पृथ्वी को पंगु किए हुए है। इसे इसकी पंगुता से छुटकारा दिलाना ही है।

तो पहली बातः माया से छुटकारा। दूसरी बातः चूंकि हमने माया पर जोर दिया, इसलिए त्याग पर जोर दिया, क्योंकि जो-जो माया है उसको छोड़ो। और छोड़ने की हमने बड़ी महिमा गाई। इसका परिणाम यह हुआ कि सृजनात्मकता हमारी खो गई। त्याग मूल्यवान हो गया, सृजन मूल्यहीन हो गया। और सृजन ही मूल्यवान होना चाहिए।

अगर तुमसे कोई पूछे कि तुम महात्मा जी के पास जाते हो, क्या खूबी है? तो तुम क्या बताओगे? यही बताओगे कि वे सिर्फ एक बार भोजन करते हैं, कि सिर्फ लंगोटी लगाते हैं, कि सर्दी में भी उघाड़े रहते हैं, कि कांटों पर सोते हैं। कि शरीर तो देखो उन्होंने कैसे सुखा कर बिल्कुल हड्डी कर लिया है! कैसा त्याग, कैसा तप!

मगर इसका क्या मूल्य है? सृजनात्मकता क्या है? इस आदमी ने दिया क्या दुनिया को? इसने दुनिया के सौंदर्य को बढ़ाया? इसने दुनिया में थोड़ा काव्य बढ़ाया? थोड़े गीत जन्माए? इसने दुनिया को थोड़ा प्रेम दिया?

आनंद दिया? यह थोड़ी मस्ती लाया? इसने दुनिया को जैसा पाया था, उसको थोड़ा रंग दिया? थोड़ा ढंग दिया? यह कह सकेगा जाते वक्त कि मैं दुनिया को थोड़ी बेहतर करके छोड़ जा रहा हूं? जैसा मैंने पाया था, थोड़ा साफ-सुथरा किया है उसे? थोड़ा सौरभ दिया है, सुगंध दी है? यह कुछ भी नहीं कह सकेगा।

तुम अपने महात्मा की प्रशंसा इसलिए नहीं करते कि वह सुंदर वीणा बजाता है। और अगर कोई महात्मा की प्रशंसा इस तरह करे कि वह बहुत सुंदर वीणा बजाता है, तो तुम कहोगेः इससे महात्मा होने का क्या संबंध? वीणावादक होगा, लेकिन महात्मा होने का क्या संबंध? कि सुंदर मूर्ति बनाता है। तो तुम कहोगेः होगा मूर्तिकार, लेकिन महात्मा होने का क्या संबंध? कि उसका जीवन तो देखो, कितना प्रसादपूर्ण है, कितना लालित्यपूर्ण है। तो तुम कहोगेः होगा संस्कारी, मगर महात्मा? महात्मा तो त्याग से होता है कोई!

वह माया के सिद्धांत का एक परिणाम यह हुआ कि जो छोड़े। अब माया को सुधारना क्या है, छोड़ना ही है। झूठ छोड़ा ही जा सकता है, झूठ को सुधारोगे क्या? जो है ही नहीं, उसको सुंदर कैसे बनाओगे? पागल है जो अनस्तित्व को सुंदर बनाने की कोशिश करे।

तो हमने एक तरह की असृजनात्मक परंपरा पैदा की। उसका परिणाम होने वाला था। हमारे प्रतिभाशाली सारे लोग इसी उपद्रव में उलझ गए। कोई उपवास कर रहा है; कोई सिर के बल खड़ा है; कोई शरीर को गला रहा है, सड़ा रहा है। और हम सब इनको आदर दे रहे हैं। ये ही सारे लोग आइंस्टीन बन सकते थे। ये ही सारे लोग निजिंस्की बन सकते थे। ये ही सारे लोग बड़े कवि होते, बड़े मूर्तिकार होते, बड़े वैज्ञानिक होते।

तो हमने सारी प्रतिभा को गलत दिशा दे दी--एक असृजनात्मक दिशा में संलग्न कर दिया। हमारे देश में जो भी प्रतिभाशाली व्यक्ति है वह छोड़-छाड़ कर संन्यासी हो जाता है। प्रतिभा का यहां एक ही उपयोग है कि भागो, छोड़ो।

छोड़ने से मिलेगा क्या जगत को? तुम और कुरूप कर देते हो जगत को। वैसे ही जगत काफी कुरूप है, तुम और एक गड्ढे बन जाते हो गंदगी के। मगर हम गंदगी को भी बड़ा सम्मान देते हैं, गंदगी में अध्यात्म मानते हैं। अगर कोई आदमी जहां पाखाना करे वहीं बैठ कर भोजन भी करे, तो हम कहते हैं परमहंस है! हम भी अदभुत लोग हैं। कि देखो, कैसा अद्वैतवाद, इसको भेद ही नहीं है! इसको मल-मूत्र में और भोजन में कोई भेद ही नहीं है!

यह निपट बुद्धू हो सकता है, मूढ़ हो सकता है, लेकिन परमहंस होने का इससे क्या संबंध है? हम इसको खूब आदर देते हैं। हम कहते हैं कि यह देखो, अद्वैत को उपलब्ध हो गया। यह भी अभी इतने अद्वैत को उपलब्ध नहीं हुआ कि मल ही भोजन करने लगे। भेद तो इसको भी होगा, क्योंकि करता भोजन ही है। हां, मल-मूत्र पास पड़ा रहता है। तो इसमें कुछ अड़चन नहीं है बहुत। यह तो सिर्फ अभ्यास की बात है। यह तो भंगी जो रोज पाखाना ढोते रहते हैं, उनको पाखाने में कोई बदबू नहीं आती। उनको तुम परमहंस कहोगे? सिर पर रखे मस्त, फिल्मी गाना गाते हुए चले जा रहे हैं। इनको परमहंस नहीं कहते तुम! और क्या परमहंस अवस्था होगी, कि सिर पर मल-मूत्र ढो रहे हैं और फिल्मी गाना गा रहे हैं! कोई भेद-भाव ही नहीं है कि यह गाना गाने का वक्त नहीं है। नाक-भौंह भी नहीं सिकोड़ रहे हैं। यह सिर्फ अभ्यास है।

मैं एक गांव में ठहरा हुआ था, वहां किसी ने मुझे कहा कि हमारे गांव में एक परमहंस हैं। मैंने कहा कि क्या खूबी है? कहा, उनकी खूबी बड़ी अजीब है। वे जिस पत्तल में खाते हैं उसमें कुत्ते भी खाते हैं। यह उनकी खूबी है।

मैं निकलता था रास्ते से तो एक झाड़ के नीचे चल रहा था यह महाकार्य कि वे भी भोजन कर रहे थे और कुत्ते भी भोजन कर रहे थे। उनको देख कर ही मुझे लगा कि यह आदमी अपरिपक्क मालूम होता है। यह बुद्धि से विकसित नहीं मालूम होता। उसके मुंह से लार टपक रही थी। उसके चेहरे ही से लग रहा था कि यह मंदबुद्धि है। तो मैंने उनसे कहा कि भैया, कुत्तों का आदर करो, कि कुत्ते क्यों इसके साथ भोजन कर रहे हैं! ये कुत्ते परमहंस हैं। कोई ढंग का खानदानी कुत्ता हो तो इसके साथ भोजन नहीं कर सकता। साफ इनकार कर देगा। ये कुत्ते आवारा हैं।

उन्होंने कहा, आप भी क्या बात करते हैं! अरे आपको मालूम नहीं है कि ये परमहंस... उनका बड़ा प्रताप है। वे दिन भर चाय पीते रहते थे। और आधा कप पी लें, और उसमें उनकी लार टपक रही है, और वह किसी को पकड़ा दें। वह प्रसाद। जो उसको पी ले वह श्रद्धावान! निश्चित ही श्रद्धावान ही पी सकता है! और लोग कहते कि जिसने भी पी ली उनकी चाय, उसको लाभ ही लाभ है। तो लोग बैठे रहते उनके पास, पी जाते! लाभ क्या हैं? कोई मुकदमा लड़ रहा है, कोई चुनाव लड़ रहा है। चुनाव लड़ने के वक्त नेतागण पहुंच जाते कि अगर बाबा की चाय मिल जाए... !

आदमी क्या-क्या करने को राजी नहीं हो जाता! और अब सौ लोग बाबा की चाय पीएंगे, उसमें से कुछ तो मुकदमा जीतेंगे ही। न पीते तो भी जीतते। आखिर कोई तो मुकदमा जीतेगा। दो आदमी लड़ेंगे तो एक तो जीतने ही वाला है। तो पचास प्रतिशत तो संयोगवशात होने ही वाले हैं। जो नहीं जीतेंगे, जो नहीं चुनाव में जीतेंगे, उनको बाबा के भक्त समझाने वाले होते थे कि तुम्हारे पीने में पूरी श्रद्धा नहीं रही। और यह बात भी उनको जंचती, क्योंकि श्रद्धा किसको पूरी हो सकती है! आदमी किसी तरह गटक जाए, लार टपकती देख रहा है सामने, तो भीतर तो प्राण सटपटा रहे हैं, संदेह उठ रहा है। तो किसी तरह पी रहा है, क्योंकि लोभ में पड़ा है। जानता तो है ही कि अगर अपना वश चले तो इसी वक्त फेंक दूं। मगर मुकदमा जीतना है, चुनाव लड़ना है, तो पीए ले रहा है। तो बाबा के भक्त कहते कि तुमने श्रद्धा से नहीं पीया। और यह बात उनको माननी पड़ेगी कि श्रद्धा में कमी रह गई। और जो जीत गया, उसने श्रद्धा से पीया। सो वह अपनी कमी खुद भी भूल जाता है, दूसरे भी भूल गए, जब जीत गए तो जीत गए। अब क्या? सवाल ही नहीं उठता। और जो जीत गया वह खबरें फैलाता है, वह प्रचार करता है--कि भई अदभुत है, चमत्कार है! और जो हार गया वह चुप रहता है, क्योंकि इससे और अपनी बदनामी होगी कि श्रद्धा की कमी थी। इस तरह इस दुनिया में बड़े खेल चलते हैं और इनको तुम सम्मान देते हो।

सृजनात्मकता को सम्मान दो। उस आदमी को सम्मान दो जो कुछ निर्माण कर रहा हो।

मैं अपने संन्यासियों को चाहता हूं, वे सृजनात्मक हों, जीवन को कुछ दें। लेकिन हमारी संन्यास की धारणा अजीब है। यहां पुराने ढब के संन्यासी आ जाते हैं, वे कहते हैं, यह क्या मामला है कि संन्यासी फर्नीचर बना रहे हैं, कि संन्यासी जूते बना रहे हैं, कि संन्यासी कपड़े बुन रहे हैं, कि संन्यासी मकान बना रहे हैं? संन्यासी काम में लगे हैं! काम में लगने की बात ही संन्यास नहीं है। संन्यासी को तो निकम्मा होना चाहिए। उसको तो एक झाड़ के नीचे बैठा रहना चाहिए। संन्यासी का तो एक ही काम है कि दूसरों को सेवा करने दे। यही महान कार्य कर रहा है वह संसार में कि तुमको सेवा करने दे रहा है। क्योंकि सेवा से मेवा मिलता है। करोगे सेवा तो पाओगे मेवा! और उस बेचारे का त्याग तो देखो कि खुद सेवा छोड़ कर तुम्हें सेवा करने दे रहा है! खुद मेवा छोड़ रहा है, तुमको मेवा पाने का मौका दे रहा है! और क्या, इससे बड़ा और क्या त्याग होगा?

लेकिन मेरा संन्यासी सेवा नहीं लेना चाहता। किसी की सेवा की कोई जरूरत नहीं है। सृजनात्मक होना चाहिए।

लेकिन हमारी धारणाएं बड़ी पुरानी हो गई हैं, जड़ हो गई हैं। उन जड़ धारणाओं के कारण हम नये को स्वीकार नहीं कर पाते। चूंकि मेरे संन्यासी चीजें पैदा करते हैं, चीजें बनाते हैं--और किस श्रम से बनाते हैं! और किस सौंदर्य से बनाते हैं! कितने प्राण उसमें डालते हैं! --तो इनकमटैक्स अधिकारियों को अड़चन है। वे कहते हैं, यह कैसा आश्रम! वे इसको चैरिटेबल ट्रस्ट मानने को राजी नहीं हैं। क्योंकि चैरिटेबल ट्रस्ट का मतलब यह होता है कि दान पर जियो। और मैं तो दान नहीं मांगता। मेरी तो चेष्टा यह है कि जल्दी हम दान देना शुरू करेंगे। चैरिटेबल ट्रस्ट का मेरे लिए तो यही मतलब होता है कि जो दान दे। लेकिन इनकमटैक्स वाले मानने को तैयार नहीं हैं। उनकी बुद्धि में नहीं समाती बात। आज सालों से मुकदमा चल रहा है। मैं वकीलों को समझा-बुझा कर भेजता हूं। पहले तो उनकी समझ में नहीं आती। किसी तरह उनकी समझ में आती है तो वहां आफिसर्स सिर पीटते हैं। वे कहते हैं कि अभी तक ऐसा कोई चैरिटेबल ट्रस्ट नहीं है, क्योंकि इसकी कमाई होती है। तो मैं उनको कहता हूं कि होनी ही चाहिए कमाई। जहां इतने लोग श्रम करेंगे, वहां कमाई होनी चाहिए। लेकिन कमाई हमारा लक्ष्य नहीं है। तो उनके प्राणों पर बड़ा संकट है। वे कहते हैं, दान पर जीओ, दान मांग कर जीओ। नहीं तो टैक्स चुकाओ। जैसे कि स्वावलंबी होना अपराध है!

धारणाएं सदियों-सदियों में बन जाती हैं और फिर हम उनसे जरा भी सरकने को राजी नहीं होते, इंच भर सरकने को राजी नहीं होते। यही भारत की जड़ता है।

संन्यास को नया ढंग देना है, नया रंग देना है, नया रूप देना है। धर्म को नई परिभाषा देनी है।

और जीओ! भगोड़ेपन में नहीं भारत का भविष्य है। जीओ! सघनता से जीओ! त्वरा से जीओ! परिपूर्णता से जीओ! जो भी कर रहे हो, उसे परमात्मा की सेवा समझो। जो भी कर रहे हो, उसे समझो कि वही उपासना है, वही प्रार्थना है, वही पूजा है। तो बहुत फूल खिल सकते हैं इस बगिया में। इस बगिया की बड़ी क्षमता है। जहां बुद्ध हुए, जहां कृष्ण हुए, जहां कबीर हुए, जहां नानक हुए, जहां फरीद हुए, जहां बुल्लाशाह हुआ, जहां अदभुत लोग हुए हैं--उन सब के बीज हैं इस भूमि में, उन सबकी वसीयत है हमारे पास। हमारे पास उन जैसे ही होने की क्षमता है। लेकिन एक बात ख्याल रखनाः उनका वक्त गया, उनका समय गया। इसलिए तुम उनकी नकल नहीं हो सकते हो। तुम्हें होना पड़ेगा नये ढंग से! नई परिस्थिति में, नई चुनौती में तुम्हें नया उत्तरदायित्व स्वीकार करना होगा।

मेरा संन्यासी नई हवा, नई परिस्थिति का सामना करने की तैयारी कर रहा है। और उसका सामना करने में ही व्यक्ति युवा रहता है। और परिस्थिति रोज बदल जाती है, ख्याल रखना। और उत्तर पुराने मत ढोते रहना। इसलिए मैं तुम्हें उत्तर नहीं देना चाहता, मैं तुम्हें दृष्टि देना चाहता हूं। दृष्टि मिलती है ध्यान से। मैं तुम्हें इतनी दृष्टि देना चाहता हूं कि हर परिस्थिति में तुम अपना उत्तर खोज सको। पुरानी प्रक्रिया यह थी कि तुम्हें बंधे-बंधाए उतर दे दिए जाएं। बस तुम दोहराने लगो उत्तर। रट लो उत्तर।

जिंदगी कुछ ऐसा नहीं है कि यहां दो और दो चार, बस ऐसे उत्तर से काम चल जाएगा। यहां कभी दो और दो पांच भी हो जाते हैं, कभी दो और दो तीन भी रह जाते हैं। जिंदगी का गणित कोई सीधे सपाट रास्तों की तरह नहीं है; बड़ी उलझी पगडंडियों की तरह है। यहां चीजें थिर नहीं हैं, प्रतिपल बदल रही हैं। यहां इतनी जागरूकता चाहिए कि तुम देख सको कि चीजें बदल गई हैं। चीजें बदल गई हैं तो उत्तर बदलेगा। चीजें बदल गई हैं तो तुम्हें नये उत्तर खोजने पड़ेंगे। परिस्थितियां बदल गई हैं तो तुम्हें सोचना पड़ेगा फिर से।

पुराने संन्यासी को आज्ञा थी कि वह पैदल चले। चूंकि बैलगाड़ी पर बैठना बैलों को सताना था। घोड़े पर बैठना घोड़े को सताना था। पशुओं के साथ अत्याचार था। वह अब कार में भी नहीं बैठता। अब कार में तुम किसको सता रहे हो? अब पैदल चलने का मतलब अपने को सताना है। घोड़े-गधे को तो छोड़ा और खुद को सता रहे हो! यह देह भी तो आखिर उसी परमात्मा की है। जिसकी गधे और जिसकी घोड़े की देह है, उसी की देह यह भी है। अब तुम इसको सता रहे हो! कार में तो कोई अड़चन नहीं है, कोई घोड़े नहीं जुते हैं। हालांकि पुरानी आदतवश हम अब भी कहते हैं कि इतने हॉर्स-पावर की गाड़ी है। हॉर्स वगैरह कुछ नहीं है अब वहां। कहां का घोड़ा!

वे रेलगाड़ी में भी नहीं बैठ सकते। रेलगाड़ी तो बिल्कुल ही अहिंसात्मक है। कार में तो समझ लो कि रास्ते पर चलती है, कीड़े-मकोड़े दब जाते होंगे। रेलगाड़ी तो पटरी पर चलती है, वहां कहां कीड़े-मकोड़े! वे तो उसी पटरी पर इतनी रेलगाड़ियां दौड़ती हैं कि कभी के मर चुके होंगे, कोई जैन मुनियों के लिए थोड़े ही बैठे रहेंगे कि आओ महाराज, हम मरें और तुम नरक जाओ, कि तुम्हें नरक भेज कर ही रहेंगे। रेलगाड़ी की पटरी देखते हो, कैसी चांदी की तरह चमकती है! इससे तो पैदल चलने में ज्यादा मर जाएंगे। जैन मुनियों को तो पैरों की जगह पहिए लगा लेने चाहिए। और पटरियां, और चले जा रहे हैं पटरियों पर--जिसमें कोई अहिंसा-हिंसा का सवाल ही नहीं उठता।

परिस्थितियां और थीं, तब यह बात समझ में आती है कि घोड़े पर बैठना और घोड़े को मारना या बैलों पर कोड़े चलाना--हिंसा थी। मगर अब? अब तो कोई अड़चन की बात नहीं है। मगर अगर कोई महात्मा साइकिल पर बैठा मिल जाए तो भ्रष्ट हो गया! साइकिल पर बैठा है! कभी कोई महात्मा साइकिल पर बैठता है! कि कलियुग आ गया! देख कर ही महात्मा को तुम कहोगे कि कलियुग आ गया, देखो महात्मा जी साइकिल पर बैठे हैं! और यह परिस्थिति अब रोज-रोज तीव्रता से बदलेगी। चलो छोड़ो, तुम्हें जमीन पर, रेलगाड़ी में दिक्कत है, हवाई जहाज में तो कोई दिक्कत नहीं है, वहां तो पटरी भी नहीं है। वहां तो कीड़े-मकोड़े कहां बैठेंगे? हवाई जहाज में बैठो। उसमें भी नहीं बैठ सकते! पाप लग जाएगा!

उत्तर सब पुराने पड़ गए हैं और स्थिति सब नई हो गई है। उनका कहीं तालमेल नहीं हो रहा है। इससे बुढ़ापा है, इससे जड़ता है।

आनंद मैत्रेय, यह जड़ता मिट सकती है, एक नये जन्म की जरूरत है। लेकिन पुराने को छोड़ना मुश्किल तो होता है, कठिन तो होता है, पर छोड़ा जा सकता है। और समय आ गया है कि छोड़ना पड़ेगा। नहीं छोड़ोगे तो मरोगे। छोड़ोगे तो नया जीवन हो सकता है।

दूसरा प्रश्नः ओशो,
जाएंगे कहां, सूझता नहीं!
चल पड़े मगर रास्ता नहीं!
क्या तलाश है, कुछ पता नहीं!
बुन रहे हैं अब ख्वाब दमबदम।

राम सरस्वती, जाना कहीं है ही नहीं। जाने की बात ही अहंकार की बात है। कुछ पाना है, कुछ होना है--ये सब आकांक्षाएं, ये सब वासनाएं अहंकार की यात्राएं हैं।

संन्यासी को न कहीं जाना है, न कुछ होना है। जो है, पर्याप्त है। जैसा है, वैसा आनंदित है। संन्यास का अर्थ होता हैः परम संतोष। अपने होने में गहरी तृप्ति।

तुम पूछते होः "जाएंगे कहां, सूझता नहीं।"

जाना कहीं है नहीं। तुम वहीं हो जहां जाना है। तुम परमात्मा में ही हो, अब और कहां जाना है? जैसे मछली सागर में है, अब और कहां जाना है? जाने की झंझट में पड़ी तो किसी दिन पहुंच जाएगी किनारे पर, फिर तड़फेगी। जाने वाले सब इसी तरह किनारों पर पहुंच जाते हैं। कोई धन के किनारे पर पहुंच जाता है, फिर तड़फता है, कि अरे जिंदगी हाथ से गई, यह क्या मैंने कर लिया! और कोई पद के किनारे पर पहुंच जाता है और फिर तड़फता है, फिर भुनता है तप्त रेत में। मगर अब किसी को कह भी नहीं सकता, क्योंकि कितनी मेहनत करके तो मछली ने छलांग लगाई! कितनी तो मछलियों ने खींचातानी की। दूसरी मछलियां भी कोशिश कर रही थीं। कोई पीछे से खींच रहा था, कोई आगे से धक्का मार रहा था। बड़ी प्रतियोगिता थी। फिर कोई मछली एकदम चढ़ गई किनारे पर और राष्ट्रपति हो गई। फिर तड़फ रही है। अब प्राण सकपका रहे हैं। मगर अब करें क्या! अब संकोचवश... वापस जाते भी नहीं बनता। आखिर थूका, उसको फिर चाटते भी नहीं बनता। अब एक दफा भूल कर ली, अब बार-बार भूल करते भी नहीं बनता।

मुल्ला नसरुद्दीन को तनख्वाह मिली। सौ रुपये ज्यादा मिल गए। दो सौ के नोट चिपके हुए चले आए। मिलने थे सात सौ, ले आया आठ सौ। रास्ते में गिने, बड़ा प्रसन्न हुआ। जब शाम को खजांची ने गिनती की तो उसे समझ में तो आ गया कि सौ-सौ के नोट उसने सिर्फ मुल्ला को दिए हैं और एक नोट ज्यादा चला गया, सौ रुपये कम हो रहे हैं। वह भी चुप रहा, देखा कि लौटता है कल, लाता है कि नहीं।

वह काहे को लाए! इतना नासमझ है कोई अपने देश में? उसने तो परमात्मा को धन्यवाद दिया होगा कि हे प्रभु, सुन ली प्रार्थना! अरे देर है, अंधेर नहीं! और जब देता है तो बिल्कुल छप्पर फाड़ कर देता है। सौ का एकदम दिया!

दूसरे महीने खजांची ने सात सौ की जगह छह सौ रुपये ही दिए, सौ रुपये काट लिए। मुल्ला लेकर भागा, सोचा शायद फिर... बाहर आकर जल्दी से गिने, छह ही थे। लौटा, कहा कि गलती है गिनती में। कुल छह ही नोट दिए हैं।

खजांची ने कहा, और पिछले महीने?

मुल्ला ने कहा, सुनो जी, एक दफे गलती हो, हम छोड़ देते हैं। मगर बार-बार गलती हम बरदाश्त नहीं कर सकते।

अब एक गलती कर ली कि छलांग लगा गए, अब दूसरी गलती करके क्या और बदनामी करवानी है कि वापस कूदो पानी में, तो लोग कहेंगे, अरे भैया पहले ही कहा था!

और लोग ऐसे हैं कि वे हमेशा ही यह कहते हैं कि भैया, पहले ही कहा था। कुछ भी करो तुम, वे कहते हैं, भैया, पहले ही कहा था। हारो तो वे कहते हैं पहले कहा था। जीतो तो वे कहते हैं पहले कहा था। कि हम तो पहले ही कह रहे थे कि ऐसा होकर रहेगा। किसी को लाज-शरम ही नहीं आती इस बात को कहने में। सभी को पता रहता है। भविष्य के तो सभी जानकार हैं। सभी ज्योतिषी हैं। कि हमने पहले ही कहा था।

पहले कोई नहीं कहता, सब बाद में बताते हैं कि हमने पहले कहा था! कि बन गए न बुद्धू! आना पड़ा न वापस! हम ही भले। इसीलिए तो हम कहीं न गए, न हमने जाने की कोशिश की।

हालांकि इन ने भी कोशिश की थी और इन ने भी बड़े हाथ-पैर मारे थे, मगर पहुंच न पाए थे। जब नहीं पहुंच पाते लोग तो कहते हैंः अंगूर खट्टे हैं। जो नहीं पहुंच पाते, वे अंगूरों को गालियां देने लगते हैं कि खट्टे हैं, हमें पहुंचना ही नहीं, हमें जाना ही नहीं, रखा ही क्या है! हारे हुए लोग कहने लगते हैंः अरे क्या सार है? और जरा इनकी आंखों में देखो, रुपया देखते से ही चमकने लगती हैं। और कहते हैं, क्या सार है! अगर इनके जीवन की जांच-पड़ताल करो तो लगेगा कि वही आकांक्षाएं इनकी हैं। लेकिन स्वीकार नहीं करना चाहते कि हम हार गए, कि हम थक गए, कि हम न जीत पाए।

संन्यासी को तो, राम सरस्वती, कहीं जाना नहीं है। वह तो परमात्मा में है।

संन्यास अभीप्सा नहीं है, आकांक्षा नहीं है--संन्यास उत्सव है; हम जहां हैं वहीं आनंदित होने की कला है। परमात्मा में ही मौजूद हो, गाओ, गुनगुनाओ, नाचो!

यह क्या पूछते होः "जाएंगे कहां, सूझता नहीं!"

अच्छा ही है कि नहीं सूझता। अगर सूझा, कि गए गड़बड़, कि कहीं उलटे-सीधे कुछ कर गुजरोगे। जिनको सूझता है, उनको तो देखो।

कहते हैं लोगः अंधे को अंधेरे में बड़ी दूर की सूझी!

अंधों को ही अंधेरे में सूझती है और बड़ी दूर की सूझती है। आंख वालों को जरूरत ही नहीं सूझने की। अपने घर में बैठे हैं, कहीं जाना क्यों? मंजिल पर ही हो तुम। अगर ठहर जाओ तो मंजिल पर ही हो। और न ठहरो तो बहुत रास्ते हैं, और रास्ता मिलेगा नहीं, और मंजिल कहां मिलेगी? रास्ते ही रास्ते हैं। और बड़ी बिगूचन होगी, बड़ी विडंबना होगी--यह पकड़ूं, वह पकड़ूं; यह करूं, वह करूं; क्या हो जाऊं, क्या न हो जाऊं। कितने प्रलोभन हैं, कितने विकल्प खड़े हैं--सब बुलाते हैं, आओ! धन बुलाता है, पद बुलाता है; भोग बुलाता है, त्याग बुलाता है; ज्ञान बुलाता है--सब बुलाते हैं--आओ! और सब बड़े प्रलोभन देते हैं, सब बड़े विज्ञापन करते हैं, कि मजा है तो यहां है, सुख है तो यहां है, स्वर्ग है तो यहां है। तुम किसकी सुनो, किसकी मानो!

सो तुम आपाधापी में पड़ जाते हो। एक कदम इधर, एक कदम उधर रखते हो। कई नावों पर सवार हो जाते हो। फिर चारों खाने चित्त गिरोगे नहीं तो क्या होगा! फिर खंड-खंड न हो जाओगे तो क्या होगा! फिर पारे की तरह बिखर जाओगे। फिर इकट्ठा होना मुश्किल हो जाता है। ऐसा ही हर आदमी बिखर गया है।

नहीं, कहीं नहीं जाना है। हम तो उसके राज्य में हैं ही। न स्वर्ग पाना है, न मोक्ष। मेरी उदघोषणा यही है कि हम जहां हैं, अगर हम वहीं ठहर जाएं और थोड़ा विश्राम को उपलब्ध हों, थोड़े शांत हों, थोड़ा तन्मय हों, थोड़ा जुड़ें अस्तित्व से...

भाग-दौड़ के कारण जुड़ नहीं पाते, फुरसत नहीं मिलती। और भाग-दौड़ जुड़ने भी नहीं दे सकती, क्योंकि संसार कहीं नहीं जा रहा है, अस्तित्व कहीं नहीं जा रहा है। अस्तित्व जहां का तहां है। अगर तुम थोड़े विश्राम को उपलब्ध हो जाओ--और विश्राम को ही मैं ध्यान कहता हूं; परम विश्राम को समाधि कहता हूं--तुम अगर बैठ रहो थोड़ी देर को और सब शून्य हो जाए, सब मौन हो जाए, तो तत्क्षण तुम्हें अनुभव होगा, कि अरे, मैं क्यों भागा जाता था! किसके लिए भागा जाता था! वह तो मेरे भीतर विराजमान है।

और तब जीवन में एक नई विधा और एक नया आयाम खुलता है, एक नया द्वार। फिर भी तुम बहुत कुछ करोगे, लेकिन अब करने का कारण और होता है। पहले तुम करते थे तो कुछ पाने के लिए करते थे; अब इसलिए करते हो कि कुछ पा लिया। और जब कुछ पा लिया, उस आनंद से कोई करता है, तो वह मिट्टी छुए तो सोना हो जाती है। वह जिस शब्द को छू ले उसमें काव्य आ जाता है। वह पत्तों को छू ले तो पत्ते फूलों में बदल जाते हैं।

उसके हाथ में जादू हो जाता है। भिखमंगे की तरह नहीं होता वह आदमी, सम्राट की तरह होता है। उसके भीतर इतना आनंद होता है कि उसके ऊपर से बहा जाता है। उसके पास जो बैठ जाता है वह भी सरोबोर हो जाता है; वह भी भीग-भीग जाता है; वह भी रसमग्न हो जाता है। उसके पास बैठना जैसे शराब पी ली। उसके पास बैठे कि पियक्कड़ हुए। उसके पास बैठे कि मधुशाला में बैठे। उसका होना एक मयखाना है।

बेला महके सारी रात किसके लिए?
मनवा बहके सारी रात किसके लिए?
प्यास है ज्यों नशे में नहाई हुई,
सांस अपनी कि जैसे परायी हुई।
अश्रु की बूंद जैसे खरीदी हुई
है हंसी बन गई ज्यों चुराई हुई।
कांपते कंठ में
दीप-लौ की तरह
गीत लहके सारी रात किसके लिए?
आंख की नींद आई-गई हो गई
उम्र बेचैनियों की नई हो गई।
बर्फ-सी चमचमाती हुई चांदनी
याद की बांह में सुरमई हो गई।
एक कंदील-साआसमां में टंगा
चांद दहके सारी रात किसके लिए?
बेसुधी की नदी में डुबाया हुआ,
चेतना की लहर में बहाया हुआ।
प्राण में कौंधती बिजलियों की तरह
आ गया फिर वही बिन बुलाया हुआ।
झलमलाता हुआस्वप्न की झील में
रूप टहके सारी रात किसके लिए?
बात जानी हुई भी अजानी हुई,
एक गुजरी हुई सी कहानी हुई,
जो अबोली चुभन थी कसकती हुई
अब गमकती हुई रातरानी हुई।
प्यार की कसमसाती
हुई रात मेंदर्द डहके सारी रात किसके लिए?

ये इतने फूल खिले, किसके लिए? इतने पक्षी गीत गा रहे, किसके लिए? ये चांद, ये तारे--किसके लिए? यह अस्तित्व अपने में मग्न है--किसी के लिए नहीं। इसका कोई गंतव्य नहीं है। यह अस्तित्व साधन नहीं है किसी साध्य का। यह अस्तित्व स्वयं साध्य है।

और ऐसी प्रतीति को ही मैं धर्म का अनुभव कहता हूं, चाहो तुम निर्वाण कहो, मोक्ष कहो, कैवल्य कहो, प्रभु-साक्षात कहो--जो शब्द तुम्हें प्यारा हो। लेकिन इस अनुभव को कि अस्तित्व किसी और चीज का साध्य नहीं है, न किसी और चीज का साधन है; बस अपना ही साध्य है, अपना ही साधन है। कहीं जाना नहीं, कुछ होना नहीं, कुछ पाना नहीं, कुछ खोना नहीं। हम जैसे हैं ऐसे ही अपने को पहचान लेना काफी है। बस, उसी पहचान में परमात्मा भी पहचान लिया जाता है। जिसने स्वयं को जाना उसने सब जान लिया।

राम सरस्वती, तुम कहते होः "जाएंगे कहां, सूझता नहीं।

चल पड़े मगर रास्ता नहीं।"

चल पड़े तो रास्ता है ही नहीं। फिर तो बड़ी मुश्किल में पड़ोगे। जो चल पड़े, मुश्किल में पड़े। रुको!

पूछते होः "क्या तलाश है, कुछ पता नहीं।"

है ही नहीं तलाश तो पता भी कैसे हो? यहां खोज है ही नहीं कुछ। जिसको तुम खोज रहे हो, वही तो तुम हो। खोज क्या होगी और? खोज करने वाले में ही, खोजी में ही तो वह छिपा है जिसकी तुम खोज करने की बातें कर रहे हो, सोच-विचार कर रहे हो।

कहते होः "बुन रहे हैं अब ख्वाब दमबदम।"

बस अपने ही बुन सकते हो। और कुछ है भी नहीं पास।

सपनों से जागो! बहुत बुन चुके। पाया क्या? सपने ही बुनते रहते हैं लोग। शेखचिल्ली हैं। सपनों के जाल बनाते रहते हैं। यह हो जाए, वह हो जाए; यह पा लें, वह पा लें। तुम ही नहीं, जिनको तुम बड़े-बड़े योगी कहते हो, बड़े साधु कहते हो, महंत, संत, वे भी सपने बुनते हैं। वे भी बैठे-बैठे सपने देख रहे हैं। कोई सोच रहा है कि कुंडलिनी जग जाएगी और भीतर रोशनी ही रोशनी हो जाएगी। और कोई सोच रहा है कि भीतर खजाना मिल जाएगा, हीरे-जवाहरात मिल जाएंगे। और कोई सोच रहा है कि चमत्कार और सिद्धियां और हाथ से राख निकाल दूंगा। सो क्या हो जाएगा? राख वैसे ही कुछ कम है दुनिया में? और तुम निकालोगे!

क्या-क्या लोग सपने बुन रहे हैं! और सब सपने व्यर्थ हैं। सपनों से जागना सार्थक है।

ऐसी है तुम्हारी हालत, जैसे रात सपने में कोई जंगल में भटक गया और रोता फिरता है, पूछता हैः रास्ता कहां है? घर कैसे जाऊं? पड़ा है अपने घर में, कहीं गया नहीं, अपने बिस्तर पर; मगर सपने में भटक गया है जंगल में। और जंगल तो जंगल है, भेड़िया मिल जाए, चीता मिल जाए, अब भागे जान छोड़ कर। और भेड़िया लगा पीछे और उसकी सांस बिल्कुल तुम्हें पीठ पर गरम-गरम मालूम पड़ती है। और जान निकली जा रही है, पसीना-पसीना हुए जा रहे हो, और छाती धड़क रही है। लगता है कि अब हार्ट-फेल हुआ, अब हुआ। उसी घबड़ाहट में नींद खुल गई। न कोई भेड़िया है, न कोई जंगल है--तुम्हारी पत्नी है। तुम्हारी पीठ पर सांस ले रही है। उसकी गरम-गरम सांसें और उसका हाथ तुम्हारी पीठ पर रखा है। क्योंकि पत्नियां रात को भी ख्याल रखती हैं कि कहीं खिसक न जाओ!

एक फिल्म अभिनेत्री ने अपने जन्मदिन पर पार्टी दी। तो सारी फिल्म अभिनेत्रियों को, खास-खास को, गैर-खास को, एक्सट्रा को, सबको निमंत्रित किया। उसकी एक सहेली ने पूछा कि पार्टियां हमने बहुत देखीं, लेकिन खास-खास को लोग बुलाते हैं, अपने मित्रों को बुलाते हैं। परिचित-अपरिचित, जाने-अनजाने, एक्सट्रा, जिनको कि कोई जानता ही नहीं, इन सबको किसलिए बुलाया? तो उसने कहा, इसलिए, ताकि मेरे पति महाराज भी आज पार्टी में उपस्थित रहें। उनको कहीं और जाने का उपाय ही नहीं छोड़ा। सब द्वार-दरवाजे बंद, अब देखें बच्चू कहां जाते हैं! रहना ही पड़ेगा।

पत्नियां भी बहुत हिसाब रखती हैं।

एक पहलवान डाक्टर के पास इलाज के लिए आया। उसका सिर फूट गया था और एक आंख सूजी हुई थी। डाक्टर ने पूछा, क्या अखाड़े में चोट खा गए?

अखाड़े में भला मुझे कोई पछाड़ सकता है? पहलवान ने बुरा मानते हुए कहा।

तब क्या चोरों ने--ड़ाक्टर ने वाक्य अधूरा ही छोड़ दिया।

पहलवान ने गरज कर उलटे ही प्रश्न किया, चोरों में है इतनी हिम्मत?

हार कर डाक्टर ने पूछा कि तब यह नौबत कैसे पहुंची?

उसने कहा, क्या बताऊं, डाक्टर साहब, कल हमारी बीबी ने आखिर साबित कर ही दिया कि उसके कंगन की चांदी खराब है, इसलिए उसे अब सोने के कंगन चाहिए।

एक ज्योतिषी ने एक युवक से कहा कि तुम्हें अत्यंत सुंदर धनी पिता की इकलौती लड़की पत्नी के रूप में मिलेगी।

युवक ने कहा, वाह! यह तो बड़ी अच्छी बात है। पर यह तो बताइए कि मेरी पत्नी और तीन बच्चों का क्या होगा?

एक स्त्री अपनी सहेली से कह रही थी, मेरे पति ने मेरी किसी भी आज्ञा का कभी उल्लंघन नहीं किया।

अच्छा, तो फिर वे कल तीसरी मंजिल से कूद कर आत्महत्या क्यों कर रहे थे? सहेली ने कहा।

यही तो मैंने भी उनसे कहा कि तुम्हें तीसरी मंजिल से कूद कर आत्महत्या का प्रयास करते हुए शरम नहीं आई? वह महिला बोली।

तब क्या हुआ? सहेली का अगला प्रश्न था।

होगा क्या! एक घंटे बाद उन्होंने सातवीं मंजिल से कूद कर आत्महत्या कर ली। महिला ने लापरवाही से उत्तर दिया।

समझे? पत्नी की आज्ञा मान कर तीसरे से नहीं की उन्होंने फिर आत्महत्या, सातवें से की। क्योंकि पत्नी ने कहा कि शरम नहीं आती तीसरे से कूदते हुए!

रात नींद में कहां जंगल, भेड़िए... मगर कहीं नहीं, वहीं पड़े हो जहां थे। ऐसे ही सपने देख रहे हो। और सपनों के भीतर सपने हैं। यह पत्नी भी एक सपना है। नहीं कि पत्नी झूठ है, मगर यह पत्नी का नाता एक सपना है। पत्नी उतनी ही सत्य है जितने तुम। लेकिन यह नाता, यह एक झूठ है, एक सपना है। यह एक बनाई हुई बात है। यह एक सामाजिक ईजाद है। और ईजाद है, इसलिए बड़ी महंगी पड़ी है और खूब कष्ट लोगों को दिया है। और अब तक पंडितों ने, पुरोहितों ने इसका विरोध नहीं किया। कारण था, कि सारा धर्म इसी संस्था के दुख पर निर्भर है। जिस दिन विवाह समाप्त हुआ, उस दिन पंडित-पुरोहित गए। इनको कौन पूछेगा! वह तो दुखी पत्नियां जाती हैं कि चलो बाबा जी का सत्संग करें। दुखी पति हैं, वे जाते हैं कि चलो महात्मा जी की बातें सुनें, शायद कुछ राहत मिले, कुछ सांत्वना मिले।

इस विवाह ने धर्म का धंधा चलाया। यह विवाह लोगों को इतने कष्ट देता है कि सभी को त्याग की बात जंचती है। विवाहित आदमी को त्याग की बात न जंचे, यह बहुत मुश्किल है। इसलिए तो मेरी बात समझ में भी आ जाती है, फिर भी जंचती नहीं। मैं कहता हूंः छोड़ना नहीं है।

यहां आ जाते हैं लोग, मुझे पत्र लिखते हैं कि हम तो आए ही इसीलिए हैं कि थक गए बहुत। और आप कहते हैं छोड़ना नहीं है। अब क्या फिर जाएं वहीं? किसी तरह तो निकल पाए हैं और आप फिर भेज रहे हो! क्यों हमारी दुर्गति करवाते हो? जिंदगी तो नष्ट हो गई।

स्त्रियां आ जाती हैं, वे कहती हैं कि हमें तो आश्रम में ही रहना है। हमें जाना ही नहीं है घर।

मैं कहता हूं, मेरी तो शिक्षा ही यह है कि अपने घर को आश्रम जैसा सौंदर्य दो। इस आश्रम को तो एक प्रतीक समझो। यहां से सीखो, मगर अपने घर को आश्रम बनाओ।

वे कहती हैं कि और कहीं भी बना लेंगे आश्रम, उस घर में नहीं बनने वाला। बस पति को देखते ही बात बिगड़ जाती है। सब शांति, ध्यान, सब भूल जाता है। ऐसा दुष्ट-संग हो गया है!

धर्मगुरु इसीलिए तो आशीर्वाद देते हैं। जब भी विवाह होता है, धर्मगुरु आशीर्वाद देते हैं। यह शड्यंत्र है पूरा का पूरा। वे आशीर्वाद देते हैं कि ठीक है भैया, अब फंसे।

एक धर्मगुरु ने आशीर्वाद दिया नव-विवाहित एक जोड़े को, कि मेरा आशीर्वाद, जुग-जुग जीओ। अब तुम्हारे दुखों का अंत आ गया।

तीन महीने बाद वह युवक आया कि महाराज, जुग-जुग हमें जीना नहीं! अपना आशीर्वाद वापस लो! यह भी तुमने क्या कह दिया कि जुग-जुग जीओ! अब तो आशीर्वाद दो कि किसी तरह इस जीवन से छुटकारा मिले। और एक बात और पूछनी है कि तुमने जो कहा था कि अब दुखों को अंत आ गया, उसका क्या अर्थ? क्योंकि मैं उसके पहले दुखी था ही नहीं।

तो उस पुरोहित ने कहा कि बच्चा, मैंने यह तो नहीं कहा था कि कौन सा अंत। दुखों के दो अंत होते हैं। एक जहां से दुख शुरू होता है, वह भी एक अंत; और एक जहां दुख की समाप्ति होती है, वह भी एक अंत। दो छोर। मैंने यह कहा ही नहीं था कि कौन सा अंत आ गया है। अब तुम समझ गए कि कौन सा अंत आ गया था।

और उस पुरोहित ने कहा कि घबड़ाओ मत, कितने ही जल्दी मरो, मगर तुमको लगेगा ऐसे ही जैसे जुग-जुग जीए।

विवाहित आदमी को खूब जिंदगी लंबी मालूम पड़ती है। काटते ही नहीं कटती। काटे नहीं कटती। कितने उपाय करते हैं विवाहित आदमी जिंदगी काटने के--ताश खेल रहे, आल्हा-ऊदल पढ़ रहे! जैसे इस दुनिया में करने को कुछ नहीं बचा। आल्हा-ऊदल बड़े लड़ैया, जिनसे हार गई तलवार! बैठे हैं, घोट रहे हैं! शतरंज बिछाए बैठे हैं। लकड़ी के हाथी-घोड़ा चला रहे हैं। पूछो, क्या कर रहे हो? समय काट रहे हैं! समय जैसी बहुमूल्य चीज काटे नहीं कट रही! काटने की क्या-क्या तरकीबें निकाल रहे हैं! ताश खेल रहे हैं, सिनेमा देख रहे हैं। देर-देर तक बैठे हैं होटलों में, कि जितनी देर हो जाए उतना ही अच्छा।

मुल्ला नसरुद्दीन एक रात तीन बजे घर की तरफ चला आ रहा है लड़खड़ाता हुआ। पुलिसवाले ने पूछा, कहां जा रहे हो?

उसने कहा कि प्रवचन सुनने।

तीन बजे रात को! तीन बजे रात कौन सा प्रवचन होता है?

नसरुद्दीन ने कहा कि तुम्हें मेरी स्त्री का पता नहीं है। जाग रही होगी! और जब तक प्रवचन नहीं देगी, न खुद सोएगी, न मुझको सोने देगी। अक्सर तो सुबह हो जाती है, प्रवचन चलता ही रहता है।

तो तुम्हारे नाते-रिश्ते हैं, वे सपने हैं। तुम्हारी पद-प्रतिष्ठा है, नाम-यश है, वह सपना है। सपनों के भीतर सपने हैं। डब्बों के भीतर डब्बे हैं। और उन डब्बों के भीतर डब्बे, डब्बों के भीतर डब्बे, फिर कहीं तुम हो। और तुम इन डब्बों को बनाए जाते हो, सजाए जाते हो, नये-नये बनाए जाते हो।

इन सब डब्बों के बाहर आना है। और इनके बाहर आने का उपाय तुम चकित होओगे जान करः अपने भीतर जाना है। इस सारे जाल के बाहर आने का एक ही उपाय हैः स्वयं के भीतर जाना।

एक अधेड़ अवस्था की अत्यंत बदशक्ल स्त्री ने पुलिसवाले से एक व्यक्ति की ओर इशारा करते हुए कहा कि इसे पकड़ लीजिए, क्योंकि यह मेरे कान में कह रहा था कि मैं संसार में सबसे खूबसूरत स्त्री हूं।

पुलिसवाले ने उस स्त्री को देखा, फिर बड़े दया भाव से उस आदमी की तरफ देखा, फिर दोबारा स्त्री की तरफ देखा और कहा कि बाई, इस पर क्या इल्जाम लगाएं? झूठ बोलने का या पागलपन का?

तुम बनाए जाते हो नये-नये उपद्रव। झूठ बोल कर फंस जाते हो। और पागलपन का अंत नहीं है। जब तक तुम शांत न हो जाओ, पागल ही हो, विक्षिप्त ही हो। इस विक्षिप्तता में, राम सरस्वती, रास्ता खोजोगे? पहले इस विक्षिप्तता को विदा करो। इस विक्षिप्तता में रास्ता मिलेगा भी कैसे? मिल भी जाए तो गलत होगा, कल्पित होगा। होगा ही नहीं, सिर्फ दिखाई पड़ेगा। कुछ का कुछ कर बैठोगे। जब आदमी बेहोश हो तो सबसे पहला काम उसे करने योग्य यह है कि बिल्कुल ठहर जाए, हिले भी नहीं; क्योंकि कुछ भी करेगा, गलत होगा। बेहोशी में तो बिल्कुल थिर हो जाना उचित है। जरा भी हिलो-डुलो नहीं। कुछ न कुछ भूल-चूक हो जाएगी, कदम गलत जगह पड़ जाएंगे। ठीक जगह कैसे पड़ सकते हैं?

और आदमी डर के कारण कि कहीं गलत रास्ते पर कदम न पड़ जाएं, चलता भी है, डरता भी है, घबड़ाया भी रहता है, तो ठीक से चल भी नहीं पाता। तो अधूरा-अधूरा। सब जगह अधूरा-अधूरा। सब जगह आंशिक। आधा इधर जाता, आधा उधर जाता; कुछ पश्चिम, कुछ पूरब; कुछ दक्षिण, कुछ उत्तर। खंड-खंड में बंटा रहता है। और डर के मारे...

तुम तलाश रहे हो, इसलिए नहीं कि तलाश कोई स्वाभाविक बात है। वह भी तुम्हारे पंडित-पुरोहितों ने तुम्हें समझा रखा है कि तलाशो। बचपन से ही तुम्हें सिखा रहे हैं कि खोजो। परमात्मा को खोजो, मोक्ष को खोजो, सत्य को खोजो। और खोजने का मतलब स्वाभाविक होता है कि जाओ कहीं, रास्ता पकड़ो। और रास्ता पूछोगे किससे? उन्हीं से पूछोगे। पहले समझाते हैं--खोजो। चैन से बैठने न देंगे। धकाए रहेंगे कि खोजो, क्या बैठे हो? खोज नहीं करनी? खोज करने निकलोगे तो पूछोगे किससे कि रास्ता कहां, विधि कहां, मार्ग कहां, जंतर-मंतर? तो उन्हीं के पास जाओगे। फिर वे जंतर-मंतर देंगे।

धर्म का धंधा बहुत अजीब धंधा है। पहले मांग पैदा करनी पड़ती है, फिर पूर्ति करनी पड़ती है। यह सब मांग पैदा करवाई गई है। अन्यथा कहीं खोजने की कोई जरूरत नहीं है। तुम हो। और तुम्हारे होने का अर्थ है कि परमात्मा तुम्हारे भीतर है। उसके बिना तो तुम हो नहीं सकते। वह तो होना है। वही तो होना है। वही तो श्वास ले रहा है तुम में। वही तो तुम्हारे हृदय में धड़क रहा है। जाना कहां है? खोजना क्या है?

मगर खूब डर लगवा दिया है पंडितों ने--कि अगर नहीं खोजा, नरक में पड़ोगे। अगर खोजा तो स्वर्ग पाओगे। तो लोभ पकड़े हुए है कि मिल जाए स्वर्ग। और भय पकड़े हुए है कि किसी तरह नरक से बच जाएं।

एक मियां जी बड़े रईस थे, बड़े प्रसिद्ध थे, बड़े कला-पारखी भी थे। उनका नाम था सुभान। वे गांव के बाहर एक बेर के पेड़ के नीचे बैठे मल-मूत्र त्याग कर रहे थे। आस-पास कोई था भी नहीं। साथ-साथ पके-पके

बेर भी गिर रहे थे। सो उनसे न रहा गया। परमहंस भाव उठा! सो बेर उठा कर खाते भी जाते। उधर से एक वेश्या निकल आई। उसे उस रात उस गांव में नाच करना था।

रात में वेश्या का नाच शुरू हुआ। सुभान मियां भी नाच देखने गए। मियां जी गांव के बड़े आदमियों में से थे। वे आगे बिठाए गए।

वेश्या ने गाना शुरू कियाः सुभान, तेरी बतियां जान गई राम।

सुभान मियां वेश्या का गीत सुन कर भयभीत हो गए और सोचने लगे कि यह वेश्या की जाति भरे समाज में हमारी भद्द करने पर उतारू है। यह दुष्ट कहीं बता न दे कि हम क्या कर रहे थे सुबह! वह परमहंस भाव प्रकट न कर दे सब जनता के सामने! वह बेर खाने वाली बात बता न दे, नहीं तो नाहक बदनामी होगी, प्रतिष्ठा की हानि होगी। अतएव वे वेश्या को खुश करने के लिए अपना ढाई सौ रुपये का शाल उतार कर उसे दे दिए।

वेश्या बहुत खुश हुई और थिरक कर नाचते हुए आलाप करके गाने लगीः सुभान, तेरी बतियां कह दूंगी राम।

पहले तो उसने कहा थाः सुभान, तेरी बतियां जान गई राम। अब बोली कि सुभान, तेरी बतियां कह दूंगी राम। और जोश में आ गई।

सुभान ने सोचाः पहले कहती थी--जान गई राम, अब कहती है--कह दूंगी राम। यह वेश्या तो बड़ी दुष्ट है, इसे जरा शर्म-लाज नहीं। यह वेश्या की जाति ही ऐसी है। मैं भी कहां से यहां आ गया! सुभान मियां ने एक कीमती अंगूठी पहन रखी थी, उन्होंने वह अंगूठी उतार कर वेश्या को दे दी कि जिससे हरामजादी खुश हो जाए और हमारी बात सभा में न कहे।

वेश्या ने अंगूठी पाई तो और खुश हो गई। पहले गीत में उसने देखा कि इतना ईनाम उसे कभी भी नहीं मिला था। वह खुश होकर आखिरी कड़ी गाने लगीः सुभान, तेरी बतियां कह रही हूं राम।

अब सुभान मियां से नहीं रहा गया। पांच-छह सौ रुपये की चीज भी गई और यह बदतमीजी! वे उठ कर खड़े हो गए और वेश्या को ललकारते हुए कहाः कह रही हूं राम, कह रही हूं राम, क्या कह रही है राम? अरे कह दे, कहने में रखा क्या है! यही न कि सुभान मियां सुबह टट्टी फिरते जाते थे और बेर भी उठा कर खाते जाते थे! कह दे! कह दे!

वे अपने भय में ही मरे जा रहे हैं!

मंदिरों में, मस्जिदों में, गिरजों में जो लोग हैं, आधे भय के कारण इकट्ठे हैं कि नरक में न जाना पड़े। क्योंकि उन्हें मालूम है क्या-क्या कर रहे हैं। सब चोरी-चपाटी। और परमात्मा देख रहा है। परमात्मा भी गजब का है! बस वह देख रहा है, उसकी हजार आंखें हैं! खोपड़ी में जैसे और कोई जगह ही नहीं बची होगी, आंखें ही आंखें! सब तरफ देखने के लिए, कि कोई बच न जाए। जांच-पड़ताल कर रहा है कि कौन क्या कर रहा है!

अब आदमी आदमी है, थोड़ी-बहुत भूल सभी से हो जाती है। तो डर लगता है कि कहीं देख तो ली होगी, लिख गई होगी किताब में। अब मारे गए। अब चलो मंदिर, अब चलो मस्जिद, अब कर लो पूजा-पाठ। अब किसी तरह समझाओ-बुझाओ कि भैया जो भूल हो गई हो गई, अब दुबारा न करेंगे। कसम खाते हैं। तोबा करते हैं।

तो नरक के डर के कारण कुछ लोग इकट्ठे हैं। कुछ लोभ के कारण, कि पूजा करेंगे, पाठ करेंगे, तो स्वर्ग मिलेगा। नहीं तो तलाश क्या है? मंदिर-मस्जिदों में कोई खोजी जाते हैं? जिसको खोजना है, उसे कहीं नहीं जाना है, उसे सिर्फ अपने भीतर जाना है। ये तो भयभीत, भीरु और लोभियों की जमातें हैं, जो मंदिरों-मस्जिदों

में इकट्ठी हैं। ये धार्मिक लोग नहीं हैं। धार्मिक व्यक्ति को तो अपने भीतर ठहरना है। और वहां सब पा लिया जाता है। पाया ही हुआ है, बस इतनी पहचान आ जाती है।

बुद्ध को जब परमज्ञान हुआ तो उन्होंने कहा कि मैं भी कैसा पागल था! उसे खोज रहा था जो मेरा स्वभाव है, जो मैं सदा से हूं, जिसे मैंने कभी खोया ही नहीं था।

राम सरस्वती, सपने छोड़ो। सब खोज सपने ही पैदा करवाती है। घर आओ, लौटो, अपने भीतर बैठो। अपने भीतर झांको। डरो मत। कोई परमात्मा खुफिया पुलिस की तरह तुम्हारे पीछे नहीं लगा हुआ है। और न लोभ से भरो। कोई स्वर्ग कहीं और नहीं है। जो अपने भीतर थिर है, स्वर्ग में है। जो अपने बाहर दौड़ रहा है, नरक में है।

आज इतना ही।

आठवां प्रवचन

अपने दीपक स्वयं बनो

पहला प्रश्नः ओशो, भक्ति, ज्ञान और कर्म स्वभाव से या प्रभाव से होता है? ओशो, समझाने की कृपा करें।

ओम, यह प्रश्न महत्वपूर्ण है। जीवन दो ढंग से जीया जा सकता हैः या तो औरों की सुन कर, या अपनी सुन कर। या तो जीवन अनुकरण होता है और या जीवन स्वस्फूर्त। या तो भीतर की रोशनी से कोई चलता है, या उधार।

जो उधार जीता है, व्यर्थ जीता है। क्योंकि जो उधार जीता है उसका जीवन थोथा होगा, मिथ्या होगा, ऊपर-ऊपर होगा, लिपा-पुता होगा। भीतर कुछ और होगा, बाहर कुछ और होगा। जो व्यक्ति स्वस्फूर्ति से जीता है उसके जीवन में सत्य की संभावना है और वही कभी परमात्मा के साक्षात्कार को उपलब्ध हो सकता है।

अनुकरण धर्म नहीं है, यद्यपि वही धर्म बन कर मनुष्य की छाती पर बैठ गया है। सारी पृथ्वी उन लोगों से भरी है, जो दूसरों का अनुकरण कर रहे हैं। उन्हें पता नहींः सत्य क्या है? परमात्मा क्या है? है भी या नहीं, यह भी पता नहीं। न कभी पूछा, न कभी जिज्ञासा की। न कभी जिज्ञासा के लिए जो जोखिम उठानी चाहिए वह जोखिम उठाई। न कभी खोज पर निकले। खोज पर निकलना खतरनाक है--लौट सको, न लौट सको वापस! आगे कुछ पाने को हो या न हो! और फिर कौन जाने इस अज्ञात सागर में कहां खो जाओ! तूफान हैं, अंधड़ हैं। रास्ता दुर्गम है। मंजिल की कोई गारंटी नहीं है--हो या न हो! पहुंच कर ही जान सकोगे। पहले से कोई आश्वस्त नहीं कर सकता। बड़ी श्रद्धा चाहिए अन्वेषण के लिए। स्वयं पर श्रद्धा चाहिए!

और धर्म के नाम पर तुम्हें सिखाया जा रहा हैः दूसरों पर श्रद्धा करो।

दूसरों पर श्रद्धा अधर्म है; स्वयं पर श्रद्धा धर्म है। लेकिन स्वयं पर श्रद्धा अग्नि से गुजरने जैसी है, क्योंकि स्वयं पर श्रद्धा पाने के लिए पहला कदम नास्तिकता है, आस्तिकता नहीं। पहले तो "नहीं" कहने की क्षमता आनी चाहिए। जिसकी "नहीं" निर्बल है, उसकी "हां" में कोई बल नहीं हो सकता। तुम्हारी "हां" उतनी ही बलवान होती है जितनी तुम्हारी "नहीं"; उससे ज्यादा नहीं हो सकती। और अगर तुम्हारी "नहीं" परिपूर्ण है तो तुम्हारी "हां" में भी पूर्णता होती है, समग्रता होती है। फिर तुम अपने जीवन को निछावर कर सकते हो।

दूसरे का अनुकरण सस्ता है, सुगम है। न कहीं जाना है, न कुछ खोजना है, न कुछ दांव पर लगाना है। बस बासी बातों को मान लेना है। भीड़ जो कहे उसको स्वीकार कर लेना है। इसमें बड़ी सुरक्षा भी है। हिंदू घर में पैदा हुए तो तुम हिंदू हो गए। तुमने हिंदू होने के लिए कौन सी खोज की? कौन सी जिज्ञासा की? मुसलमान घर में पैदा होते तो मुसलमान हो जाते। और जैन घर में पैदा होते तो जैन हो जाते। तुम आदमी हो या मिट्टी के लोंदे हो, कि जिसके हाथ पड़ गए, उसने जो बना दिया वही बन गए! और तुम अगर रूस में पैदा होते किसी कम्युनिस्ट परिवार में तो तुम्हें ईश्वर इत्यादि की बकवास कभी पकड़ती ही नहीं; तुम बाइबिल, कुरान और गीता की तरफ ध्यान भी न देते। तुम्हारे लिए कृष्ण और क्राइस्ट, बुद्ध और महावीर अर्थहीन शब्द होते, इनका कोई मूल्य नहीं होता। इतना ही नहीं, बल्कि तुम जानते कि यही लोग हैं जिन्होंने मनुष्य-जाति को भ्रष्ट किया। इन्होंने ही मनुष्य-जाति को अफीम खिलाई और अब तक बेहोश रखा। तब तुम मंदिर और मस्जिद नहीं जाते। तुम भूल कर भी प्रार्थना न करते। ध्यान शब्द ही तुम्हें निष्प्रयोजन मालूम होता। कैसी खोज? किसकी खोज? न

कोई परमात्मा है, न कोई आत्मा है। आदमी तो बस पांच तत्वों का जोड़ है। बिखर जाएंगे तत्व, कहानी हो जाएगी खतम। मृत्यु के बाद कुछ भी नहीं है और जन्म के पहले भी कुछ नहीं था।

प्रभाव से जो जीता है, वह जीता ही नहीं। और सारी दुनिया करीब-करीब प्रभाव से जीती है। तुम जिसके प्रभाव में पड़ गए, संयोगवशात, उसके ही रंग में रंग जाते हो। तुम्हारी अपनी कोई निजता नहीं है। तुम्हारा अपने भीतर कोई स्वयं का बोध नहीं है, कि तुम सोचो, विचारो, विमर्श करो, निर्णय लो। तुम तो बस भेड़ों की तरह हो; भीड़ जहां चली, तुम चले। तुम्हें अपना स्मरण ही नहीं है। तुम तो दोहराए जाते हो जो तुम्हें कहा गया है। ग्रामोफोन के रिकार्ड की भांति हो तुम। गीता पकड़ा दी तो गीता दोहराते हो, कुरान पकड़ा दिया तो कुरान दोहराते हो। न तुम्हें कुरान से कुछ लेना है, न तुम्हें गीता से कुछ लेना है। न तुम्हारे प्राणों में गीता का अनुनाद उठ रहा है, न कुरान का संगीत। तुम्हारे प्राण बिल्कुल खाली पड़े हैं, सब ऊपर-ऊपर। क्योंकि प्रभाव कभी भी तुम्हारे स्वभाव तक नहीं पहुंच सकते। प्रभाव तो ऊपर ही रह जाएंगे।

यह तो ऐसे ही है जैसे स्त्रियां अपना चेहरा रंग लेती हैं; रंग-रोगन लगा लिया।

एक बंगाली प्रोफेसर मेरे मित्र थे। एक दिन कह कर मुझे गए कि आज मेरी पत्नी भी आपसे मिलने को बहुत उत्सुक है, तो मैं अपनी पत्नी को लेकर आ रहा हूं।

आए तो अकेले आए। मैंने कहा, पत्नी का क्या हुआ?

उन्होंने कहा कि यह जो रास्ते में बूंदाबांदी हो गई, सो वह लौट गई।

मैंने कहा, बूंदाबांदी से उसके लौट जाने का क्या संबंध?

उन्होंने कहा, आप समझे नहीं, उसका रंग-रोगन बह गया। लकीरें आ गईं उसके चेहरे पर। बूंदाबांदी हो गई रास्ते में अचानक।

फिर जब उनकी पत्नी कुछ दिनों बाद मुझे मिलने आई, तो मुझे उनकी बात का पक्का भरोसा आया। इतना रंग-रोगन पोता हुआ था उसने कि निश्चित ही बूंदाबांदी हो जाएगी तो लौट ही जाना पड़ेगा।

हिंदू हो, मुसलमान हो, ईसाई हो, जैन हो--सब रंग-रोगन है। जरा सी बूंदाबांदी में बह जाएगा। बूंदाबांदी में टिकता ही नहीं।

गीता पढ़ रहे हो और किसी ने गाली दे दी, बस हो गई बूंदाबांदी। गीता ही फेंक कर मार दोगे। फिर यह भी न देखोगे कि अब यह गीता है या क्या है। फिर पीछे उठा कर चाहे सिर से लगा लोगे, दो फूल चढ़ा दोगे, पांच कन्याओं को भोजन करवा दोगे, वह अलग बात। मगर उस वक्त जब किसी ने गाली दे दी, सब बह जाएगा। गीता वगैरह काम नहीं आएगी।

मैंने सुना है, एक क्रोधी आदमी, महाक्रोधी, इतना कि उसने अपनी पत्नी को धक्का दे दिया, वह कुएं में गिर गई और मर गई। दुख हुआ। क्रोध के बाद किसको दुख नहीं होता! और इतना बड़ा क्रोध कोई करे तो फिर तो दुख स्वाभाविक है। पश्चात्ताप हुआ। पश्चात्ताप की अग्नि पकड़ी थी कि उसी समय मंदिर चला गया। जैन था। जैन मुनि आए हुए थे--दिगंबर मुनि। उनके चरणों में गिर पड़ा और कहा कि आप ही मुझे बचाओ। यह क्रोध अब बहुत हो गया। मैंने बहुत तरह के उपद्रव किए हैं। एक बार अपने घर में आग लगा दी थी; मगर वह भी ठीक था कि घर में कोई प्राण थोड़े ही थे, जल गया जल गया, दूसरा बना लिया। आज तो अपनी पत्नी को धक्का दे दिया, वह मर गई। अब यह सीमा के बाहर बात हुई जा रही है। मुझे दीक्षा दो, अब मुझे संसार में नहीं रहना है।

मुनि ने कहा, तो दीक्षा का क्रम होता है। जैन मुनि की पांच सीढ़ियां होती हैं। पहले ब्रह्मचर्य का व्रत ले, फिर छुल्लक बने, फिर एलक बने... ऐसा धीरे-धीरे जाकर... क्योंकि पहले चद्दर ओढ़े, फिर दो लंगोटी रखे, फिर

एक लंगोटी रखे। अभ्यास करना होता है न! एकदम से लंगोटी छोड़ दो, बिल्कुल नंगे खड़े हो जाओ, तो खुद ही जरा बेचैनी मालूम होगी। धीरे-धीरे क्रमशः अभ्यस्त हो जाता है आदमी।

उसने कहा कि मुझे सीढ़ियां वगैरह नहीं चाहिए। जिंदगी का क्या भरोसा! अरे अभी मेरी पत्नी जिंदा थी सुबह और अब खतम हो गई। मैं अभी मुनि होता हूं।

मुनि भी थोड़े डरे कि नहीं भाई, इतनी जल्दी नहीं।

मगर उसने सुना ही नहीं, वह तो क्रोधी आदमी था, उसने तो कपड़े-लत्ते फेंक दिए, वहीं नंगा खड़ा हो गया। तालियां पिट गईं। मंदिर में जो लोग आए थे, उन्होंने कहा कि इसको कहते हैं त्याग! अरे कल के लिए क्या छोड़ना! मुनि भी प्रभावित हुए। कहा कि मैंने बहुत लोगों को दीक्षा दी, मगर तेरे जैसा धार्मिक आदमी, संकल्पवान नहीं देखा कोई और!

संकल्प वगैरह कुछ भी नहीं था इसमें; यह वही क्रोधी आदमी है। जो पत्नी को धक्का दे सकता है वह कपड़े भी फेंक सकता है। जिसने पत्नी तक को धक्का देने में संकोच न किया, एक मिनट न सोचा, वह कपड़े उतारने में भी क्यों सोचे! सोच-विचार का धंधा ही वह नहीं करता। करके सोचता-विचारता है। फिर बैठ कर नंगा सोचेगा कि यह मैंने क्या कर लिया? अब यह ठंड पड़ी, अब यह फलां हुआ! मगर तब तक बहुत देर हो जाएगी। तब तक तालियां बज चुकी होंगी, लौटना मुश्किल हो जाएगा।

लोगों ने तो जुलूस निकाल दिया। जब उसका जुलूस निकला, तब उसे थोड़ा ख्याल आना शुरू हुआ कि बाजार में नंग-धड़ंग। मगर अब देर हो चुकी थी, अब कहने में कोई सार भी नहीं था। और भद्द होती। कर तो गया था क्रोध में ही, क्योंकि पश्चात्ताप भी क्रोध ही है--क्रोध ही है शीर्षासन करता हुआ। पश्चात्ताप और क्या है? उलटा खड़ा हुआ क्रोध। सिर के बल खड़ा हुआ क्रोध। मगर अब देर हो चुकी थी। बैंड-बाजे बज रहे थे, फूल फेंके जा रहे थे, गांव भर में वाह-वाह हो रही थी। अब इस सबको छोड़ कर जाए भी कहां, भागे भी कहां!

इसीलिए तो शोभायात्रा निकालनी पड़ती है मुनियों की, साधुओं की, कि भाग न सकें। बैंड-बाजा बजाओ, स्वागत करो, इतना सम्मान दो कि अब भागने में उनको खुद ही लगेगा कि इतने अहंकार की तृप्ति और कहां होगी! और कुछ है भी तो नहीं उनके पास, जिसके कारण कहीं कोई सम्मान मिल सकेगा। यही उनकी कुल पूंजी-संपत्ति है कि नंगे खड़े हैं, कि कोई उपवासा खड़ा है। उनके जीवन की और कला क्या है?

अब इस आदमी के पास कुछ भी न था--सिवाय क्रोध के। मगर वह महामुनि हो गया। और क्रोधी तो था ही। जब उसको इतना सम्मान मिला सिर्फ कपड़े छोड़ने से, तो उसने और-और उपाय किए। क्योंकि क्रोध अहंकार का ही हिस्सा है। क्रोध आता ही तब है जब तुम्हारे अहंकार को बाधा पड़ती है। जहां तुम्हारे अहंकार को बाधा पड़ती है वहीं क्रोध आता है। क्रोध अहंकार का शरीर-रक्षक है। अगर तुम्हारे अहंकार को कोई बाधा न आए तो क्रोध आएगा ही नहीं।

इसीलिए तो मुनियों को क्रोध नहीं आता, क्योंकि अहंकार को कोई बाधा ही नहीं आती। सब जगह सम्मान है, सम्मान ही सम्मान है। क्रोध आने का कारण नहीं है। इसलिए नहीं कि क्रोध नहीं रहा उनके भीतर। जरा उनको मौका दो, अवसर दो, तब तुम्हें पता चलेगा कि वे तुमसे भी ज्यादा क्रोधी हैं। लेकिन उनको अवसर ही नहीं मिलता क्रोध का। अहंकार को रोज पूजा मिलती ही चली जाती है। नये-नये पूजा के थाल अहंकार पर चढ़ते चले जाते हैं।

इस आदमी को जब सिर्फ कपड़े छोड़ने से इतना मिला तो उसने भोजन एक दफा कर दिया। फिर भोजन में से घी छोड़ दिया। फिर नमक छोड़ दिया। छोड़ता ही चला गया। सूख गया। जितना सूखता गया उतना ही

सम्मान बढ़ता चला गया। वह महामुनि हो गया। उसकी ख्याति सारे देश में पहुंच गई। एक मित्र दर्शन करने को आए। महामुनि ने देखा मित्र को; बचपन के साथी थे, साथ ही खेले, उठे, लड़े, झगड़े; भूलने का कोई कारण नहीं था। मुनि पहचान तो गए, लेकिन पहचानना न चाहा। क्रोधी आदमी था, अहंकारी आदमी था; अब इतने पद पर था, इतनी ऊंचाई पर था; हर किसी ऐरे-गैरे-नत्थू खैरे को पहचानेगा! कहां वह और कहां तुम! देखा और अनदेखा कर गया।

मित्र भी पहचान तो गए कि पहचान गया है, लेकिन इस तरह देख रहा है जैसे कि पहचाना ही नहीं। मित्र को शक हुआ। मित्र को शक था ही। बचपन से जानते थे कि इतना क्रोधी और उपद्रवी आदमी है, यह कैसे महामुनि हो गया है! मगर चमत्कार भी होते हैं, क्रांतियां भी होती हैं। कभी-कभी घट जाती हैं घटनाएं इस तरह की भी। आदमी की जिंदगी में रूपांतरण के क्षण भी आ जाते हैं। कौन जाने हो ही गया हो! इसीलिए तो दूर की यात्रा करके इस महानगरी में आया था। लेकिन देखा कि नहीं, कुछ फर्क नहीं हुआ। अकड़ वही है। वह पास सरक आया और उसने कहा कि महाराज, क्या मैं आपका नाम पूछ सकता हूं?

अब तो उनके क्रोध की सीमा न रही। कहा, अखबार पढ़ते हो कि नहीं? रेडियो सुनते हो कि नहीं? टेलीविजन देखते हो कि नहीं? कौन मेरा नाम नहीं जानता! उल्लू का पट्ठा नाम पूछता है!

मित्र ने दिल ही दिल में कहा कि कुछ फर्क नहीं पड़ा, वही का वही आदमी है। अभी मौका मिले तो अभी यह कुश्ती लड़ने को राजी हो जाए यहीं। मगर मित्र भी परीक्षा ही लेने आए थे, तो उन्होंने कहा कि अपढ़ आदमी हूं, न रेडियो सुनता, न टेलीविजन देखता, गांव का गंवार हूं। आप ठीक ही कहते हैं--उल्लू का पट्ठा! एक दफा बता ही दें। आपके ही मुखारविंद से सुन लूंगा तो बड़ी तृप्ति होगी।

देखा तो बड़े क्रोध से, क्योंकि पहचान तो रहे हैं कि यह पढ़ा-लिखा है, सब बात है, भलीभांति जानते हैं इसको। देखा तो बहुत क्रोध से, लेकिन अब और लोग भी बैठे थे, इससे कुछ कहना और ज्यादा हुज्जत बढ़ानी ठीक भी नहीं थी। कहा कि मेरा नाम शांतिनाथ है।

फिर थोड़ी देर इधर-उधर की अध्यात्म की चर्चा चली। उस मित्र ने और कुछ आध्यात्मिक बातें पूछीं। फिर पूछा कि महाराज, अब जाने को हूं, एक बात और बता दें, आपका नाम भूल गया।

अब तो एकदम वे भूल ही गए कि मुनि हैं। कहा कि नाम भूल गया! तेरे जैसा बुद्धू नहीं देखा। अभी मैंने तेरे को नाम बताया और तू नाम भूल गया! तो खाक तू समझेगा ब्रह्मज्ञान की बातें! बड़ी ऊंची बातें कर रहा है--आत्मा, परमात्मा, मोक्ष! तुझे क्या खाक याद रहेगा, जब मेरा नाम ही याद नहीं रहा! एक बार और बताए देता हूं। मेरा नाम है शांतिनाथ!

मित्र ने कहा, आपकी बड़ी कृपा। फिर थोड़ी देर बैठा रहा और फिर उसने पूछा कि महाराज, अब जा ही रहा हूं, बस चरण छू लूं--और आपका नाम!

बस महाराज ने उठाया डंडा और दे मारा उसकी खोपड़ी पर और कहा कि मेरा नाम है--शांतिनाथ!

उसने कहा कि मैं समझ गया महाराज, बिल्कुल आपके व्यक्तित्व से शांति ही झर रही है। बस यही देखने आया था। हे महामुनि, अब जाता हूं। आप वही के वही हो, जहां के तहां हो।

ऊपर से तुम चाहे नग्न हो जाओ, चाहे पूजा करो, पाठ करो--सब झूठा होगा। तुम्हारी पूजा में भी तुम्हारे भीतरी विष घुले रहेंगे। तुम्हारी पूजा में भी तुम्हारे सांप-बिच्छू, जो तुम्हारे भीतर भरे हैं, सिर उठाते रहेंगे। तुम्हारी प्रार्थना भी तुम्हारी वासना का ही थोड़ा सजाया-संवारा रूप होगी।

चंदूलाल ने एक दिन देखा कि उनका बेटा बंटू, घर में एक पूजागृह चंदूलाल ने बना रखा है, उसमें भीतर गया। कभी नहीं जाता था पूजागृह में। डांटते-डपटते थे तो भी नहीं जाता था। आज अपने आप चला गया है, तो चंदूलाल भी चकित हुए कि मामला क्या है! भीतर छिप कर सिगरेट वगैरह तो नहीं पीता! या और भी खतरनाक काम करता हो, क्या पता! तो चंदूलाल भी धीरे से गए और खिड़की से झांक कर देखा। बड़े चकित हुए--घुटने टेके, हाथ जोड़े, बिल्कुल भाव-मग्न और कह रहा था कि हे परमात्मा, बस एक छोटा सा काम! अरे तुम्हारे लिए क्या मुश्किल है! तुमने तो क्या-क्या चमत्कार नहीं किए! शास्त्र चमत्कारों से भरे हैं। एक छोटा सा काम मेरे लिए भी! टिम्बकटू को भारत की राजधानी बना दो।

चंदूलाल भी चौंके कि यह क्या कह रहा है! फिर भी चुप खड़े रहे कि पूरी बात तो समझ लें कि यह मामला क्या है।

और कहा कि देखो, ऐसे गुमसुम मत बैठे रहो--बोला बंटू--कुछ कहो! कुछ बोलो! अरे हां-हूं भरो, सिर ही हिला दो। कोई बड़ी बात नहीं मांग रहा हूं। तुम्हारे लिए क्या है! तुम तो अंतर्यामी हो, तुम तो सब जानते ही हो! तुम तो सर्वव्यापी हो! तुम तो सर्वशक्तिमान हो, तुम से क्या नहीं है जो न हो! तुम तो कुछ भी करके दिखा सकते हो। असंभव को संभव कर दो। तुमने लंगड़ों-लूलों को पहाड़ चढ़ा दिए, अंधों को आंखें दे दीं। तुमने क्या नहीं किया, कैसे-कैसे चमत्कार! यह तो छोटी सी बात है। अरे यार कर ही दो!

चंदूलाल को भी गुस्सा आया कि यह क्या कह रहा है कि अरे यार! एकदम भीतर घुसे और पकड़ी गरदन लड़के की कि बंटू, तू क्या कह रहा है परमात्मा से--अरे यार! और यह क्या प्रार्थना है? कितनी दफे समझाया कि प्रार्थना कैसे करनी! यह कोई प्रार्थना है? टिम्बकटू को भारत की राजधानी बना दो! क्यों?

बंटू ने कहा, तुम बीच में न बोलो। मैं परीक्षा-पत्र में गलती से लिख आया हूं टिम्बकटू को भारत की राजधानी। अब अगर शीघ्र नहीं बनती है भारत की राजधानी टिम्बकटू, तो मैं मारा गया। तुम बीच में न पड़ो।

प्रत्येक की अपनी आकांक्षाएं हैं, जो उनकी प्रार्थनाओं से झलकेंगी। और प्रार्थना तभी होती है जब कोई आकांक्षा न हो। इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता कि तुम टिम्बकटू को भारत की राजधानी बनाना चाहते हो या मोक्ष-निर्वाण को पाना चाहते हो। कोई फर्क नहीं पड़ता। जब तक कुछ चाह है, तब तक प्रार्थना नहीं। जब तक कुछ मांग है, तब तक मंदिर में प्रवेश नहीं।

लेकिन तुम प्रार्थना इसलिए कर रहे हो, क्योंकि जिनसे तुमने प्रार्थना करनी सीखी है वे भी इसलिए प्रार्थना कर रहे थे। दुख में, दुर्दिन में लोग परमात्मा को याद करते हैं; सुख में, सुदिन में भूल जाते हैं। सुख में क्यों याद करें? जरूरत क्या? दुख में याद करते हैं। पीड़ा में याद करते हैं। असफलता में याद करते हैं। विफलता में याद करते हैं। और इन्हीं से तुम सीखते हो।

प्रभाव से, ओम, जो भी भक्ति होगी, झूठी होगी। प्रभाव का अर्थ ही होता हैः उधार, बासा। और पता नहीं जिससे तुम ले रहे हो, उसका भी दूसरे से लिया हो, बासा हो। अक्सर तो हजारों हाथों में चला हुआ होता है प्रभाव। जैसे नोट गंदे हो जाते हैं चलते-चलते।

नोट से ज्यादा गंदी चीज दुनिया में खोजनी कठिन है, क्योंकि इतने हाथों में शायद ही कोई चीज जाती हो जितना नोट जाता है। जितने कीटाणु नोट में होते होंगे बीमारियों के, उतने शायद किसी चीज में नहीं होते होंगे। क्योंकि टी.बी. वाला है तो वह भी उसी नोट को पकड़े रखता है। और लोग जोर से पकड़ते हैं, नोट को जब पकड़ते हैं तो कोई ऐसा थोड़े ही। और टी.बी. के कीटाणु भी कोई त्यागी-व्रती तो हैं नहीं; वे भी जब नोट देख लेते हैं तो एकदम जोर से पकड़ते हैं। कैंसर का मरीज है, सर्दी-जुकाम का मरीज है, हजारों तरह के मरीज

हैं! नोट चल रहे हैं। नोट चलते ही जाते हैं एक हाथ से दूसरे हाथ, दूसरे हाथ से तीसरे हाथ। इसीलिए तो अंग्रेजी में नोटों का नाम करेंसी है। करेंसी का मतलब होता है, जो चलता ही रहता है। करेंट। इधर से उधर, उधर से इधर! ठहरता ही नहीं। चलायमान! जिसका चलन होता रहता है। चलन ही जिसका जीवन है। इसलिए नोट से गंदी चीज खोजनी कठिन है। और नोट से ज्यादा बीमार चीज भी खोजनी कठिन है।

करीब-करीब तुम्हारे प्रभाव भी नोट जैसे ही गंदे हैं, नोट से भी ज्यादा गंदे हैं। क्योंकि नोट तो होंगे पचास साल पुराने, दस साल पुराने। कोई हजारों साल पुराने नहीं होते। लेकिन प्रभाव, संस्कार तो हजारों साल पुराने होते हैं। तुम्हारे पिता को उनके पिता दे गए, उनके पिता को उनके पिता दे गए, और पता नहीं बाबा आदम के जमाने से लेकर चलते आ रहे हैं। पीढ़ी दर पीढ़ी लोग एक-दूसरे को सौंपते जाते हैं कि सम्हालो। इतने बासे, इतने सड़े, इतने गंदे कि अगर तुममें थोड़ी भी स्वच्छता का बोध हो तो भी तुम कहोगे कि नहीं, उधार नहीं लेंगे। और परमात्मा भी उधार! तो इस जीवन में कुछ भी स्वानुभव करना है या नहीं करना है? और तुम अपनी निजता को कैसे पाओगे? तुम अपनी स्वयं की सत्ता को कैसे अनुभव करोगे? दूसरे जो कहते हैं, मान लोगे। जो भी कह देते हैं! और वे तुमसे यह भी कहते हैं कि विश्वास रखो। संदेह मत करना। जिनको भी समाज में अपनी धारणाओं को चलवाए रखना है, वे विश्वास सिखाते हैं, संदेह नहीं।

विश्वास का अर्थ होता हैः नहीं की हत्या कर दो। तुम्हारे भीतर नहीं उठता हो तो उसकी गर्दन घोंट दो। और ध्यान रखना कि तुम कितनी ही गर्दन घोंटो, नहीं मरेगा नहीं। तुम्हारे ऊपर-ऊपर विश्वास होगा, भीतर-भीतर इनकार होगा।

इसलिए तुम जरा सोचना। ईश्वर को मानते हो और भीतर कहीं न कहीं तुम संदेह को सरकता हुआ पाओगे, अंधेरे कोनों में छिपा हुआ पाओगे। जरा उसे मौका दो, अभी भी वह खुले आंगन में आने को राजी है। अंतरात्मा में तो संदेह भर जाएगा और ऊपर-ऊपर परिधि पर विश्वास चिपक जाएंगे। सब चिपके विश्वास जरा सी बूंदाबांदी हो जाए और व्यर्थ हो जाते हैं।

एक मित्र की पत्नी मर गई। मैं उनके घर गया। पास-पड़ोस के लोग समझा रहे थे कि भई, रोते क्यों हो? अरे, आत्मा तो अमर है! जो सज्जन यह सबसे ज्यादा समझा रहे थे, मैंने सोचा कि ये ब्रह्मज्ञानी होने चाहिए। बड़ी ज्ञान की बातें कर रहे थे! श्लोक पर श्लोक दोहरा रहे थे। नैनं छिंदन्ति शस्त्राणि! अरे आत्मा को तो शस्त्र छेद ही नहीं सकते। नैनं दहति पावकः! अग्नि जला नहीं सकती। यह आत्मा तो अमर है, शाश्वत है। देह का क्या है! और देह तो मिट्टी का घड़ा है, फूटेगा ही। मिट्टी मिट्टी में मिल गई, ज्योति ज्योति में समा गई। तू क्यों रो रहा है?

मगर वह बेचारा रो ही रहा है।

संयोग की बात, चार-छह महीने बाद ये ब्रह्मज्ञानी की पत्नी मर गई। पत्नियों का क्या! तो मैं खासकर उनके घर गया। हालांकि मेरे उनसे कोई ज्यादा संबंध नहीं थे, कोई पहचान भी नहीं थी, मगर मैंने कहा देखूं कि ब्रह्मज्ञान की क्या अवस्था है! वे रो रहे थे। मैंने कहा, अरे! नैनं छिंदन्ति शस्त्राणि! उसको तो शस्त्र भी नहीं छेद सकते। नैनं दहति पावकः!

उन्होंने मुझे जरा गुस्से से देखा।

उसको आग नहीं जला सकती। आप रो रहे हैं! आपका ब्रह्मज्ञान क्या हुआ? मैंने पूछा।

उन्होंने कहा कि बकवास बंद करो! मेरी पत्नी मर गई, तुम्हें ब्रह्मज्ञान की पड़ी है! और वैसे तुम कभी मेरे घर आए भी नहीं, आज तुम कैसे आए?

मैंने कहा, इसीलिए आया हूं कि मैंने सोचा कि देखें ब्रह्मज्ञानी की क्या दशा है! ये ही अवसर होते हैं जब पता चलता है ज्ञान का।

मैंने कहा, कुछ श्लोक दोहराओ, कुछ उपनिषद की बातें करो! क्या रो रहे हो? अरे मिट्टी मिट्टी में मिल गई, आत्मा आत्मा में चली गई।

वे कहने लगे कि तुम इन बातों को नहीं समझोगे। तुमने कभी विवाह ही नहीं किया।

तो मैंने कहा, ब्रह्मज्ञान के लिए क्या विवाह करना जरूरी है? यह तुमने नई बात बताई! मैं तो सुनता था अब तक कि ब्रह्मज्ञान के लिए विवाह बाधा है। तो कर लूंगा भैया, विवाह करूंगा--एक क्या दो करूंगा, तीन करूंगा। अगर ब्रह्मज्ञान इससे मिलता है, तो जितना करो उतना ही लाभ है।

वे कहने लगे कि यह मजाक का वक्त नहीं है जी! वे तो गुस्से में आने लगे।

मैंने कहा कि आप गुस्से में आते हैं! मैं मजाक नहीं कर रहा; मैं तो सिर्फ यह देखने आया हूं कि ब्रह्मज्ञान कितना भीतर है। पत्नी क्या मर गई, बैठे रो रहे हो। अरे उस पर भरोसा रखो, जिसने एक दी थी, दूसरी देगा। कम से कम श्रद्धा तो रखो। अगर शास्त्र भी भूल गए तो भूल जाओ, श्रद्धा तो रखो।

मैंने उनसे कहा कि मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी मर गई थी तो पत्नी का प्रेमी--पत्नी का एक प्रेमी था, मुल्ला का दोस्त भी था--वह मुल्ला से भी ज्यादा रो रहा था। वह मुल्ला को भी झेंपाए दे रहा था। ऐसी छाती पीटे! कि सारे गांव में लोग खुसर-पुसर करने लगे कि बात क्या है! पत्नी किसकी थी? यह जरा हाथ मारे ले रहा है!

आखिर मुल्ला से भी न रहा गया। मुल्ला उसके पास गया और बोला, भैया, न रो! मैं फिर विवाह करूंगा। इतना दुखी न हो। अब जो हो गया सो हो गया। अभी मैं जिंदा हूं, फिर विवाह करूंगा। तू काहे दुख मना रहा है!

तो मैंने कहा, श्रद्धा रखो, फिर देगा। देने वाला... उसके हाथ हजार हैं।

वहां और भी लोग बैठे थे, वे भी थोड़े हैरान हुए कि बात क्या है! सन्नाटा छा गया। वे सज्जन मुझसे बोले कि आप अभी जाइए, मैं खुद ही जाऊंगा चर्चा करने आपके यहां। अभी इस दुख की घड़ी में मुझे और मत सताओ।

यह सब बूंदाबांदी में बह जाएगा ज्ञान।

ओम, तुम पूछते हो कि प्रभाव से या स्वभाव से?

प्रभाव तो दो कौड़ी का है। प्रभावित ही होना गलत बात है। भक्ति होगी तो भक्ति के भीतर कुछ और छिपा होगा। बस लेबल भक्ति का होगा। और भीतर क्या होगा, कहना मुश्किल है। ज्ञान होगा तो बस तोतों जैसा ज्ञान होगा। उसका कोई ज्यादा मूल्य नहीं हो सकता। और कर्म होगा, तो तुम करोगे, लेकिन इसी आशा में कि अब मिला स्वर्ग। अहा! बस अब ज्यादा देर नहीं है। कितनी तो सेवा कर चुके! राह ही देखते रहोगे कि अब परमात्मा आ ही रहा है। बस उतरेगा स्वर्ग से पुष्पक विमान, बिठाएगा पुष्पक विमान में और ले जाएगा। सदेह स्वर्ग होने वाला है।

कर्म करोगे तो वासना-लिप्त होगा। लोग कर रहे हैं कर्म--इसी आशा में। सेवा कर रहे हैं--इसी आशा में कि मेवा मिलेगा। गरीबों के पैर दाब रहे हैं--इस आशा में कि जरा थोड़े दिन की बात है, दाब लें, फिर तो सदा-सदा के लिए देवी-देवता दाबेंगे पैर।

यह कोई सेवा है? यह कोई कर्म है? जब तक निष्काम न हो कर्म, तब तक कर्म नहीं है, तब तक तो बंधन ही है। और यह तो कामना ही आ गई पीछे से, पीछे के द्वार से।

और ज्ञान तो हरेक की जबान पर रखा हुआ है। जिससे पूछो इस देश में वही ब्रह्मज्ञानी है। यहां आदमी खोजना मुश्किल है जो ज्ञानी न हो। तुम किसी से भी पूछ लो कि भई, तुम अज्ञानी हो? वह फौरन कहेगाः तुमने मुझे समझा क्या है? इस भारत पुण्य-भूमि में अज्ञानी पैदा होते हैं? यहां तो बस ज्ञानी पैदा होते हैं। यहां तो लोग पैदा होते से ही एकदम वेदों का उच्चार करते हुए आते हैं। वे मां के पेट में ही पूजा-पाठ शुरू कर देते हैं।

इस देश में तो हरेक ज्ञानी है। ज्ञान के अंबार लगे हैं। सस्ती बात है। ज्ञानी होने में रखा क्या है, दिक्कत क्या है, अड़चन क्या है? चार-छह किताबें पढ़ लीं कि ज्ञानी हो गए। आदमी दस किताबें पढ़ ले और एक किताब तैयार कर दे--ग्यारहवीं किताब तैयार हो गई। और तुम महापंडित हो जाओगे। और लोग तुम्हारी चर्चा करने लगेंगे।

मेरे पास ऐसे लोग आते हैं जिन्होंने ध्यान पर किताबें लिखी हैं और जिन्होंने कभी ध्यान नहीं किया। मैं उनसे पूछता हूं, ध्यान किया?

उन्होंने कहा कि नहीं, किताब लिखी है।

किताब कैसे लिखी?

उन्होंने कहा, किताब लिखने में क्या दिक्कत है? शास्त्रों में सब लिखा ही हुआ है।

तो तुमने यह भी पता लगाया कि जिन्होंने शास्त्र लिखा था उन्होंने भी ध्यान किया था, कि उन्होंने भी और शास्त्र पढ़ कर लिख दिया था?

यह धंधा बड़े धोखे का है। और ऐसी सुंदर किताबें लिखते हैं, ऐसा बारीक विश्लेषण करते हैं शब्दों का, कि किसी को भी धोखा आ जाए कि बात जान कर कही जा रही होगी।

आचार्य तुलसी प्रसिद्ध जैन मुनि हैं, सात सौ उनके जैन साधु हैं। वे मुझे मिले, बुलाया मुझे, तो मैं गया। कहा, एकांत में मिलना है।

मैंने कहा, एकांत की क्या फिक्र? आपके इतने शिष्य इकट्ठे हुए हैं, इन सबके साथ ही सामने ही वार्ता होगी तो इनको भी लाभ हो जाएगा।

उन्होंने कहा कि नहीं, बिल्कुल अकेले में मिलना है।

अकेले में मिले, तब मैं समझा कि अकेले में क्यों मिलना है! अकेले में इसलिए मिलना है कि वे पूछने लगे कि ध्यान के संबंध में कुछ बताइए, ध्यान कैसे करूं?

मैंने कहा कि आप साधु हुए, मुनि हुए, आचार्य हुए, अब तो सात सौ साधुओं के संघ के गुरु हैं आप--और आपको ध्यान अभी तक हुआ नहीं? ध्यान आपने अब तक किया नहीं? अभी पूछ रहे हैं कि ध्यान कैसे करना! नहीं-नहीं, मैंने कहा, आप मजाक कर रहे होंगे। छोड़िए कुछ और बात करिए।

उन्होंने कहा कि नहीं-नहीं, इसीलिए आपको बुलाया है। मुझे ध्यान के संबंध में समझाइए, मैं ध्यान करना चाहता हूं।

अब ध्यान तो पहली शर्त होनी चाहिए साधु होने की। लेकिन साधु ही नहीं, ये साधुओं के आचार्य हैं, ये साधुओं के गुरु हैं। सात सौ साधुओं का बड़ा संघ है। उनको क्या करवा रहे होंगे ये? इनको खुद ही कुछ पता नहीं। लेकिन प्रवचन ध्यान पर देते हैं, किताबें ध्यान पर लिखी जाती हैं। इनके साधु भी प्रवचन ध्यान पर देते हैं। इनके दो साधु उन्होंने मेरे पास भेजे, कि मैं भेजता हूं दो साधु आपके पास, कि इनको आप ठीक से ध्यान करना सिखा दें। फिर ये मुझे सिखा देंगे और और साधुओं को भी सिखा देंगे।

वे दो साधु आए ध्यान के लिए। सीधे-सादे लोग थे। मगर बोले, एक बात भर की प्रार्थना है। क्योंकि आप कहते हैं कि ध्यान के पहले आंख पर पट्टी बांधो। फिर हमारी कोई फोटो न उतारे। क्योंकि आचार्य जी ने कह दिया है कि फोटो वगैरह कोई उतार ले और छप जाए तो बदनामी होगी, कि जैन मुनि और ध्यान सीखने गए।

मैंने कहा, फोटो तो उतरेगी। मुझे तो ख्याल ही नहीं था, तुमने ही याद दिला दिया। अब तो ध्यान अगर करना हो तो फोटो उतरेगी। करना हो करो, नहीं करना हो तो नमस्कार।

उन्होंने कहा, हम इतने दूर से पैदल चल कर आए हैं। सैकड़ों मील की यात्रा करके आए थे। तो मैंने कहा, फिर फिक्र छोड़ो फोटो की।

ध्यान किया उन्होंने। पंद्रह दिन ध्यान करते थे। मजबूरी थी। मैंने कहा कि फोटो तो उतरेगी। और तुम बीच-बीच में पट्टी उठा कर देखना भी मत कि फोटो उतर रही है कि नहीं। नहीं तो ध्यान सब गड़बड़ हो जाएगा। तुम ध्यान में ही लगो। जिसको फोटो उतारनी है वह अपना काम करेगा।

उनको भय एक ही सताए रहा। रोज कहें कि फोटो उतरी तो नहीं है अभी तक? उतरी हो तो आप कृपा करके उसको छिपा लेना, कहीं जाहिर न हो।

मैंने कहा, मत फिक्र करो, मत चिंता करो। तुम ध्यान में लगो। नहीं तो इतनी सी बात ही अड़चन हो जाएगी।

ऊपर का आचरण तो सब सीख लिया--कितने वस्त्र, कैसे उठना, कैसे बैठना, पिच्छी-कमंडल, वे सब तो सीख लिए। उनमें कोई अड़चन नहीं है। मगर अंतर तो अंधेरे का अंधेरा रहेगा।

कर्म तुम्हें बांधेगा, अगर अनासक्त न हो। और कर्म अनासक्त तभी होता है जब ध्यान से आविर्भूत होता है। और ध्यान अनुकरण नहीं है; ध्यान स्वभाव में ठहर जाने का नाम है। ध्यान स्वभाव में रम जाने का नाम है। स्वरूप-रमण है। और तुम्हारा ज्ञान भी तभी तुम्हारा ज्ञान होगा, जब तुम्हारे भीतर से जगेगा; जब तुम देखोगे, जब तुम पहचानोगे, जब तुम गवाह बनोगे कि हां, आत्मा है! शास्त्रों का उद्धरण नहीं, मेरा अनुभव! जब तुम कह सकोगे कि मैंने जाना, मैंने अनुभव किया, मैंने पीया--तभी तुम्हारा ज्ञान सच्चा होगा। तब तुम गीता होओगे, तुम कुरान होओगे, तुम वेद, तुम उपनिषद। तुम जो कहोगे वही उपनिषद होगा। तुम बोलोगे तो सत्य और तुम चुप रहोगे तो तुमसे सत्य झरेगा। तुम्हारे मौन से भी झरेगा। तुम्हारे शब्द भी सत्य की भनक लिए होंगे। और तुम्हारे मौन में भी सत्य की ही थिरक होगी।

और तब तुम्हारी भक्ति में एक आह्लाद होगा, एक आनंद होगा, एक महोत्सव होगा, एक महारास होगा। तब तुम्हारी भक्ति ऐसी भक्ति नहीं होगी जैसी तुम्हें दिखाई पड़ती है मंदिरों में, मस्जिदों में चल रही है। लोग कर रहे हैं। क्यों कर रहे हैं, उन्हें पता नहीं। उनके बाप-दादे करते रहे, इसलिए वे भी कर रहे हैं। लकीर के फकीर हैं। डरते हैं कि अगर नहीं की तो कहीं कुछ खतरा न हो जाए, कोई नुकसान न हो जाए। इसलिए किए चले जाते हैं। क्या हर्जा है, सोचते हैं, कर ही ली तो। अगर परमात्मा हुआ तो कहने को रह जाएगा कि भक्ति की थी और नहीं हुआ तो बात ही खतम हो गई; चलो थोड़ा समय खराब हुआ, तो ऐसे ही ताश खेलने में जाता है, सिनेमा देखने में जाता है। और फिर भक्ति करने से, मंदिर जाने से, मस्जिद जाने से प्रतिष्ठा मिलती है, समाज में सम्मान मिलता है। यह लोगों की राजनीति का ही हिस्सा हो गया है।

तुम्हें लोग धार्मिक समझें तो उससे एक लाभ है। वह लाभ यह है कि तुम लोगों को आसानी से लूट सकते हो। क्योंकि लोग समझते हैं कि तुम धार्मिक हो, तुम कैसे लूटोगे?

मुल्ला नसरुद्दीन पर अदालत में मुकदमा था कि उसने गांव के सबसे सीधे-सादे आदमी को धोखा दिया। उसका सारा पैसा हजम कर गया। वह इतना सीधा आदमी था जिसको उसने लूटा कि सारे गांव में उसकी निंदा हुई। न्यायाधीश ने भी कहा कि नसरुद्दीन, तुम्हें शर्म न आई इस सीधे-सादे आदम को लूटते हुए?

नसरुद्दीन ने कहा, शर्म क्यों नहीं आई, अरे बहुत शर्म आई! मगर इसके सिवा किसको लूटें? और तो इस गांव में सब मुझसे भी ज्यादा बदमाश हैं। यही एक बेचारा है। दया तो मुझको भी इस पर आती है। मगर यही एक बेचारा है जिसको मैं लूट सकता हूं। बाकी तो मुझको लूट रहे हैं। अब आप ही कहो, मैं किसको लूटूं? शर्म आती है। शर्म से सिर झुका जा रहा है। मगर यही एक आदमी है, इसको ही लूट सकता हूं।

सीधा-सादा आदमी लुटेगा; चालबाज आदमी लूटने के सब हिसाब कर लेता है। उसमें एक हिसाब यह भी है कि धार्मिक होने की प्रतिष्ठा हो। तो भक्ति-भाव करता है, अखंड कीर्तन करवा देता है, रामायण पढ़वा देता है, शतचंडी यज्ञ करवा देता है, संतोषी मैया की जय बुलवा देता है। क्या-क्या खोजते हैं लोग--ढांढन सती मैया की झांकी!

अब एक सज्जन रोज-रोज प्रश्न लिखते हैं कि आप महावीर का नाम लेते हैं, बुद्ध का नाम लेते हैं, कृष्ण का नाम लेते हैं; जिम्भेश्वर महाराज का नाम क्यों नहीं लेते?

ये जिम्भेश्वर महाराज कौन हैं--ढांढन सती के पति? मैंने खुद ही नहीं सुना तो मैं क्या लूं! अब ये जिम्भेश्वर महाराज के कोई भक्त यहां मौजूद हैं!

लोगों को सत्यनारायण की कथा करवा देंगे, प्रसाद बंटवा देंगे, कन्याओं को भोजन करवा देंगे। इससे प्रतिष्ठा बनती है, हवा बनती है। गांव के लोग कहते हैंः अहा, कितना धार्मिक व्यक्ति है! फिर तुम उनकी जेब आसानी से काट सकते हो। फिर वे कटवा लेंगे। अरे, धार्मिक आदमी है, काट लेने दो। भले के लिए ही काट रहा होगा, अपने हित के लिए ही काट रहा होगा। जेब में कुछ खराबी होगी, इसलिए काट रहा है। जेब भारी होगी, अपने को हलका करने के लिए काट रहा है।

एक आदमी के बाबत मैंने सुना है, जौहरी था। बड़ा भक्त था। वह खुद तो काम ही नहीं करता था, वह तो बैठा हुआ माला जपता रहता था। कभी कहे हरि-हरि, कभी कहे राम-राम। लेकिन वे सब सूचनाएं थीं। उसके जो मुनीम वगैरह काम करते थे, उनके लिए सूचनाएं थीं। जब वह कहता राम-राम, तो उसका मतलब था कि जाने दो--बेकाम! बेकार मेहनत न करो इसके साथ। वह अपनी माला जपता रहे, कहे राम-राम। जाने दो! मतलब यह कि जयरामजी करो इससे। जब कहे हरि-हरि, तो लूटो! हरि का मतलब होता हैः लूटो! हरि शब्द का अर्थ होता हैः हरण करो। छोड़ो मत, यह मछली निकल न जाए। ये उसके प्रतीक थे। मगर लोग कहते कि वाह, क्या धार्मिक पुरुष है! वह तो कभी दुकानदारी करता ही नहीं था; वह तो अपना दूर बैठा रहे, माला जपता रहे, बस देखता रहे। पुराना जीवन भर का अनुभव। एक-एक को पहचाने वह। तो मुनीम को इशारा बना रखा था उसने कि जब मैं राम-राम कहूं, तब खिसका देना। और जब कहूं हरि-हरि, तब लाख भागना चाहे, भागने मत देना, हर तरह फांस लेना।

तुम अगर भक्ति भी करोगे, तो झूठी होगी, धोखे की होगी।

उधार पर विश्वास मत करो; स्वानुभव के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है।

इसलिए ओम, मैं तुमसे कहूंगाः प्रभाव से बचो। स्वभाव को तलाशो। मेरी तुम सुन रहे हो, मेरी सुन कर भी तुम दो में से कुछ भी एक कर सकते हो। या तो मेरी बातों से प्रभावित हो जाओ। तो बस तुम मेरी बातें दोहराने लगो। वह तोतापन हुआ। यहां मेरे पास भी तोते हैं! तोतों से तुम बच ही नहीं सकते। सारा देश तोतों से

भरा है। करोगे भी क्या! वे सिर्फ दोहराते हैं। वे यहां भी हैं। लोग उनसे भी पूछने लगते हैं। अगर मैं नहीं मिल पाऊं तो लोग तोतों के पास चले जाते हैं। वे कहते हैं कि चलो तोताजी महाराज से पूछेंगे! और तोते हैं, तो वे ढंग से बैठ जाएंगे बिल्कुल पद्मासन में, आंखें ऊपर की तरफ चढ़ा लेंगे। पहले कुछ अंदर-अंदर जाएंगे, तो और प्रभाव पड़ता है कि भई ठीक। फिर कुछ रहस्य भरी बातें कहेंगे। रहस्य भरी बात का क्या मतलब होता है? कुछ भी उलटी-सीधी बात कहो तो रहस्य भरी। उलटबांसी होनी चाहिए, तो रहस्य भरी। लोगों की समझ में न आए तो रहस्य भरी। समझ में न आए तो लोग समझते हैं कि बड़ी कीमत की!

तोते तो कहीं भी उपलब्ध हो सकते हैं। बस उनकी कला इतनी है कि वे स्मरण कर लेंगे, शब्द-शब्द स्मरण कर लेंगे। ठीक वैसा का वैसा दोहरा देंगे। लेकिन उनमें बुद्धिमत्ता नहीं होती। शायद तोतों में भी थोड़ी ज्यादा बुद्धिमत्ता होती है।

मैंने सुना है, एक पंडित खरीदने गया तोता। दुकान पर बहुत तोते देखे। पंडित था तिलकधारी, चुटैयाधारी, तो दुकानदार ने कहा कि आपके लिए एक विशेष तोता है, पीछे के कमरे में आएं। बड़ा पंडित है, बड़ा ज्ञानी, धार्मिक! पंडित भी गया, देख कर दंग हुआ, तोता रामनाम की चदरिया ओढ़े बैठा था! हाथ में माला थी। गायत्री मंत्र बोल रहा था। पंडित ने कहा, यह तोता है! है ज्ञानी! मगर यह गायत्री मंत्र बोले, इसके लिए क्या करना होता है?

तो उस दुकानदार ने कहा, इसकी सरल तरकीब है। इसके बाएं पैर में एक धागा बंधा है, बिल्कुल जरा सा धागा, किसी को दिखाई भी न पड़े। आप जरा सा धागा खींच देना, बस इसको इशारा मिल गया, कि यह गायत्री मंत्र बोलता है।

उसने पूछा कि और भी यह कुछ जानता है?

उसने कहा कि हां, इसके दाएं पैर में भी एक धागा बंधा हुआ है। अगर वह आप खींच दो तो यह नमोकार मंत्र बोलता है। हमने इसको ऐसा तैयार किया है कि हिंदू चाहें हिंदू खरीद लें, जैन चाहें जैन खरीद लें और कोई अल्ला-ईश्वर तेरे नाम वाले आ जाएं, सर्वधर्म समभाव वाले आ जाएं, तो उनके तो पूरा ही काम का है। गायत्री बुलवा लो, ओंकार, सतनाम बुलवा लो, नमोकार बुलवा लो, सब इंतजाम कर दिया है। ये धागों का ख्याल रखें।

और पंडित ने पूछा कि अगर इसके दोनों धागे एक साथ खींच दिए जाएं?

तो तोता बोला, उल्लू के पट्ठे! मैं नीचे न गिर पडूंगा?

तोतों में भी कुछ अकल होती है। पंडितों में इतनी भी अकल नहीं होती--कि दोनों तुम खींच दोगे तो बेचारा गिर ही पड़ेगा। वह ठीक ही बोला। उसने कहा, यह कृपा करना, दोनों मत खींच देना। नहीं तो ऐसी सुनाऊंगा कि छठी का दूध याद आ जाएगा। फिर गायत्री-वायत्री नहीं, फिर शुद्ध गालियां।

ज्ञान तोता-रटंत होगा। भक्ति थोथी होगी, ऊपरी होगी। कर्म भी अकर्म नहीं हो सकता। लेकिन स्वभाव की तलाश कैसे करें?

स्वभाव की तलाश की पहली तो शर्त यह है कि तुमने जो भी सीख लिया है, उसे विदा करो।

रमण महर्षि के पास एक जर्मन दार्शनिक आया और उसने कहा कि मैं सत्य के संबंध में कुछ सीखने आपके पास आया हूं दूर देश से।

रमण महर्षि ने कहा कि अगर सीखने आए हो तो कहीं और जाओ। अगर मेरे पास रुकना है तो पहले तो तुम जो जानते हो उसको अनसीखा करना पड़ेगा। तुम जो जानते हो सब छोड़ो, क्योंकि तुम अभी कुछ नहीं

जानते। अभी सिर्फ भ्रांति है जानने की। यह कूड़ा-करकट हटाओ, खाली करो अपने को, स्वच्छ करो, निर्मल करो। निर्दोष हो जाओ बच्चे की भांति। फिर कुछ हो सकता है।

तो ओम, पहली तो बात यह हैः अगर किसी को स्वभाव की तलाश करनी हो तो जो दूसरों ने सिखाया हो, उस सबको विदा कर दो। उसमें कई बातें बड़ी हीरे-जवाहरात जैसी लगेंगी, दिल होगा कि बचा लें। मगर जो उधार है वह हीरा भी हो तो नकली है।

मुल्ला नसरुद्दीन ने एक हीरे की अंगूठी अपनी प्रेयसी को दी। बड़ा हीरा! प्रेयसी ने देखाः ऐसी चमक, सूरज में जैसे इंद्रधनुष फूट रहा हो! लेकिन इतना बड़ा हीरा यह मुल्ला ले कहां से आया! उसने पूछा कि हीरा असली है न?

मुल्ला ने कहा कि अगर असली न हुआ तो मेरे दो रुपये बेकार गए।

दो रुपये में खरीद लाए हैं असली हीरा! और इतना बड़ा हीरा! और कहा कि अगर असली न हुआ, सिर फोड़ दूंगा उसका जिससे दो रुपये में खरीदा है। बच्चू भाग कर कहां जाएंगे! इसी गांव में रहते हैं। सब पता-ठिकाना पक्का कर लिया है, तब खरीदा है। अगर तू जानती हो कुछ हीरे के संबंध में तो बता या किसी और को पता हो तो पूछ कर बता। हीरा असली होना ही चाहिए, दो रुपये में खरीदा है!

अब दो रुपये में आजकल कंकड़ भी नहीं मिलता। असली कंकड़ तो नहीं मिल सकता। हां, नकली कोई कंकड़ मिल जाए, बात अलग। मगर ऐसा हो जाता है। तुम न हो तो सोहन से पूछना, माणिक बाबू से पूछना। वे दोनों मेरे साथ काश्मीर में थे। और काश्मीर में तो पत्थर होते हैं चमकदार। चार-छह आने की कीमत भी नहीं होती उनकी। मगर चमक खूब होती है! चमक ऐसी होती है कि लगे कि हजारों के होंगे। एक आदमी बेचने आया। उसने कहा कि किसी के पंद्रह रुपये दाम, किसी के बारह रुपये दाम।

माणिक बाबू तो बहुत प्रभावित हुए। अब माणिक बाबू को पत्थरों से लेना-देना भी क्या! उनकी पहचान तो गुड़ की है। अब गुड़ का हीरे-जवाहरात से क्या लेना-देना? उन्होंने कहा, पंद्रह रुपये में असली हीरे मिल रहे हैं, जवाहरात मिल रहे हैं! माणिक-मोती! नाम ही है उनका माणिक बाबू, हालांकि माणिक वगैरह से उनका लेना-देना क्या? मगर जब यह पंद्रह कह रहा है तो कहीं लूट न ले, तो सोच कर कहा कि भई कुछ कम करो। उसने कहा, अच्छा बारह। जब वह कम करने लगा तो उन्हें कुछ समझ में आई कि और भी कम कर सकता है। भई कुछ कम करो, यह तो ज्यादा है दाम मालूम होता है। मगर दिल में वे बहुत प्रसन्न हुए कि हद्द हो गई! वह दस में देने को राजी हो गया, तो उनका भी मोह बढ़ा। मैं भी वहीं बैठा हुआ था। तो उस पत्थर वाले ने कहा कि बाबा जो कह दें!

अब दस रुपये में कोई असली हीरे-जवाहरात तो मिलते नहीं। तो मैंने भी सोचा--और मुझे भी कुछ असली-नकली हीरे-जवाहरात का पता नहीं--तो मैंने भी सोचा कि मध्य मार्ग ठीक रहेगा। मैंने कहा कि भई न दस ठीक है, यह थोड़ा ज्यादा मालूम पड़ता है, तू आधा कर ले, पांच। पांच रुपये के हिसाब से।

उसने कहा, जब आपने आज्ञा दे दी तो बिल्कुल ठीक।

माणिक बाबू तो बहुत खुश हुए। उन्होंने खरीद लिए, कोई चालीस-पचास पत्थर खरीद लिए, कि पूना में सब मित्रों को बांट देंगे, परिवार के प्रियजनों को बांट देंगे, लायंस और रोटेरियंस सबको बांट देंगे। खुश हो जाएंगे लोग, कि क्या गजब की चीज ले आए! और वह तो बड़ा ही प्रसन्न हुआ, पांच-पांच रुपये में बेच कर वह तो नदारद हो गया।

और दूसरे दिन वही आदमी आठ-आठ आने में बेच रहा था। आखिरी दिन तक तो चार-चार आने में बिक्री होने लगी। तब बेचारे माणिक बाबू पर जो गुजरी सो गुजरी। कहने लगे, इसने तो बड़ा लूटा!

मैंने कहा, तुम्हें किसी को कहने की जरूरत ही क्या है? पूना में किसको पता है? तुम तो पूना में यूं ही बांटना कि हजारों के हैं। अरे जब तुम नहीं पहचान सके तो और भी बाकी क्या पहचानेंगे!

नकली चीजें सस्ती पड़ जाती हैं। मगर नकली चीजें असली होने का धोखा दे सकती हैं। प्रभाव से जो भी मिलता है, सब नकली है। स्वभाव से जो मिलता है वही असली है। तुम्हारे भीतर खदान है असली हीरे-जवाहरातों की और तुम कंकड़-पत्थरों में उलझे रहोगे! चमकदार पत्थर! मगर पत्थर पत्थर है।

नहीं ओम, भक्ति, ज्ञान और कर्म तुम्हारे भीतर से आविर्भूत होने चाहिए। और उनके आविर्भूत होने का एक ही उपाय हैः शांत बनो, मौन बनो, शून्य बनो। ये शून्य के फूल हैं। ये तीनों फूल एक साथ खिलते हैं।

यह बात भी समझ लेने जैसी है। क्योंकि आमतौर से तुम्हें समझाया गया है कि ये तीनों अलग-अलग चीजें हैं। कोई भक्तिमार्गी होता है। कोई ज्ञानमार्गी होता है। कोई कर्ममार्गी होता है।

यह बात झूठ है। हां, अगर प्रभाव से तुमने सीखा, तो ये तीनों अलग-अलग होते हैं। लेकिन अगर स्वभाव से इनका अनुभव हो, तो ये तीनों एक साथ आविर्भूत होते हैं। ये एक ही फूल की तीन पंखुड़ियां हैं। ऐसा हो ही नहीं सकता कि जिसके जीवन में भक्ति हो उसके जीवन में ज्ञान न हो। नहीं तो भक्ति का मूल्य ही क्या है? और ऐसा कैसे हो सकता है कि जिसके जीवन में ज्ञान हो उसके जीवन में प्रार्थना न हो? असंभव! और ऐसा कैसे हो सकता है कि जिसके जीवन में ज्ञान हो, प्रेम हो, भाव हो और उसके जीवन में करुणा न हो? उसके जीवन में कर्म न हो? यह असंभव है!

गीता की तीन तरह की टीकाएं लिखी हैं लोगों ने। कुछ ने टीकाएं लिखी हैं, वे हैं ज्ञानमार्गी; जैसे शंकराचार्य। वे गीता में बस ज्ञान को ही घुसेड़ते जाते हैं। हो या न हो, उसकी उन्हें फिक्र नहीं है। हर हालत में वे सिद्ध कर देते हैं कि ज्ञान ही है गीता में, बस ज्ञान ही सर्वश्रेष्ठ है। संसार माया है और ब्रह्म सत्य है--वह गीता में भी सिद्ध कर देते हैं। और कुशलता से सिद्ध कर देते हैं। और भक्तिमार्गी हैं--रामानुज--वे उसी में भक्ति सिद्ध कर देते हैं। वही सूत्र, वही गीता। ज्ञान तिरोहित हो जाता है, भक्ति आ जाती है। और लोकमान्य तिलक वहीं कर्म सिद्ध कर देते हैं--न भक्ति, न ज्ञान, दोनों को अलग कर देते हैं। सबके ऊपर कर्म।

यह संभव हो पाता है इसीलिए, क्योंकि कृष्ण के वचन स्वानुभूत हैं। उनमें तीनों की गंध है। तुम जिस गंध को चाहो उसको पकड़ लो। और तुम जिस गंध को पकड़ लोगे वही गंध तुम्हें सब तरफ दिखाई पड़ने लगेगी, अनुभव में आने लगेगी। तुम उसी से आपूरित हो जाओगे।

लेकिन जो व्यक्ति स्वानुभव से जानेगा वह कहेगा कि ये तीनों बातें एक साथ घटती हैं; यह असली संगम है। प्रयाग नहीं है असली तीर्थराज। असली तीर्थराज तुम्हारे भीतर है, जहां भक्ति, ज्ञान और कर्म मिलते हैं और जहां तीनों एक-दूसरे में लीन होते हैं। यह असली त्रिमूर्ति है--ब्रह्मा, विष्णु, महेश नहीं--जहां भक्ति, ज्ञान और कर्म तीनों एक साथ एक स्वर में नाचते हैं, एक स्वर में लयबद्ध होते हैं। लेकिन यह प्रभाव से नहीं होगा, यह स्वभाव से ही हो सकता है।

औरों से बचो, क्योंकि यहां हर व्यक्ति उत्सुक है कि तुम उससे प्रभावित हो जाओ। क्योंकि प्रभाव दूसरों का शोषण करने का एक ढंग है, दूसरों को गुलाम बनाने का एक ढंग है। प्रभाव दूसरों के मालिक होने की एक प्रक्रिया है। और यहां हर आदमी दूसरों का मालिक होना चाहता है। तुम्हें अपनी स्वतंत्रता की रक्षा करनी होगी। तुम्हें होशपूर्वक सजगता से अपनी रक्षा करनी होगी। यहां सब तरफ धोखाधड़ी चल रही है। और बड़ी से बड़ी

धोखाधड़ी तो यह है कि तुम्हारे हित में ही लोग तुम्हारी छाती पर चढ़ जाते हैं। वे कहते हैंः तुम्हारे हित में ही तुम्हारी छाती पर चढ़े हुए हैं। तुम्हारे हित में ही तुम्हारी गर्दन काट रहे हैं। तो तुम ना-नुच भी नहीं कर सकते, तुम इनकार भी नहीं कर सकते। अच्छे-अच्छे संस्कार लोग डाल रहे हैं तुम पर।

कोई संस्कार अच्छा नहीं होता, क्योंकि संस्कार मात्र गुलामी लाता है। संस्कार मात्र जंजीरें हैं। फिर जंजीरें सोने की भी हों तो क्या फर्क पड़ता है? लोहे की हों तो क्या फर्क पड़ता है? जंजीरें जंजीरें हैं। और जंजीरों से मुक्त होना है।

एक नया-नया आदमी पुलिस की नौकरी में भर्ती हुआ। इंस्पेक्टर ने उससे कहा कि जरा सम्हल कर, होशियारी रखना। यह गांव चालबाजों का है, बदमाशों का है। यहां हर आदमी धोखाधड़ी करता है। उसने कहा, आप बेफिक्र रहें। जब आपने सूचना दे दी तो मैं बिल्कुल सजग रहूंगा।

पहले ही दिन अपनी ड्यूटी पर तैनात था तो वह सजग रहा। मगर सजगता उधार ही थी, बासी ही थी। कहा था उसको उसके अधिकारी ने कि जरा होश रखना, कोई धोखाधड़ी न कर जाए। वह तलाश में ही था कि कोई शिकार मिले। स्वभावतः नई-नई ड्यूटी लगी थी, ऐसे ही खाली हाथ लौट जाए थाने तो लोग क्या कहेंगे कि दे गए लोग धोखा! तभी उसने देखा कि एक आदमी बिना बत्ती जलाए साइकिल पर सवार चला आ रहा है। दिल उसका खुश हो गया। बड़ी उत्सुकता से पुलिसवाले ने नोट-बुक निकाली, कार्बन पेंसिल को मुंह में गीला करके लिखते हुए पूछा, तुम्हारा नाम क्या है?

उस आदमी ने कहा, रमेशचंद्र।

बेवकूफ बनाने की कोशिश मत करो, पुलिसवाला बोला। मैं बहुत टेढ़ा आदमी हूं, समझे! जल्दी से अपना सही नाम बोलो।

तो उस आदमी ने कहा, इदी अमीन।

पुलिसवाले ने कहा, यह ठीक मालूम होता है। तुम समझते थे मैं रमेश-वमेश के चक्कर में आने वाला हूं!

उधार बात कितनी दूर तक साथ जाए। अब यहां कहां इदी अमीन! मगर रमेश-वमेश के चक्कर में वह आने वाला नहीं है। वह तो तय ही बैठा हुआ है कि मुझे कोई धोखा न दे जाए। जरूरत से ज्यादा होशियारी दिखाने की कोशिश में है। उसी में बुद्धू बन गया।

स्वभाव से जो भी जागरूक होता है उसमें एक सम्यकत्व होता है, एक समता होती है, अतिशयता नहीं होती। न वह अतिशय इस तरफ झुका होता है, न उस तरफ झुका होता है। उसके जीवन में एक संगीत होता है। और संगीत में सौंदर्य है।

मैं तो जीवन को संगीतपूर्ण बनाने को ही संन्यास कहता हूं। जीवन संगीत बने, उत्सव बने, वसंत बने--तो ही जानना कि तुमने धर्म को पहचाना, तुम्हें कुछ स्वाद लगा।

लेकिन धार्मिक आदमी बड़े उदास दिखाई पड़ते हैं, बड़े हताश दिखाई पड़ते हैं, बड़े रूखे-सूखे, मुर्दा मालूम होते हैं। पतझड़ दिखाई पड़ती है उनके जीवन में, वसंत तो नहीं। और यह सबूत है कि कहीं कुछ भूल हो गई है, कहीं कुछ बुनियादी भूल हो गई है।

ओम, प्रभाव में जी रहे हैं ये लोग। और प्रभाव में जी रहे हैं तो पतझड़ ही हाथ लगेगा, वसंत हाथ नहीं लग सकता। हां, प्लास्टिक के फूल चाहो तो तुम लटका ले सकते हो। मगर प्लास्टिक के फूल फूल नहीं होते; न जीवन है उनमें, न प्राण हैं, न गंध है, न सौरभ है। न मधुमक्खियां आएंगी उन पर, न भौंरे गीत गुनगुनाएंगे, न तितलियां उड़ेंगी। तुम किसी को भी धोखा न दे पाओगे।

मस्ती से भर कर जब कि हवा
सौरभ से बरबस उलझ पड़ी
तब उलझ पड़ा मेरा सपना
कुछ नये-नये अरमानों में,
गेंदा फूला जब बागों में
सरसों फूली जब खेतों में
तब फूल उठी सहसा उमंग
मेरे मुरझाए प्राणों में,
कलिका के चुंबन की पुलक
नमुखरित जब अलि के गुंजन में
तब उमड़ पड़ा उन्माद प्रबल
मेरे इन बेसुध गानों में,
ले नई साध, ले नया रंग
मेरे आंगन आया वसंत
मैं अनजाने ही आज बनाहूं
अपने ही अनजानों में,
जो बीत गया वह विभ्रम था
वह था कुरूप, वह था कठोर
मत याद दिलाओ उस कल की
कल में असफलता रोती है।
जब एक कुहासे सी मेरी
सांसें कुछ भारी-भारी थीं
दुख की वह धुंधली परछाईं
अब तक आंखों में सोती है।
है आज धूप में नई चमक
मन में है नई उठान आज,
जिससे मालूम यही दुनिया
कुछ नई-नई सी होती है।
है आस नई, अभिलास नई
है नव विकास की प्यास नई
नव जीवन की रसधार नई
अंतर को आज भिगोती है।
तुम नई स्फूर्ति इस तन को दो
तुम नई चेतना मन को दो
तुम नया ज्ञान जीवन को दो

ऋतुराज तुम्हारा अभिनंदन।
सुख के प्रति कठिन विराग बनूं
अपने प्रति अविकल त्याग बनूं
मैं आग बनूं ऐसी कि जला दूं
अग-जग का करुना क्रंदन।
संसृति के प्रति अनुरक्ति बनूं,
जन के प्रति श्रद्धा भक्ति बनूं
मैं शक्ति बनूं ऐसी कि रच सकूं
पृथ्वी पर नंदन कानन।
यह नव वसंत का नव उत्सव
मन मंदिर में मंगलमय हो
मानव बन मैं मानवता का
क्या आज कर सकूंगा वंदन?
मस्ती से भर के जब कि हवा
सौरभ से बरबस उलझ पड़ी
तब उलझ पड़ा मेरा सपना
कुछ नये-नये अरमानों में,
गेंदा फूला जब बागों में
सरसों फूली जब खेतों में
तब फूल उठी सहसा उमंग
मेरे मुरझाए प्राणों में,
कलिका के चुंबन की पुलकन
मुखरित जब अलि के गुंजन में
तब उमड़ पड़ा उन्माद प्रबल
मेरे इन बेसुध गानों में
ले नई साध, ले नया रंग
मेरे आंगन आया वसंत
मैं अनजाने ही आज बनाहूं
अपने ही अनजानों में।

एक वसंत की तलाश है। एक वसंत, जो तुम्हारे प्राणों को फूलों से भर जाए! और आता है यह वसंत। लेकिन कोई तुम्हें दे न सकेगा। ये बीज तुम्हें खुद ही अपने भीतर बोने होंगे। यह खेती तुम्हें स्वयं ही अपने भीतर करनी होगी। यह बगिया तुम्हें स्वयं ही अपने भीतर बनानी होगी। इसलिए बुद्ध ठीक कहते हैंः अप्प दीपो भव!

ओम, अपने दीपक स्वयं बनो!

सच्चे गुरु के पास प्रभाव नहीं दिए जाते, संस्कार नहीं दिए जाते, केवल संकेत दिए जाते हैं--अंतर्यात्रा के। सच्चा गुरु, सदगुरु तुम्हें अपने रंग-रूप में नहीं ढालता, बल्कि तुम्हें तुम्हारी ही खोज में अनुप्राणित करता है, सहयोग देता है कि तुम तुम हो सको। तुम्हें कुछ और बनाने की कोशिश नहीं करता।

यहां पुराने ढब के संन्यासी आ जाते हैं। वे मुझसे कहते हैं कि आप अपने संन्यासियों को आचरण सिखाएं--कब उठना--ब्रह्ममुहूर्त में; क्या खाना, क्या पीना, कब सो जाना; कब प्रार्थना करनी, कब पूजा करनी। आप अपने संन्यासियों को आचरण दें।

मैं उनसे कहता हूं कि मेरा संन्यास आचरण देने का नहीं है। मेरे संन्यासियों को मैं स्मरण दिला रहा हूं उनके स्वभाव का। फिर सब उन पर छोड़ देता हूं--उनकी स्वतंत्रता पर।

अब मैं उनको कहूं कि तुम ठीक पांच बजे उठ आओ। और पांच बजे किसी को न रुचता हो, क्योंकि सभी के स्वभाव में जरूरी नहीं कि पांच बजे उठना रुचे।

मनोवैज्ञानिकों ने बहुत खोज की है निद्रा के ऊपर और उनके नतीजे हैं ये कि सभी लोगों को एक समय पर न तो सोना जमता है और न उठना जमता है। कुछ लोग हैं जो सुबह पांच बजे उठेंगे तो दिन भर ताजा रहेंगे। और कुछ लोग हैं जो सुबह पांच बजे उठ आएंगे तो दिन भर बासे और उदास और थके-हारे और टूटे-टूटे रहेंगे, उखड़े-उखड़े रहेंगे। तो नियम कोई नहीं हो सकता।

मनोवैज्ञानिक खोजों से एक सत्य पता चला है कि दो बजे रात और सात बजे सुबह के बीच दो घंटे के लिए प्रत्येक व्यक्ति गहन निद्रा में प्रवेश करता है, जब सब स्वप्न खो जाते हैं। वही दो घंटे असली नींद के घंटे हैं। उन्हीं दो घंटों में पुनरुज्जीवन मिलता है। शरीर तरोताजा होता है। अंग-प्रत्यंग अपनी थकान मिटाते हैं। रोआं-रोआं फिर से नई जीवन-धार से प्रवाहित होता है। एक-एक कण फिर से नया होता है। लेकिन वे दो घंटे सबके अलग-अलग हैं। किसी को दो बजे से लेकर चार बजे के बीच यह घटना घटती है। और इसकी वैज्ञानिक जांच हो सकती है, क्योंकि उन दो घंटों में तुम्हारा तापमान गिर जाता है, दो डिग्री नीचे गिर जाता है। तुम ठंडे हो जाते हो। तुम्हारे भीतर स्वप्न भी नहीं रह जाते। इसलिए सब उत्ताप खो जाता है। तुम्हारे भीतर विचार बिल्कुल शून्य हो जाते हैं। उस शून्यता में तुम्हारा तापमान गिर जाता है।

तुमने देखा होगा, क्रोध में तुम्हारा तापमान बढ़ जाता है, रक्तचाप भी बढ़ जाता है। उत्तेजना में तुम्हारी गर्मी बढ़ जाती है। उन दो घंटों में सारी उत्तेजना खो जाती है, तो तुम्हारा रक्तचाप भी कम हो जाता है, तुम्हारा तापमान भी कम हो जाता है।

इसलिए जांच की जा सकती है। चौबीस घंटे में से बाईस घंटे तुम्हारा एक तापमान होता है और दो घंटे दो डिग्री कम हो जाता है। वही दो डिग्री कम तापमान का जो समय है, तुम्हारी नींद का असली समय है। और यह सबका अलग-अलग है।

जो व्यक्ति दो से चार के बीच इस गहरी निद्रा में जाता है, वह चार बजे उठ आएगा तो तरोताजा होगा। अगर वह चार बजे नहीं उठेगा तो बासा हो जाएगा। उसके लिए चार बजे उठना एकदम उचित है। वही उसके लिए सम्यक क्षण है। उसे उठ ही आना चाहिए। अगर वह पड़ा रहा, तो नींद का असली वक्त तो गया, अब तो आलस्य है। और आलस्य में आदमी उदास हो जाता है, सुस्त हो जाता है। वह करवट बदलेगा, फिजूल के सपनों में खो जाएगा, ऊलजलूल बातें सोचेगा। सुबह तक उठते-उठते इतने उपद्रव कर लेगा अपने दिमाग के भीतर खड़े, कि वह जो ताजगी आई थी वह गई। उसे तो उठ आना चाहिए चार बजे।

मगर यह सभी के लिए ठीक नहीं है। कोई चार से और छह के बीच उस गहरी नींद में जाता है। और कोई पांच से और सात के बीच उस गहरी नींद में जाता है।

फिर उम्र के साथ भी यह बात बदलती जाती है। एक व्यक्ति जीवन भर भी एक ही समय में थिर नहीं रहता। मां के पेट में बच्चा चौबीस घंटे सोता है, पैदा होने के बाद तेईस घंटे सोता है, बाईस घंटे सोता है, बीस घंटे सोता है। धीरे-धीरे-धीरे-धीरे जवान आदमी आठ घंटे सोता है। बूढ़ा आदमी फिर पांच घंटे सोता है, चार घंटे सोता है। और अगर कोई आदमी काफी लंबी उम्र तक जीए, नब्बे के पार तक जीए, तो बस नींद दो ही घंटे पर ठहर जाती है। वे असली दो घंटे रह जाते हैं हाथ में फिर, बाकी सब नींद की जरूरत नहीं रह जाती।

इसका अर्थ यह हुआ कि कोई बंधी हुई धारणा काम नहीं करेगी। प्रत्येक को अपनी तलाश करनी होगी। प्रत्येक को अपनी खोजबीन करनी होगी। तुम्हीं को देखना होगा--कई तरह से उठ कर, महीने दो महीने प्रयोग करके, कि कौन सा क्षण तुम्हारे लिए ठीक पड़ता है।

अगर मैं तय कर दूं तो वह क्या काम पड़ेगा? किसी के पड़ जाए संयोगवशात। जैसे विनोबा के आश्रम में विनोबा तीन बजे उठते हैं, तो पूरा आश्रम तीन बजे उठना चाहिए। यह बात हिंसात्मक है। यह दूसरों के साथ अनाचार है, बलात्कार है। विनोबा को ठीक होगा, क्योंकि विनोबा को नौ बजे नींद आ जाती है, वे नौ बजे सो जाते हैं। नौ बजे जो आदमी सो जाएगा वह तीन बजे उठ आएगा। विनोबा की उम्र में छह घंटे पर्याप्त हैं, पर्याप्त से ज्यादा हैं।

लेकिन जवान बच्चे भी हैं, कई उम्र के लोग हैं--उन सबको तीन बजे उठा देना! और फिर इनको दिन भर नींद आएगी। और नींद आए तो इनको तुम कहना कि तुम तामसी हो। और इनको भी जंचेगी बात कि हम तामसी होने ही चाहिए, न मालूम किन जन्मों के पापों का फल भोग रहे हैं कि ब्रह्ममुहूर्त में उठते हैं और दिन भर नींद आती है। तामसी वृत्ति है। तामसी वृत्ति को कम कैसे करें? तो इनको बताना कि भोजन बदलो, तुम तामसी भोजन कर रहे होओगे। दुग्धाहार करो। दूध ही दूध पीओ। क्योंकि दूध जो है वह सबसे सात्विक आहार है।

अब यह भी बड़े सोचने की बात है कि किसने तुम्हें कहा कि दूध सात्विक आहार है? कैसे तुमने जान लिया कि दूध सात्विक आहार है? दूध तो मांसाहार और शाकाहार के बीच में पड़ता है। यह आधा मांसाहार है, क्योंकि दूध आता है रक्त और मांस से। यह शाकाहार तो निश्चित ही नहीं है। यह कोई झाड़ों में नहीं लगता दूध। यह हड्डी-मांस-मज्जा की देह से निकलता है। जैसे अंडा निकलता है वैसे ही दूध निकलता है। अंडे और दूध में कुछ फर्क नहीं है। और अब तो अंडे ऐसे भी निकलते हैं जो शाकाहारी अंडे हैं, मगर अभी तक कोई शाकाहारी दूध नहीं निकला है। शाकाहारी अंडे खा लेना भी उतना बड़ा पाप नहीं है जितना दूध पीना, क्योंकि दूध तो एनीमल-फूड है, वह तो पशु से आ रहा है। और तुम्हारे लिए बना भी नहीं था।

अब जैसे गाय का दूध तुम पी रहे हो, वह बना था सांड के लिए। सांड के लिए जो चीज बनी थी, उसको पीकर तुम सात्विक हो जाओगे? सांड हो जाओगे! सात्विक कैसे हो जाओगे?

लेकिन बंधी लकीरें लोग पीटे चले जाते हैं कि दूध सात्विक आहार है। तो जो आदमी दूध ही दूध पीता है, उसको बड़ा सम्मान मिलता है। और जितना ज्यादा तुम दूध पीओगे उतनी कामवासना होगी तुम्हारे भीतर। क्योंकि दूध कामवासना को जगाता है। दूध बहुत कामुक भोजन है। और गाय का दूध पी रहे हो, तो जितनी कामवासना सांड में होती है... । तो तुम्हारे संन्यासी पुराने ढब के, अगर सांडों जैसे हो जाते हैं तो कुछ हैरानी की बात नहीं।

मैं काशी में ठहरा हुआ था। तो मैंने, जिनके घर रुका था, उनसे पूछा कि काशी की प्रसिद्धि क्या है? उन्होंने कहा कि तीन चीजों के लिए प्रसिद्ध हैः सांड, रांड और भांड। मैंने कहा, इसमें संन्यासी तो आए नहीं। उन्होंने कहा, उनको सांडों में गिन लो। बात तो ठीक है। सात्विक आहार हो रहा है, तो उसके दुष्परिणाम होंगे।

और तुम जानते हो, सिवाय आदमी के और कोई पशु एक उम्र के बाद दूध नहीं पीता। सभी पशु एक उम्र के बाद दूध पीना बंद कर देते हैं। क्योंकि दूध जरूरत है बचपन की; जब तक कि बच्चा पका नहीं है तब तक दूध की जरूरत है। जब बच्चा पक गया, अब उसको दूध की कोई जरूरत नहीं। दूध जो जिंदगी भर पीता रहे, उसका मतलब यह हुआ कि तुम कुछ अप्राकृतिक कृत्य कर रहे हो। और हिंसा तो है ही उसमें, फिर चाहे तुम बकरी का पीओ और चाहे तुम गाय का पीओ, चाहे भैंस का पीओ, इससे क्या फर्क पड़ता है? हिंसा उसमें है, क्योंकि बकरी के बच्चे का छीन कर पी रहे हो।

जरा किसी स्त्री का छीन कर पी लो उसके बच्चे का दूध, वह फौरन पुलिस में रिपोर्ट कर देगी कि इस आदमी ने हमारा दूध पी लिया, अब बच्चा क्या करे? वह तो गाय-भैंसें बेचारी चुपचाप... और तुम भी खूब होशियार हो--गऊ माता! अरे वह माता जिनकी है, उनको दूध पीने नहीं दे रहे--और तुम्हारी माता! और कोई गऊ ने कभी तुमको बेटे की तरह स्वीकार किया नहीं, एक गऊ ने गवाही दी नहीं कि ये हमारे बेटे हैं। तुम्हें देख कर गौएं एकदम लातें फटकारती हैं।

और तुम देखते हो कि संन्यासी को देख कर सांड एकदम गुस्से में आ जाता है! लाल झंडी! लाल झंडी से क्यों सांड इतना नाराज होता है? लाल झंडी उसे संन्यासियों की याद दिलाती है कि ये चले आ रहे हैं दुग्धाहारी! नहीं तो लाल झंडी में क्या हर्जा था? मैं बहुत सोचता था कि आखिर सांड लाल झंडी से क्यों एकदम बिचकता है! फिर मुझे ख्याल आया कि हो न हो, लाल झंडी इसको संन्यासी की याद दिला देती है। इसको एकदम क्रोध चढ़ आता है कि इन्हीं दुष्टों ने... हमारा दूध छीन-छीन कर पी गए। और गऊ-माता! माता तुमने ही बना लिया, माता से पूछा ही नहीं, कि कुछ माता की भी गवाही होनी चाहिए।

तो दिन भर नींद आए तो तामसिक आहार कर रहे हो। तो दुग्धाहार करो। दुग्धाहार करोगे तो कामवासना बढ़ेगी। कामवासना बढ़ेगी तो और मुसीबत। अब दमन करो। अब शीर्षासन करो, उलटे खड़े हो जाओ--जिसमें कि वीर्य जो है वह सिर की तरफ बहे। इस तरह की बेवकूफियां पैदा होती हैं, इस तरह की मूढ़ताएं पैदा होती हैं। और ये सब छोटी-छोटी चीजों से शुरू हो जाती हैं।

प्रत्येक व्यक्ति के लिए अलग भोजन की आवश्यकता है। हरेक को अपनी खोजनी पड़ेगी तलाश, अपनी जरूरत। हरेक व्यक्ति को अलग दवा की जरूरत होती है। केमिस्ट की दुकान पर बहुत दवाएं रखी होती हैं। हर कोई दवा तुम्हारे काम की नहीं है। हर कोई दवा पी लोगे तो जहर हो जाएगी। तुम्हारे लिए दवा, पहले तुम्हारा विश्लेषण होगा तब तय की जा सकती है।

शास्त्रों में सब दवाएं लिखी हैं, मगर तुम्हारी जरूरत क्या है, कौन तय करे? हां, सदगुरु के पास तुम निवेदन कर सकते हो अपनी परिस्थिति का। और सदगुरु तुम्हें संकेत दे सकता है, आदेश नहीं; उपदेश दे सकता है, आदेश नहीं। वह यह नहीं कह सकता कि ऐसा करो, क्योंकि यही उचित है। उचित और अनुचित तो तुम्हें परीक्षण से तय करने होंगे। तुम्हें स्वयं पर प्रयोग करने होंगे।

धर्म प्रत्येक व्यक्ति को एक प्रयोगशाला में बदल देता है, उसे अपने ही अंतस-आलोक में, अंतर-जगत में प्रयोग करने होते हैं। और प्रयोग से ही धीरे-धीरे निर्णीत होता है कि क्या सम्यक है, क्या मेरे लिए उचित है। और जो तुम्हारे लिए उचित है, वह हो सकता है किसी और के लिए उचित न हो। इसलिए दूसरे पर उसे थोपना

मत। प्रभाव से यही खतरा पैदा होता है, हम उसे दूसरे पर थोपना शुरू करते हैं। दूसरे हम पर थोप जाते हैं, बदले में हम दूसरों पर थोपना शुरू कर देते हैं।

धर्म थोपा नहीं जा सकता। धर्म आरोपण नहीं है। फिर सदगुरु का कृत्य क्या है?

सदगुरु का कृत्य स्पष्ट करना है। सदगुरु का कृत्य सुलझाव देना है, सुझाव देना है, इंगित करना है, अंगुलियों से चांद बता देना है। लेकिन अंगुलियां चांद नहीं हैं। तुम अंगुलियों की पूजा मत करने लगना। चांद की तरफ देखो। और चांद तुम्हारे भीतर है। प्रत्येक सदगुरु हमेशा तुम्हें तुम्हारे भीतर देखने के लिए सब तरह की चेष्टाएं करता है, सब तरह की विधियां जुटाता है।

सारे योग, सारे ध्यान बस एक ही दिशा में इशारा करते हैंः अंतर्यात्रा पर जाओ। वहां से स्वभाव का फूल खिलेगा। वहां से कमल खिलेगा, सुगंध उठेगी। और उसी सुगंध को हम केवल परमात्मा के चरणों में चढ़ा सकते हैं।

दूसरा और आखिरी प्रश्नः ओशो, परमात्मा को पाकर इस अनुभव को प्रकट क्यों नहीं किया जा सकता है?

कृष्णानंद, पा लो, फिर पूछना। पा लोगे तो जान लोगे कि प्रकट नहीं किया जा सकता। क्योंकि बात इतनी बड़ी है, शब्द बहुत छोटे हैं। बात इतनी रहस्यपूर्ण है और शब्द बड़े ओछे हैं। बात अनंत है और शब्द कामचलाऊ हैं। शब्दों का उपयोग व्यावहारिक है। लेकिन शब्द पारमार्थिक नहीं हैं; वह जो परम अर्थ है, उसे प्रकट करने में असमर्थ हैं।

संगिनी, जी भर गा न सका मैं।

गायन एक व्याज इस मन का,
मूल ध्येय दर्शन जीवन का।
रंगता रहा गुलाब, पटी पर अपना चित्र उठा न सका मैं।
इन गीतों में रश्मि अरुण है,
बाल उर्मि, दिनमान तरुण है।
बंधे अमित अपरूप रूप, गीतों में स्वयं समा न सका मैं।
बंधे सिमट कुछ भाव प्रणय के, कुछ भय,
कुछ विश्वास हृदय के,
पर इनसे जो परे तत्व, वर्णों में उसे बिठा न सका मैं।
घूम चुकी कल्पना गगन में,
विजय विपिन, नंदन-कानन में
अग-जग घूम थका, लेकिन, अपने घर अब तक आ न सका मैं।
गाता गीत विजय-मद-माता,
मैं अपने तक पहुंच न पाता।
स्मृति-पूजन में कभी देवता को दो फूल चढ़ा न सका मैं।

परिधि-परिधि में घूम रहा हूं,
गंध-मात्र से झूम रहा हूं।
जो अपीत रस-पात्र अचुंबित, उस पर अधर लगा न सका मैं।
सम्मुख एक ज्योति झिलमिल है,
हंसता एक कुसुम खिलखिल है।
देख-देख मैं चित्र बनाता, फिर भी चित्र बना न सका मैं।
पट पर पट मैं खींच हटाता,
फिर भी कुछ अदृश्य रह जाता।
यह मायामय भेद कौन? मन को अब तक समझा न सका मैं।
पल-पल दूर देश है कोई,
अंतिम गान शेष है कोई,
छाया देख रहा जिसकी, काया का परिचय पा न सका मैं।
उड़े जा रहे पंख पसारे,
गीत व्योम के कूल-किनारे,
उस अगीत की ओर जिसे प्राणों से कभी लगा न सका मैं।
जिस दिन वह स्वर में आएगा,
शेष न फिर कुछ रह जाएगा,
कह कर उसे कहूंगा वह, जो अब तक कभी सुना न सका मैं।

कुछ तो है जो गीतों में नहीं आता। कुछ तो है जो संगीत में भी नहीं आता। कुछ तो है जिसे बांधने का कोई उपाय ही नहीं है--किसी सीमा में। उस असीम का नाम ही परमात्मा है। और तुम उसे पाओगे तो तभी पाओगे जब तुम भी बिल्कुल शून्य हो जाओगे; बचोगे ही नहीं; मैं-भाव शेष न रहेगा। न होंगे कोई शब्द, न होगा कोई मन, न होगा कोई चिंतन-मनन--तब तुम उसे पाओगे। निःशब्द में उसे पाओगे, तो शब्द में प्रकट कैसे करोगे?

और कौन करेगा प्रकट उसे? तुम तो उसे पाने में ही खो जाओगे; प्रकट करने वाला अलग बचता ही नहीं। इसलिए परमात्मा को जाना तो है, लेकिन जना कोई भी नहीं सका। और ऐसा भी नहीं है कि लोगों ने कोशिश नहीं की। प्रत्येक प्रबुद्ध पुरुष ने कोशिश की है, अथक कोशिश की है, कि कह सके। कुछ तो कह सके, न सही पूरा; अंश तो कह सके, न सही अंशी। मगर बात कुछ ऐसी है कि कहते-कहते ही उड़ जाती है हवा में, तुम तक पहुंच नहीं पाती।

इसलिए सदगुरुओं के शब्दों में जो उलझ जाए, वह चूक जाता है। सदगुरुओं की सन्निधि में डूबो। उनके शब्द तभी तुम समझ पाओगे जब उनका मौन समझने लगोगे। सदगुरुओं के साथ एक प्रीति में बंधो, एक संगीत में बंधो। तुम्हारे और तुम्हारे गुरु के हृदय की धड़कन एक हो उठे, लयबद्ध हो जाए, तो शायद जो नहीं कहा जा सकता उसकी थोड़ी सी झलक, थोड़ी सी पुलक तुम तक पहुंच जाए। थोड़ी सी लहर, सागर तो नहीं, मगर थोड़ी सी लहर, हवा का एक झोंका आए--गंध ले आए थोड़ी तुम तक--तुम्हारे नासापुटों तक।

मगर कृष्णानंद, अभी क्यों चिंता करते हो? अभी पाने की चिंता करो। हम बड़े अजीब लोग हैं! हम अजीब-अजीब प्रश्न उठा लेते हैं। अभी पाया नहीं है और तुम फिक्र में पड़ गए कि परमात्मा को पाकर उस

अनुभव को प्रकट क्यों नहीं किया जा सकता? अब यह परिकाल्पनिक प्रश्न होगा। इसका कोई मूल्य नहीं है। पहले पा लो, फिर तुम जान लोगे कि क्यों नहीं जनाया जा सकता! मुस्कुराओगे तुम खुद ही, हंसोगे तुम खुद ही। यह प्रश्न फिर बनेगा ही नहीं। यह प्रश्न बनता ही इसलिए है कि अभी तुम्हारी अपने से विराट की कोई अनुभूति नहीं है। लेकिन अगर तुम जीवन में भी थोड़ी खोजबीन करो तो तुम्हें ऐसे अनुभव मिल जाएंगे जो नहीं कहे जा सकते।

तुमने सुबह-सुबह उठ कर सूरज को उगते देखा, उसके सौंदर्य को देखा। उसको कह सकोगे किसी से? हां, चाहो तो तस्वीर उतार सकते हो। चाहो तो एक चित्र बना सकते हो सूर्योदय का। लेकिन क्या सूर्योदय का चित्र सूर्योदय है? उसे अंधेरे में रखोगे, रोशनी होगी?

नहीं होगी। सूर्योदय का फोटोग्राफ भी ले लिया तो भी मुर्दा है। सूर्य तो भागा जा रहा है, उड़ा जा रहा है--आकाश में उठा जा रहा है। तुम्हारे चित्र का सूर्योदय तो ठहरा का ठहरा रह गया। हिलेगा नहीं, डुलेगा नहीं।

एक छोटा सा बच्चा अपनी मां के पास बैठा हुआ घर का पुराना अलबम देख रहा था। उसमें एक तस्वीर आती है एक जवान आदमी की--सुंदर घुंघराले बाल, बलिष्ठ शरीर। उसने पूछा, मम्मी-मम्मी, यह कौन है?

तो उसकी मां ने कहा, अरे बेटा तू पहचाना नहीं! ये तेरे पापा!

उसने कहा, मेरे पापा! तो वह घर में अपने जो खूसट बुड्ढा रहता है, वह कौन है? मैं तो अभी तक उसी को पापा समझ रहा था।

अब तस्वीर तो तस्वीर है, वह जब बाप जवान रहा होगा तब की है। तस्वीर तो वहीं की वहीं रह गई, बाप खूसट हो गया। बाप के सिर पर एक बाल नहीं बचा। वे घुंघराले बाल कहां गए, पता नहीं चला। वह बेटा ठीक पूछ रहा है कि अगर ये पापा हैं, तो यह आदमी जिसको मैं अब तक पापा समझता रहा, यह कौन घर में घुसा हुआ है? तो इससे छुटकारा क्यों नहीं पाते हम?

यह बच्चा ठीक सवाल उठा रहा है, यह महत्वपूर्ण सवाल है। तस्वीर मुर्दा है।

पिकासो से किसी ने कहा कि मैंने तुम्हारी तस्वीर देखी एक घर में, इतनी प्यारी लगी--एक सुंदर अभिनेत्री यह उससे कह रही थी--कि मैं रह न सकी और मैंने उसे छाती से लगा लिया और तुम्हारी तस्वीर को चूम लिया।

पिकासो ने कहा कि अच्छा! फिर तस्वीर ने क्या किया?

उस स्त्री ने कहा, तस्वीर क्या करती! उसने कुछ नहीं किया।

तो उसने कहा, फिर वह और कुछ रही होगी। मैं नहीं था। क्योंकि मुझे कोई चूमे और मैं जवाब न दूं! और तू भी खूब है--पिकासो ने कहा--कि मुझे कितनी दफे मिली, न कभी छाती से लगाया, न कभी चुंबन लिया! और मूरख, तस्वीर को छाती से लगाया और मैं जिंदा बैठा हूं!

लेकिन लोग तस्वीरों के मोह में पड़ जाते हैं। शब्द तस्वीरें हैं। शास्त्र तस्वीरें हैं। वहां सब चीजें मर जाती हैं।

इसलिए मैं तुमसे निरंतर कहता हूंः शब्दों में मत उलझना। कहीं अगर कोई व्यक्ति ईश्वर को जाना हो, जीया हो, तो उसके पास उठना-बैठना। उसके पास उठते-बैठते शायद जादू हो जाए। यह जादू का मामला है।

आज इतना ही।

नौवां प्रवचन

ध्यान का दीया

पहला प्रश्नः ओशो, अज्ञेयवाद, एग्नास्टिसिज्म, क्या है, जिसकी सराहना आप अक्सर करते हैं?

आनंद मैत्रेय, मन जीता है द्वंद्व में। फिर द्वंद्व चाहे प्रेम का हो या घृणा का, श्रद्धा का या अश्रद्धा का, शत्रुता का या मित्रता का--द्वंद्व द्वंद्व है। नास्तिक भी द्वंद्व में होता है और आस्तिक भी। क्योंकि नास्तिक आधा स्वीकार करता है--नकार। और आस्तिक भी आधा स्वीकार करता है--स्वीकार। हां और नहीं--यह भी द्वंद्व है। इस द्वंद्व में से तुमने एक को चुना तो दूसरे से तुम बच न सकोगे।

द्वंद्व का यह मौलिक सिद्धांत हैः एक को चुनो कि दूसरा भी चुन लिया गया--अनिवार्यरूपेण। यदि तुम प्रेम करोगे तो घृणा भी करोगे; घृणा से नहीं बच सकते। प्रकाश होगा तो अंधेरा भी होगा। फूल होंगे तो कांटे भी होंगे। अगर एक को चुना तो दूसरा पीछे से आ ही जाएगा।

अज्ञेयवाद का अर्थ होता हैः द्वंद्व में से किसी को भी न चुनना--न हां को, न न को। अज्ञेयवाद धर्म की पराकाष्ठा है। बुद्ध अज्ञेयवादी हैं। और बुद्ध परमपुरुष हैं; जिस ऊंचाई से बुद्ध बोले हैं, उस ऊंचाई से कोई और नहीं बोला। और सभी ने कोई न कोई द्वंद्व चुन लिया।

नास्तिक कहता हैः ईश्वर नहीं है। आस्तिक कहता हैः ईश्वर है। लेकिन दोनों एक-दूसरे से जुड़े हैं। अगर दुनिया में कोई नास्तिक न हो तो क्या कोई आस्तिक हो सकेगा? कैसे होगा? नास्तिक बिल्कुल जरूरी है आस्तिक होने के लिए।

और यह कैसी आस्तिकता हुई जिसके होने के लिए नास्तिक की जरूरत पड़ती हो? और अगर सभी नास्तिक हों, कोई आस्तिक न हो, तो नास्तिकता भी मिट जाएगी, बच न सकेगी। यह अदभुत नास्तिकता हुई जिसकी आधारशिला के लिए आस्तिकता चाहिए!

आस्तिक और नास्तिक साथ-साथ जीते हैं; एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। धार्मिक व्यक्ति न तो आस्तिक होता है, न नास्तिक। धार्मिक व्यक्ति कहता हैः हां और न के ऊपर उठना है, द्वंद्व के पार जाना है, द्वंद्वातीत होना है। तो मैं चुनूंगा नहीं। मैं चुनावरहित चेतना में जागूंगा। मैं हां को भी वरण नहीं करूंगा, न को भी वरण नहीं करूंगा; मैं किसी पक्षपात को ओढूंगा नहीं, मैं निष्पक्ष रहूंगा। मैं मन के किसी जाल में पड़ने को नहीं हूं। मैं मन के किसी भुलावे में अब न आऊंगा।

नास्तिक और आस्तिक विवादग्रस्त रहते हैं, लड़ते-जूझते रहते हैं। उनके तर्क भी भिन्न नहीं होते। अगर तुम नास्तिकों-आस्तिकों का पूरा इतिहास देखो तो चकित होओगे, उनके तर्क बिल्कुल एक जैसे हैं। निष्पत्तियां भिन्न मालूम होती हैं। मगर अगर तर्क एक जैसे हैं तो निष्पत्तियां भी बहुत भिन्न नहीं हो सकतीं।

आस्तिक कहता है कि संसार है, तो उसका बनाने वाला होना ही चाहिए, बिना बनाए कोई चीज कैसे हो सकती है? इसलिए ईश्वर है। नास्तिक कहता है, अगर प्रत्येक वस्तु के लिए बनाने वाला चाहिए, तो फिर ईश्वर को किसने बनाया? वही तर्क उसका है, कुछ भेद नहीं है। आस्तिक के पास उत्तर नहीं रह जाता, या कि वह क्रोध से भुनभुना जाता है।

याज्ञवल्क्य से जनक की धर्मसभा में गार्गी नाम की एक अदभुत महिला ने यही पूछा था कि सबका आधार परमात्मा है, तो फिर परमात्मा का आधार कौन है?

याज्ञवल्क्य क्रुद्ध हो गया। उसकी आंख से अंगारे टपकने लगे। उसने कहा, स्त्री, अपना मुंह बंद रख! यह अतिप्रश्न है। ज्यादा बोलेगी, सिर गिर जाएगा।

यह कोई उत्तर हुआ? यह धमकी हुई--कि सिर काट दिया जाएगा! यह उत्तर तो हुआ ही नहीं, यह सज्जनता भी न हुई। एक स्त्री के साथ सदव्यवहार भी न हुआ। और तर्क वही था जो याज्ञवल्क्य दे रहा था। वह कह रहा था कि संसार के लिए कोई आधार चाहिए। बिना आधार के संसार कैसे हो सकता है? परमात्मा इसका आधार है। तो गार्गी ने कौन सी भूल की! अगर संसार बिना आधार के नहीं हो सकता, तो परमात्मा बिना आधार के कैसे हो सकता है? उसी तर्क को जरा और आगे खींचा। उसी तर्क को थोड़ा और आगे धकाया। उसी तर्क को उसकी निष्पत्ति पर पहुंचाया। लेकिन घबड़ाया याज्ञवल्क्य, क्योंकि अब परमात्मा को भी आधार अगर देना पड़े, तो मुश्किल में पड़ेगा। मुश्किल में इसलिए पड़ेगा कि तुम जो भी उत्तर दोगे, सवाल फिर भी खड़ा रहेगा कि फिर उसका आधार क्या है? तुम कहो परमात्मा का आधार अ, अ का आधार ब, ब का आधार स--प्रश्न वहीं का वहीं रहेगा कि स का आधार कौन? समझ गया याज्ञवल्क्य कि अब चर्चा को आगे खींचना झंझट में पड़ना है। और जहां चर्चा को आगे खींचना मुश्किल हो जाता है वहां तलवारें खिंच जाती हैं।

आखिर हिंदू-मुसलमान एक-दूसरे पर तलवारें क्यों खींचे रहे? चर्चा को खींचना मुश्किल हो गया। ईसाई और मुसलमान क्यों लड़ते रहे सदियों तक? चर्चा को खींचना मुश्किल हो गया। एक जगह आ जाती है जहां चर्चा आगे नहीं बढ़ती। और मजा यह है कि दोनों के तर्कों में कुछ भी भेद नहीं है, जरा भी भेद नहीं है। अगर सबको बनाने वाले की जरूरत है तो फिर तो बनाने वाले को भी कोई चाहना पड़ेगा जिसने बनाया हो। अगर तुम बिना पिता के पैदा नहीं हो सकते तो तुम्हारे पिता को भी पिता की जरूरत पड़ेगी, और उनके पिता को भी, और उनके पिता को भी। इस सिलसिले का अंत कहां होगा? क्या तुम कभी ऐसी जगह पहुंच सकोगे जहां तुम कह सको कि इस आदमी को पिता की जरूरत नहीं थी, यह बिना पिता के पैदा हुआ?

यही तो ईसाई कहते हैं जीसस के संबंध में कि वे बिना पिता के पैदा हुए। क्यों? इसीलिए कि अगर यह बात मान ली जा सके कि जीसस बिना पिता के पैदा हो सकते हैं, कुंआरी मां से, तो फिर परमात्मा को भी बनाने वाले की कोई जरूरत नहीं रह जाती। अगर तुम यह छोटी सी बात पी गए तो फिर बड़ी बात भी पी जाओगे। अगर यह छोटी सी बात तुमने गले के नीचे उतार ली और ना-नुच न किया और कहा कि यह कैसे हो सकता है, सवाल न उठाया--डर के मारे, लोभ के मारे, किसी कारण से गटक गए... यद्यपि सवाल सीधा-साफ है कि जीसस भी बिना पिता के पैदा नहीं हो सकते। असंभव है यह बात। यह हो नहीं सकता।

लेकिन तुम्हारी तथाकथित आस्तिकता असंभव बातों पर खड़ी है, मूढ़तापूर्ण बातों पर खड़ी है। और उन्हीं मूढ़तापूर्ण बातों का खंडन करके नास्तिकता खड़ी है। दोनों की मूढ़ता में कोई भी भेद नहीं है।

अज्ञेयवाद की यह घोषणा है कि हम कोई पक्ष नहीं लेते--इधर है खाई, इधर है खड्ड। हां और न दोनों खाई-खड्ड हैं। बीच में जो चले, समतुल, सम्यक, न इधर झुके न उधर, जो चुनाव न करे, जो कहे कि मैं न तो हां के साथ राजी होऊंगा न न के--मैं तो सिर्फ जाग्रत रहूंगा, होश सम्हालूंगा! मुझे क्या पड़ी कि ईश्वर है या नहीं? इससे मेरी क्या समस्या है? इससे मुझे क्या अड़चन है? यह सवाल ही असली धार्मिक आदमी का नहीं है। असली धार्मिक आदमी यह पूछता हैः मैं कौन हूं? नकली धार्मिक आदमी पूछता हैः ईश्वर है या नहीं? यह टालना है सवालों को।

एक मित्र ने पूछा है कि जिस व्यक्ति ने ईश्वर को जान लिया उसकी पहचान क्या है?

तुम्हें क्या करना है? तुम्हें ईश्वर जानना है या जिन्होंने ईश्वर को जान लिया है उन्हें जानना है? तुम नहीं पूछते यह कि जिस आदमी ने मिठाई का स्वाद लिया उसकी पहचान क्या है? कोई पहचान होगी? तुम मिठाई को चखना चाहो, यह उत्सुकता तो समझ में आती है; मगर जिसने मिठाई चखी उसकी पहचान क्या है? क्या पहचान हो सकती है? एक आदमी ने मिठाई चखी और एक आदमी ने मिठाई नहीं चखी, दोनों सामने खड़े हैं, कुछ भेद होगा? क्या भेद होगा? भेद होगा तो भीतरी होगा, जो ऊपर दिखाई नहीं पड़ सकता। जिसने मिठाई चखी है वह जानता है कि मिठास भी है और जिसने नहीं चखी उसे पता नहीं। मगर ऐसे कैसे पता लगाओगे? ऊपर से क्या तौलोगे? कोई नाप-जोख कर सकते हो? कोई तराजू पर तौल सकते हो? कोई उपाय नहीं है बाहर से।

मगर इस तरह के प्रश्न लोग पूछते हैं और सोचते हैं कि धार्मिक प्रश्न पूछ रहे हैं। तुम्हें क्या पड़ी है? ईश्वर को जानना है, यह तक बात धार्मिक व्यक्ति की नहीं है। तो यह बात कि जिसने ईश्वर को जाना है उसकी क्या पहचान है--यह तो हद्द हो गई! यह तो तुम दूर से भी दूर निकल गए। यह तो उधार से भी उधार हो गए। यह तो छाया की भी छाया हो गई। मूल की बात करो। पूछो कि मैं कौन हूं? जानो कि मैं कौन हूं? और उसी जानने में सब जान लिया जाता है।

बुद्ध इस जगत के परम अज्ञेयवादी हैं। इसलिए बुद्ध को न तुम आस्तिक कह सकते हो, न नास्तिक। वे न तो ईश्वर के संबंध में हां भरते हैं न न। लेकिन मूढ़ उन्हें समझ न सके। इसलिए तो इस देश से बुद्ध का नाम मिट गया। इस देश में मूढ़ों की जमात है। बड़ी जमात है। अगर बुद्ध नास्तिक होते, तो भी कुछ मूढ़ उनके पीछे चलने को राजी हो जाते। अगर आस्तिक होते, तब तो कहना ही क्या था! तब तो पूरा कुंभ मेला उनके पीछे लग जाता। लेकिन बुद्ध ने कहा कि न मैं आस्तिक, न नास्तिक; यह बात ही अप्रासंगिक। ईश्वर है या नहीं, यह विचारणीय भी नहीं।

बुद्ध कहा करते थेः जैसे एक आदमी को तीर लग गया हो और वह मर रहा है। और तुम उसके पास बैठे हो और तुम कहते हो, मैं यह तीर खींच लूं तो तू बच जाए। पर वह आदमी दार्शनिक है। वह कहता है, इसके पहले कि तुम तीर खींचो, मुझे कुछ प्रश्नों के जवाब दो। पहले तो यह कि तीर सच है कि झूठ? माया है या यथार्थ? अगर माया है तो क्या खींचना! किसको खींचना! कौन खींचने वाला है! यदि यथार्थ है, यह तय हो जाए, तो फिर खींचो। मैं यह भी जानना चाहता हूं कि जिसने मारा है यह तीर, वह कौन है? मित्र है या शत्रु? अपना है कि पराया? यह तीर जान-बूझ कर मारा गया है कि दुर्घटना है? इसके पीछे कोई प्रयोजन है या निष्प्रयोजन? यह तीर विषबुझा है या नहीं? ऐसे वह हजार प्रश्न उठाता है। लेकिन तुम क्या करोगे? तुम उससे कहोगे न कि ये प्रश्न तू बाद में पूछ लेना, पहले तीर खींच लेने दे; कहीं ऐसा न हो कि हम तेरे प्रश्नों में उलझें, तेरे लिए उत्तर तलाशें और इस बीच तेरे प्राण निकल जाएं। क्योंकि तीर तेरी छाती में चुभा है, वह तेरे प्राण लिए ले रहा है। यह दार्शनिक ऊहापोह पीछे कर लेना। पहले तीर को खींच लेने दे।

बुद्ध कहते थेः ऐसे ही, जो व्यक्ति सच में ही जीवन-क्रांति में उत्सुक है, वह पहले जीवन से अज्ञान के तीर को खींचने में लगता है। वह व्यर्थ की बातें नहीं पूछता--कि ईश्वर है या नहीं? है तो कैसा है? कितने मुख हैं, कितने हाथ हैं? कहां रहता है? जिन्होंने उसको जान लिया है उनकी पहचान क्या है? उनका लक्षण क्या है?

सच्चा खोजी एक ही सवाल पूछता है कि मेरे भीतर अंधकार छाया हुआ है, मैं दीया कैसे जलाऊं? मेरे भीतर रोशनी कैसे हो सके? सच्चा व्यक्ति आस्तिक-नास्तिक इस झमेले में नहीं पड़ता। और यह झमेला बड़ा है। इसमें जो पड़ा, उसमें से निकलना बहुत मुश्किल है। यह बहुत लंबा झमेला है। और मजा यह है कि जिनको कुछ भी पता नहीं वे इस झमेले में पड़ जाते हैं।

पहली तो बात यह है, तुम्हें पता नहीं, तुम कैसे कहोगे कि ईश्वर है? लेकिन करोड़ों लोग कह रहे हैं कि है और उनको कुछ भी पता नहीं। जाना नहीं, जीया नहीं, पहचाना नहीं, साक्षात्कार नहीं हुआ, अनुभव नहीं हुआ, कोई स्वाद नहीं मिला--और कह रहे हैं कि है। इससे बड़ा झूठ और क्या होगा? और ये सब धार्मिक लोग हैं। मेरे देखे धार्मिक लोग जितने पाखंडी होते हैं, उतना कोई और नहीं होता। इस देश में इतना जो पाखंड है, उसका कारण यही है कि यहां बड़े धार्मिक लोग बैठे हुए हैं। भयंकर पाखंड है, क्योंकि धर्म की तुम्हारी बुनियाद ही झूठ पर खड़ी है। पहली तो बात यही कि तुम्हें पता नहीं और तुमने मान लिया। यह तो बेईमानी है। यह तो अप्रामाणिकता है। इतना तो कहते कि अभी मैं कैसे मानूं! अभी मुझे पता नहीं तो मैं कैसे हां भरूं! लेकिन डर के कारण, लोभ के कारण हां भर दी। या और लोग कह रहे थे, सभी लोग कह रहे थे कि ईश्वर है, तो कौन झंझट मोल ले! इतने लोगों से कौन उलझे! फिर इन्हीं से काम-धाम है, इन्हीं से रोज का व्यवहार है, लेन-देन है, तो हां भर दी। औपचारिक है तुम्हारी हां। और धीरे-धीरे जो तुमने औपचारिक रूप से हां भरी थी, उसको तुम्हीं सत्य मानने लगते हो।

एक मजा है दुनिया में। दूसरे को धोखा देना सोच-समझ कर, क्योंकि धोखा देते-देते आदमी उसी धोखे में खुद ही विश्वास करने लगता है। अगर कुछ लोगों को धोखा देने में समर्थ हो गया तो वह सोचता है, जरूर इसमें कोई सचाई होगी, तभी तो मैं इतने लोगों को धोखा दे पाया। फिर आदमी सोचता ही नहीं। फिर उसी धोखे के सहारे जीए जाता है। यह कैसा धर्म है!

विश्वास से कोई धर्म नहीं होता, अनुभव से होता है। लेकिन तुम्हारे सब धर्म विश्वास के हैं, फिर चाहे तुम हिंदू होओ, चाहे यहूदी, चाहे ईसाई, चाहे जैन, चाहे कोई भी हो। तुम्हारा धर्म विश्वास का है, अनुभव का नहीं। और विश्वास का है, तो दो कौड़ी का है। अनुभव का है, तो उसका कोई मूल्य नहीं आंका जा सकता, अकूत है। मैं तुमसे कहता हूंः विश्वास न करना। अगर जानना हो तो विश्वास करना ही मत। इस दुनिया में सब से ज्यादा सावधान रहने की अगर कहीं कोई जरूरत है तो वह विश्वास से सावधान रहने की जरूरत है। क्योंकि विश्वास ही लोगों को खाए जा रहा है। पहले ही मान लिया, चलने के पहले ही मान लिया, खोजने के पहले ही मान लिया।

अगर वैज्ञानिक भी ऐसा ही करने लगें तो विज्ञान भी इसी तरह दो कौड़ी का हो जाए, जैसा तुम्हारा धर्म हो गया है। लेकिन विज्ञान ऐसा नहीं करता। पहले प्रयोग! और एक बार भी नहीं, हजार बार प्रयोग! जब हजारों बार कोई बात निरपवाद रूप से सत्य हो जाती है सिद्ध, तब स्वीकार करता है। तब भी स्वीकृति आत्यंतिक नहीं होती, सामयिक होती है, सशर्त होती है। इतना ही वैज्ञानिक कहता है कि अभी तक जो हम जानते हैं, उसके आधार पर कहते हैं कि ऐसा है; कल और जानकारी बढ़ेगी तो शायद हमें अपनी पूरी धारणा बदलनी पड़ेगी।

वैज्ञानिक कहीं ज्यादा नीति-निष्ठ, कहीं ज्यादा ईमानदार, कहीं ज्यादा धार्मिक है--बजाय तुम्हारे तथाकथित धार्मिक लोगों के। और तुम जब एक चीज मान लेते हो तो फिर तुम कुछ भी मान लेते हो। फिर कुछ भी मानने में अड़चन नहीं रह जाती। एक गलत कदम उठाया तो फिर गलत कदम उठते चले जाते हैं, क्योंकि

दिशा गलत हो गई। और छोटे-मोटे लोगों की बात छोड़ दो, जिनको हम बड़े-बड़े विचारशील लोग कहते हैं, उनकी भी हालत यही है।

यूनान का बहुत बड़ा तर्कशास्त्री हुआ, अरस्तू। यूनान में धारणा थी कि स्त्रियों के दांत पुरुषों से कम होते हैं। पुरुषों ने फैला दी होगी। पुरुष तो इस तरह की बातें फैलाने में बड़े कुशल हैं। स्त्रियों के दांत पुरुषों के बराबर हो ही कैसे सकते हैं! सवाल यह है कि स्त्रियों में सब चीजें कम होनी ही चाहिए! कहां पुरुष और कहां स्त्री! चरणों की दासी! बराबर दांत होने का दावा करे, यह हो ही कैसे सकता है! तो किसी ने सवाल भी नहीं उठाया। यह बात चल पड़ी और चल पड़ी। चलती रही हजारों साल तक।

अब स्त्रियों की कोई कमी है! सच तो यह है कि पुरुषों से थोड़ी ज्यादा ही हैं स्त्रियां। क्योंकि पुरुष कई तरह की बेवकूफियां करते हैं--युद्ध लड़ते हैं, और न मालूम क्या-क्या करते हैं, उसमें उनका खातमा होता रहता है। स्त्रियां हमेशा ही थोड़ी ज्यादा होती हैं पुरुषों से। और पुरुष आपाधापी भी बहुत करते हैं, भागा-भागी भी बहुत करते हैं। तो कोई हार्ट-अटैक में मरेगा, कोई पागल हो जाएगा, कोई छज्जे पर से कूद कर आत्महत्या कर लेगा। स्त्रियां सिर्फ कहती हैं आत्महत्या की, करतीं वगैरह नहीं। बातचीत है, कोई उसमें ज्यादा अर्थ नहीं है। पुरुष आत्महत्याएं भी दुगुनी करते हैं स्त्रियों से और पागल भी दुगुने होते हैं। और होने भी चाहिए, क्योंकि कितने तरह के पागलपन में तो लगे रहते हैं। धन इकट्ठा करना है, पदों पर चढ़ना है। सीढ़ियों पर सीढ़ियां लगाई हुई हैं। फिर वहां से गिरते हैं, फिर चारों खाने चित्त नीचे पड़े हैं। और जनता तालियां बजा रही है!

चालीस साल के बाद अक्सर लोगों को हृदय का दौरा पड़ना शुरू होता है, क्योंकि चालीस साल तक तो किसी तरह शरीर सह लेता है। ताकत होती है, सामर्थ्य होती है, शरीर युवा होता है; किसी तरह सह जाता है। बस चालीस और बयालीस के करीब खतरे की घंटी बजनी शुरू हो जाती है; रक्तचाप बढ़ जाएगा, हृदय का दौरा पड़ने लगेगा, कोई झंझट आने के करीब है।

और युद्ध कहीं न कहीं चलने ही चाहिए, वियतनाम में न चले तो इजरायल में चले, इजरायल में न चले तो अफगानिस्तान में चले, कहीं न कहीं चलना चाहिए, नहीं तो पुरुष को चैन नहीं। खाली समय में भी वह बैठा हुआ तलवार पर धार रखता रहता है। खाली समय में जब कहीं युद्ध नहीं हो रहा होता, उसको कहते हैं--ठंडा युद्ध! ठंडा युद्ध का मतलब यह कि तैयारी चल रही है, अरे कब हो जाए! और कभी-कभी तो ऐसा ही होता है कि तैयारी होने के कारण ही हो जाता है। क्योंकि तुम अपनी तलवार पर धार रख रहे हो, पाकिस्तानी अपनी तलवार पर धार रख रहा है। तुमको गुस्सा आता है देख कर कि यह तलवार पर धार रख रहा है, खतरनाक मामला है, तुम और जोर से रखने लगे। उसने देखा तुम जोर से रख रहे हो, वह और जोर से रखने लगा। बात बढ़ गई। बात में से बात निकल गई। तुमने चिल्ला दिया कि अगर इससे ज्यादा धार रखी तो ठीक नहीं होगा!

देरी कहां लगती है झगड़े में! तलवारें खिंच जाती हैं। असली चीजों की तो बात छोड़ दो, पुरुष कुछ ऐसा पागल है कि शतरंज के खेलों में तलवारें खिंच गई हैं और गर्दनें कट गई हैं। अब शतरंज में सब नकली मामला है, हाथी-घोड़े सब नकली, राजा-वजीर सब नकली। गरीब के हुए तो लकड़ी के, अमीर के हुए तो समझो कि हाथी-दांत के; मगर नकली तो नकली हैं, चाहे लकड़ी के हों, चाहे हाथी-दांत के हों, चाहे सोने के हों और चाहे हीरे-जवाहरात जड़े हों। इससे क्या फर्क पड़ता है! मगर तलवारें खिंच जाती हैं।

इस मूढ़ता को कोई देखता नहीं। और पुरुष लड़ता रहता है, काटता रहता है, मारता रहता है, तो हमेशा कम रहा है। इतना कम हो गया है कभी-कभी कि मोहम्मद को तो कहना पड़ा कि प्रत्येक पुरुष अगर चार विवाह करे तो ठीक। क्योंकि स्त्रियां चौगुनी ज्यादा थीं मोहम्मद के समय में। इसलिए मजबूरी में कहना पड़ा।

नहीं तो बहुत उपद्रव मच जाएगा, बड़ी खींचा-तान हो जाएगी। अगर चार गुनी स्त्रियां हों और एक ही का विवाह हो सके और तीन अविवाहित रह जाएं, तो अविवाहित कुछ ऐसे ही थोड़े ही छोड़ देंगी, कुछ न कुछ उपद्रव होने ही वाला है। भारी उपद्रव मचेगा! इससे बेहतर है कि विवाहित ही कर दो। खुद मोहम्मद ने नौ विवाह किए। करना ही चाहिए; जब तुम चार की शिक्षा दोगे तो कम से कम नौ करके दिखलाना तो चाहिए। नहीं तो लोग कहेंगे कि वाह, खुद तो बालब्रह्मचारी और हमें फंसा रहे हैं! तो बेचारे खुद फंसे। अब एक पत्नी का जिनको अनुभव है वे जानते हैं कि नौ पत्नियों का परिणाम क्या होगा! मोहम्मद भी हिम्मत के आदमी रहे होंगे। महावीर वगैरह तो एक से ही भाग गए थे। मोहम्मद बलशाली आदमी मालूम पड़ते हैं। जूझे! हिम्मत से लगे रहे होंगे।

पुरुष कम संख्या में रहा, स्त्रियां ज्यादा रही हैं, इसलिए कोई अड़चन नहीं थी अरस्तू को या अरस्तू के जमाने के लोगों को, कि सौ-पचास स्त्रियों को इकट्ठा कर लेते और दांत गिन लेते, देर कितनी लगनी थी! खुद अरस्तू की दो औरतें थीं, कभी भी कह देता कि जरा बैठ जाओ लल्लू की मां, मुन्नू की मां, जरा तुम्हारे दांत गिन लें! और कम से कम उतनी देर तो घर में शांति रहती जब तक दांत गिनता, कम से कम उतनी देर तो स्त्रियां चुप रहतीं। मगर नहीं गिने उसने दांत। उसने भी अपनी किताबों में लिखा है। इतना बड़ा विचारक और किताबों में लिख गया कि स्त्रियों के दांत पुरुषों से कम होते हैं। दो-दो पत्नियां होकर इतनी अकल न आई कि जरा गिनती कर लें।

प्रयोग पर भरोसा ही नहीं रहा हमारा, अनुभव पर हमारा भरोसा ही नहीं रहा। हम तो मान लेते हैं चलती हुई बात। कुछ भी चल रही है बात, बस मान लेते हैं। और लोग मान रहे हैं तो ठीक ही मान रहे होंगे, किसी ने गिना ही होगा। और ऐसा ही सब सोच रहे हैं कि किसी न किसी ने गिना ही होगा। ऐसे ही चिंदी से सांप बन जाते हैं, कोई देखता ही नहीं कि सांप है कहां! कभी-कभी तो चिंदी भी नहीं होती। चिंदी भी हो तो भी ठीक है।

मनुष्य सदियों से विश्वासों से जी रहा है। और जीवन की छोटी-छोटी चीजों के संबंध में ही विश्वास कर लिए हैं, ऐसा नहीं; जीवन के परम सत्य के संबंध में भी बस विश्वास कर लिया है। तो अनुभव कौन करेगा?

ईश्वर को मान लिया। यह एक विश्वास हुआ। यह आस्तिक का विश्वास है। और जब मान लिया तो अब खोजना क्या है! अब तो बात खतम हो गई, यात्रा पूरी हो गई, मंजिल आ गई। अब तो बैठ कर घंटी बजाते रहो, पूजा कर दो थोड़ी-बहुत, कभी सिर झुका लो, कभी प्रसाद चढ़ा दो, बांट दो मुहल्ले में। बस अब कुछ खास करने को बचा नहीं। ईश्वर है!

और कुछ हैं जिन्होंने मान लिया कि ईश्वर नहीं है। न उन्होंने खोजा, न उन्होंने ध्यान किया, न साधना की, न अंतर के जगत में प्रवेश किया। उन्होंने इन्हीं आस्तिकों को देख कर, इनकी धारणाओं को देख कर इनकी धारणाओं का खंडन कर दिया और मान लिया कि ईश्वर नहीं है! जैसे इन आस्तिकों की धारणाओं के ऊपर ईश्वर का होना या न होना निर्भर है। जितने नास्तिक हुए पृथ्वी पर, उन सबका कुल काम इतना रहा कि आस्तिक जो कहते हैं वह गलत है। और आस्तिक जो कहते हैं उसको गलत सिद्ध किया जा सकता है। क्योंकि आस्तिक ने भी बेचारे ने माना हुआ है, जाना तो है नहीं। जानने वाले तो बहुत थोड़े से लोग हुए हैं। और जानने वाले लोगों ने आस्तिकता और नास्तिकता के उलझाव में अपने को नहीं उलझाया। खोज में लगे, अन्वेषण में लगे।

और अन्वेषण का पहला सूत्र हैः निष्पक्ष होना। पहले से ही अगर निष्कर्ष ले लिया तो अन्वेषण कैसे हो पाएगा? निष्पक्ष!

अज्ञेयवाद का यही अर्थ हैः न मेरा यह पक्ष है, न वह पक्ष। मुझे पता नहीं है कि सत्य क्या है। मैं खोजने को तत्पर हूं। मैं जानने को राजी हूं।

अज्ञेयवाद का बड़ा माधुर्य है। उसका अर्थ है कि मैं अज्ञानी हूं। और सत्य अज्ञेय है। मगर मैं उत्सुक हूं, आतुर हूं, जिज्ञासु हूं, मुमुक्षु हूं। जानने के लिए सब कुछ दांव पर लगाने को तत्पर हूं। लेकिन जानूंगा तो मानूंगा। बिना जाने नहीं मानूंगा। और मजे की बात यह है कि जब जान लिया तो मानने का सवाल ही नहीं उठता। मानना दोनों हालत में व्यर्थ होता है। जब तक नहीं जाना, मानना गलत है, झूठ है। और जब जान ही लिया तो मानना क्या! जब जान ही लिया तो अब मानने जैसी बात ही न रही। अब मानने न मानने का सवाल कहां!

इसलिए बुद्ध से लोग पूछते हैंः क्या आप ईश्वर को मानते हैं? वे मुस्कुरा कर चुप रह जाते हैं। जानने वाला नहीं हां भरेगा कि मैं मानता हूं, क्योंकि मानना तो न जानने वालों का धंधा है। इसलिए बुद्ध मुस्कुरा कर चुप रह जाते हैं। बुद्ध से लोग पूछते हैंः ईश्वर है? तो वे कुछ नहीं कहते। बुद्ध से लोग पूछते हैंः ईश्वर नहीं है? तो वे कुछ नहीं कहते। और लोग ऐसे मूढ़ हैं कि कुछ मान लेते हैं कि बुद्ध के चुप रहने का अर्थ हैः मौनं सम्मति लक्षणम्! हमने पूछा कि ईश्वर है? वे चुप रहे, इसका मतलब है कि है। अब जो मानने को ही बैठे हैं, वे इसमें से यह अर्थ निकाल लेंगे।

इसलिए बुद्ध के मर जाने के बाद हजारों अर्थ हो गए बुद्ध के मौन के भी! यह जगत बड़ा अजीब है; यहां बोलो तो मुश्किल, यहां न बोलो तो मुश्किल। यहां बोलो तो तुम्हारी गलत व्याख्या होने वाली है और न बोलो तो तुम्हारी गलत व्याख्या होने वाली है। बुद्ध ने कुछ भी नहीं कहा और कितने अर्थ निकले! बुद्ध के मरने के बाद छत्तीस संप्रदाय हो गए बौद्धों के। मूढ़ संप्रदाय बनाने में इतने उत्सुक होते हैं!

कुछ ने कहा कि ईश्वर है, इसलिए बुद्ध चुप रहे। क्योंकि उस अनिर्वचनीय को कहा नहीं जा सकता। वह अवर्णनीय है, अव्याख्य है, इसलिए चुप रहे।

कुछ ने कहा कि चुप रहे, साफ है कि तुम्हारे दिल को चोट नहीं पहुंचाना चाहते थे, ईश्वर है नहीं। लेकिन क्यों तुम्हें दुख देना! अहिंसक थे। नहीं किसी की धारणा को दुख देना। क्यों किसी के सांत्वना के आधार छीनना! लोगों को तिनके के सहारे हैं, उनके क्यों तिनके छीनना! वैसे ही तो डूब रहे हैं, तिनका भी छूट जाएगा तो और मुश्किल होगी। चलो पकड़े रहो अपने विश्वासों को। बुद्ध ने दया के कारण कहा नहीं कि ईश्वर नहीं है, हालांकि उन्हें पता है कि ईश्वर नहीं है। नहीं तो वे जरूर कहते। वे कह नहीं सकते थे--अव्याख्य है; अनिर्वचनीय है; है, लेकिन उसके संबंध में कुछ कहा नहीं जा सकता? जैसा उपनिषद के ऋषियों ने कहा, वे भी कह देते।

तो कुछ ने कहा कि ईश्वर नहीं है, यह उनके मौन से सिद्ध होता है। और चर्चा चलती रही, सदियां बीत गईं, कोई निर्णय नहीं हो सकता। लेकिन बुद्ध इसलिए चुप हैं कि हां और न में बांटना द्वंद्व को खड़ा करना है। और जहां द्वंद्व खड़ा हुआ वहां मन पुनरुज्जीवित हो जाता है। बुद्ध के चुप होने का राज यह है कि बुद्ध कह रहे हैंः मन के पार जाओ। बस मन के पार जाओ तो तुम भी जान लोगे, जो है। फिर तुम्हारी जो मर्जी, उसे नाम ईश्वर देना हो तो दे देना, मोक्ष देना हो तो दे देना, निर्वाण देना हो तो दे देना, कोई नाम न देना हो तो मत देना, क्योंकि वैसे उसका कोई नाम नहीं है।

अज्ञेयवाद की मौलिक आधारशिला है कि जब तक मैं नहीं जानता हूं, तब तक कुछ भी मानूंगा नहीं। और जब जान लिया है लोगों ने, तब तो मानने का सवाल ही नहीं उठा। तब तो जान लिया, फिर जीया।

एच.जी.वेल्स ने बुद्ध के संबंध में बहुत महत्वपूर्ण बात लिखी है। लिखा है कि इस पृथ्वी पर बुद्ध से ज्यादा ईश्वर-रहित और ईश्वर-जैसा व्यक्ति दूसरा नहीं हुआ। ईश्वर-रहित इस अर्थों में कि वे आस्तिक नहीं हैं। और

ईश्वर-जैसा, क्योंकि मान्यता नहीं है उनकी ईश्वर की, लेकिन उनका जीवन तो ईश्वरीय है, भागवत है। इसलिए तो हमने बुद्ध को भगवान कहा। यद्यपि भगवान के संबंध में उन्होंने कोई वक्तव्य नहीं दिया। हां और न की कोई बात नहीं की। फिर भी हमने भगवान कहा। क्योंकि भगवत्ता जैसी उनमें खिली, जैसा कमल उनका खिला चैतन्य का, कब खिलता है! कहां खिलता है! बहुत विरल है घटना।

अज्ञेयवाद एक बहुमूल्य विधि है। अगर तुम्हें सच में ही सत्य की तलाश करनी है तो अज्ञेयवाद तुम्हारी भूमिका होनी चाहिए। मेरे संन्यासी की भूमिका अज्ञेयवादी होनी चाहिए--न आस्तिक की, न नास्तिक की। एक दिन तुम जरूर जान पाओगे कि सत्य क्या है। और जब जानोगे तब तुम भी मुस्कुराओगे, तब तुम भी हंसोगे कि बातें सब व्यर्थ थीं--आस्तिक की भी व्यर्थ थीं, नास्तिक की भी व्यर्थ थीं। उसके संबंध में न तो हां कहना उचित है, न न कहना उचित है। उसे बांटना ही उचित नहीं है। वह अविभाज्य है।

वह जो परम सत्य है, वह जो परम अनुभव है, उसके संबंध में मन कुछ भी निर्णय नहीं ले सकता; वह मन के पार है। मन के ऊपर जो उठ जाता है वही उसे जान पाता है।

दूसरा प्रश्नः ओशो, कई महात्मागण, साधु और मुनि आपकी बातें चुरा कर इस भांति बोलते हैं कि जैसे उन्हीं की हों। क्या इन्हें समय रहते रोकना आवश्यक नहीं है?

सहजानंद, महात्मागण, साधु और मुनिगण सदा से यही कार्य करते रहे हैं। यह कोई नई बात नहीं है। अपना अनुभव न हो तो बेचारे कहीं से तो चुराएंगे! फिर उपनिषदों से चुराएं, कि गीता से चुराएं, कि कुरान से चुराएं, कि समयसार से चुराएं, इससे क्या फर्क पड़ता है! जिनके पास अपना नहीं है और जिन्हें इस अहंकार का पोषण करना है कि हम जानते हैं, वे कहीं से तो चुराएंगे ही। और अगर मुझसे भी चुराने लगे तो यह तो समादर की बात है, इसमें कुछ परेशान होने की बात नहीं है। तो मेरी गिनती भी वे उपनिषद, कुरान और बाइबिल के साथ करने लगे!

हालांकि उपनिषद और कुरान और बाइबिल से जब वे चुराते हैं तो उन्हें कोई डर नहीं होता कहने में कि वे कुरान का उल्लेख कर रहे हैं या बाइबिल का। मेरी बात जब चुराते हैं तो कहने में उन्हें डर लगता है। मेरी किताबें पढ़ते हैं। शायद ही ऐसा कोई महात्मा इस देश में हो, जो किताब न पढ़ता हो; लेकिन चोरी से पढ़ते हैं, छिपा कर पढ़ते हैं। कोई गीता में छिपा कर पढ़ता है, कोई बाइबिल में छिपा कर पढ़ता है। क्योंकि कोई देख न ले कि मेरी किताब पढ़ रहे हैं! डर है। मेरे नाम के साथ जुड़ने में घबराहट है। इसलिए बेचारे नाम लेना भी चाहते हों तो भी ले नहीं सकते, उतनी हिम्मत भी नहीं है। उतनी ही हिम्मत होती तो भगोड़े बनते? उतना ही साहस होता तो पलायनवादी होते?

तुम जिनको महात्मा कहते हो, मुनि कहते हो, साधु कहते हो, वे वस्तुतः हैं क्या? आध्यात्मिक रूप से कायर लोग हैं, जो जीवन के संघर्ष में खड़े नहीं रह सके; जीवन के संघर्ष में जिन्होंने सब जगह मात खाई, हार खाई। तो कहने लगे कि अंगूर खट्टे हैं, कि संसार में कुछ भी नहीं है, संसार छोड़ कर भाग गए।

अगर संसार में कुछ भी नहीं है तो इतनी भाग-दौड़ भी किसलिए? जहां कुछ है ही नहीं वहां से भागना क्या? और अंगूर खट्टे हों तो रहने दो; जिनको खट्टे अंगूर अच्छे लगते हैं उनको चखने दो। छोटे बच्चों को तो कम से कम अच्छे लगते ही हैं। तुम क्यों अंगूरों को इतनी गालियां देने में लगे हो? तुम्हारी गालियां बताती हैं कि

अंगूरों में तुम्हें रस है; रस अभी गया नहीं; गालियों में प्रकट हो रहा है। वह जो असफलता है, उसका कांटा अभी भी चुभा हुआ है।

यहां हारे हुए लोग जिंदगी से भाग जाते हैं। जिंदगी संघर्ष है और वहां टिकना सामर्थ्य की बात है। भागने में कौन सी सामर्थ्य की जरूरत है? जीवन में टिकना हो तो थोड़ी बुद्धि भी चाहिए; भागने में कौन सी बुद्धि की जरूरत है? पूंछ दबा लेने में कोई बहुत बड़ी प्रतिभा तो नहीं चाहिए होती।

ये प्रतिभाहीन लोग हैं। इनके पास अपना तो कुछ है नहीं। अपना कुछ हो भी नहीं सकता। क्योंकि जो ये कर रहे हैं, उससे अनुभव को पाने की तरफ कोई रास्ता जाता भी नहीं। कोई भूखा मर रहा है, उपवासा बैठा हुआ है। जैसे कि भूखे मरने से कोई सत्य का अनुभव होता हो! भूखे मरने से, उपवास करने से क्या सत्य का अनुभव होता है?

अगर ऐसा होता होता तो हमारे जैसे देश में तो सत्य के जानने वाले बहुत होते--जहां भुखमरी इतनी है; जहां कि परमात्मा सभी को उपवास करवा रहा है; कम से कम एकासन तो करवा ही रहा है! जहां सभी जरूरत से कम भोजन पा रहे हैं; जहां चार में से तीन आदमी भूखे हैं। शायद इसीलिए लोग कहते हैं कि पुण्य-भूमि है, यहां पैदा होने को देवता तरसते हैं।

मगर देवता भूखे वगैरह नहीं मरते। छप्पन प्रकार के भोजन देवताओं के जगत में चलते हैं! कल्पवृक्ष के नीचे बैठे हैं और बस जो आकांक्षा की वह हाजिर हुआ। जो मांगा, उसी वक्त प्रकट हुआ। देवताओं की किसी कहानी में यह नहीं आता कि वहां अकाल पड़ गया कभी, कि बरसा कम हुई, कि संख्या ज्यादा बढ़ गई, कि लोग भूखे मर रहे हैं, कि सहायता की जरूरत है। और तरसते हैं यहां पैदा होने को! तो शायद इसीलिए तरसते होंगे कि वहां तो उपवास की कोई सुविधा है नहीं, यहां उपवास करना ही पड़ेगा। और उपवास करने से पुण्य होता है!

जब तुम भूखे मरते हो, उपवास करते हो, तो क्या होता है तुम्हारे भीतर? तुम अपना ही मांसाहार कर रहे हो, और कुछ भी नहीं। उपवास अधार्मिक कृत्य है। वह स्वयं का मांसाहार है। नरभक्षी हो तुम, और कुछ भी नहीं। इसीलिए तो उपवास करोगे, तो पहले दिन दो पौंड वजन नदारद हो जाएगा, दूसरे दिन डेढ़ पौंड, फिर एक पौंड, फिर धीरे-धीरे नदारद होने लगेगा। यह वजन कहां जा रहा है? इस पर कभी तुमने सोचा कि जब एक दिन उपवास करते हो तो दो पौंड वजन कहां चला जाता है? पचा गए! अपना ही मांस पचा गए!

और बड़ा मजा यह है कि शाकाहारी उपवास करने में बड़ा रस लेते हैं। जैन मुनि को तो उपवास करना ही नहीं चाहिए, क्योंकि वह मांसाहार है। लेकिन उपवास की बड़ी महिमा हम गाते हैं। इस उपवास से कुछ अध्यात्म का संबंध नहीं है। लेकिन इसको इतना समादर क्यों मिल गया? जो भी प्रकृति के उलटे कामों में लग जाता है, उसी को हम समादर देते हैं। क्योंकि लगता है--हम नहीं कर सकते और यह कर रहा है। कोई भी आदमी उलटे-सीधे काम करने लगे तो हमें समादर पैदा होता है; लगता है कि भई कुछ खूबी की बात कर रहा है। कोई उपवास कर रहा है, कोई सिर के बल खड़ा है, कोई शरीर को तोड़ रहा है, मरोड़ रहा है। उलटे-सीधे कामों में लोग लगे हुए हैं। और आशा रखते हैं कि इससे सत्य का अनुभव हो जाएगा।

सत्य के अनुभव का इस तरह की व्यर्थ की बातों से कोई संबंध नहीं है। और फिर इनके पास लोग पूछने जाते हैं कि महात्मा जी, उपदेश दो! उपदेश क्या खाक दें! तो कहीं न कहीं से चुराएंगे।

तुम कहते होः "कई महात्मागण, साधु और मुनिगण आपकी बातें चुरा कर इस भांति बोलते हैं जैसे उन्हीं की हों।"

कोई हर्जा नहीं। बोलने भी दो! चलो इस भांति प्रचार ही होता है। बातें तो पहुंचती हैं लोगों तक। किसकी हैं, इससे क्या लेना-देना है? बातें पहुंच जाएं, यही बात असली बात है। और फिर बातें किसकी हैं? मैं जो कह रहा हूं, क्या उन पर मेरा कुछ ठेका है? वही तो सदा जानने वालों ने कहा है। वही तो आने वाले जानने वाले भी कहेंगे। उन पर कोई व्यक्तिगत दावा थोड़े ही हो सकता है। बातें सत्य हों तो व्यक्तिगत नहीं होतीं, झूठ हों तो ही व्यक्तिगत होती हैं। झूठ व्यक्तिगत होता है, सत्य सार्वलौकिक होता है। तो जितना तुम्हारा है, समझना झूठ; और जितना सार्वलौकिक है, समझना सत्य। तो सत्य पर क्या दावा?

अगर मेरी कोई बात सत्य है तो मेरी नहीं है, मजे से उन्हें दोहराने दो, क्या हर्जा है? समझो लाउडस्पीकर के चोंगे हुए, कोई हर्जा तो नहीं। चोंगा जी महाराज! ऐसे बेचारे मेहनत करके पढ़ते हैं, छिपा-छिपा कर, कोई देख न ले! उनका श्रम तो देखो, उनकी तपश्चर्या तो देखो। फिर नाम को बचाते हैं, फिर शब्दों को भी हेर-फेर करना पड़ता है, क्योंकि नहीं तो लोग पकड़ लेते हैं। लोग खड़े होकर कहने लगते हैं कि यह तो आप कहां से कह रहे हैं! मेरे पास खबरें आई हैं कि लोग खड़े हो जाते हैं कि यह बात तो आप उधार कह रहे हैं। तो शब्द भी बदलने पड़ते हैं, भाषा भी थोड़ी हेर-फेर करनी पड़ती है। उनकी मेहनत तो देखो। उनके श्रम का तो सत्कार करो।

और फिर बात अगर काम की है तो पहुंच जानी चाहिए लोगों तक। और इससे क्या फर्क पड़ता है कि वे इस तरह बोलते हैं जैसे उन्हीं की हों? क्या हर्जा है? तुम्हें क्यों पीड़ा होती है सहजानंद? बोलने दो। चलो उन्हीं की सही। इससे क्या बनता-बिगड़ता है?

और तुम कहते होः "क्या इन्हें समय रहते रोकना आवश्यक नहीं है?"

नहीं, बिल्कुल आवश्यक नहीं है। और रोका भी नहीं जा सकता। रोकने का कोई उपाय भी नहीं है। कैसे रोकोगे?

एक कवि-सम्मेलन हो रहा था।

संयोजक जी ने ठहाका लगाते हुए कहा--

"अभी आप सुन रहे थे मोर बनारसी को,
अब सुनिए चोर इटारसी को।"

चोर कवि मंच पर आया और उन्होंने सुनाया--

"मैया मोरी मैं नहीं माखन खायो... "

पब्लिक में से आवाज आई--

"कविता बंद करो भाई, यह तो सूरदास की है।"

कवि बोला--"आप ठीक कह रहे हैं,
सूरदास तो देख नहीं पाते थे,
हमारे परदादा के परदादा
उनकी कविताएं डायरी में चढ़ाते थे
उनकी रचनाएं सुनाने का मुझे पुश्तैनी हक है।"

जनता बोली--"इसमें क्या शक है!"

कवि ने कहा--"कई महाकवि तो दूसरों की
पूरी की पूरी रचना पेल देते हैं

और आप लोग झेल लेते हैं।
हम तो अपना उपनाम सार्थक कर रहे हैं
चोरी की नहीं सुनाएंगे,
तो चोर इटारसी कैसे कहलाएंगे?"
"उनकी हर रात गुजरती है दीवाली की तरह
हमने एक बल्ब चुराया तो बुरा मान गए।"
श्रोता बोले--"और सुनाइए।"
चोर जी ने गीत प्रारंभ किया,
"पंडित जी मेरे मरने के बाद
इतना फर्ज निभा देना... "
आवाज आई--"यह तो धर्मा खलिक का है।"
कवि बोला--"उन्होंने भी दिल्ली के
एक पंजाबी कवि का चुराया है
वो अलग बात है कि गीत
उनके नाम से फिल्म में आया है।
चोर के घर चोरी करने में
अपन बिल्कुल नहीं शर्माता है
जो माल जैसे आता है, वैसे ही जाता है
और रही हमारी बात
हम तो जनरल स्टोर वाले हैं,
सब सामान दूकान में सजाते हैं
खुद थोड़े ही बनाते हैं।
कोई, किसी कंपनी का लाते हैं
कोई, किसी कंपनी का लाते हैं
वो अलग बात है कि
लेबिल अपने नाम का लगाते हैं।
जब हम निर्भय होकर सुना रहे हैं
तो आप क्यों घबरा रहे हैं?
चोरी का माल खरीद सकते हैं,
चोरी की कविता नहीं सुन सकते!
भाइयो! हिंदुस्तान बहुत बड़ा है
जिसकी कविता है, वह कहां-कहां गाएगा!
किस-किस शहर में जाएगा!
आदमी है, हवाई जहाज तो नहीं हो जाएगा!
हम तो उनकी रचनाएं

आप तक पहुंचाने का कष्ट उठा रहे हैं
संन्यासी होकर भी आपकी खुशी के लिए
दो हजार लेकर जा रहे हैं
कैसा बुरा जमाना आ गया है कि एक
ईमानदार डिस्ट्रीब्यूटर को
आप चोर बता रहे हैं!"

कोई फिक्र न करो, सहजानंद। महात्मागण, साधुगण, मुनिगण अच्छे काम में लगे हैं, वितरण कर रहे हैं। करने दो। और धोखा चलेगा नहीं। लोग भी सजग होते जा रहे हैं। मेरी बातें कुछ ऐसी हैं, कुछ ऐसी उलटी हैं कि कोई लाख छिपाए, छिपा नहीं सकता; पकड़ में आ ही जाएंगे। और उनकी जीवन-व्यवस्था से उनका तालमेल भी नहीं हो सकता। इसलिए कोई भी तत्क्षण पहचान जाएगा कि यह बात इनकी नहीं है।

अब समझो कि मैंने कहा कि उपवास मांसाहार है। कहे कोई साधु-महात्मा! चुराए कोई साधु-महात्मा! उनके भक्त ही उनकी पिटाई कर देंगे। नहीं चुरा सकते। असंभव है। जैसे मैंने कहा कि दुग्धाहार तो मांसाहार जैसा ही है, रक्त पीने जैसा है। चुराए कोई महात्मा! जैसे मैंने कहा, ईश्वर पर विश्वास करना बेईमानी है, यह तो अधार्मिक कृत्य है। चुराए कोई महात्मा! फौरन पकड़ा जाएगा।

मैं जो कह रहा हूं वह इतना भिन्न है कि उससे कोई तालमेल उनका बैठेगा नहीं; उनकी सारी जीवन-चर्या और मेरे वक्तव्य में विरोध आ जाएगा। अगर मेरी बात के अनुसार चलना है, अगर मेरी बात को कहना है, तो धीरे-धीरे उन्हें मेरे ही संन्यासी हो जाना पड़ेगा। और आहिस्ता-आहिस्ता अंगुली पकड़ता हूं, फिर पहुंचा पकड़ता हूं, फिर धीरे-धीरे भागना मुश्किल हो जाता है।

मेरी बात जब कोई सुना रहा है, तो उसे जंची तो है, उसे कहीं भीतर अंतरतम में चुभी तो है, लगी तो है, तभी तो सुना रहा है। उसे समझ में तो आई है, भला उसके न्यस्त स्वार्थ ऐसे हैं आज कि स्पष्ट घोषणा नहीं कर सकता।

मेरे पास न मालूम कितने साधुओं के पत्र आते हैं कि हम सब छोड़-छाड़ कर आपके संन्यास में सम्मिलित होना चाहते हैं, लेकिन फिर हमारी व्यवस्था क्या होगी? आपके आश्रम में हमारे रहने की व्यवस्था होनी चाहिए। अभी तो हम सब तरह से पूज्य हैं, लोग हमारी सब व्यवस्था करते हैं, सुरक्षा करते हैं। पुराने ढब का संन्यास छोड़ते ही हम मुश्किल में पड़ जाएंगे।

और मेरे आश्रम में, सृजनात्मक अगर नहीं है कोई, तो उसके लिए कोई जगह नहीं है। और तुम्हारे तथाकथित महात्मा और मुनिगण, उनमें क्या सृजन है?

उनको मैं कहता हूं कि जरूर यहां जगह बन सकती है, मगर यहां कुछ करना होगा। यहां बैठ कर सेवा नहीं ली जा सकती। कुछ संन्यासी कपड़े बनाते हैं, कुछ संन्यासी फर्नीचर बनाते हैं, कुछ संन्यासी जूते बनाते हैं, कुछ संन्यासी कुछ और बनाते हैं। आप क्या कर सकते हैं?

वे बेचारे कहते हैं, हम कर तो कुछ भी नहीं सकते, क्योंकि हम तो तीस साल से संन्यासी हैं, चालीस साल से संन्यासी हैं, हमने कुछ किया ही नहीं। हम तो एक ही काम जानते हैं--सेवा लेना।

तो उनको लेकर मैं यहां क्या करूंगा?

वे कहते हैं, हम तो बैठेंगे, ध्यान करेंगे, भजन-कीर्तन करेंगे।

सिर्फ बैठने और भजन-कीर्तन से कुछ भी नहीं होगा। यहां तो जीवन जीना पड़ेगा।

जैन मुनियों के पत्र आते हैं, खबरें आती हैं कि हम आ सकते हैं सब छोड़ कर। और थोड़े-बहुत नहीं, बड़ी संख्या में आ सकते हैं छोड़ कर। क्योंकि ऊब गए हैं, परेशान हैं। लेकिन फिर हम जाएं कहां? क्योंकि हम कुछ कर तो सकते नहीं। और आज जो हमारे पैर छू रहे हैं, यही श्रावक, अगर हमने यह पुराने ढंग का मुनित्व छोड़ा, तो हमें चपरासी की भी नौकरी देने को राजी नहीं होंगे।

और यही मजा है। तुम जरा ख्याल करना कि जिस महात्मा के तुम चरण दबाते हो, अगर वह कल महात्मापन छोड़ कर और तुम्हारे घर आ जाए और कहे कि चपरासी की जगह दे दो या बर्तन मलने की जगह दे दो। तो तुम कहोगे कि नहीं भाई, आगे देखो। तुम हजार बातें पूछोगे--कि तुम्हारी पात्रता क्या? योग्यता क्या? प्रमाणपत्र लाओ! किस-किस के यहां पहले काम किया है? वहां से निकाले क्यों गए? कहां तक शिक्षा है?

और वे कहें कि हमें गीता कंठस्थ है। तो तुम कहोगे, गीता का हम क्या करेंगे? बर्तन मलोगे कि गीता कंठस्थ से उसका क्या संबंध है? वे कहें कि हम भजन-कीर्तन करना जानते हैं। तो तुम कहोगे, ठीक है, मगर तुम्हें चपरासी का काम करना है कि भजन-कीर्तन करोगे?

कौन काम देगा तुम्हारे तथाकथित महात्माओं को, मुनियों को? क्या है उनकी सामर्थ्य और योग्यता, पात्रता? अपाहिज हो गए हैं। सब अंग रहते हुए अपाहिज हैं। आंखें होते हुए अंधे हैं। हाथ होते हुए, पैर होते हुए लंगड़े-लूले हैं। यह लंगड़े-लूलों की जमात है। इसलिए बेचारे छोड़ भी नहीं सकते, अब तुम पर निर्भर हो गए हैं। तुम जैसा कहो वैसा गुजारते हैं। तुम्हारे गुलाम हैं। और बड़ा मजे का खेल चल रहा हैः जो तुम्हारे गुलाम हैं, उनसे तुम सदुपदेश ग्रहण कर रहे हो।

जरा सोचो तो! सदगुरु तुम्हारा गुलाम होगा? सदगुरु किसी का गुलाम नहीं होता। न सदगुरु किसी को गुलाम बनाता है, न किसी का गुलाम होता है। सदगुरु अपना मालिक होता है और दूसरों को भी अपने मालिक होने की शिक्षा देता है। मगर ये तुम्हारे गुरु, इनकी हैसियत क्या है? इनकी गुणवत्ता क्या है? सृजन-शून्य, अपाहिज, अपंग, लूले-लंगड़े हैं सब भांति। मगर तुम पूजा-पाठ में लगे हो इनकी, क्योंकि एक परंपरा है लकीर की। लकीर को पीटे चले जा रहे हो।

सहजानंद, कहने दो बेचारों को, कोई रोकने की आवश्यकता नहीं है। पीड़ा होती है। तुम्हारा ही सवाल नहीं है यह, और भी संन्यासियों ने कई दफे आकर कहा है। जगह-जगह से संन्यासी आ कर कहते हैं कि इस पर कुछ किया जाना चाहिए।

करने की कोई जरूरत भी नहीं है। मेरा कोई आग्रह भी नहीं है, कि मेरी कोई सील है विचारों पर। बोल दिए, हवा के हो गए। अब जिसकी मर्जी हो, ले जाए। एक दफा बोल दिए, फिर विचारों पर तुम्हारी कोई मालकियत नहीं रह जाती। रह भी नहीं जानी चाहिए। बोलते ही इसीलिए हैं कि सबके हो जाएं, बंट जाएं। मैं अपना आनंद बांट रहा हूं, मैं अपना बोध बांट रहा हूं। जिससे जैसा बन सके, जो जैसा ले सके, ले ले।

नासमझ हैं बेचारे। बजाय इसके कि मेरे शब्दों को समझ कर अपने जीवन को बदलें, वे केवल उन शब्दों का उपयोग तुम्हें समझाने के लिए कर रहे हैं। वे खुद भी नहीं समझ सके हैं, खुद भी पूरा नहीं समझ सकते; क्योंकि जब तक जीएंगे नहीं, मेरी बात समझ में आ सकती नहीं। यह तो पूरी बात ही जीवंत धर्म की बात है, नगद धर्म की बात है। मगर उनको यह लगता है कि मेरी बातों से इतने लोग प्रभावित होते हैं, तो शायद इन बातों को दोहराने से कुछ लोग प्रभावित हो जाएंगे।

अच्छा ही है। कुछ लोग अगर उनसे भी मेरी बातें सुन कर प्रभावित हो जाएं, तो उन्होंने कुछ लोगों का मुख मेरी तरफ अनजाने मोड़ दिया। वे आज नहीं कल मुझे खोजते हुए चले आएंगे। उन्हें गंध भर मिल जाए, फिर उन्हें आना ही पड़ेगा, और कोई उपाय न रह जाएगा। इसलिए वे अनजाने, परोक्ष रूप से मेरे ही कार्य में लगे हैं।

तुम्हें ऐसे महात्मा, मुनि, साधुगण मिलें, उन्हें धन्यवाद देना, नाराज होने की बिल्कुल भी आवश्यकता नहीं है।

तीसरा प्रश्नः ओशो, प्रायः सभी तथाकथित धर्मों में, खासकर ईसाइयत में, प्रायश्चित्त को बड़ा धार्मिक गुण माना जाता है। किंतु कल आपने बताया कि प्रायश्चित्त क्रोध का ही शीर्षासन करता हुआ रूप है। कृपा करके इस संदर्भ में आगे कुछ और कहें!

शैलेंद्र, प्रायश्चित्त का मनोविज्ञान समझने जैसा है। प्रत्येक व्यक्ति ने कभी न कभी प्रायश्चित्त किया है, पश्चात्ताप किया है--वह ईसाई हो या न हो, कैथलिक हो या न हो। किसी और के सामने पश्चात्ताप किया हो या न किया हो, अपने ही सामने किया है। प्रत्येक व्यक्ति ने! और एक बार नहीं, अनेकों बार किया है।

क्रोधित हुए तुम। और फिर घड़ी भर बाद पीड़ा होती है कि यह मैंने क्या किया? फिर वही अज्ञान, फिर वही मूढ़ता, फिर वही मूर्च्छा मुझे पकड़ ली! और मैंने तय किया था कि अब क्रोध नहीं करूंगा। अभी दो दिन पहले ही तो तय किया था कि अब क्रोध नहीं करूंगा। और यह फिर हो गया! ग्लानि होती है।

लेकिन अगर ठीक से समझो, इसका अगर ठीक विश्लेषण करो, तो यह ग्लानि इसलिए हो रही है कि तुम्हारे अहंकार की प्रतिमा खंडित हो गई।

तुमने दो दिन पहले अपने अहंकार को खूब सजाया था कि अब क्रोध नहीं करूंगा। निर्णय लेता हूं कि अब क्रोध नहीं करूंगा। अब क्रोध से मेरा छुटकारा हो गया। तुम्हारा अहंकार बहुत आनंदित हुआ था कि मैं अक्रोधी हो गया। और वह दो दिन में ही अहंकार की प्रतिमा खंड-खंड हो गई, फिर क्रोध हो गया। अब तुम्हारा अहंकार पीड़ित हो रहा है। यह कोई आत्मा की पीड़ा नहीं है। हालांकि तुम कहोगे यही कि मेरी आत्मा की पीड़ा हो रही है, कि मुझे बड़ी अंतर-ग्लानि हो रही है। ये सब अच्छे-अच्छे शब्द हैं, जिनमें एक सचाई को छिपाया जा रहा है। सिर्फ तुम्हारा अहंकार कष्ट पा रहा है। तुम्हारी प्रतिमा अपनी ही आंखों के सामने गिर गई। वह जो तुमने--संकल्पवान हूं मैं, और अब निर्णय लिया, और महान निर्णय लिया, और अब कभी क्रोध नहीं करूंगा--वे सब बातें हवा हो गईं, क्षण भर में हवा हो गईं। जरा सा किसी ने बटन दबा दिया कि बात खतम हो गई। दो शब्द किसी ने कह दिए कि बस भूल गए सब, आ गए अपनी असलियत में; गई सारी धार्मिकता, पवित्रता, महात्मापन, सब विदा हो गया। मरने-मारने पर उतारू हो गए।

जापान का एक सम्राट एक फकीर को मिलने गया। उस फकीर की बड़ी ख्याति आनी शुरू हुई थी कि वह बुद्धत्व को उपलब्ध हो गया है। सम्राट जाकर फकीर के सामने झुका और फकीर से कहा कि आया हूं पूछने--क्या स्वर्ग है? क्या नरक है? ये प्रश्न मेरे मन में हमेशा उठते रहते हैं। कोई अब तक मुझे संतोषजनक उत्तर नहीं दे पाया।

उस फकीर ने सम्राट को नीचे से ऊपर तक देखा, जैसे कोई पुलिसवाला किसी चोर को देखता हो! सम्राट थोड़ा तिलमिलाया भी, थोड़ी देर सन्नाटा भी रहा। फकीर के शिष्य भी बैठे थे, वे भी थोड़े हैरान हुए कि बात

क्या है! और फकीर देखे ही गया, जैसे आर-पार देख रहा हो, जैसे एक्सरे की आंखें हों उसके पास। सम्राट, सुबह-सुबह थी अभी, सर्द हवा चल रही थी, मगर पसीना आ गया उसके माथे पर। और उसने फकीर ने कहा कि शक्ल तो देखो अपनी, मक्खियां उड़ रही हैं! स्वर्ग-नरक की पूछने आए हो? अकल नाममात्र को नहीं है! भोंदू कहीं के!

सम्राट को तो हद्द हो गई, पूछने आया है एक आध्यात्मिक सवाल, और यह आदमी! और इसको लोग कहते हैं यह बुद्धत्व को उपलब्ध हो रहा है! वह तो भूल ही भाल गया, उसने तो तलवार खींच ली। एकदम तलवार मारने को ही था, गर्दन उतार देने को, फकीर ने कहा, ठहर! यह नरक का द्वार खोल रहा है। यह रहा नरक!

एक चोट लगी, एक बात समझ में आई। एक क्षण ठहरा। तलवार वापस म्यान में रख ली। फकीर ने कहा, यह स्वर्ग का द्वार खुल गया। अपने घर जा, बात खतम हो गई। उत्तर मिल गया? तू जब क्रोध में है तो नरक में है और जब तू अक्रोध में है तो स्वर्ग में है। और बाकी सब नरक और स्वर्ग काल्पनिक हैं। कोई भूगोल में नहीं हैं नरक और स्वर्ग; तुम्हारा मनोविज्ञान!

तो तुम जब निर्णय लेते हो कि अब क्रोध नहीं करूंगा, अब कामवासना में नहीं उतरूंगा, अब किसी का अपमान नहीं करूंगा, अब कठोरता-क्रूरता का व्यवहार नहीं करूंगा--तब एक क्षण को स्वर्ग की ठंडी हवाएं तुम्हारे ऊपर बह जाती हैं। तुम्हारे अहंकार को बड़ी तृप्ति मालूम होती है, बड़ा अच्छा लगता है, बड़ा मीठा लगता है, स्वादिष्ट--कि तुम भी क्या अदभुत व्यक्ति हो! जहां सारी दुनिया सड़ रही है कामवासना में, क्रोध में, लोभ में, मोह में, वहां तुम अतिक्रमण कर गए!

मगर कोई बटन दबा ही देगा। और यहां इतने लोग हैं, कोई न कोई बटन दबा देगा। और बटन दबाने वालों को शायद पता भी न हो कि किसने तुम्हारी बटन दबा दी, चाहे उन्होंने बटन दबाई जान कर भी न हो, तुम्हारी दब जाएगी। जो आदमी रोज तुम्हें नमस्कार करता था रास्ते पर, आज अपनी धुन में चला गया, तुम्हें नमस्कार करना भूल गया--बस, उसने कुछ किया नहीं, तुम्हारे भीतर आग जल गई कि अच्छा, यह बच्चू अपने को क्या समझता है! इसको ठिकाने लगा कर रहूंगा! तुम्हारे भीतर अंगारे धधकने लगे कि यह ऐरा-गैरा-नत्थू-खैरा आज बिना नमस्कार किए चला गया! मुझे बिना नमस्कार किए चला गया!

राजस्थानी मैंने कहानी सुनी है। राजस्थान के गांव में एक सरदार था। राजस्थानी सरदार! गांव में उसने आज्ञा कर रखी थी कि कोई आदमी मेरे घर के सामने से मूंछ पर ताव देकर नहीं निकल सकता, सिर्फ मैं ही मूंछ पर ताव दे सकता हूं। तो जो भी निकले मेरे घर के सामने से, मूंछ नीची कर ले। और वह था आदमी उपद्रवी, दुष्ट था। और लोग जानते थे कि झंझट कौन करे! तो लोग मूंछ नीची करके निकलते थे। कुछ लोगों ने तो डर के मारे मूंछें ही कटा ली थीं; कभी भूल-चूक से, ख्याल न रहे और निकल गए, और यह दुष्ट ऐसा है कि फिर आव देखेगा न ताव, वहीं पिटाई करवा देगा।

गांव में एक नया-नया बनिया आया। जवान था। सुंदर मूंछें थीं उसकी। बड़ा ताव देकर पगड़ी-वगड़ी बांध कर चलता था। लोगों ने कहा कि भैया, मूंछें कटा लो पहले! इस गांव में अगर रहना है, मूंछें कटा लो। सरदार बिल्कुल पागल है। अगर उसने देख लीं तुम्हारी मूंछें, गर्दन उतर जाएगी। या तो मूंछें या गर्दन! जो तुम्हारा दिल हो।

बनिए ने कहा, देख लिए ऐसे सरदार! अभी वह भी जवानी में था और उसे कुछ पता भी नहीं था इस गांव का, कि मामला ऐसा बिगड़ जाएगा। जोश-खरोश में बात आ गई। उसने कहा कि आज ही जाता हूं। निकल गया सरदार के सामने से मूंछ पर ताव देता हुआ।

सरदार ने कहा, ठहर बनिए के बच्चे! कहां जा रहा है?

सरदार तो तलवार लेकर बाहर आ गया। बनिए ने भी सोचा कि यह झंझट बढ़ गई। इतना मैंने नहीं सोचा था कि मामला ऐसा होगा। मैं समझा गांव के लोग वाले यूं ही मजाक कर रहे हैं।

बनिए ने कहा, तो ठीक है। अब यही होना है तो हो जाए। तो मैं भी तलवार ले आऊं!

सरदार ने कहा, यह बात ठीक है।

और बनिए ने कहा कि एक काम और कर आऊं, जरा थोड़ी देर लगेगी, आप घबड़ाना मत, भागूंगा नहीं, अपने पत्नी-बच्चों को सफा कर आऊं। क्योंकि पता नहीं, हो सकता है मैं कट जाऊं, तो मेरे पत्नी-बच्चे क्यों दुखी हों! और मैं तो तुमसे भी कहूंगा कि तुम भी सफा कर आओ, क्योंकि पता नहीं तुम कट जाओ। अरे पत्नी-बच्चे क्यों भोगें?

सरदार तो सरदार, बात उसको भी जंची। आधा घंटे बाद बनिया आ गया मूंछें कटा कर। सरदार ने पूछा, तेरी मूंछें क्या हुईं?

उसने कहा, मैंने सोचा क्या झंझट करनी! पत्नी-बच्चों को मारो, तुमको मारो, क्या फायदा! चार मूंछ के बाल काट दिए, झंझट खतम हो गई। छोड़ो भी जी! जयराम जी!

सरदार ने कहा, अरे! और मैं अपने पत्नी-बच्चे खतम ही कर आया।

वह तुम्हारी मर्जी!

लोग तो जरा सी बात से आगबबूला हो जाएं। तो तुमने तय किया हो कि अब नहीं करूंगा और फिर जरा सा कोई मामला बिगड़ जाएगा--और बिगड़ ही जाएगा। इतनी भीड़-भाड़ है इस दुनिया में, किसी का पैर पर पैर पड़ गया, किसी का धक्का लग गया।

मेरे एक मित्र ने मुझे एक कार भेंट दी, बहुत वर्ष पहले। एक साल बाद वे मुझे मिलने आए। उन्होंने कहा कि मैं एक बात देखने आया हूं, आप मुझे गाड़ी में बिठाएं और पूरे गांव का चक्कर लगवा दें। मैंने कहा, ठीक। मैंने उन्हें पूरे गांव का चक्कर लगवा दिया। बस उन्होंने कहा कि मैं निश्चिंत हुआ। आपने, जो काम कोई नहीं कर सकता, वह करके दिखा दिया।

मैंने कहा, वह कौन सा काम? क्या आप समझते हैं कि गाड़ी ड्राइव करना कोई भारी काम है?

उन्होंने कहा, नहीं, यह सवाल नहीं है। मेरी पत्नी मुझसे सदा कहती है कि देखो, तुम गाड़ी क्या चलाते हो, गालियां बकते हो। और मेरा मानना यह है कि कोई आदमी ड्राइवर हो ही नहीं सकता बिना गाली बके। क्योंकि ऐसे-ऐसे दुष्ट सड़कों पर चल रहे हैं कि तुम भोंपू बजा रहे हो, वे हट ही नहीं रहे। अब गाली न बकोगे तो क्या करोगे? ऐसे-ऐसे ट्रक वाले कि तुम बजाए जाओ भोंपू पर भोंपू, वे हटने वाले नहीं। सरदार जी अपना ट्रक चला रहे हैं तो चला ही रहे हैं। वे सुनते ही नहीं। उन्होंने साफा भी ऐसा बांधा हुआ है कि कान वगैरह सब बंद! और भीतर-भीतर मंत्र पढ़ रहे हैं--वाहे गुरु जी का खालसा, वाहे गुरु जी की फतह! तो कहां सुनने वाले हैं! सत सिरी अकाल! फुरसत कहां है! तो गाली न दोगे तो क्या होगा? तो मैं यही देखने आया था कि आप ड्राइव करते हैं, गाली देना सीखे कि नहीं! आप नहीं सीखे, आपने गजब कर दिया!

इस भरी दुनिया में चारों तरफ हजारों लोगों की भीड़-भाड़ है, बचना बहुत मुश्किल है। किसी तरह बच-खच कर निकल भी आओ इधर-उधर से, घर आओगे, पत्नी कुछ कह देगी, पति कुछ कह देगा--बस बात में से बात निकल जाती है। बातों में से ऐसी बातें निकलती हैं कि पीछे लौट कर सोचो तो यही समझ में नहीं आता कि यह किस बात में से इतना बतंगड़ हो गया! पीछे कोई पूछे भी तो संकोच होता है बताने में कि भई क्या बताना!

मुल्ला नसरुद्दीन और उसकी पत्नी लड़ रहे थे। कोई तीन घंटे से चल रही थी बकवास। मुहल्ले के लोग थक गए। आखिर कुछ लोग आए और उन्होंने कहा कि भई, अब बंद भी करो, अब जो कुछ हो गया हो गया। क्या हम पूछ सकते हैं कि यह इतना झगड़ा किसलिए चल रहा है?

नसरुद्दीन ने कहा कि अब फजलू की मां से ही पूछ लो।

फजलू की मां ने कहा कि नहीं, तुम्हीं बताओ।

नसरुद्दीन ने कहा, तू ही बता दे।

फजलू की मां ने कहा, क्या खाक बता दूं! तीन घंटे हो गए, मुझे क्या अब ख्याल रहा कि किस बात से बात शुरू हुई थी! कोई नोट बुक लेकर बैठी हूं? बात में से बात निकलती गई, निकलती गई, अब कहां के कहां आ गए, अब उसका क्या!

यह जो पश्चात्ताप होता है, यह अहंकार को पुनर्स्थापित करना है। गिर गया अहंकार, फिर वही भूल कर दी जो नहीं करने का तय किया था। अब इस प्रतिमा को कैसे विराजमान करें? तो पश्चात्ताप कला है प्रतिमा को वापस विराजमान करने की, कि लो भई पश्चात्ताप किए लेते हैं, प्रायश्चित्त किए लेते हैं। हम दुखी हैं, बहुत दुखी हैं।

मगर उस दुख में भी जाल अहंकार का है। सभी धर्मों ने ये तरकीबें खोजीं। हिंदू धर्म में गंगा-स्नान कर आओ। यह ज्यादा सुविधापूर्ण तरकीब है। रोज-रोज क्या पश्चात्ताप करना, दो-चार साल में या बारह साल में जब कुंभ भरे, तो एक डुबकी मार आए। बारह साल का मामला खतम, फिर स्लेट खाली; अब दिल खोल कर फिर लिखो जो लिखना हो, गाली-गलौज, जो-जो मरजी आए। श्री गणेशाय नमः फिर से करो। और डर क्या है! गंगा मैया कोई सूख तो जाने वाली नहीं, फिर चले जाना बारह साल में एक दफा और डुबकी मार आना। और जो होशियार हैं, वे तो कहते हैं, मन चंगा तो कठौती में गंगा! वे कहते हैं, कहां जा रहे हो गंगा-वंगा, अरे कठौती में, यहीं दिल खोल कर रगड़ कर नहा लिया, मामला खतम हो गया। यहीं घर ही धो लो, कहां जाते हो! और वे जमाने गए जब लोग गंगा जाते थे, अब तो नल के पानी में गंगा आ रही है, घर-घर। बस नल की टोंटी के नीचे बैठ गए, सब साफ! फिर तुम वही करोगे।

कैथलिक कहते हैं कि जाकर पादरी के सामने प्रायश्चित्त कर आओ।

मैंने सुना कि मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन कैथलिक चर्च में चला गया। पादरी लोगों के प्रायश्चित्त सुन रहा था, वह भी कतार में खड़ा हो गया। अंदर चला गया। पादरी ने पूछा कि तुमने क्या पाप किया?

पादरी ऐसा परदे की ओट में रहता है, ताकि प्रायश्चित्त करने वाले को लाज-लज्जा न आए, सच्चा-सच्चा कह दे।

मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, अब आपसे क्या बताऊं, रात बहुत पाप हो गया। छोटा भी नहीं हुआ, बहुत पाप हो गया। एक स्त्री से नहीं तीन-तीन स्त्रियों से पाप किया कल रात। हे पिता, क्षमा करो!

पादरी ने कहा, तीन-तीन स्त्रियों से! यह तो बात ठीक नहीं। तुम्हें इसका दंड भुगतना पड़ेगा। तुम कसम खाओ कि रोज सुबह उठ कर बाइबिल का पाठ करोगे।

नसरुद्दीन ने कहा, अब आप बात ही छेड़ दिए तो मैं आपको बता दूं कि मैं कोई ईसाई नहीं हूं, न मैं कोई कैथलिक हूं।

तो पादरी ने कहा, फिर तुम यहां किसलिए आए पश्चात्ताप करने?

नसरुद्दीन ने कहा, अरे भई किसी को तो कहना ही था। दिल में एकदम कहने की चल रही थी। बिना कहे मन नहीं मान रहा था। किसी और को कहो, झंझट हो जाए। सो मैंने सोचा यह जगह अच्छी है। तुम परदे के पीछे, न तुम मुझे देख रहे, न मैं तुम्हें देख रहा। हूं तो मैं मुसलमान। बाइबिल-माइबिल मुझे पढ़नी नहीं। यह तो जो पाप किया है, वह बिना कहे नहीं रहा जाता।

मैंने सुना है एक और स्त्री के बाबत कि वह हर सप्ताह आती, हर रविवार, और पाप का वर्णन करती। पादरी भी थक गया, क्योंकि वह वही पाप, एक पाप जो उसने कई साल पहले किया था। एक सप्ताह, दो सप्ताह, साल, दो साल... आखिर पादरी ने कहा कि बाई, तू और भी कुछ करेगी कि वही एक पाप! और उसको कब तक... बार-बार पश्चात्ताप करती है!

वह महिला बोली कि मुझे उसकी याद भी करने में बड़ा मजा आता है। जब भी किसी को सुनाती हूं, अहा! एकदम गदगद हो जाती हूं! सो मैं तो आऊंगी। मैं तो हर रविवार को ही आऊंगी। मैं तो पश्चात्ताप करूंगी।

पश्चात्ताप करने वाले भी अजीब-अजीब लोग हैं! किस-किस कारण कर रहे हैं, यह कहना कठिन है। कोई इसलिए कर रहा है कि उसका अहंकार प्रतिष्ठित हो जाए। कोई इसलिए कर रहा है कि पश्चात्ताप करने में भी मजा आता है, क्योंकि वह वापस उसी बात को लौटा-लौटा कर दोहराना है, देखना है। जैसे कोई खाज को खुजलाए। जानता है कि दुख होगा, मगर खुजलाने में मिठास भी मालूम होती है, बड़ा मीठा-मीठा लगता है दर्द।

एक दुकान के कारिंदे की किसी बड़े ग्राहक से कहा-सुनी हो गई। दुकानदार ने कारिंदे को मजबूर किया कि वह ग्राहक से माफी मांगे। कारिंदे ने मुश्किल से मंजूर किया। नौकरी बचानी थी सो मंजूर करना पड़ा। और उसे पता भी नहीं था कि ग्राहक इतना धनवान है कि मालिक मजबूर ही कर देगा कि क्षमा मांगनी पड़ेगी। सो उसने ग्राहक को फोन किया। कहा, क्या खान साहब घर पर हैं?

खान साहब ने कहा, हां, मैं बोल रहा हूं।

तो उसने कहा, मैं हीरा होजरी का मैनेजर हूं।

कहिए! खान साहब बोले।

आज सुबह मैंने आपसे कह दिया था न कि जाओ जहन्नुम में?

हां, तो?

तो मत जाना भाई। कोई जाने की जरूरत नहीं है।

पश्चात्ताप कर रहे हैं लोग! पश्चात्ताप भी पोता-पाती है। अपने को पोत-पात कर फिर रंग-रोगन करके खड़ा कर लिया। कहने को हो गया कि पश्चात्ताप कर लिया, कि देखो हम कोई साधारण आदमी नहीं हैं कि हमने गलती की और भूल को स्वीकार न किया! भूल स्वीकार कर ली, पश्चात्ताप भी कर लिया, फिर वापस अपने स्थान पर खड़े हो गए। फिर जहां के तहां सिंहासन पर विराजमान हो गए।

इसलिए मैं कहता हूं कि प्रायश्चित्त कोई वास्तविक धार्मिक बात नहीं है। यह तुम्हारी कामवासना, तुम्हारी क्रोध-वासना, तुम्हारा लोभ, मोह, उनका ही शीर्षासन करता हुआ रूप है।

सच्चा धार्मिक व्यक्ति पश्चात्ताप नहीं करता। फिर सच्चा धार्मिक व्यक्ति क्या करता है? सच्चा धार्मिक व्यक्ति अपने क्रोध को देखता है, समग्रता से देखता है, साक्षी-भाव से देखता है। और उस देखने में ही मुक्त हो जाता है। पश्चात्ताप नहीं करता कि मुझसे बुरा हुआ। अब जो हुआ, हुआ। बुरे और भले का क्या प्रयोजन है अब! अब जो हुआ, उसे मिटाया नहीं जा सकता, पोंछा नहीं जा सकता। किए को अनकिया नहीं किया जा सकता। तो जो हुआ है, उसे गौर से देखता है। और कसमें नहीं खाता कि अब न करूंगा; सिर्फ गौर से देखता है; देख कर छोड़ देता है बात वहीं के वहीं। कसमें खाईं कि तुम फिर करोगे। क्योंकि कसमें भी तुम पहले से खाते रहे हो।

एक आदमी ने मुझसे आकर कहा कि मैं महाक्रोधी हूं, बहुत बार कसमें खा चुका, छूटता ही नहीं। कसमें खा-खा कर थक गया, फिर-फिर हो जाता है। आप मुझे कुछ रास्ता बताओ। मैंने कहा, तुम एक काम करो, पहले कसमें खाना छोड़ दो। उसने कहा, इससे क्या होगा? कसमें खा-खा कर क्रोध नहीं छूटा, तो कसमें छोड़ने से क्या होगा? मैंने कहा, तुम इतना तो करके दिखाओ। तीन महीने बाद आना। तीन महीने तक कसम मत खाना।

वह तीन ही दिन बाद आ गया। उसने कहा, यह बहुत मुश्किल है। मैं कसमें खाना भी नहीं छोड़ सकता। जैसे ही गलती होती है, फौरन कसम भी आती है।

तो मैंने कहा, तुम समझे? दोनों ही गलतियां हैं, जुड़ी हैं साथ ही साथ, अलग-अलग नहीं हैं। तुम अब तक यही सोचते रहे कि कसमें खाने से क्रोध चला जाएगा, तुम गलती में थे। कसम क्रोध का ही हिस्सा है; वह उसी के पीछे-पीछे आई, उसकी ही छाया है। वह छूट कैसे जाएगा? तुम कसमें तक नहीं छोड़ सकते, और क्या छोड़ोगे?

एक मित्र यहां आते हैं। उनकी पत्नी मेरे पास बार-बार आकर कहती थी, इनकी शराब छुड़वा दो। मैंने कहा, ये आदमी भले हैं। और अगर थोड़ी-बहुत पी-पा लेते हैं, तो तुझे क्या परेशानी है?

मगर पता नहीं स्त्रियों को क्या ख्याल है कि उनका जन्म पतियों के सुधार के लिए हुआ है! उनका जीवन ही इस पर निछावर है! अपनी तो फिक्र ही नहीं, बस पति को ठीक करना है!

फिर मैंने कहा कि ठीक हो गए पति तो पति स्वर्ग जाएंगे, तू कहां जाएगी? भटकोगी नरक में। तू अपनी फिक्र कर, इनको अपनी फिक्र करने दे। और मैंने कहा कि तुझे मालूम है कि स्वर्ग में शराब के चश्मे बहते हैं? ये थोड़ा सा अभ्यास रखेंगे तो अच्छा ही रहेगा।

उसने कहा, आप भी क्या बातें कर रहे हैं! और मेरे पति के सामने ऐसी बातें कर रहे हैं! वे वैसे ही मेरी जान खाते हैं और अब और मेरी जान खाएंगे कि आपने भी उनका समर्थन कर दिया।

मैंने कहा, तू एक काम कर। कितने दिन से तू छुड़ा रही है?

उसने कहा, तीस साल हो गए। जब से विवाह हुआ है, बस यही किलकिल-दांती। एक क्षण सुख से नहीं बीत पाया। और जब से ये आपको सुनने लगे हैं, और मुश्किल हो गई है। रात को पीकर आते हैं तो आपका पूरा प्रवचन दोहराते हैं। दिन भर टेप सुनते हैं, रात को पीकर आते हैं, तीन-तीन बजे उठा-उठा कर कि सुन! और वही टेप कई दफे सुना चुके, टेप भी सुन चुकी, वही आपका व्याख्यान। और गजब के हैं, जब पी जाते हैं तो बिल्कुल शब्द-शब्द दोहराते हैं! मुझे किसी तरह से... इनकी छुड़वा दो, मेरी जिंदगी खराब हो गई।

मैंने कहा, तू एक काम कर, तू इनसे कहना छोड़ दे। तीस साल से तू कह रही है, नहीं छुड़ा पाई। तू इनसे कहना छोड़ दे।

पांच-सात दिन बाद ही उस महिला ने आकर कहा कि नहीं छोड़ सकती।

मैंने कहा, अब तू जरा सोच। तू अपने पति की हालत सोच। जो आदमी तीस साल से या उससे भी ज्यादा समय से शराब पी रहा है, तू आई उससे पहले से पी रहा होगा, उससे तू छुड़वाने की कोशिश कर रही है और तू इतना भी नहीं कर सकती कि कहना छोड़ दे! तो तेरा पति शराब पी रहा है और तू यह कहने का मजा ले रही है। तू भी शराब पी रही है! तू यह मजा नहीं छोड़ सकती कि मैं पति से ऊपर। तू इनको रोज चारों खाने चित्त करने का मजा लेती है। चार आदमियों के सामने तू इनको नीचा दिखाने का मजा लेती है। हर कहीं ले जाती है। कितने साधु-संन्यासियों के पास ले गई?

उसने कहा, आपको यह कैसे पता चला?

पता चलेगा क्यों नहीं, क्योंकि यह स्त्रियों का गुणधर्म है--पतियों को जहां पकड़ो वहां ले जाओ। कि चलो, महाराज आए हैं, मुनि महाराज आए हैं, महात्मा जी आए हैं, चलो तुम्हें वहां ठीक करवाएं। तू इसी आशा में इनको मेरे पास लाई थी। तू गलत जगह आ गई। मैं इनसे नहीं कह सकता कि छोड़ो। जब तू नहीं छोड़ सकती कहना, कहने में क्या रखा है, तो ये तो बेचारे तीस साल के अभ्यासी हैं, इनका योगाभ्यास तो देख! और इनका संकल्प तो देख कि तू पीछे पड़ी है... और महिला मजबूत है और पति बेचारे दुबले-पतले हैं... इनका संकल्प तो देख, इनकी हिम्मत तो देख! इनकी बहादुरी तो देख! कोई और होता तो अभी तक जैन मुनि हो गया होता, कभी का भाग गया होता। यह तो स्त्री-जाति के कारण ही तो इतने महात्मा हैं दुनिया में, नहीं तो हों कैसे! स्त्री-जाति ऐसा भगाती है उनको कि वे बेचारे एकदम महात्मा हो जाते हैं, क्योंकि उनको कोई रास्ता ही नहीं मिलता और बचने का।

तलाक की इस देश में सुविधा नहीं थी। अगर तलाक की सुविधा होती तो इतने महात्मा नहीं होते। इसीलिए पश्चिम में इतने महात्मा नहीं हैं। स्वभावतः, और भी उपाय है बचने का; यहां तो एक ही उपाय था बचने का कि महात्मा हो जाओ, अगर छूटना है।

तो मैंने कहा, यह इनकी हिम्मत तो देख! और हो सकता है, तू इतना पीछे पड़ी है, इसलिए ये पीए जाते हैं। शायद उसी पीने की वजह से ये टिके भी हैं, नहीं तो ये टिकते भी नहीं। तू मजबूत दिखती है। तू कहना छोड़ दे।

वह बोली, यह मुझसे नहीं हो सकता।

मैंने कहा, तब तू फिर यह समझ ले कि तुझसे कहना नहीं छूटता, तो इनसे पीना कैसे छूटेगा? इनकी लत तो गहरी है। असंभव है। तू जब इनसे कहना छोड़ देगी तो मैं इनसे कहूंगा कि पीना छोड़ दो। तू अगर कहना नहीं छोड़ेगी तो मैं इनसे कहने वाला नहीं हूं।

न उसने अब तक कहना छोड़ा है--तीन साल हो गए इस बात को हुए भी--न मुझे कहने की नौबत आई। और मैं नहीं सोचता कि आने वाली है नौबत। वह कहना नहीं छोड़ सकती। वह कहती है, वश के बाहर हो जाता है, इनको देखते से ही इनको सुधारने का भाव उठता है। ऐसे चेहरे से वे भोले-भाले आदमी हैं। उठता होगा भाव। भोले-भाले आदमियों को देख कर एकदम कई लोगों के मन में भाव उठता है कि इनको और ठीक करो।

पश्चात्ताप सिखाया है पंडितों-पुरोहितों ने। यह तुम्हें ठीक करने का मजा लेने वाले लोगों की तरकीब है। जानते हैं वे भी कि पश्चात्ताप से तुम ठीक होओगे नहीं। इसलिए कोई फिक्र भी नहीं है। हालांकि पश्चात्ताप करवा-करवा कर तुम्हें दीन-हीन कर देते हैं, तुम्हारे मन में हीनता का भाव पैदा कर देते हैं। और हीनता का भाव पैदा हो गया कि बस तुम्हारे जीवन में आत्मा के जन्मने की संभावना ही समाप्त हो गई।

तुम्हारे धर्मगुरुओं ने तुम्हें एकदम हीन बना दिया है। और हर छोटी-बड़ी चीज से हीन बना दिया है। सिगरेट पीओ तो पाप। पान खाओ तो पाप। तंबाकू चबाओ तो पाप। अच्छे कपड़े पहन लो तो पाप। तेल-फुलेल लगा लो तो पाप। पाप ही पाप! उनका कुल काम इतना है कि वे तुम्हारी हर चीज को पाप बता दें। बस तुम किसी तरह हीन बने रहो, तुम्हारी हीनता में उनका महात्मापन है। तुम जितने हीन, वे उतने बड़े महात्मा।

मैं तुम्हें हीनता नहीं सिखाता। मैं कहता हूं, तुम जैसे हो शुभ हो। अपने को स्वीकार करो। पश्चात्ताप नहीं। पश्चात्ताप क्या करोगे? पश्चात्ताप से कब कौन बदला है! तुम जैसे हो, अपने को स्वीकार करो। हां, अपने प्रति जागो। जागरण सिखाता हूं--प्रायश्चित्त नहीं। होश से भरो। अपने प्रति ध्यानपूर्वक, क्या कर रहे हो, क्या सोच रहे हो, क्या बोल रहे हो--इस सबके साक्षी बनो।

उस साक्षी बनने में क्रांति घटित हो जाती है। न कुछ छोड़ना पड़ता, न कुछ पकड़ना पड़ता। जो व्यर्थ है, वह छूट जाता है। जो सार्थक है, वह शेष रह जाता है।

साक्षी के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है।

एक युवक कैथलिक पादरी के सामने प्रायश्चित्त कर रहा था। उसने कहा, बहुत पाप हो गया। एक परायी स्त्री के साथ संबंध हो गया है।

पादरी ने पूछा, उसका नाम?

युवक ने कहा कि आप नाम न पूछें, नाम मैं न बता सकूंगा। एक तो वह दूसरे की स्त्री, और दूसरे मैं उसे वचन दे चुका हूं। सिर्फ मुझे क्षमा करें और परमात्मा से मेरे लिए प्रार्थना करें कि मुझे क्षमा मिले। नाम मैं न बता सकूंगा।

पादरी ने कहा, चंदूलाल की प्रेयसी?

उस युवक ने कहा, नहीं।

पादरी ने कहा, ढब्बू जी की पत्नी?

उसने कहा कि नहीं, बिल्कुल नहीं।

पादरी ने कहा, मटकानाथ ब्रह्मचारी की रखैल?

नहीं, बिल्कुल नहीं।

तो फिर कौन? पादरी ने कहा।

उस युवक ने कहा, वह मैं बता ही नहीं सकता।

तो पादरी ने कहा, फिर मैं भी क्षमा नहीं कर सकता।

युवक ने कहा, जैसी मरजी!

मगर वह बड़ा प्रसन्न बाहर निकला। बाहर दूसरा युवक खड़ा था, उसका साथी। उसने कहा, बड़े प्रसन्न नजर आ रहे हो! क्या बात है? प्रायश्चित्त हो गया? प्रार्थना स्वीकार हो गई?

उसने कहा, प्रायश्चित्त वगैरह तो नहीं हो पाया, प्रार्थना स्वीकार भी नहीं हुई। मगर तीन औरतों के नये पते मिल गए। अब प्रायश्चित्त फिर करेंगे। अभी पहले इन तीन औरतों को निपटाएं। अरे यह चर्च कोई जाता थोड़े ही है! यह पादरी कोई मरा थोड़े ही जाता है! और मर जाए तो दूसरा पादरी। मगर ये तीन औरतें... अब मैं जा रहा हूं। और जब इसने इन तीन का नाम लिया तो उसका मतलब साफ है कि और लोग भी इन तीन के संबंध में पश्चात्ताप कर चुके हैं। सो रास्ता साफ है, बात बन सकती है। जरा उपाय करने की जरूरत है।

आदमी जब तक मूर्च्छा में है, तब तक क्या प्रायश्चित्त करोगे! क्या प्रायश्चित्त करवाओगे! वह प्रायश्चित्त में से भी तरकीबें निकाल लेगा। वह पुण्य करने जाएगा और पाप के इंतजाम करके आ जाएगा। मूर्च्छा टूटनी चाहिए।

इसलिए मेरा जोर सिर्फ एक बात पर हैः मूर्च्छा छोड़ो! बाकी उलझनों में मत पड़ो। ध्यान को जगाओ। ध्यान का दीया जलने दो, अंधेरा अपने से कट जाता है।

आज इतना ही।

दसवां प्रवचन

प्रार्थना की कला

पहला प्रश्नः ओशो,

हे अनंत! अपने में ले ले!
तुममें मिल जाऊंगा अनजान
मिल कर तेरे साथ हृदय का
पूरा कर लूंगा अरमान!
ओशो, यही प्रार्थना है।

चितरंजन, प्रार्थना है तो खाली नहीं जाएगी--बस प्रार्थना होनी चाहिए। लोग कहते तो हैं कि प्रार्थना है, प्रार्थना होती नहीं। शब्द में ही होती है। इसीलिए चूकती है। प्रार्थना हृदय से आविर्भूत हो तो प्रकट होते ही, या कि प्रकट होने के पूर्व ही पूरी हो जाती है। प्रार्थना में ही उसकी पूर्णता छिपी है। प्रार्थना के अतिरिक्त कोई और प्रार्थना की पूर्णता नहीं है।

प्रार्थना शब्द को थोड़ा समझना। यह शब्द उन थोड़े से शब्दों में से एक है, जिनकी कीमत नहीं आंकी जा सकती। क्योंकि प्रार्थना के ऊपर बस फिर परमात्मा है, और कुछ भी नहीं। प्रार्थना जैसे उसके द्वार की कुंजी है। प्रार्थना हाथ लग गई तो परमात्मा लगा ही लगा। प्रार्थना हाथ लगी, फिर कोई परमात्मा से चूका नहीं। जो चूके हैं परमात्मा से, वे प्रार्थना से चूकने के कारण चूके हैं।

प्रार्थना का अर्थ मांगना नहीं होता। मांगा कि प्रार्थना झूठी हो गई।

लेकिन हमने तो प्रार्थना का यही अर्थ मान रखा है; मांगने वाले को हम प्रार्थी कहते हैं और प्रार्थना का प्रयोजन ही मांगना होता है। लोगों को जब कुछ मांगना होता है तभी प्रार्थना करते हैं। इसलिए उनकी प्रार्थना का न तो कुछ अर्थ है, न कोई सार है। उनकी प्रार्थना निस्सार है। और बार-बार प्रार्थना करके जब व्यर्थ जाए तो स्वभावतः शंकाएं उठती हैं, संदेह उठते हैं। प्रार्थना जब पूरी न हो तो परमात्मा का प्रमाण भी कैसे मिले! प्रार्थना की पूर्णता में ही तो उसका प्रमाण है। कोई तर्क तो उसे सिद्ध कर सकता नहीं। बस प्रार्थना में जो अनुभव होता है, उसके अतिरिक्त उसे सिद्ध करने का कोई उपाय नहीं है। तो फिर धीरे-धीरे प्रार्थना टूटती है, खंडित होती है, नहीं सुनी जाती; तो परमात्मा पर से आस्था उठ जाती है।

इस सदी में परमात्मा से आस्था उठ जाने का कारण यही हैः लोग प्रार्थना की कला भूल गए हैं। उस कला का पहला सूत्र हैः मांगना मत, देना। परमात्मा से क्या मांगना है? उसने इतना दिया है! जीवन दिया है, और क्या चाहिए? चैतन्य दिया है, और क्या चाहिए? प्रेम दिया है, प्रेम की क्षमता दी है, और क्या चाहिए? इतना सौंदर्य दिया है, इतना सुंदर विश्व दिया है!

प्रार्थना अगर मांग बनी तो उसका अर्थ हुआः शिकायत! इतना काफी नहीं है, कुछ और चाहिए। प्रार्थना होनी चाहिए धन्यवाद, कि जो दिया वह मेरी पात्रता से ज्यादा है। कोई मेरी पात्रता तो नहीं थी कि मुझे जीवन मिले। कोई मेरी पात्रता तो नहीं थी कि इतने फूल मेरे जीवन में झरें, इतने गीत मेरे जीवन में लगें! यह मेरी कमाई तो नहीं थी कि चांद-तारों से भरा हुआ यह आकाश मुझे उपलब्ध हो! यह हृदय प्रेम-पगा! यह प्राणों का

संगीत! यह ध्यान की अनाहत ध्वनि! ये चैतन्य के कमल, ये मेरे भीतर खिलें, ऐसी मेरी कोई कमाई तो न थी। न मालूम किन अनजान हाथों का प्रसाद है! कृतज्ञता में झुक जाने का नाम प्रार्थना है। धन्यवाद में झुक जाने का नाम प्रार्थना है।

और चितरंजन, ऐसी प्रार्थना तुम्हारे भीतर उमग रही है। पहले-पहले अंकुर आने शुरू हुए हैं। जैसे हरी-हरी दूब अभी-अभी वर्षा के नये-नये झोंकों से पृथ्वी से झांकने लगी हो! जल्दी ही पृथ्वी हरियाली से भर जाएगी। ऐसी ही नई-नई दूब प्रार्थना की तुम्हारे भीतर उगनी शुरू हुई है। जरूर पूरी होगी। तुम हरे होकर रहोगे। तुम्हारे भीतर नये जीवन का सूत्रपात हो चुका, उसे रोकने की अब कोई शक्ति में क्षमता नहीं है।

प्रार्थना इतनी ऊर्जापूर्ण घटना है कि शुरू भर हो जाए, उसकी चिनगारी भर पड़ जाए, कि फिर तो पूरे जंगल में आग लग जाती है। चिनगारी पड़ गई है। तुम्हारे भीतर धन्यवाद का भाव उठना शुरू हुआ है। तुम मांग नहीं रहे हो। तुम अपने को समर्पित करना चाहते हो।

तुम कहते होः "हे अनंत! अपने में ले ले!"

बस प्रार्थना यही हो सकती है कि जैसे नदी अपने को सागर में खो दे। कितनी दूर से यात्रा करके नदी आती है! पहाड़ों की ऊंचाइयों से उतरती है। न मालूम कितने पत्थरों को काट कर, मार्ग के रोड़ों को हटा कर, सागर की तलाश करती हुई, नाचती, गाती, पैरों में घूंघर बांधे, दुल्हन की भांति, अज्ञात पिया से मिलने! कहीं गहरे में प्रीतम छबि नैनन बसी! ठीक-ठीक साफ भी नहीं है शायद, कहां जा रही है, क्यों जा रही है, कोई अनजान आकर्षण--अज्ञात का, सागर का निमंत्रण सुनाई पड़ रहा है। भागी जाती है। और जब तक सागर में न मिल जाए तब तक रुकती नहीं, ठहरती नहीं।

धार्मिक व्यक्ति का जीवन सरिता का जीवन है, सरोवर का नहीं। सरोवर तो सड़ता है, क्योंकि अपने में ही बंद, अपने अहंकार की सीमाओं में आबद्ध। सरोवर तो बड़ा कंजूस है, बड़ा कृपण है। कुछ देता नहीं। लेकिन सूखता है। जो देगा नहीं वह सूखेगा, धूप में उड़ेगा। कीचड़ ही रह जाएगी जल्दी। कीचड़ से बदबू उठेगी, और कुछ भी पीछे न छूट जाएगा। सरोवर भयभीत है, तो अपने को बांध कर जी रहा है।

सरोवर, गृहस्थ के जीने का ढंग है। और सरिता, संन्यासी के जीवन का ढंग है। और कुछ फर्क नहीं, फर्क भीतरी है। संन्यासी में बहाव होता है, प्रवाह होता है। वह अपने को अनंत में मिला देने को आतुर होता है। वह मूलस्रोत के उदगम में चलता है, कि हम उसी में लीन हो जाएं जिससे हमारा आना हुआ है। यह लहर उसी सागर में डूब जाए जिससे उठी है। बस प्रार्थना यही हो सकती है।

पूरी होगी, जरूर पूरी होगी। अन्यथा नहीं हुआ है कभी। निरपवाद रूप से प्रार्थना पूरी होती है--बस होनी चाहिए।

दूसरी बात ख्याल में रहे कि लोग अक्सर प्रार्थना में रटे-रटाए सूत्रों को दोहराते हैं। कोई गायत्री मंत्र पढ़ रहा है, कोई नमोकार मंत्र पढ़ रहा है, कोई जपुजी पढ़ रहा है, कोई कुछ, कोई कुछ! प्रार्थना हार्दिक होनी चाहिए, उधार नहीं, बासी नहीं। किन्हीं और के शब्दों को दोहराने की जरूरत नहीं है। प्रेम क्या इतना नपुंसक है कि अपने शब्द भी न खोज सके? और अगर अपने शब्द न हों तो कम से कम अपना मौन तो है ही! पर अपना होना चाहिए। वह शर्त भूले न। कितने ही सुंदर शब्द हों, अगर वे पराए हैं, तो थोथे हैं। और निःशब्द मौन भी बहुत अर्थपूर्ण है, अगर अपना है। अर्थ आता है अपने से! निजता से अर्थ का जन्म होता है।

तो कभी बंधी-बंधाई प्रार्थनाएं मत दोहराना। वही लोग कर रहे हैं--मंदिरों में, मस्जिदों में, गिरजों में, गुरुद्वारों में। बंधी-बंधाई प्रार्थनाएं दोहराई जा रही हैं। कम से कम प्रार्थना को तो जूठा मत स्वीकार करो। तुम

दूसरों के जूते भी पहनने को राजी नहीं होते। तुम दूसरों के वस्त्र भी पहनने को राजी नहीं होओगे। और तुम दूसरों की प्रार्थना ओढ़ने को राजी हो जाते हो! न लाज, न शर्म, न संकोच! शरीर पर भी दूसरों के वस्त्र ओढ़ने में तुम्हें लगता है अपमानजनक। किसी के जूते पहनने में भी तुम्हें पीड़ा होगी। क्या तुमने अपना आत्मगौरव इतना खो दिया है कि आत्मा को वस्त्र पहनाओगे औरों के? फिर वे चाहे कितने ही सुंदर हों!

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन को उसके एक मित्र ने कहा कि क्यों तुम अपने बाप को बदनाम कर रहे हो? एक तुम्हारे बाप थे, कपड़ों के ऐसे शौकीन थे, सुंदर से सुंदर वस्त्र पहनते थे, कीमती से कीमती वस्त्र लाते थे। तुम्हारे पास आज धन भी ज्यादा है, इतना तुम्हारे बाप के पास कभी था भी नहीं, सुविधा भी ज्यादा है। और तुम कहां के चीथड़े पहने फिरते हो! तुम्हें शर्म नहीं आती?

मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, क्या बात कर रहे हो! अरे यह वही कोट है जो मेरे पिताजी पहना करते थे। चीथड़े कहते तुम्हें शर्म नहीं आती?

पिताजी को मरे भी तीस साल हो गए, वही कोट पहना हुआ है।

लेकिन तुम गायत्री मंत्र जब दोहरा रहे हो तो तुम्हें पता है कि जब यह पहली बार किसी के हृदय से आविर्भूत हुआ होगा, उस घड़ी को बीते कितने हजार साल हो गए! तब यह स्वस्फूर्त था। तब इसमें ताजगी थी सुबह की ओस की। तब इसमें नये-नये खिले फूल की गंध थी। जब यह किसी ऋषि के हृदय में जागा था, तो यह ऋचा थी। और अब? अब सिर्फ तोतारटंत है।

अपनी गायत्री को जगने दो। परमात्मा तुम्हारे भीतर भी गाने को उतना ही राजी है जितना किसी और के भीतर गाया है। तुम्हारी गायत्री को पैदा होने दो।

इसलिए ध्यान रखना, जब भी प्रार्थना में झुको, तो चाहे कितने ही साधारण शब्द हों, लेकिन अपने हों। और अपने शब्दों को भी रोज-रोज मत दोहराना, क्योंकि वे भी बासे हो जाते हैं। कल के शब्द कल गए, कल बीता सो बीता। आज सुबह जब सूरज को देखो तो कल के शब्दों को बीच में मत लाना। क्या तुम मर गए हो? क्या कल का उत्तर आज किसी भी अर्थ में जीवंत हो सकता है? तुम अभी स्वयं जी रहे हो, आज फिर गीत उठने दो, आज फिर प्रार्थना जगने दो! जब झुको तब उस क्षण की अनुभूति को ही प्रकट होने दो। तब तुम्हारी प्रार्थना में भी प्रवाह होगा। तब तुम्हारी प्रार्थना भी रोज-रोज बदलेगी।

एक होशियार वकील रोज रात को सोने के पहले आकाश की तरफ देखता और कहता प्रभु से कि पढ़ लो! उसने अपने बिस्तर के पीछे, जिस धर्म को मानता था उसकी प्रार्थना छपवा कर टांग रखी थी। रोज-रोज क्या कहना! अरे तुम खुद ही पढ़े-लिखे हो, पढ़ लो!

मगर मैंने इससे भी ज्यादा होशियार वकील की घटना सुनी है कि उसने इतना भी महंगा काम नहीं किया था कि छपवा कर प्रार्थना टांगे। वह तो रोज बिस्तर में घुसने के पहले कहता थाः डिट्टो! और कंबल के नीचे हो जाता था। क्या जरूरत रोज-रोज वही कहने की! जो कल कहा था--वही।

मगर वही तुम कर रहे हो। तुम चाहे डिट्टो न कहो, मगर अगर गायत्री तुमने वही पढ़ी जो कल पढ़ी थी और परसों भी पढ़ी थी, और तुम्हारे पिता ने भी पढ़ी थी और उनके पिता ने भी, और पांच हजार साल से पढ़ी जा रही है--तो तुम डिट्टो ही कह रहे हो। वकील कुछ गलती नहीं कर रहा था। वकील था, होशियार था। तुम नासमझ हो, नाहक पूरा दोहरा रहे हो।

प्रार्थना तुम्हारी हो, तुम्हारी निजता से उठे। कुछ तुम्हारी निजता का रंग उस पर होना चाहिए। अद्वितीयता होनी चाहिए। परमात्मा ने प्रत्येक व्यक्ति को अद्वितीय बनाया है। वह दोहराता नहीं। दोबारा दो

एक जैसे व्यक्ति नहीं बनाता। बस एक को एक ही बार बनाता है। न तुम्हारे जैसा व्यक्ति पहले कभी हुआ, न आज है, न कभी आगे होगा। परमात्मा को पुनरुक्ति भाती ही नहीं, बहुत मौलिक सर्जक है। उस मौलिक सर्जक के साथ अगर संबंध जोड़ना हो तो थोड़ी मौलिकता सीखनी जरूरी है। इसलिए बंधे-बंधाए सूत्रों से प्रार्थना नहीं होती। उनसे गंदे डबरे पैदा होते हैं। उनसे हिंदू, मुसलमान, ईसाई, जैन, बौद्ध पैदा होते हैं--गंदे डबरे! उनसे धार्मिक व्यक्ति पैदा नहीं होता।

और क्या मंदिरों में जाना है! क्या मस्जिदों में जाना है! अगर यह सारा अस्तित्व उसका मंदिर नहीं, उसकी मस्जिद नहीं, तो आदमी के बनाए हुए मंदिर उसके मंदिर हो सकते हैं? क्या काबा! क्या काशी! क्या गिरनार! जहां तुम झुके, जहां हृदय से आविर्भूत भाव उठा, जहां तुम्हारा गीत गुनगुनाया, जहां तुम नाचे मस्त होकर, चितरंजन--वहीं काशी है, वहीं काबा है। जहां भक्त है वहां भगवान है। भक्ति में भगवान है। जहां प्रार्थना है वहां परमात्मा है। प्रार्थना ही परमात्मा के आगमन की खबर है, उसकी पगध्वनि है।

और तीसरी बातः जरूरी नहीं है कि परमात्मा से तुम कुछ कहो ही। क्या जरूरी है कि कुछ कहो? ज्यादा जरूरी है कि कुछ सुनो। इस बात को ख्याल में लेना। यह प्रार्थना का प्राण है। लोग सोचते हैं कि कुछ कहेंगे तब प्रार्थना होगी। मैं तुम्हें कहना चाहता हूं कि सुनोगे तब प्रार्थना होगी। चुप हो जाओ, सुनो। परमात्मा बोल रहा है। तुम्हारे भीतर भी बोल रहा है। तुम्हारे हृदय की किसी अतल गहराई से उसकी आवाज आ रही है। मगर तुम इतने खोए हो अपने विचारों में, इतना कोलाहल तुमने पैदा कर रखा है कि कहां सुनाई पड़े! नक्कारखाने में तूती की आवाज हो गई है। तुम इतने बैंड-बाजे बजा रहे हो! परमात्मा तुम्हें पुकार रहा है। तुम्हीं उसे नहीं खोज रहे हो, परमात्मा भी तुम्हें खोज रहा है। मगर तुम मौजूद ही नहीं हो। तुम कभी अपने घर पाए ही नहीं जाते, तुम हमेशा कहीं और हो। तुम जहां हो वहां नहीं हो, और कहीं भी हो सकते हो।

चुप हो जाओ। चुप्पी से बड़ी और क्या प्रार्थना है! इसलिए इस तीसरे सूत्र में ध्यान और प्रार्थना एक ही हो जाते हैं। ध्यान का अर्थ है मौन हो जाना। और प्रार्थना भी अपनी परम अर्थवत्ता में मौन हो जाती है। प्रार्थना शुरू होती है परमात्मा से बोलने से और अंत होता है उसका--परमात्मा बोले और मैं सुनूं। तुम कुछ कहो, इतना निवेदन प्रार्थना करती है और फिर चुप होकर सुनती है।

चितरंजन, तुम कहते हो--

"हे अनंत! अपने में ले ले! तुममें मिल जाऊंगा अनजानमिल कर तेरे साथ हृदय कापूरा कर लूंगा अरमान!"

उससे बिना मिले हृदय की अभीप्सा पूरी होती भी नहीं। उससे मिलन में ही मिटना भी है और पाना भी है। उससे मिलना मृत्यु भी है और नव जीवन भी। तुम जैसे हो ऐसे तो मिट जाओगे। तुम्हारी सीमाएं खो जाएंगी, तुम्हारा रूप-रंग-रेखा, तुम्हारी परिभाषा खो जाएगी। तुम भी उसी जैसे अपरिभाष्य हो जाओगे, उसी जैसे अनिर्वचनीय हो जाओगे, उसी जैसे अथाह-अगम हो जाओगे। बूंद मिट जाएगी, तभी तो सागर हो सकेगी। और सागर हो जाएगी तो फिर बूंद कहां!

तुम मिटने की तैयारी करो। परमात्मा तो कभी भी उतर आने को राजी है। हम खाली करें सिंहासन। हम सिंहासन पर विराजमान हैं। हम अपने भीतर स्वयं से इतने भरे हैं कि अगर परमात्मा अभी आना भी चाहे तो वहां कहीं कोई जगह नहीं है। न मालूम क्या-क्या कचरा-कूड़ा भर रखा है! उससे अपने को खाली करना है।

जो व्यक्ति शून्य होने को राजी है, वह पूर्ण को पाने का अधिकारी हो जाता है। यही प्रार्थना, यही पूजा, यही आराधना, यही ध्यान, यही समाधि--सिर्फ नामों के भेद हैं।

दूसरा प्रश्नः ओशो, मैं युवा था तो कभी मृत्यु का विचार भी नहीं करता था और अब जब वृद्ध हो गया हूं तो मृत्यु सदा ही भयभीत करती रहती है। मैं क्या करूं? क्या मृत्यु से छुटकारा संभव है?

रामनाथ, मृत्यु से तो छुटकारा संभव नहीं है। लेकिन यह तुमसे कहा किसने कि तुम मरोगे? तुम न तो पहले कभी मरे हो, न अब मर सकते हो। जो मरता है वह तुम नहीं हो, कोई और है। देह मरती है, वह तो आवरण है। मन मरता है, वह सूक्ष्म आवरण है। इन दोनों परिधियों के भीतर जो बैठा है, जो मालिक, वह न तो जन्मता है, न मरता है।

बहुत बार यह जीवन घटा है। कुछ तुम नये नहीं हो। बहुत बार आए और बहुत बार गए हो। लेकिन भीतर जो बैठा है, वह शाश्वत है। न उसे जन्म छूता है, न मृत्यु उसे छूती है। जब तक तुम उस भीतर के अंतर्यामी को न जान लोगे, न पहचान लोगे, तब तक यह भय सताएगा।

और जब व्यक्ति युवा होता है तो स्वभावतः मृत्यु की चिंता नहीं पकड़ती। क्यों पकड़े! आदमी इतना दूरदृष्टि नहीं है। आदमी की दृष्टि बड़ी ओछी है, बड़ी छोटी है। बस जरा सा देखता है दो-चार कदम आगे। दीये की रोशनी है उसके पास, चार कदम देखता है। मृत्यु इतनी दूर मालूम पड़ती है कि भरोसा ही नहीं आता, कि होगी। और मन बड़ा चालबाज है। मन यह भी कहता है कि और दूसरे लोग मरते हैं, तुम नहीं मरोगे। और मन कहता हैः देखो, एक व्यक्ति परसों मरा था, एक व्यक्ति कल मरा, एक व्यक्ति आज मरा, तुम तो नहीं मरे! लोग रोज मरते हैं, तुम तो नहीं मरते! तुम तो सदा न मालूम कितनों को मरघट पहुंचा कर हमेशा घर वापस आ जाते हो। तुम तो जीओ, बेफिक्री से जीओ--मन कहता है--इन व्यर्थ की चिंताओं में न पड़ो।

फिर जवानी के नशे होते हैं, मूर्च्छाएं होती हैं, दौड़ होती है--धन पाना है, पद पाना है, प्रतिष्ठा पानी है। फुरसत कहां है! समय कहां है कि कोई बैठ कर विचार करे! जो जवानी में विचार कर ले, समझना अति बुद्धिमान है, समझना कि महामेधावी है। क्योंकि आमतौर से जवानी में मूर्च्छा इतनी सघन होती है, क्योंकि वासनाएं इतनी प्रगाढ़ होती हैं कि आदमी लगता है जागा-जागा, मगर जागा नहीं होता, सपनों में डूबा होता है। महत्वाकांक्षाएं सपने ही हैं। तुम्हारे भीतर सपनों पर सपने तुम बुने जाते हो। कौन सोचता है मृत्यु की! और फिर जब आएगी तब देख लेंगे। जल्दी क्या है! कभी-कभी फुरसत के किसी क्षण में अगर मृत्यु का ख्याल भी आ जाए तो तुम जल्दी से अपने को छिटका लेते हो, किसी दूसरे काम में लगा देते हो; अपने को उलझा लेते हो कि यह कैसी निराशा की बात मेरे मन में आ रही है! अभी तो मैं जवान हूं!

हम मृत्यु को सब तरह से ढांकते हैं, छिपाते हैं। इसीलिए मरघट को गांव के बाहर बनाते हैं। बनाना चाहिए गांव के ठीक बीच में, कि दिन में पच्चीस बार गुजरो तो पच्चीस बार मरघट तुम्हें याद दिलाए कि यही होने वाला है अंतिम निवास स्थान। चौंकाए, जगाए, स्मरण दिलाए।

बुद्ध जब भी किसी व्यक्ति को संन्यास देते थे तो भेजते थे मरघट, कि तीन महीने मरघट पर रह, जलती हुई चिताओं को देख, राख होते हुए शरीरों को देख। एक ही ध्यान कर कि यह है परिणति जीवन की। यह है निष्पत्ति सब आपाधापी की, सब दौड़-धूप की। सब पड़ा रह जाता है और क्षण भर में आदमी राख हो जाता है। तीन महीने तक मरघट पर बैठ कर रोज सुबह से सांझ, दिन और रात मुर्दों को जलते देखना, तुम कैसे बचा सकोगे? स्मरण आ ही जाएगा कि यही अवस्था मेरी भी होनी है आज नहीं कल।

और जिसको मृत्यु का स्मरण आ गया वह सौभाग्यशाली है, क्योंकि मृत्यु के स्मरण के साथ ही जीवन में क्रांति घटती है। जब यह याद आ जाती है कि यह देह तो जाएगी, तभी हमारा देह से तादात्म्य छूटता है, तभी

हम देह से अपना मोह छोड़ते हैं। जो मिटना ही है उससे क्या मोह बांधना! जो छूट ही जाना है, जो छूटा ही है, अब गया तब गया--उसे क्या पकड़ो! क्यों पकड़ो! क्यों न हम उसकी तलाश कर लें जो कभी नहीं छूटता! क्यों न हम शाश्वत को खोजें! क्यों न हम शाश्वत पर अपनी निगाहें टिकाएं! शाश्वत पर निगाह टिकाने का नाम ही तो संन्यास है। समय के पार आंखें उठाने का नाम ही तो संन्यास है।

जवानी में तो बहुत मुश्किल होता है कि किसी को होश आए। मगर यह दुनिया बड़ी अजीब है। लोग बूढ़े भी हो जाते हैं तब भी कहां होश आता है!

रामनाथ, तुम तो सौभाग्यशाली हो, कम से कम बुढ़ापे में भी तो होश तो आ गया। मरते दम तक भी लोगों को होश नहीं आता।

मैंने सुना, एक मारवाड़ी मर रहा था। ध्यान रखना, मारवाड़ी को भी मरना पड़ता है! मौत किसी को भी नहीं छोड़ती, मारवाड़ी तक को नहीं छोड़ती! सारे बेटे और रिश्तेदार चिंतित थे। उसकी आवाज बंद हो गई थी। सब उसे घेर कर खड़े थे। बड़ी मुश्किल से वह बार-बार कह रहा थाः ब ब... झ झ। एक बेटे ने कहा, लगता है, ये कहना चाह रहे हैं कि बक्सा झाड़ के नीचे मैंने दबा रखा है। कुछ करो और इनसे पूरी बात बुलवाओ, कौन सा झाड़! क्योंकि घर के आस-पास बहुत झाड़ थे। डाक्टर ने कहा कि एक बड़ा ही मूल्यवान इंजेक्शन है, उसे लगाने पर ये एक-दो वाक्य बोल सकेंगे। उनकी मृत्यु निश्चित होने पर भी इंजेक्शन लगवाने को सब राजी हो गए। डाक्टर ने इंजेक्शन लगा दिया, तब सब उत्सुक होकर सुनने के लिए मरते मारवाड़ी के पास झुके। उस बूढ़े ने क्या कहा मालूम! उसने कहा, अरे सब मुझे क्या देख रहे हो, वह बछड़ा झाडू चबाए जा रहा है!

रामनाथ, चलो अच्छा हुआ, बुढ़ापे में भी कम से कम याद तो आने लगी कि मृत्यु है! इस याद को झुठलाना मत। इस याद को भुलाने की कोशिश मत करना। यह याद उपयोगी है। इसका उपयोग कर लो। बुद्धिमान तो वही है जो हर चीज का उपयोग कर ले। इसको भी सीढ़ी बना लो।

मृत्यु कीमती चीज है। अगर दुनिया में मृत्यु न होती तो संन्यास न होता। अगर दुनिया में मृत्यु न होती तो धर्म न होता। अगर दुनिया में मृत्यु न होती तो परमात्मा का कोई स्मरण न होता, प्रार्थना न होती, पूजा न होती, आराधना न होती; न होते बुद्ध, न महावीर, न कृष्ण, न क्राइस्ट, न मोहम्मद। यह पृथ्वी दिव्य पुरुषों को तो जन्म ही न दे पाती, मनुष्यों को भी जन्म न दे पाती। यह पृथ्वी पशुओं से भरी होती। यह तो मृत्यु ने ही झकझोरा। मृत्यु की बड़ी कृपा है, उसका बड़ा अनुग्रह है। मृत्यु ने झकझोरा, याद दिलाई। बुद्ध को भी स्मरण आया था मृत्यु को ही देख कर। एक मरे हुए आदमी की लाश को देख कर पूछा था अपने सारथी से, इसे क्या हो गया? उस सारथी ने कहा कि यह आदमी मर गया। बुद्ध ने कहा, क्या मुझे भी मरना होगा? सारथी झिझका, कैसे कहे? बुद्ध ने कहा, झिझको मत। सच-सच कहो, झूठ न बोलना। क्या मुझे भी मरना होगा? मजबूरी में सारथी को कहना पड़ा कि कैसे छिपाऊं आपसे! आज्ञा तो यही है आपके पिता की कि आपको मौत की खबर न होने दी जाए, क्योंकि बचपन में आपके ज्योतिषियों ने कहा था कि जिस दिन इसको मौत का स्मरण आएगा, उसी दिन यह संन्यस्त हो जाएगा। मगर झूठ भी कैसे बोलूं! मृत्यु तो सबको आएगी। आपको भी आएगी, मालिक! मृत्यु से कोई कभी बच नहीं सका है। मृत्यु अपरिहार्य है।

बुद्ध ने उसी रात घर छोड़ दिया, क्रांति घट गई। जब मृत्यु होने ही वाली है, तो हो ही गई; तो जितने दिन हाथ में हैं इतने दिनों में हम उसको खोज लें जो अमृत है।

रामनाथ, अगर मृत्यु से भय लग रहा है तो अशुभ नहीं है, शुभ हो रहा है।

पूछते होः "मैं क्या करूं?"

मृत्यु से भय लगे तो ध्यान के अतिरिक्त करने को और कुछ है ही नहीं। अब ध्यान में डूबो। अब संन्यास में रंगो। अब जीवन को समाधि में रूपांतरित करो, ताकि तुम्हारा शाश्वत से संबंध हो सके; ताकि तुम अपने भीतर उसको देख सको जो कभी नहीं मरता। उसको देखोगे तो ही भय जाएगा। उसको पहचानोगे तो ही भय जाएगा।

अच्छा हुआ, बूढ़े हो गए।

अभी न होगा मेरा अंत।
जवानी तो इसी तरह की बातों में जीती है।
अभी न होगा मेरा अंत।
अभी-अभी ही तो आया है
मेरे वन में मृदुल वसंत--
अभी न होगा मेरा अंत।

हरे-हरे ये पात,
डालियां, कलियां कोमल गात!
मैं ही अपना स्वप्न-मृदुल-कर
फेरूंगा निद्रित कलियों पर
जगा एक प्रत्यूष मनोहर।

पुष्प-पुष्प से तंद्रालस लालसा खींच लूंगा मैं,
अपने नवजीवन का अमृत सहर्ष सींच दूंगा मैं,

द्वार दिखा दूंगा फिर उनको
हैं मेरे वे जहां अनंत--
अभी न होगा मेरा अंत।

मेरे जीवन का यह है जब प्रथम चरण,
इसमें कहां मृत्यु?
है जीवन ही जीवन।

अभी पड़ा है आगे सारा यौवन
स्वर्ण-किरण कल्लोलों पर बहता रे, बालक मन,

मेरे ही अविकसित राग से
विकसित होगा बंधु, दिगंत;
अभी न होगा मेरा अंत।

जवानी तो झूठी बातें कहने में बड़ी कुशल है। बुढ़ापा नहीं छिपा पाता। कैसे छिपाए! पैर डगमगाने लगते हैं, शरीर अस्थिपंजर होने लगता है, श्वास लड़खड़ाने लगती है। मौत की पहली पगध्वनियां सुनाई पड़ने लगती हैं।

स्नेह-निर्झर बह गया है;
रेत ज्यों तन रह गया है।
आम की यह डाल जो सूखी दिखी,
कह रही है--"अब यहां पिक या शिखी
नहीं आते; पंक्ति मैं वह हूं लिखी
नहीं जिसका अर्थ--"
जीवन दह गया है।
दिए हैं मैंने जगत को फूल-फल,
किया है अपनी प्रभा से चकित-चल;
पर अनश्वर था सकल पल्लवित पल--
ठाठ जीवन का वही
जो ढह गया है।
अब नहीं आती पुलिन पर प्रियतमा,
श्याम तृण पर बैठने को निरुपमा।
बस रही है हृदय पर केवल अमा;
मैं अलक्षित हूं; यहीकवि कह गया है।
स्नेह-निर्झर बह गया है;
रेत ज्यों तन रह गया है।
जीवन दह गया है।
ठाठ जीवन का वही
जो ढह गया है।
मैं अलक्षित हूं;
यहीकवि कह गया है।

जिन्होंने जाना है, उन्होंने तुम्हें सदा ही जगाने की चेष्टा की है कि जागो, मौत द्वार पर खड़ी है! दस्तक दे रही है! और कितने ही भागो, कितने ही बचो, बच न पाओगे। लेकिन जो अपने भीतर जाता है, वह पार हो जाता है।

तुम पूछते हो, रामनाथः "क्या मृत्यु से छुटकारा संभव है?"

मृत्यु से छुटकारा तो संभव नहीं है, लेकिन मृत्यु का अतिक्रमण संभव है। मृत्यु तो घटेगी, बुद्ध को भी मरना होता है, महावीर को भी मरना होता है, राम को भी और कृष्ण को भी। मृत्यु से तो छुटकारा संभव नहीं है। लेकिन मरने की भी एक कला है, जैसे जीने की कला है। मरने की कला हैः शांत, मौन, ध्यान में मरना। जीने

की भी वही कला हैः ध्यान से जीओ। जितने दिन शेष हैं, ध्यान में जीओ--शांत, मौन, जागे हुए! ताकि शांत, मौन, जागे हुए मर भी सको। जो शांत, मौन मरने में समर्थ हो जाता है, वह जानता हुआ मरता है कि मैं नहीं मर रहा हूं। वह जागा हुआ मरता है कि देह छूटी, मन छूटा; मगर मैं तो वही का वही हूं। चैतन्य तो वैसा का वैसा है--अछूता! चैतन्य की इस शाश्वतता को जिसने देख लिया, उसके जीवन में आनंद की बरखा हो जाती है, फूल ही फूल झर जाते हैं अमृत के! वैसे ही फूल तुम्हारे जीवन में भी झर सकते हैं।

मृत्यु के इस भय का उपयोग कर लो। इसे शत्रु मत मानना, यह मित्र है। मृत्यु भी मित्र है, अगर समझ हो; और नासमझी हो तो जीवन भी शत्रु हो जाता है।

महावीर ने कहा हैः व्यक्ति अपना ही मित्र है, अपना ही शत्रु।

अगर हम जाग कर उपयोग करना सीख जाएं जीवन की सारी संभावनाओं का, जिनमें मृत्यु की संभावना भी सम्मिलित है, तो हम अपने मित्र हैं; नहीं तो हम अपने शत्रु हैं। इस दुनिया से बहुत लोग, अधिक लोग गंवा कर ही लौटते हैं। रामनाथ, कोई जरूरत नहीं कि तुम भी गंवा कर लौटो। कमा कर लौट सकते हो। जागो! समय रहते जागो!

तीसरा प्रश्नः ओशो, मैं शांति चाहता हूं। पर घर में रह कर शांति कहां! और आप कहते हैं कि घर में रह कर ही सच्ची शांति पानी है। मेरी कुछ समझ में नहीं आता। सात बच्चे हैं, एक से एक बढ़ कर उपद्रवी। कर्कशा पत्नी है। सास भी अक्सर सिर पर सवार रहती है। क्या ऐसे में शांत होना संभव है?

दयाराम, सच तुम पर दया आती है, रोना आता है। दया योग्य ही हो। ये सात उपद्रवी बच्चे कोई छप्पर से उतर आए हैं? तुम्हारी ही कृपा है। मैंने देखे तो नहीं हैं तुम्हारे बच्चे, लेकिन बाप को ही गए होंगे।

लोग जिंदगी को ऐसा उलझाए चले जाते हैं, अपने हाथ से उलझाए चले जाते हैं! फिर रोते हैं। खुद मकड़ी की तरह जाला बुनते हो, फिर खुद ही उसमें फंस जाते हो। किसने तुमसे कहा था? दीवाल-दीवाल, जगह-जगह लिखा हैः दो या तीन बस। कुछ पढ़ते-लिखते हो कि नहीं? दीवालों पर जो लिखा है, उस पर कुछ अध्ययन-मनन करो।

मंत्र पढ़वाए जो पंडित ने वे हम पढ़ने लगे,
यानी मैरिज की कुतुब मीनार पर चढ़ने लगे।
आए दिन चिंता के फिर दौरे हमें पड़ने लगे,
इनकम उतनी ही रही, बच्चे मगर बढ़ने लगे।
क्या करें हम, सर से अब पानी गुजर जाने को है,
सात दुमछल्ले हैं घर में, आठवां आने को है।
घर के अंदर मचती रहती है सदा चीखो-पुकार,
आज है पप्पू को पेचिश, कल था बंटी को बुखार।
जान कर भी ठोकरें खाई हैं हमने बार-बार,
शादी होते ही शनीचर हो गया हम पर सवार।
अब तो राहू की दशा भी हम पे चढ़ जाने को है,

सात दुमछल्ले हैं घर में, आठवां आने को है।
घर में बस खाली कनस्तर के सिवा कुछ भी नहीं,
जा-ब-जा उखड़े पलस्तर के सिवा कुछ भी नहीं।
खिड़की-दरवाजे कहां, दर के सिवा कुछ भी नहीं,
अपने घर में, दोस्तो, घर के सिवा कुछ भी नहीं।
एक तीली आपकी सिगरेट सुलगाने को है,
सात दुमछल्ले हैं घर में, आठवां आने को है।
देखिए किस्मत का चक्कर, देखिए कुदरत की मार,
दिल में है पतझड़ का डेरा, घर में बच्चों की बहार।
मुंह को तकिए में छुपा कर, क्यों न रोएं जार-जार,
रोटियों के वास्ते क्यू, चाय की खातिर कतार।
अपना नंबर और भी पीछे खिसक जाने को है,
सात दुमछल्ले हैं घर में, आठवां आने को है।
कोई वैकेंसी नहीं, घर हो गया बच्चों से पैक,
खोपड़ी अपनी फिरी, भेजा हुआ बीबी का क्रैक।
खाइयां खोदें, कहीं छुप कर बचाएं अपनी बैक,
होने ही वाला है हम पर आठवां एयर-अटैक।
घर में फिर खतरे का भोंपू भैरवी गाने को है,
सात दुमछल्ले हैं घर में, आठवां आने को है।

दयाराम, ये सात दुमछल्ले कैसे आ गए? शायद सोचते होओगे--क्या करें, भगवान की कृपा है! अरे विधाता ने विधि में लिखा है!

इस तरह की मूढ़तापूर्ण बातों से हम अपने को भरमाए रखते हैं। और फिर उलझन खड़ी होगी। मगर हम इस तरह चलते हैं, इस तरह जीते हैं, इतनी बेहोशी में कि बिना सोचे-समझे कुछ भी किए चले जाते हैं! और फिर स्वभावतः समस्याएं तो खड़ी हो जाएंगी।

अब तुम कहते होः "मैं घर में शांत होना चाहूं तो कैसे होऊं? घर में शांति कहां! और आप कहते हैं कि घर में रह कर ही सच्ची शांति पानी है।"

निश्चित ही मैं कहता हूं, घर में रह कर ही सच्ची शांति पानी है। क्योंकि तुम कहीं और जाओगे तो कुछ और उपद्रव करोगे। आखिर तुम तो तुम ही रहोगे न! यहां तो कम से कम इतना उपद्रव हो गया है कि थोड़ा होश रखना पड़ेगा कि अब और न हो जाए। कहीं इक्के-दुक्के पहुंच गए एकांत में, तो कुछ और उपद्रव करोगे। और फिर तुम्हारी उपद्रवों की आदत भी पड़ गई होगी। बिना शोरगुल के तुम्हें चैन भी न पड़ेगा। हर चीज की आदतें पड़ जाती हैं।

मेरे एक मित्र रेलवे में नौकरी करते हैं। वे रिटायर हुए तो बहुत दिन से कहते थे कि बस रिटायर हो रहा हूं छह महीने में, चार महीने बचे, दो महीने बचे। बड़े खुश हो रहे थे कि रिटायर एक दफा हो गया... । कहां की नौकरी ले ली, जिंदगी गंवा दी! बस दिन-रात शोरगुल, शोरगुल... स्टेशन पर ही जिंदगी बीती। और जब रिटायर हुए तो मुझसे आकर बोले कि बड़ी मुश्किल हो गई, घर में नींद ही नहीं आती। स्टेशन पर ही सोने की

आदत हो गई। सो रिटायर हो गए हैं, मगर सोने स्टेशन जाते हैं, क्योंकि घर में नींद नहीं आती। जब तक खटर-पटर न हो, रेलगाड़ियां न चलें, शंटिंग न हो, मालगाड़ी इधर से उधर न जाए, तब तक उनको नींद नहीं आती। यह साज-संगीत चाहिए ही! घर में एकदम सन्नाटा!

मैंने सुना है कि फिलाडेल्फिया के पास से तीन बजे रात को एक ट्रेन गुजरती थी। कभी कोई शिकायत न आई। बीच बस्ती से गुजरती शोरगुल मचाती हुई, मगर कोई शिकायत न आई। फिर अधिकारियों ने यह सोच कर कि यह बस्ती में तीन बजे रात को लोगों की नींद खराब करना ठीक नहीं है, उसका समय बदल दिया, उसको सात बजे सुबह निकालने लगे। शिकायतों पर शिकायतें आईं कि तीन बजे वाली गाड़ी का क्या हुआ? क्योंकि रोज हमारी नींद टूट जाती है तीन बजे। चकित हुए अधिकारी कि तुम्हारी नींद क्यों टूट जाती है, क्योंकि गाड़ी अब सात बजे जाती है! उन्होंने कहा कि इसीलिए तो टूट जाती है। हम आदी हो गए। तीन बजे निकलती थी, वह हमारी व्यवस्था का अंग हो गया था। अब वह तीन बजे नहीं निकलती। एकदम तीन बजे झटका लगता है कि हुआ क्या? गड़बड़ हो गई कुछ, मामला क्या है! एकदम खालीपन हो जाता है वहां।

मनुष्य का मन समायोजन कर लेता है।

तुम कहते जरूर हो कि बड़ी अशांति है घर में, मगर इस अशांति को जरूर तुम चाहते होओगे। नहीं तो पैदा क्यों की? और आठवें का ख्याल रखना, क्योंकि सात तक अगर नहीं रुके तो बहुत मुश्किल है अब आगे रुक सको। क्योंकि कुछ लोगों की जिंदगी में ब्रेक होते ही नहीं। सात तक नहीं लगा पाए तुम ब्रेक, अब कब लगाओगे? यह उपद्रव बढ़ता ही चला जाएगा।

मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी अपने तीन बेटों को एक से कपड़े पहनाती थी। फिर तीन की जगह धीरे-धीरे होते-होते तेरह हो गए, फिर भी सबको एक से कपड़े पहनाती। उसकी एक पड़ोसिन ने पूछा कि मेरी कुछ समझ में नहीं आता। जब तुम्हारे तीन थे तो तुम उनको एक से कपड़े पहनाती थीं। और मैंने तुमसे पूछा था तो तुमने कहा, इसलिए एक से कपड़े पहनाती हूं कि कोई कहीं खो न जाए। अब तो तेरह हो गए, अब क्यों पहनाती हो? तो उसकी पत्नी ने कहा, मुल्ला की, कि अब इसलिए पहनाती हूं कि कोई दूसरा इनमें न मिल जाए। अब किस-किस को याद रखो!

लेकिन मैं तुमसे कहता हूं, कहीं और जाने से कुछ भी न होगा, तुम तुम ही रहोगे। तुम फिर कुछ उपद्रव खड़ा कर लोगे। एक तरह का उपद्रव नहीं होगा तो दूसरी तरह का कोई उपद्रव होगा, मगर तुम बिना उपद्रव के रह न सकोगे। अब यहां उपद्रव हो ही चुका है, अब नया उपद्रव क्यों खड़ा करना!

मैंने सुना है, एक मुनीम चोरी करता रहा अपने मालिक की, करता रहा, करता रहा। उसने महल भी खड़ा कर लिया, बड़े बगीचे लगा लिए, पहाड़ पर भी मकान बना लिया, समुद्र के तट पर भी मकान बना लिया। करीब-करीब जो भी जरूरी था, सब उसने उपलब्ध कर लिया, तब पकड़ा गया। सेठ ने उससे कहा कि यह बात ठीक नहीं है। तुम इसी वक्त अलग हो जाओ। हालांकि तुमने मेरी इतनी सेवा की, इसलिए मैं तुम्हें कोई और दंड नहीं दूंगा, लेकिन नौकरी पर अब नहीं रख सकता।

उस मुनीम ने कहा कि सुनो, आपने सदा मेरी सुनी, एक विनती मेरी और सुनो। नया आदमी रखोगे, उसको फिर अ ब स से शुरू करना पड़ेगा; वह फिर मकान बनाएगा, फिर पहाड़ पर बनाएगा, फिर समुद्र के किनारे बनाएगा। मैं तो सब कर ही चुका, अब क्या झंझट है?

सेठ को भी बात जंची कि बात तो ठीक कह रहा है। नहीं हटाया नौकरी से; कहा कि तेरी बात ठीक है। अब तू तो जो कर चुका सो कर चुका।

यही मैं तुमसे कहता हूं। तुम अगर भाग गए, दयाराम, तो फिर से अ ब स से शुरू करोगे। यहां तो उपद्रव इतना हो गया है कि शायद उपद्रव तुम्हें अब और करना मुश्किल हो जाए। उपद्रव ही तुम्हें रोके कि बहुत हो चुका, ऐसे ही बहुत हो चुका।

फिर पहाड़ पर एक तरह की शांति जरूर मिलती है, मगर वह पहाड़ की होती है, तुम्हारी नहीं। पहाड़ पर धोखा आ जाता है कई लोगों को। एकांत गुफाओं में बैठे हुए योगियों को अक्सर धोखा हो जाता है कि वे शांत हो गए, मौन हो गए, सब ठीक हो गया। उनको जरा ले आओ बाजार में वापस, और तुम पाओगे कि सब मौन और सब शांति वहीं पहाड़ पर छूट गई। बाजार में आते ही उपद्रव शुरू हो जाते हैं। तुम्हें कोई गाली न दे तो क्रोध न आएगा, ठीक है। इसका यह अर्थ नहीं है कि क्रोध मिट गया। इसका इतना ही अर्थ है कि गाली देने वाला नहीं मिल रहा है कोई। गुफा में बैठे हो, कोई गाली नहीं देता, क्रोध भी क्या करोगे! किस कारण करोगे, किस पर करोगे? लेकिन आओ वापस दुनिया में, यहां गाली देने वाले तैयार बैठे हैं। अपनी-अपनी गाली पर धार रख कर बैठे हैं। कोई न कोई मिल जाएगा। और एक क्षण में तुम्हारी सारी शांति, तुम्हारा सारा मौन, तुम्हारी सारी साधना छितर-बितर हो जाएगी। एकांत में बैठ जाओगे जाकर, कोई स्त्री नहीं दिखाई पड़ती, तो धीरे-धीरे शायद सोचने लगोगे कि ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हो गए। आओ जगत में, और यहां कोई सुंदर स्त्री रास्ते पर दिखाई पड़ जाएगी। और जो पहाड़ से उतरता है बहुत दिन के बाद, उसे हर स्त्री सुंदर दिखाई पड़ती है, यह ख्याल रखना। उसको बदशक्ल से बदशक्ल स्त्री भी सुंदर दिखाई पड़ती है। और बस मुश्किल खड़ी हो जाएगी।

जहां तक मुझे पता है, उर्वशी और मेनका इतनी सुंदर नहीं हैं जितना शास्त्रों में लिखा है। यह ऋषि-मुनियों की भ्रांति है। ऋषि-मुनि देर तक बैठे पहाड़ पर, बैठे हैं, बैठे हैं, बैठे हैं। कोई आता ही नहीं, कोई जाता ही नहीं। कई ऋषि-मुनि तो बीच-बीच में आंख खोल कर भी देखते रहते होंगे कि मेनका अभी तक नहीं आई! कि अब भेजो इंद्र देवता! अब कब तक ऐसे ही बिठाए रखोगे! और कोई भी स्त्री आ जाए और लगेगी कि मेनका आ रही है।

भूखे आदमी को रूखी रोटी भी बहुत स्वादिष्ट लगती है, यह तो तुम्हें मालूम है। वैसा ही भूखा आदमी हो जाता है जंगल में बैठा हुआ। सब तरह की सुविधाएं छिन गईं उससे। भीतर ही भीतर कुढ़ता रहता है और ऊपर-ऊपर से किसी तरह राम-राम की धुन लगाए रखता है। क्योंकि अपने को भुलाए भी तो रखना है। शोरगुल मचाए रखता है राम-राम का, ताकि पता न चले भीतर क्या चल रहा है। मगर इसको तुम शांति कहते हो? यह खो जाती है जरा में, देर नहीं लगती। इसका कोई मूल्य नहीं है।

बाजार के घनेपन में अगर तुम शांत हुए तो तुम्हारी शांति को कोई भी न छीन सकेगा। इंद्र देवता भेजें मेनका, तुम कहोगे कि बाई आगे! घर की बाई ही काफी है। कहीं और जाओ। किसी ऋषि-मुनि को तलाशो! इसीलिए तो गृहस्थों के पास कभी मेनका-उर्वशी आतीं नहीं; आकर करेंगी भी क्या! वे ऋषि-मुनियों के पास आती हैं।

और तुम कहते हो, दयाराम, कि मेरी कुछ समझ में नहीं आता, सात बच्चे हैं, एक से एक बढ़ कर उपद्रवी! कर्कशा पत्नी!

पत्नी कर्कशा हो, यह जरूरी नहीं है। मगर सभी पतियों को पत्नी कर्कशा मालूम होती है। और सभी पत्नियों को पति दुष्ट मालूम होता है, दुर्भाग्य मालूम होता है। ये पति-पत्नी के नाते के बड़े राज हैं। जो पत्नी बिल्कुल कोकिल-कंठी मालूम होती थी विवाह के पहले, वह एकदम कर्कशा हो जाती है। वही पत्नी! उसकी आवाज सुन कर एकदम छाती दहल जाती है, कि फिर कोई मुसीबत शुरू हुई, फिर घबड़ाहट फैल जाती है।

आदमी घर आता है तो डरा हुआ आता है। बाहर सिंह की तरह दहाड़ता है; घर आता है तो एकदम पूंछ दबा कर कुत्ते की तरह प्रवेश करता है--डरा हुआ! और जल्दी से अखबार उठा कर और कुर्सी पर अखबार के पीछे अपने को छिपा कर बैठ जाता है कि पता नहीं कौन सी मुसीबत!

और ऐसा नहीं है कि पत्नी कर्कशा है। लेकिन ये जो मोह और आसक्ति के नाते-रिश्ते हैं, क्षणभंगुर हैं। यह जो मिठास है, ऊपर-ऊपर है। पीछे सब कड़वा हो जाता है। इसमें किसी की पत्नी और किसी के पति का कोई दोष नहीं है। ये सब नाते-रिश्ते कड़वे हो जाते हैं। यह ऐसे ही समझो कि जैसे एलोपैथी की दवाइयां होती हैं; ऊपर से शक्कर की एक पर्त चढ़ा देते हैं। बस गटक लो जल्दी से, मुंह में रख कर चूसने मत लगना। नहीं तो जल्दी ही शक्कर की पर्त तो गल जाएगी और फिर जहर ही हाथ लगेगा। और लोग यही कर रहे हैं। पति-पत्नियां एक-दूसरे को चूस रहे हैं। तो जल्दी ही शक्कर की पर्त तो उखड़ जाती है और फिर भीतर का जहर प्रकट होने लगता है।

जब तुम किसी स्त्री को जुहू तट पर मिलते हो तो वह भी सजी-संवरी, वह भी रंग-रोगन किए, वह भी इत्र-फुलेल लगाए; तुम भी सजे-संवरे, तुम भी इत्र-फुलेल लगाए, तुम भी कोट में जगह-जगह रुई इत्यादि भरवाए हुए, कि छाती भी दिखे कि दारासिंह की है! मगर यह रुई कब तक धोखा देगी? घर में कभी तो कोट उतारोगे! और तब असली छाती दिखाई पड़ जाएगी। और पत्नी भी यही कर रही है कि वह भी अपने को सजाए-संवारे है, शरीर को बांधे है तरह-तरह से। स्त्रियां कैसे सर्कस में पड़ी हैं, कहना मुश्किल है! कमर कस कर बांधे हुए हैं कि पतली मालूम पड़े। क्योंकि ये दुष्ट कवि न मालूम क्या-क्या कह गए हैं कि सुंदर स्त्री की कमर होती ही नहीं! अब सुंदर स्त्रियां कमरों को मिटाने में पड़ी हैं।

मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन घर आया, रास्ते में पड़ा एक साइकिल का हैंडल उठा लाया। पत्नी ने कहा कि फेंको बाहर! जब साइकिल ही घर में नहीं तो हैंडल का क्या करोगे?

तो मुल्ला ने कहा कि तू न मालूम कहां-कहां की चोलियां खरीद कर लाती है, मैं तो कुछ नहीं कहता। भीतर कुछ है ही नहीं। तो मैं एक साइकिल का हैंडल ले आया बिना साइकिल के तो क्या बिगड़ रहा है? तेरा क्या बिगड़ रहा है? अरे आज हैंडल मिला, कल साइकिल भी मिल जाएगी। खोज करने से आदमी क्या नहीं पा सकता! पहुंचने वाले चांद तक पहुंच गए।

तो इधर स्त्रियां हैं, पुरुष हैं, सजे-बजे मिलते हैं, तो एक बात है। उनके पसीने की बदबू भी नहीं आती, उनके शरीर की बास भी नहीं आती, उनके असली रंग भी नहीं दिखाई पड़ते। और सब मधुर बातें करते हैं, कविताएं दोहराते हैं, फिल्मी गीत गुनगुनाते हैं। वह कहता है, तू चांद का टुकड़ा है! और स्त्री कहती है, तुम जैसा सुंदर कभी कोई कृष्ण कन्हैया हुआ ही नहीं। तुम कृष्ण कन्हैया के अवतार हो!

मगर यह ज्यादा देर नहीं चल सकता। यह विवाह के पहले यह सब ठीक है; विवाह के बाद सब बात बिगड़ने ही वाली है, असलियत उघड़ने ही वाली है। और तब पत्नी कर्कशा मालूम होती है। यह वही पत्नी है जो कोकिल-कंठी थी।

अक्सर जो कवि स्त्रियों के संबंध में सुंदर-सुंदर गीत लिखा करते हैं, अविवाहित होते हैं। अविवाहित ही ऐसी बातें लिख सकते हैं। कोई विवाहित से तो पूछे, वे एकदम सिर ठोंक लेते हैं।

चंदूलाल विवाह करना चाहते थे, ज्योतिषी को हाथ दिखाया। ज्योतिषी ने कहा कि जरूर करो। सुंदर स्त्री मिलेगी, सुंदर पुत्र होंगे। घर भरा-पूरा होगा। शांति और आनंद होगा। फिर चंदूलाल को यह तो कुछ हुआ नहीं,

शादी हो गई, इससे सब कुछ उलटा ही हुआ। एक दिन जाकर ज्योतिषी को पकड़ लिया, एकदम गर्दन पकड़ ली, कि ज्योतिषी के बच्चे, तूने जो कहा था सब उससे उलटा हो रहा है!

ज्योतिषी ने कहा, ठहर भाई! क्या उलटा हो रहा है?

चंदूलाल ने कहा, घर में शांति बिल्कुल नहीं है।

उसने कहा, गलत बात है। मेरे घर में देख। मैंने अपनी पत्नी का नाम शांति रख लिया है। घर में शांति है। और क्या मतलब होता है शांति का? अरे मेरी देख हालत। मेरे बड़े लड़के का नाम संजय, मेरे छोटे लड़के का नाम कांति, फिर भी घर में शांति! तू क्या खाक अपनी रो रहा है! नाम बदलने की बात है।

दयाराम, और तुम कहते हो कि सास भी अक्सर सिर पर सवार रहती है।

अच्छे लक्षण हैं! ऐसे ही तो संन्यास का जन्म होता है! ऐसे ही तो आदमी को विराग-भाव पैदा होता है--कि अरे इस संसार में कुछ भी नहीं है! यहां कोई सार नहीं है! सासें न हों, तो संसार असार है, यह अनुभव कैसे हो?

मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन पहुंचा अपने पशु-चिकित्सक के यहां और कहा कि मेरे कुत्ते की पूंछ काट दो।

उसने कहा, क्या कह रहे हो! इतना सुंदर कुत्ता, इतना प्यारा कुत्ता। इसकी पूंछ काट कर इसको बरबाद कर रहे हो!

उसने कहा, तुम बात न करो, पूंछ काटो! देर न करो, जल्दी करो!

उसने कहा, मगर जरूरत क्या है? इसकी पूंछ में खराबी क्या है?

नसरुद्दीन ने कहा, अब तुम्हें यह सब कुछ समझाना पड़ेगा? मेरी सास आ रही है। और मैं घर में उसके अभिनंदन का कोई चिह्न नहीं छोड़ना चाहता। और यह कुत्ता मूरख है, इसको आज सात दिन से समझा रहा हूं कि बेटा सास आए, पूंछ मत हिलाना। मैं कहता हूं, और यह पूंछ हिलाता है। यह मूरख न मानेगा। और उसको इतना भी पर्याप्त है कि कुत्ते ने पूंछ हिला दी, फिर वह हटने वाली नहीं है।

तुम्हारी मुसीबत, दयाराम, मैं समझता हूं। तुम्हारे मां-बाप ने भी खूब सोच कर तुम्हें नाम दिया! लेकिन अब जो हो गया, हो गया। अब जहां हो, जैसे हो--भागो मत। अब वहीं स्वीकार करो इस स्थिति को। शायद इस अभिशाप में भी वरदान छिपा हो। अगर सास में भी परमात्मा को देख सको--हालांकि है बहुत कठिन काम! ऐसे लोग कहते हैं कि सबमें परमात्मा को देखो; वे भी नहीं कहते कि सास में परमात्मा को देखो। किसी शास्त्र में नहीं लिखा है। शास्त्र भी छोड़ गए सास को। सास की बात ही नहीं उठाई। मगर मैं तुमसे कहता हूं, क्योंकि मुझे तो शास्त्रों से उलटी बातें कहने की धुन सवार है, तुम सास में भी परमात्मा देखो। पत्नी में भी परमात्मा देखो। ये सात दुमछल्ले जो हैं, इनमें भी परमात्मा देखो। और यह सब परमात्मा ने जो तुम्हारे चारों तरफ सुविधा-असुविधा जो कुछ भी समझो, रच दी है, इसी में, इसी के भीतर जागरूक होओ।

और मैं जिसको ध्यान कहता हूं, वह कहीं भी साधा जा सकता है। तुम्हारे ध्यान की धारणा एकाग्रता की होगी, उससे तुम्हें अड़चन हो रही है। एकाग्रता साधना मुश्किल होगी। क्योंकि एकाग्रता का अर्थ होता हैः एक चीज पर ध्यान को लगाओ। अब तुम बैठे हनुमान जी पर ध्यान लगा रहे हो और वे तुम्हारे सात हनुमान जी, वे बीच-बीच में आ जाएंगे। कोई टांग खींचेगा, कोई हाथ खींचेगा, कि डैडी, क्या कर रहे? कि आंख खोलो!

लोग मुझसे कहे हैं कि हम आंख बंद करके बैठते हैं, हमारा लड़का आंख खोल कर देखता है--कि डैडी, जिंदा हो कि नहीं? कि बैठे-बैठे आंख बंद हो गई!

एकाग्रता करोगे तो मुश्किल होगी। लेकिन एकाग्रता को मैं ध्यान कहता ही नहीं। ध्यान मैं जागरण को कहता हूं। जागरण बड़ी और बात है। बच्चे शोरगुल कर रहे हैं, तुम जाग कर सुन रहे हो, साक्षी-भाव से। कोई तुम्हारी आंख खोल रहा है, तुम साक्षी-भाव से देख रहे हो कि ठीक, आंख खोली जा रही है। सास पास से गुजर रही है--कि ठीक। सिर्फ साक्षी-भाव। बुरे-भले का कोई निर्णय नहीं, कि कौन अच्छा, कौन बुरा। पत्नी चिल्ला रही है तो यह कहने की जरूरत नहीं कि कर्कशा, क्योंकि उसमें तो निर्णय हो गया, मूल्यांकन हो गया। सिर्फ आवाज आ रही है। निष्पक्ष भाव से, साक्षी धीरे-धीरे सम्हालो।

और मैं तुमसे कहता हूं, इसी घर में बात सम्हल जाएगी। और इस घर में सम्हल जाए तो फिर इस दुनिया में कोई तुम्हें डिगा नहीं सकता। फिर तुम्हें नरक में भी कोई भेज दे, तुम्हारा कोई बाल बांका नहीं कर सकता। तुम्हारा अभ्यास ऐसा होगा कि नरक के अधिकारी भी क्या खाक कर लेंगे! वे तुम्हें देख कर ही कह देंगे कि भैया, तुम स्वर्ग की तरफ जाओ। दयाराम, तुम नरक काफी देख चुके, तुम स्वर्ग जाओ! अब यहां किसलिए आए? अब हमारे पास और दिखाने को क्या है?

चौथा प्रश्नः ओशो, पिछले दिनों जैन मुनि विद्यानंद मेरे गांव पधारे थे। चूंकि वे विश्व-धर्म की जय बोलते हैं, मैंने निम्नलिखित प्रश्न उन्हें भेजे--

पहलाः कल आपने कृष्ण को नारायण संबोधन दिया, पर जैन शास्त्रों के अनुसार वे सातवें नरक में हैं।

दूसराः यहां कुछ लोग ओशो के विधि-प्रयोग से ध्यान करते हैं, पर संप्रदाय विशेष में जन्मे होने के कारण उस संप्रदाय के लोग विरोध करते हैं। कुछ कहें।

मेरा छोटा सा परचा पढ़ कर उत्तर देना तो दूर, उन्होंने कागज को ऐसे फेंका जैसे अंगारा उनके हाथ में आ गया हो और क्रोधित हो गए। बाद में प्रश्नकर्ता के बारे में उन्होंने पूछताछ की।

भगवानदास भारती, वह अंगारा ही था। साधु-साध्वियों से, मुनियों से, महात्माओं से ऐसे प्रश्न नहीं पूछने चाहिए। ऐसी अड़चनें उनके लिए खड़ी नहीं करनी चाहिए। ये सब बेचारे इतनी समझ और सामर्थ्य के लोग नहीं हैं कि तुम्हारे प्रश्नों का कोई समाधान दे सकें। समाधान इन्हें स्वयं ही नहीं मिले हैं। ये तो बंधी-बंधाई बातें दोहरा सकते हैं। ये तो तोते हैं। इनसे तुम अगर ऐसी कोई बात पूछते, जो शास्त्रों में लिखी है--कि मनुष्य देह कितने तत्वों से बनी है? तो ये बताते, पांच तत्वों से। तो ये बड़े प्रसन्न होते कि तुमने बिल्कुल सम्यक प्रश्न पूछा! कि तुम पूछते--अहिंसा क्या है? अपरिग्रह क्या है? रात्रि-भोजन करना पाप क्यों है? तो ये सबका उत्तर दे देते। ये ग्रामोफोन रेकार्ड हैं, हि.ज मास्टर्स वॉइस! वह देखते हो न चोंगे के सामने जो सज्जन बैठे रहते हैं, वहीं हैं ये सब लोग। ये तो शास्त्रों को दोहरा देते हैं।

अब तुमने जो प्रश्न पूछे, इससे तुमने इन्हें अड़चन खड़ी कर दी। और फिर ये सब लोग न ध्यान को उपलब्ध हैं, न समाधि को। स्वयं का समाधान नहीं मिला, ये तुम्हें क्या समाधान देंगे! इनका सारा का सारा व्यक्तित्व पाखंड है, मुखौटे ओढ़े हुए हैं। इसलिए भूल ही गए। इसी को तो मैं कहता हूं कि हिमालय पर बैठे रहो वर्षों तक और क्रोध न आएगा। अब तुमने तो कोई गाली भी न दी थी, सिर्फ दो प्रश्न लिख कर पूछे थे। निर्दोष से प्रश्न! मगर उनको अंगारा छू गया, एकदम क्रोध आ गया। भूल ही गए होंगे उस क्षण में कि मैं मुनि हूं, मूर्च्छा पकड़ गई होगी। और तुमने बात जरा छू दी, घाव छू दिया। तुमने मुखौटा खिसकाने की कोशिश कर दी। तुमने इस तरह प्रश्न पूछ लिया, जिस तरह तुम मुझसे पूछते हो। इस तरह के प्रश्न कहीं और मत पूछना। मुझसे तो

तुम जी चाहे जो पूछो, लेकिन इस तरह के प्रश्न तुम और कहीं मत पूछना। इस तरह के प्रश्नों की तैयारी उनकी होती नहीं। किसी भी भांति अगर तुमने उनके मुखौटे को सरकाने की कोशिश की तो मुश्किल में पड़ोगे। ये सब राजनीति के ही दांव-पेंच चल रहे लोग हैं।

कहते हैंः विश्व-धर्म की जय! मगर अगर इनसे पूछो गौर से कि विश्व-धर्म यानी क्या? तो भीतर छिपा हैः दिगंबर जैन धर्म! पूरा जैन धर्म भी नहीं, उसमें भी दिगंबर जैन धर्म! श्वेतांबर जैन धर्म भी नहीं आता उस विश्व-धर्म में। विश्व-धर्म तो सिर्फ नाममात्र के लिए है। वह तो राजनीतिक चालबाजी है। क्योंकि विश्व-धर्म की आड़ में ऐसा लगता हैः अहा, कितनी उदारता! विश्व-धर्म की जय बोल रहे हैं!

अगर विश्व-धर्म की जय बोल रहे हैं, तो इनको इन सारे प्रश्नों के उत्तर देने चाहिए थे। और भी प्रश्नों के उत्तर देने चाहिए। क्योंकि जीसस मांसाहार करते रहे और शराब पीते रहे। फिर जीसस ने परमात्मा को पाया या नहीं? पूछना इनसे। और जीसस रात्रि-भोजन करते थे, मजे से करते थे। सच तो यह है, रात्रि में ही करते थे। मोहम्मद दिन में तो उपवास करते थे, रात्रि में भोजन करते थे। रमजान में अब भी मुसलमान यही करते हैं। पूछना कि मोहम्मद का क्या हुआ? मोहम्मद की नौ पत्नियां थीं। नौ पत्नियों वाला व्यक्ति मोक्ष को पा सकता है कि नहीं? तब इनको अड़चनें खड़ी होंगी। रामकृष्ण के संबंध में पूछना कि वे मछली खाते थे, तो वे परमहंस कैसे?

और अगर तुम विश्व-धर्म के संबंध में इनसे बातें पूछोगे, तब अड़चन खड़ी होगी। कुछ न पूछो तो विश्व-धर्म शब्द अच्छा है, प्यारा है। लेकिन विश्व-धर्म से इनका मतलब गहरे में है, दिगंबर जैन धर्म। जब तुम उसकी परिभाषा पूछोगे तो परिभाषा वही निकलेगी जो दिगंबर जैन धर्म की है। मगर विश्व-धर्म शब्द चलता सिक्का हो गया है अब, राजनीति में उपयोगी हो गया है। और धर्मों के लोग भी सुनें, समझें; और धर्मों के लोग भी आएं; और धर्मों के लोग भी इस तरह के लोगों की बातों में उत्सुक हों; इसलिए विश्व-धर्म की बात कहने में होशियारी है। ये सारे लोग भी राजनीतिज्ञ हैं।

प्लास्टिक सर्जरी के
कुछ जमा थे विद्वान
और चला रहे थे
अपनी जबान

पहला बोला
कि मैंने एक लंगड़ी को
टांग लगाई थी
इस वर्ष
ओलिंपिक दौड़ में
वही पहली आई थी;

दूसरा बोला कि
परसों ही मैंने

एक लूले को
लगाया है नया हाथ
और कल ही
बाक्सिंग में
दारासिंह को
उसने दी है
करारी मात;

तीसरा बोला
कि तब से बहुत हूं परेशान
जब से मैंने
एक भेड़िए के ओंठों पर
चिपकाई है आदमी की मुस्कान
वह हाथ जोड़े
घर-घर जा रहा है
और अगले चुनाव के लिए
अपना वोट पटा रहा है!

तरह-तरह के चुनाव हैं, तरह-तरह की वोटें हैं। भीड़ इकट्ठी करनी है। अब जैनों की तो कोई बहुत भीड़ तो है नहीं। और दिगंबर जैनों की तो कोई खास भीड़ है नहीं। मुनि विद्यानंद को कौन सुनने आए! हिंदू भी चाहिए, मुसलमान भी चाहिए, ईसाई भी चाहिए--तो बोलो विश्व-धर्म की जय! विश्व-धर्म की जय बोलने से इन सारे लोगों को भ्रांति पैदा होती है, इन सबको लगता है कि शायद ये हमारे धर्म की भी जय बोल रहे हैं।

लेकिन इनसे धर्म की परिभाषा पूछो। ये धर्म की परिभाषा ऐसी करेंगे कि उसमें सिर्फ दिगंबर जैन धर्म ही आएगा। वह परिभाषा की बात है। उसमें जीसस, मोहम्मद और कृष्ण और राम कोई नहीं आने वाले हैं। कृष्ण तो बिल्कुल नहीं आ सकते। सोलह हजार पत्नियां! पाप की भी कोई हद्द होती है! पाप की भी कोई सीमा होती है! और फिर इसी आदमी ने युद्ध करवाया। अर्जुन तो जैन मुनि होना चाहता था। वह तो एलाचार्य विद्यानंद हो गया होता। मगर कृष्ण ने उसको समझा-बुझा कर... वह भाग-भूग रहा था, सब तरह से उपाय कर रहा था, गांडीव छोड़ दिया था और तरह-तरह के तर्क उसने किए। मगर कृष्ण भी एक ही जिद्दी आदमी थे, कि उसको घोंट कर पिलाए ही गए, पिलाए ही गए! और मुझे नहीं लगता कि अर्जुन राजी हुआ कृष्ण से कभी भी। मगर देख कर कि यह आदमी पीछा छोड़ने वाला नहीं है, उसने कहा कि हे महाराज, अब क्षमा करो। मेरे सब संशय मिट गए। तुमसे जूझने से बेहतर है युद्ध में ही उतर जाऊं। बेचारा लड़ा।

तो जैन नाराज थे। वे ज्यादा ईमानदार जैन थे, ये मुनि विद्यानंद से कहीं ज्यादा ईमानदार, जिन्होंने कहा कि सातवें नरक में डाला है हमने कृष्ण को। ज्यादा ईमानदार। ये मुनि विद्यानंद तो बेईमान हैं। तुमने उनकी रग छू दी, जो दुखती है।

तुमने पूछ लिया कि कल आपने कृष्ण को नारायण संबोधन दिया, पर जैन शास्त्रों के अनुसार वे सातवें नरक में हैं।

तुमने उनको मुश्किल में डाल दिया। अगर वे कहें कि कृष्ण सातवें नरक में हैं, तो हिंदुओं से पत्ती कट जाए। और यह देश हिंदुओं का है। और अब जैनों की इतनी हिम्मत नहीं है, न इतना साहस है कि बलपूर्वक कह सकें जो उनकी मान्यता है। और अगर वे कहें कि नहीं, कृष्ण नारायण हैं, जैन शास्त्र गलत हैं, तो जैनियों से पत्ती कट जाए। तुमने उन्हें उपद्रव में डाल दिया। इसलिए तुम कहते जरूर हो कि छोटा सा पर्चा दिया था। वह अंगारा था! तुमने विद्यानंद पर मुसीबत खड़ी कर दी--इधर कुआं, उधर खाई। देखा होगा पर्चा और उन्होंने कहा कि आ गया कोई खतरनाक आदमी।

और इस तरह के लोगों से क्या पूछने जाते हो! इनकी शक्ल तो देखो! ये रोते हुए लोग, मक्खियां भिनभिना रही हैं। तुम गए किसलिए वहां? क्यों इनको कष्ट देते हो? जीने दो बेचारों को, बोलने दो विश्व-धर्म की जय! क्या बनता-बिगड़ता है? मस्जिद में जाते हैं कभी ये? हिंदू मंदिर में जाकर झुक कर नमस्कार करते हैं कभी ये?

हिंदू मंदिर में जाने की तो बात दूसरी; जैन शास्त्र कहते हैं कि अगर पागल हाथी भी आ रहा हो और उसके पैर के नीचे दब जाने की अवस्था हो, तो दब जाना, मर जाना; मगर पास में अगर हिंदू मंदिर हो तो उसमें शरण लेने मत जाना। नमस्कार करने की तो बात दूर। इनसे पूछो कि विश्व-धर्म की जय तुम किसलिए बोल रहे हो?

मगर इनके भीतरी हिसाब और हैं। इनका भीतरी मतलब यह है कि और धर्म तो धर्म हैं ही नहीं; असली धर्म तो एक ही है, वह है दिगंबर जैन धर्म; वही तो विश्व-धर्म है। इसलिए कोई अड़चन नहीं है; वह भीतरी हिसाब है इनका। जब ये बोल रहे हैंः विश्व-धर्म की जय! तो ये भीतर कह रहे हैंः जैन धर्म की जय! और उसमें भी दिगंबर, ख्याल रखना।

मैं एक गांव में गया, वहां श्वेतांबरों और दिगंबरों में लकड़ियां चल गई थीं। क्योंकि एक ही मंदिर था गांव में; छोटा गांव, एक ही मंदिर। उसको बांटा हुआ था उन्होंने आधा-आधा। समय में बांटा हुआ था। बारह बजे सुबह तक श्वेतांबर जैन पूजा करते थे और बारह बजे के बाद दिगंबर जैन पूजा करते थे। मगर वह झंझट की बात थी। उपद्रवी तो सब जगह होते हैं। बारह बज गए, और कोई श्वेतांबर जैनी ढोंग करे कि हमारी पूजा अभी खतम ही नहीं हुई। मतलब मस्ती में आ गए हैं हम। साढ़े बारह बजा दे। अब बाहर दिगंबर खड़े हैं, वे कह रहे हैंः हटो! निकलो! समय तुम्हारा खतम हो चुका। और वह है कि अपनी पूजा ही किए जा रहा है। तो दंगा-फसाद हो गया।

और मैंने उनसे पूछा कि एक ही महावीर की प्रतिमा है, अगर श्वेतांबर कर रहा है पूजा, करने दो, तुम भी अपनी शुरू करो।

वे कहें, कैसे कर सकते हैं हम शुरू?

मैंने कहा, फर्क क्या है?

फर्क एक छोटा सा है। वह फर्क यह है कि श्वेतांबर जब पूजा करता है महावीर की तो महावीर की आंख खुली होनी चाहिए, तो वह आंखें लगा कर पूजा करता है। नकली आंखें। वह तो यह कहो कि चश्मा नहीं पहनाते, यही बहुत है। नहीं तो बुढ़ापे में महावीर को चश्मा भी लगाते। नकली आंखें और उस पर और नकली चश्मा! खुद अंधे, उनको भी अंधा बनाते! और दिगंबर, वे बंद आंखों में पूजा करते हैं। क्योंकि महावीर की ध्यानस्थ अवस्था, उसमें आंख बंद होनी चाहिए। मूर्ति जो थी वह आंख बंद वाली थी। सो उस पर श्वेतांबर

चिपका लेते हैं अपनी आंख! नकली आंख ऊपर से लगा ली, पूजा कर ली, फिर आंख निकाल कर रख ली। फिर इसके बाद दिगंबर पूजा करते हैं।

तो उसी समय तो पूजा हो ही नहीं सकती। एक साथ तो दोनों पूजा कर नहीं सकते। डंडे चल गए। अहिंसक--और डंडे चल गए। महावीर के नाम पर!

मैंने उनसे कहा कि एक गुरु के दो शिष्य थे। दोपहरी थी, गरमी के दिन थे। गुरु विश्राम कर रहा था, दोनों शिष्य पैर दाब रहे थे। झगड़ा न हो, इसलिए पैर बांट लिए थे--एक के हाथ में बायां, एक के हाथ में दायां। और गुरु ने करवट ली। नींद में करवट ले ली होगी। बाएं पैर पर दायां पैर पड़ गया। जिसका बायां पैर था, उसने कहा, हटा ले अपने दाएं पैर को! अरे हटाता है कि नहीं? मेरे पैर पर तेरा पैर चढ़ा जा रहा है, यह बरदाश्त के बाहर है। जिसका दायां पैर था, उसने कहा, है किसकी हिम्मत जो मेरे पैर को हटा दे! है चुनौती, हटा दे! जिसका बायां पैर था उसने दाएं पैर को उठा कर फेंक दिया एक तरफ। और जिसका दायां पैर था, उसने उठा कर डंडा बाएं पैर की पिटाई कर दी। गुरु चीख मार कर उठ पड़ा। हालत सब देखी, समझी और कहा कि सुनो, पैर मेरे हैं!

महावीर से तो पूछो बेचारों से, कि क्या इरादे हैं? अभी आंख लगानी कि आंख नहीं लगानी! इनसे कोई पूछ ही नहीं रहा है। मुकदमा चल रहा है। अब पुलिस का ताला लगा है उस मंदिर पर वर्षों से, क्योंकि अदालत में फैसला नहीं हो पा रहा है कि मंदिर किसको दिया जाए।

ये क्या विश्व-धर्म की जय बोलेंगे! ये ही उपद्रवी तो सब झंझटें, झगड़े की जड़ हैं। और इनसे तुम पूछने जाते हो!

मुल्ला नसरुद्दीन एक डाक्टर के पास गया और कहा कि मैं दस साल से बीमार हूं। कोई मेरा इलाज नहीं कर पा रहा है। सभी डाक्टर थक गए, मैं भी डाक्टरों से थक गया हूं। आप नये-नये गांव में आए हैं, बड़ी प्रशंसा सुनी है। क्या आप मुझे ठीक कर सकते हैं?

उस डाक्टर ने कहा, मैं ही ठीक कर सकता हूं। मैं तीस साल से बीमार हूं, अनुभवी डाक्टर हूं! वे क्या करेंगे तुझे ठीक, बीमारी का अनुभव ही नहीं है कुछ! तू अब ठीक जगह आ गया है।

मुल्ला फिर भी डरा हुआ था। उसने कहा कि देखिए, मैंने सुना है कि कई डाक्टर लोग दवाई तो मोतीझिरा की देते हैं और मरीज मरता निमोनिया से है।

उस डाक्टर ने कहा, तू फिक्र छोड़, मैं जब निमोनिया की दवाई देता हूं तो मरीज हमेशा निमोनिया से ही मरता है।

मुल्ला थोड़ा और घबड़ाया। लेकिन डाक्टर ने कहा, तू फिक्र न कर। न तुझे मोतीझिरा है, न निमोनिया। तेरा तो आपरेशन करना पड़ेगा, अपेंडिक्स तेरी निकालनी है।

मुल्ला के तो प्राण कंप गए। मुल्ला ने कहा, क्या कहते हैं डाक्टर साहब! सोच-समझ कर अच्छी तरह आपरेशन करना, मुझे बड़ा भय लगता है। जिंदगी में यह मेरा पहला ही आपरेशन है।

डाक्टर ने कहा, तू मत घबड़ा रे। तू क्या समझता है मेरा दूसरा आपरेशन है? मैं भी पहली बार ही आपरेशन कर रहा हूं।

इनसे तुम सलाह लेने जा रहे हो! मत सताओ इनको। मत इन्हें कष्ट दो। इन्हें बोलने दो विश्व-धर्म की जय। इन्हें जो करना हो करने दो। इस कूड़े-करकट में पड़ने की जरूरत नहीं है।

और तुमने मेरा नाम ले दिया उनके सामने, तो तुमने छाती में उनके छुरा भोंक दिया! मेरा नाम तो लेना ही मत किसी महात्मा के सामने। नहीं तो महात्मा ऐसे भागते हैं मेरा नाम सुन कर कि फिर वे तुम्हारी तरफ लौट कर ही नहीं देखेंगे। एक तो तुमने कृष्ण का नाम लिया--एक खतरनाक नाम; और फिर एक मेरा नाम ले दिया! तुमने जले पर और नमक छिड़क दिया। ऐसा नहीं करते भैया!

अंतिम प्रश्नः ओशो, आप हमें इतना हंसाते हैं, मगर स्वयं कभी क्यों नहीं हंसते?

वीणा, एकांत में हंसता हूं। इधर तो तुमको देखता हूं तो रोना आता है। आदमी की हालत इतनी बुरी है कि हंसो तो कैसे हंसो! आदमी बड़ी दयनीय अवस्था में है, बड़ी आंतरिक पीड़ा में है। कैसे जिंदा है, यह भी आश्चर्य की बात है।

इसलिए तुम्हें तो हंसा देता हूं, लेकिन खुद नहीं हंस पाता हूं। एकांत में हंस लेता हूं। जब तुम नहीं होते, जब तुम्हारी याद बिल्कुल भूल जाती है, तुम्हारे चेहरे नहीं दिखाई पड़ते, तुम्हारी पीड़ा, तुम्हारा दुख विस्मृत हो जाता है--तब हंस लेता हूं। लेकिन तुम्हारे सामने हंसना असंभव है।

जिनकी सांसों में कभी गंध न फूलों की बसी,
शोख कलियों पे जिन्होंने सदा फब्ती ही कसी;
जिनकी पलकों के चमन में कोई तितली न फंसी,
जिनके होंठों पे कभी आई न भूले से हंसी;
ऐसे मनहूसों को जी भर के हंसा लूं तो हंसूं,
अभी हंसता हूं, जरा मूड में आ लूं तो हंसूं।
बेखुदी में जो कभी पंख लगा कर न उड़े,
होश में जो न महकती हुई जुल्फों से जुड़े;
देख कर काली घटाओं को हमेशा जो कुढ़े,
कभी मयखाने की जानिब न कदम जिनके मुड़े;
उन गुनहगारों को दो घूंट पिला लूं तो हंसूं,
अभी हंसता हूं, जरा मूड में आ लूं तो हंसूं।
जन्म लेते ही अभावों की जो चक्की में पिसे,
जान पाए न जो, बचपन यहां कहते हैं किसे;
जिनके हाथों ने जवानी में भी पत्थर ही घिसे,
और पीरी में जो नासूर के मानिंद रिसे;
उन यतीमों को कलेजे से लगा लूं तो हंसूं,
अभी हंसता हूं, जरा मूड में आ लूं तो हंसूं।
जिनकी हर सुबह सुलगती हुई यादों में कटी,
और दोपहरी सिसकते हुए वादों में कटी,
शाम जिनकी नये झगड़ों में फसादों में कटी,

रात बस खुदकुशी करने के इरादों में कटी;

ऐसे कमबख्तों को मरने से बचा लूं तो हंसूं,

अभी हंसता हूं, जरा मूड में आ लूं तो हंसूं।

वीणा, हंसना मुश्किल है। मनुष्य को देख कर आंसुओं को रोक लेता हूं, यही काफी है। तुम मनुष्य की दुर्दशा तो देखो, उसके भीतर बसे हुए नरक को तो देखो।

और कठिनाई बढ़ जाती है, क्योंकि इस नरक को बनाने वाला वही है।

मुल्ला नसरुद्दीन शराब पीकर सड़क से चला जा रहा था। पैर फिसल गया, गिर पड़ा। कई फ्रैक्चर हो गए। एक आदमी उसे उठा कर पास के मकान तक ले जाने लगा। वह भी नशा किए हुए था। उसको उठा कर चलना तो मुश्किल ही था, खुद ही चलना मुश्किल था, वह गिरा। नसरुद्दीन की और कुछ हड्डियां बची थीं तो वे भी टूट गईं। दो-चार और पियक्कड़ चले आ रहे थे मधुशाला से बाहर। यह मधुशाला के बाहर ही हुई होगी घटना। उन्होंने कहा, ऐसे नहीं भाई, ऐसे नहीं। स्ट्रेचर चाहिए। सो जल्दी से उन्होंने दो डंडे कहीं से लाए और कपड़ा वगैरह बांध कर स्ट्रेचर बना लिया। आधी रात, और तो कोई था भी नहीं, मुल्ला को स्ट्रेचर पर रखा कि अस्पताल ले चलें। वह कपड़ा फट गया, वह उसमें से गिरा, सो और कुछ बचे थे तो वे टूट गए।

जब दूसरे दिन उसके मित्र उसे देखने गए, तो उसकी हालत देख कर बड़े हैरान हुए। सब पूरा शरीर ही बंधा था। सब जगह पट्टियां ही पट्टियां, पलस्तर ही पलस्तर--खोपड़ी से लेकर पैरों तक। बस जरा आंखें दिखाई पड़ती थीं, नाक दिखाई पड़ती थी, मुंह दिखाई पड़ता था। उन्होंने पूछा नसरुद्दीन को कि बहुत तकलीफ होती होगी!

नसरुद्दीन ने कहा कि नहीं, ऐसे तो तकलीफ नहीं होती; जब हंसता हूं तब होती है।

तो उन्होंने पूछा कि भलेमानुष, हंसते किसलिए हो? इसमें हंसने की क्या बात है?

तो उसने कहा, हंसता इसलिए हूं कि मैं पीए हुआ था, इसलिए गिरा। मैं मूरख! और फिर एक दूसरा मूरख आ गया, वह भी पीए हुए था, इतना भी होश नहीं कि पीए हुए हो, मुझको उठा कर चलने लगा। सो वह गिरा, उसने और मेरी हड्डियां तोड़ दीं। और फिर चार और मूरख आ गए। उन्होंने तो गजब कर दिया। उन्होंने स्ट्रेचर बना लिया। कैसे बना लिया, गमछा वगैरह बांध कर, क्या किया पता नहीं। वह गमछा फट गया, वह फट ही जाने वाला था। हंसता हूं यह देख कर कि जिनको अपना होश नहीं, वे दूसरों को सहायता दे रहे हैं, दूसरों की सेवा कर रहे हैं। अपने आप तो मेरी कुछ ही हड्डियां टूटी थीं; ये तो दूसरों की सेवा में टूटीं। यह तो दूसरों ने जो सेवा की मेरी, उसका फल भोग रहा हूं। सेवा उन्होंने की, मेवा मैं खा रहा हूं। सो कभी-कभी हंसी आ जाती है। जब हंसी आ जाती है तो शरीर में थोड़ी हलन-चलन होती है, उससे बहुत तकलीफ होती है।

आदमी बेहोश है, पट्टियां ही पट्टियां बंधी हैं। सब तरफ बेहोशी है। होश का पता ही नहीं। किरण का भी पता नहीं। अंधकार ही अंधकार है, अमावस की रात है।

और वीणा, तुम मुझसे पूछती हो, मैं हंसता क्यों नहीं!

चाहता हूं हंसूं, तुम्हारी हंसी में साथ दूं; लेकिन नहीं दे पाता। तुमको भी क्यों हंसाता हूं, उसका कारण है। जब देखता हूं कि किसी ने जम्हाई ली, जब देखता हूं कि कोई झपकी खाने लगा, तो सिवाय इसके कोई और उपाय नहीं कि कुछ कहूं कि तुम्हें हंसी आ जाए। हंसी आ जाए तो थोड़ी नींद टूटे, तो तुम थोड़े जगो, तुम थोड़े होश में आ जाओ। तुम्हारी नींद तोड़ने के लिए बीच-बीच में तुम्हें हंसाता रहता हूं, नहीं तो तुम कभी के सो जाओ।

एक पादरी बोल रहा था। एक आदमी सोया ही नहीं, घुर्राने भी लगा। उस पादरी ने कहा, भाई, धीरे-धीरे! क्योंकि और लोग जो सो गए हैं उनकी नींद न टूट जाए!

अगर मैं तुम्हें हंसाऊं न तो तुम सब कभी के सो चुके होओ। धार्मिक सभाओं में लोग सोने का ही काम करते हैं। इसलिए मैं अपनी धार्मिक सभा को जितनी अधार्मिक बना सकता हूं, बनाने की कोशिश करता हूं; नहीं तो लोग सो जाएं।

धर्म तो समझो नींद की एक दवा है। डाक्टर हैं, जो भेज देते हैं धर्मसभाओं में लोगों को, जिनको नींद नहीं आती, कि कभी न आए, ट्रैंक्वेलाइजर काम न करे, कोई फिक्र नहीं, धर्मसभा में चले जाओ, वहां नींद जरूर आ जाएगी। आने ही वाली है। वही राम की कथा! वही सीता मैया! वही रावण! वही हनुमान जी! कब तक सुनोगे? सदियां हो गईं सुनते-सुनते। सोओगे नहीं तो क्या करोगे! सो ही जाओगे। और धर्म की बातें--थोथी, सैद्धांतिक, शास्त्रीय। किसको रस है? जीवन ऐसे ही विरस है और ये धर्म की बातें और विरस कर देती हैं।

मैं अपनी सभा को धार्मिक सभा नहीं बनने देना चाहता। यह तो मयखाना है और इसे मैं मयखाना ही रखना चाहता हूं। इसलिए बीच-बीच में जब तुम भूल जाते हो, तुम्हें याद नहीं रहती, तुम समझते हो कि धर्मसभा चल रही है, कि धार्मिक प्रवचन चल रहा है, तब मुझे कुछ न कुछ अधार्मिक करना पड़ता है--तुम्हें याद दिलाने को कि नहीं भैया, यह धर्मसभा नहीं है। तुम गलती से यहां आ गए, अगर धर्मसभा में आए हो तो। यह तो महफिल है। यह तो मस्तों का जमघट है। यह तो रिंदों का सत्संग है, पियक्कड़ों की जमात है।

तो तुम्हें हंसा देता हूं, ताकि तुम सो न जाओ। मगर मैं नहीं हंस सकता। उस दिन हंसूंगा जिस दिन देखूंगा कि तुम सब जाग गए, अब तुम्हें हंसाने की कोई जरूरत नहीं रही। जिस दिन मुझे तुम्हें नहीं हंसाना पड़ेगा, उस दिन यहां बैठूंगा और हंसूंगा। फिर तुमसे कुछ कहने को नहीं रहेगा। अभी तो तुम्हारे साथ मेहनत करनी है।

और जगाना--किसी को भी जगाना--उपद्रव का काम है। क्योंकि सोने वाला हर तरह की कोशिश करता है कि मत मेरी नींद में बाधा डालो! मत मुझे उठाओ! अभी-अभी तो नींद लगी है; अभी-अभी तो सुबह की ठंडी हवा चली है--और आप जगाने आ गए!

मैं तीन बजे रात उठा करता था, विश्वविद्यालय में जब पढ़ता था। तो जिसको भी ट्रेन पकड़नी हो, कुछ करना हो, वह मुझसे कह देता था--कोई प्रोफेसर, कोई डीन, कोई वाइस चांसलर--कि भई, उठा देना मुझे पांच बजे।

मैं तीन ही बजे उठा देता। वे देखते घड़ी कि अरे अभी तीन ही बजे हैं! तो मैंने कहा, आप थोड़ी देर और सो लो।

साढ़े तीन बजे फिर उठा देता।

भई, तुम सोने दोगे कि नहीं? पांच बजे मुझे जाना है।

मैंने कहा, तो थोड़ी देर बाद उठा देंगे।

मैं चार बजे फिर उठा देता। वे हाथ जोड़ लेते, वे कहते, अब तुम कृपा करके हमें पांच बजे भी मत उठाना। तुमने थका मारा।

फिर तो यह खबर फैल गई विश्वविद्यालय में कि मुझसे भूल कर कोई न कहे। किसी को जाना होता तो यहां तक हुआ कि एक सज्जन थे डाक्टर रसाल--हिंदी विभाग के अध्यक्ष थे, बड़े अच्छे आदमी थे--वे मुझसे एक दिन बोले कि भैया, कल सुबह मुझे पांच बजे गाड़ी पकड़नी है, तुम ख्याल रखना जगाना मत। तुम्हें कहीं से पता

चल जाए! कोई तुमसे कह दे कि डाक्टर रसाल को गाड़ी पकड़नी है! मैं तुमसे हाथ जोड़े लेता हूं, जगाना मत। गाड़ी चूके, चूक जाए। मगर तुम तीन बजे से जगाना शुरू कर देते हो!

लोग जगना ही नहीं चाहते, चाहे गाड़ी चूक जाए, चाहे जीवन चूक जाए।

मगर मैं यहां कस्त किए बैठा हूं कि जगा कर रहूंगा। जो भी फंसा मेरे हाथ में, उसको जगा कर रहूंगा। हिलाऊंगा-डुलाऊंगा, खींचूंगा-तानूंगा, हंसाऊंगा--जो भी बन सकेगा करूंगा। मारूंगा, पीटूंगा--जो भी बन सकेगा करूंगा।

तुम्हारे प्रश्न के उत्तर थोड़े ही देता हूं, तुम्हारी पिटाई करता हूं। अब तुम सोचो दयाराम पर क्या गुजरी होगी! अब दयाराम दोबारा प्रश्न पूछेंगे? समाप्त! अब वे मन ही मन में कह रहे होंगे कि हे प्रभु, मेरे सब संशय समाप्त हो चुके! अब मुझे कुछ नहीं पूछना, अब मैं घर जाता हूं--और वहीं शांत होने का प्रयोग करूंगा।

तुम्हारे प्रश्न तो बहाने हैं कि मैं तुम्हें झकझोर सकूं। इसलिए तुमसे कहता हूं--पूछो! उत्तर देने का थोड़े ही सवाल है; कुटाई-पिटाई करने का सवाल है। उत्तरों से थोड़े ही तुम जगने वाले हो। उत्तर तो तुम पी गए सदियों-सदियों में। उत्तर पीने में तो तुम ऐसे कुशल हो कि शास्त्रों को पी जाओ और डकार न लो!

आज इतना ही।

ग्यारहवां प्रवचन

मेरा संदेश हैः ध्यान में डूबो

पहला प्रश्नः ओशो, संबोधि क्या है? और संबोधि दिवस पर आपका संदेश क्या है?

नरेंद्र बोधिसत्व, महान सिकंदर भारत आया। उसने एक फकीर के हाथ में एक चमकती हुई चीज देखी। पूछा, क्या है? वह फकीर बोला, बताऊंगा नहीं। बता नहीं सकूंगा। यह राज बताने का नहीं है।

लेकिन सिकंदर जिद्द पर अड़ गया। उसने कहा, हार मैंने माननी जीवन में कभी सीखी नहीं है। जान कर रहूंगा।

तो फकीर ने कहा, एक बात बता सकता हूं कि तुम्हारी सारी धन-दौलत इस छोटी सी चीज के सामने कम वजन की है।

सिकंदर ने तत्क्षण एक बहुत विशाल तराजू बुलाया और लूट का जो भी उसके पास सामान था, हीरे-जवाहरात थे, सोना-चांदी था, सब उस तराजू के एक पलवे पर चढ़ा दिया और उस फकीर ने उस चमकदार छोटी सी चीज को दूसरे पलवे पर रख दिया। उसके रखते ही फकीर का पलवा नीचे बैठ गया और सिकंदर का पलवा ऊपर उठ गया--ऐसे कि जैसे खाली हो! सिकंदर किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया। झुका फकीर के चरणों में और कहा, कुछ भी हो, नतमस्तक हूं। लेकिन राज मुझे कहो।

फकीर ने कहा, राज कहना बहुत मुश्किल है। कहा नहीं जा सकता, इसलिए नहीं कह रहा हूं। लेकिन तुम झुके हो, इसलिए एक बात और बताए देता हूं।

एक चुटकी धूल उठाई रास्ते से और उस चमकदार चीज पर डाल दी। और न मालूम क्या हुआ कि फकीर का पलवा एकदम हलका हो गया और ऊपर की तरफ उठने लगा और सिकंदर का पलवा भारी हो आया और नीचे बैठ गया। स्वभावतः सिकंदर तो और भी चकित हुआ। उसने कहा, यह मामला क्या है? तुम पहेलियों को और पहेलियां बना रहे हो, और उलझा रहे हो। सीधी-सादी बात है। कहना हो कह दो, न कहना हो न कहो।

उस फकीर ने कहा, अब कह सकता हूं। अब तुम जिज्ञासा से पूछ रहे हो। अब जोर-जबरदस्ती नहीं है। यह कोई खास चीज नहीं है; मनुष्य की आंख है। धूल पड़ जाए, दो कौड़ी की। धूल हट जाए तो इससे बहुमूल्य और कुछ भी नहीं--सारी पृथ्वी का राज्य भी नहीं, सारी धन-दौलत फीकी है।

संबोधि का अर्थ होता है, नरेंद्र, तुम्हारे भीतर की आंख। और कुछ ज्यादा कठिनाई की बात नहीं है; थोड़ी सी धूल पड़ी है--सपनों की धूल। धूल भी सच नहीं। विचारों की धूल। कल्पनाओं की धूल। कामनाओं की धूल। धूल भी कुछ वास्तविक नहीं, धुआं-धुआं है। मगर उस धुएं ने तुम्हारी भीतर की आंख को छिपा लिया है। जैसे बादल आ जाएं और सूरज छिप जाए। बादल छंट जाएं और सूरज प्रकट हो जाए। बस इतना ही अर्थ है संबोधि काः बादल छंट जाएं और सूरज प्रकट हो जाए।

तुम सूरज हो। बुद्धत्व तुम्हारा स्वभाव है। मगर खूब तुमने बादल अपने चारों तरफ सजा लिए हैं! न मालूम कैसी-कैसी कल्पनाओं के बादल! न मालूम कैसी-कैसी कामनाओं के बादल! जिनका कोई मूल्य नहीं। जो कभी पूरे हुए नहीं। जो कभी पूरे होंगे नहीं। मगर तुम उस सबसे घिरे हो, जो नहीं है, और नहीं होगा; और उससे चूक रहे हो, जो है, और जो सदा है और सदा रहेगा!

संबोधि का अर्थ होता हैः जो है, उसमें जीना; जो है, उसे देखना; जो है, उससे जुड़ जाना। जो नहीं है, उस पर पकड़ छोड़ देना।

अतीत नहीं है। और हम अतीत को पकड़े हुए हैं। बीत गया कल, हम कितना सम्हाल कर रखे हुए हैं। जैसे हीरे-जवाहरातों को कोई सम्हाले। राख है; अंगारा भी नहीं अब; सब बुझ चुका। जैसे कोई लाशों को ढोए। ऐसा हमारा अतीत है। और या फिर हम भविष्य की कामनाओं में उलझे हैं। शेखचिल्ली हैं हम। सोच रहे हैंः ऐसा हो, ऐसा हो, ऐसा हो जाए। कितने सपने तुम फैलाते हो! कितने सपनों के जाल बुनते हो!

और इन दो चक्कियों के पाटों के बीच, जो दोनों नहीं हैं--अतीत नहीं है, नहीं हो चुका; भविष्य नहीं है, अभी हुआ ही नहीं--इन दो नहीं के बीच जो है, वर्तमान का छोटा सा क्षण, वह दबा जा रहा है। इन दो चक्कियों के बीच में तुम्हारा अस्तित्व पिसा जा रहा है।

अतीत से और भविष्य से जो मुक्त हो गया, वह संबुद्ध है, वह बोधि को उपलब्ध हुआ। उसकी आंख खुली। उसकी आंख से धूल हटी।

लेकिन तुम धोखा देने में कुशल हो। तुम औरों को धोखा देते-देते इतने कुशल हो गए हो कि अपने को ही धोखा देने लगे हो। और औरों को धोखा दो तो कुछ ज्यादा नुकसान नहीं पहुंचा सकते। क्या छीन लोगे? लेकिन अपने को धोखा दो तो सब गंवा दोगे। और हर आदमी अपने को धोखा दे रहा है; अपने साथ ही वंचना कर रहा है; अपने को ही भ्रांति में रखे हुए है। मूर्च्छा हमारी अवस्था है, जब कि होनी चाहिए जागृति। लेकिन सारी दुनिया हमें एक ही पाठ सिखाती है कि धोखा मत खाना किसी और से; और सबको धोखा देना। और तुम सबको धोखा देते-देते भूल ही जाओगे कि जीवन धोखा देने में नहीं है। धोखा देने में तुम खुद धोखा खा जाओगे। दूसरों के लिए खोदे गए गड्ढे तुम्हारे लिए ही गड्ढे हो जाएंगे, उनमें तुम्हीं गिरोगे। तुम्हारे क्रोध में तुम्हीं सड़ोगे। तुम्हारी वासना में तुम्हीं गलोगे। तुम्हारी आकांक्षाएं तुम्हारी छाती पर ही पत्थर होकर बैठ जाएंगी। तुम्हारी आकांक्षाओं में किसी और के जीवन का विनाश नहीं हो रहा है, तुम्हारा हो रहा है।

लेकिन छोटे-छोटे बच्चों को भी हम धोखा सिखा रहे हैं। हम सोचते हैं यही दुनियादारी है। यहां जीवन का संघर्ष है। यहां हरेक हरेक से जूझ रहा है।

मुल्ला नसरुद्दीन का बेटा फजलू पहले दिन ही स्कूल से देर से लौटा। रास्ते में होता होगा मदारी का खेल, देखने में लग गया होगा। बड़े-बड़े मदारियों के खेल में लगे हैं, छोटे बच्चों का क्या! आया घर, मुल्ला ने पकड़ा कान उसका, की पिटाई और कहा, इससे एक पाठ लो कि अब दुबारा कभी घर देर से मत आना।

दूसरे दिन समय पर आया, लेकिन कपड़े उसके गंदे थे और फटे थे। झगड़ा हो गया था खेल-खेल में। मार-पीट हो गई थी लड़कों से। मुल्ला ने फिर उसकी पिटाई की और कहा, इससे पाठ लो कि कपड़े आगे से न तो गंदे हों और न फटें। सोच-समझ कर चलो।

तीसरे दिन कपड़े तो ठीक थे, समय पर भी आया था बेटा, लेकिन स्कूल में सबसे फिसड्डी साबित हुआ था। पिछले छोर से प्रथम आया था। फिर मुल्ला ने उसकी पिटाई की और कहा, इससे पाठ लो बेटा। ऐसे नहीं चलेगा। यह जिंदगी कठोर संघर्ष है। इसमें छीना-झपटी है। ऐसे पीछे-पीछे रहे, मारे जाओगे। कुछ भी करो, ठीक कि गलत, मगर सीढ़ियां चढ़ो। आगे बढ़ो। हमेशा प्रथम रहो, चाहे कोई भी उपाय करना पड़े; येन-केन-प्रकारेण, मगर प्रथम रहना ही है।

चौथे दिन लड़का प्रसन्न चला आ रहा था। समय पर आया था, कपड़े भी नहीं फटे थे, हाथ में शिक्षक का प्रमाणपत्र भी लेकर आया था और बड़ा खुश था कि आज पिटाई नहीं होगी। मगर मुल्ला ने न आव देखा न

ताव, एकदम झपटा, पकड़ी गर्दन, कर दी पिटाई। लड़का चिल्लाता ही रहा कि सुनो तो! सुनो तो! मगर तब तक तो पिटाई हो चुकी थी। लड़के ने कहा कि आप होश में हैं? आप पागल तो नहीं हो गए? न मैं देर से आया, न कपड़े फटे हैं और यह प्रमाणपत्र कि आज मैं प्रथम आया हूं कक्षा में!

मुल्ला ने कहा, इससे तुम पाठ लो बेटा कि इस संसार में न्याय कहीं है ही नहीं।

प्रत्येक व्यक्ति दीक्षित हो रहा है इस तरह। प्रत्येक व्यक्ति दीक्षित किया जा रहा है इस तरह। माता-पिता कर रहे हैं, परिवार कर रहा है, शिक्षक कर रहे हैं, पंडित-पुरोहित कर रहे हैं, राजनेता कर रहे हैं। बेईमानी, धोखाधड़ी हमारे जीवन की शैली है। इसलिए हम चूक रहे हैं उससे, जो हमारा धन है, जो हमारी वास्तविक संपदा है।

हममें से कोई भी गरीब नहीं है। हममें से कोई भी भिखारी नहीं है। परमात्मा भिखारी पैदा करता ही नहीं। परमात्मा भिखारी पैदा करना भी चाहे तो नहीं कर सकता है। परमात्मा जिसे भी बनाएगा उसे सम्राट ही बनाएगा। उसके हाथों से सम्राट ही निर्मित हो सकते हैं। तुम भी सम्राट हो। इसे जान लेना संबोधि है। तुम भी मालिकों के मालिक हो। इसे पहचान लेना बुद्धत्व है। तुम्हारे भीतर एक लोक है--अकूत संपदा का, अपरिसीम आनंद का, रहस्यों का, कि उघाड़े जाओ कितने ही, कभी पूरे उघाड़ न पाओगे। ऐसी अनंतशृंखला है उनकी! इतने दीये जल रहे हैं भीतर, इतनी रोशनी है, और तुम अंधेरे में जी रहे हो, क्योंकि तुम्हारी आंखें बाहर अटकी हैं। बाहर अंधेरा है, भीतर प्रकाश है। बाहर अंधकार है, भीतर आलोक है। जो भीतर मुड़ा, जिसने अपने आलोक को पहचाना, वही बुद्ध है।

बुद्धत्व प्रत्येक व्यक्ति की क्षमता है, जन्मसिद्ध अधिकार है। अगर तुम चूको, तो तुम्हारे अतिरिक्त और कोई जिम्मेवार नहीं है।

और तुमने पूछा है, नरेंद्रः "संबोधि दिवस पर आपका संदेश क्या है?"

आनंदित होओ! आनंद बांटो! और जो आनंदित है वही आनंद बांट सकता है, स्मरण रखो। दुखी दुख ही बांट सकता है। हम वही बांट सकते हैं जो हम हैं। जो हम नहीं हैं, उसे हम चाहें तो भी नहीं बांट सकते।

इसलिए तो इस दुनिया में लोग ऐसा नहीं है कि दूसरों को सुख नहीं देना चाहते। कौन मां-बाप अपने बच्चों को दुख देना चाहता है! कौन पति अपनी पत्नी को दुख देना चाहता है! कौन पत्नी अपने पति को दुख देना चाहती है! कौन बच्चे अपने मां-बाप को दुख देना चाहते हैं!

नहीं लेकिन, तुम्हारी चाह का सवाल नहीं है। दुख ही फलित होता है। नीम लाख चाहे कि उसमें मीठे आम लगें और कांटे लाख चाहें कि गुलाब के फूल हो जाएं, चाहने से क्या होगा? मात्र चाहने से कुछ भी न होगा। तो तुम चाहते तो हो कि लोगों को आनंदित करो, लेकिन कर तुम पाते हो केवल दुखी। चाहते तो हो कि पृथ्वी स्वर्ग बन जाए, लेकिन बनती जाती है रोज-रोज नरक।

इसलिए मैं तुमसे कहना चाहता हूं, यह मेरा संदेश हैः इसके पहले कि तुम किसी और को आनंद देने जाओ, तुम्हें अपने भीतर आनंद की बांसुरी बजानी पड़ेगी, आनंद का झरना तुम्हारे भीतर पहले फूटना चाहिए। मैं तुम्हें स्वार्थी बनाना चाहता हूं।

यह स्वार्थ शब्द बड़ा प्यारा है। गंदा हो गया। गलत अर्थ लोगों ने दे दिए। स्वार्थ का अर्थ होता हैः स्वयं का अर्थ। अपने भीतर के अर्थ को जो जान ले, स्व के बोध को जो जान ले, वही स्वार्थी है। मैं तुमसे कहता हूंः स्वार्थी बनो! क्योंकि तुम्हारे स्वार्थी बनने में ही परार्थ की संभावना है। तुम अगर स्वार्थी हो जाओ पूरे-पूरे और तुम्हारे भीतर अर्थ के फूल खिलें, आनंद की ज्योति जले, रस का सागर उमड़े, तो तुमसे परार्थ होगा ही होगा।

इसलिए मैं सेवा नहीं सिखाता, स्वार्थ सिखाता हूं। मैं नहीं कहता कि किसी और की सेवा करो। तुम कर भी न सकोगे। तुम करोगे तो भी गलती हो जाएगी। तुम करने जाओगे सेवा और कुछ हानि करके लौट आओगे। तुम करना चाहोगे सृजन और तुमसे विध्वंस होगा। तुम ही गलत हो, तो तुम जो करोगे वह गलत होगा। इसलिए मैं तुम्हारे कृत्यों पर बहुत जोर नहीं देता। मेरा जोर है तुम पर। तुम क्या करते हो, यह गौण है; तुम क्या हो, यही महत्वपूर्ण है।

आनंदित होओ! और आनंदित होने का एक ही उपाय है--मात्र एक ही उपाय है, कभी दूसरा उपाय नहीं रहा, आज भी नहीं है, आगे भी कभी नहीं होगा--ध्यान के अतिरिक्त आनंदित होने का कोई उपाय नहीं है। धन से कोई आनंदित नहीं होता; हां, ध्यानी के हाथ में धन हो तो धन से भी आनंद झरेगा। महलों से कोई आनंदित नहीं होता; लेकिन ध्यानी अगर महल में हो तो आनंद झरेगा। ध्यानी अगर झोपड़े में हो तो भी महल हो जाता है। ध्यानी अगर नरक में हो तो भी स्वर्ग में ही होता है। ध्यानी को नरक में भेजने का कोई उपाय ही नहीं है। वह जहां है वहीं स्वर्ग है, क्योंकि उसके भीतर से प्रतिपल स्वर्ग आविर्भूत हो रहा है, उसके भीतर से प्रतिपल स्वर्ग की किरणें चारों तरफ झर रही हैं। जैसे वृक्षों में फूल लगते हैं, ऐसे ध्यानी में स्वर्ग लगता है।

मेरा संदेश हैः ध्यान में डूबो। और ध्यान को कोई गंभीर कृत्य मत समझना। ध्यान को गंभीर समझने से बड़ी भूल हो गई है। ध्यान को हलका-फुलका समझो, खेल-खेल में लो। हंसिबा खेलिबा करिबा ध्यानम्। गोरखनाथ का यह वचन याद रखनाः हंसो, खेलो और ध्यान करो। हंसते खेलते ध्यान करो। उदास चेहरा बना कर, अकड़ कर, गुरु-गंभीर होकर, धार्मिक होकर मत बैठ जाना। इस तरह के मुर्दों से पृथ्वी भरी है। वैसे ही लोग बहुत उदास हैं, और तुम और उदासीन होकर बैठ गए। क्षमा करो। लोग वैसे ही बहुत दीन-हीन हैं, अब और उदासीनों को यह पृथ्वी नहीं सह सकती। अब पृथ्वी को नाचते हुए, गाते हुए ध्यानी चाहिए, आह्लादित! एक ऐसा धर्म चाहिए पृथ्वी को, जिसका मूल स्वर आनंद हो, जिसका मूल स्वर उत्सव हो।

अब तक के सारे धर्म उदास थे। बुद्ध उदास नहीं थे, न क्राइस्ट उदास थे, न महावीर उदास थे। मगर उनके आस-पास जो लोग इकट्ठे हुए, वे सब उदास लोग थे। उनके आस-पास जो लोग इकट्ठे हुए, वे सब बीमार थे। वे गलत कारणों से उनके पास इकट्ठे हो गए थे। इसमें उनका कोई कसूर भी नहीं है। अब बुद्ध करें भी क्या? और अक्सर ऐसा होता है कि जब भी कोई बुद्धपुरुष होगा, तो सब तरह के विक्षिप्त, सब तरह के रुग्ण, सब तरह के मानसिक बीमारियों से ग्रस्त लोग उसके आस-पास इकट्ठे होने लगेंगे। इस आशा में कि होगा कोई चमत्कार! इस आशा में कि और कहीं तो कोई चिकित्सा न हो सकी, अब शायद चिकित्सा हो जाए! अब शायद बुद्ध में मिल जाए चिकित्सक! शायद बुद्ध के वचनों में मिल जाए औषधि!

पंडित इकट्ठे होंगे। क्योंकि बुद्ध के वचनों की खबर दूर-दूर तक फैलने लगेगी। और पंडित इसी उत्सुकता में रहता है कि सूचनाएं इकट्ठी करे। पंडित को ज्ञान से कोई प्रयोजन नहीं है, न ध्यान से प्रयोजन है। वह सूचना का संग्राहक है। बस सूचनाएं इकट्ठी करता है। सुंदर-सुंदर वचन इकट्ठे करता है, सुभाषित इकट्ठे करता है। खुद तो भीतर जैसा है वैसा ही रहता है; स्मृति में संजो लेता है प्यारे वचनों को, कंठस्थ कर लेता है। फिर यही पंडित बाद में उत्तराधिकारी हो जाता है। बुद्ध के जाने के बाद यही उनके वचनों को दोहरा सकता है। यही उनकी धरोहर का मालिक होता है।

और वे रुग्ण लोग जो बुद्ध के पास आए थे--वे उदास लोग, बीमार लोग, हारे-थके लोग, पलायनवादी, जो घबरा गए थे और भाग गए थे, जो जिंदगी में जीत न सके थे और संघर्ष करने की जिनकी क्षमता भी न थी,

जो कायर थे--वे इकट्ठे हो गए थे। उन कायरों की जमात धर्म बनती है। और वे ही फिर धर्म की व्याख्या करेंगे, धर्म को अर्थ देंगे।

तो जीसस और जीसस के पीछे बने हुए धर्म में जमीन-आसमान का फर्क होता है। महावीर में और जैन धर्म में दुश्मनी होती है। बुद्ध में और बौद्धों में कोई नाता नहीं है, कोई मैत्री नहीं है।

और फिर यह जो पंडित और पागल और उदासीन और पलायनवादी लोगों का समूह इकट्ठा खड़ा होता है, यह हजार तरह के उपद्रव खड़े करता है। यह एक-दूसरे से लड़वाता है। हिंदू मुसलमान से लड़ते हैं। मुसलमान ईसाइयों से लड़ते हैं। सब एक-दूसरे की गर्दन काटने में लगे रहते हैं। समय कहां, फुरसत कहां कि अपने भीतर झांकें! पहले दूसरों का सफाया करना है, पहले सारी पृथ्वी पर अधिकार करना है।

तो धर्म राजनीति बन जाता है। जहां भी बीमार आदमी होंगे वहां राजनीति आ जाएगी। राजनीति बीमार आदमी की दुर्गंध है और धर्म स्वस्थ मनुष्य की सुगंध है। मगर जब भी स्वस्थ मनुष्य होता है कोई, तो यह उपद्रव होना शुरू हो जाता है।

मैंने सुना है कि शैतान के शिष्य एक दिन भागे हुए शैतान के पास पहुंचे और उन्होंने कहा, मालिक, जल्दी करो! जल्दी करो! पृथ्वी पर एक आदमी को फिर सत्य उपलब्ध हो गया है। एक आदमी फिर बुद्धत्व को उपलब्ध हो गया है।

शैतान ने कहा, तू घबड़ा मत, चिंता न कर। कोई जल्दी नहीं है।

शैतान का शिष्य बोला, जल्दी नहीं है? अगर उसने सत्य की उदघोषणा कर दी तो हमारा सारा कारोबार बंद हो जाएगा!

शैतान ने कहा, अरे पागल! हमने पंडित बिठा रखे हैं, पुरोहित बिठा रखे हैं, वे उसे सत्य की घोषणा करने देंगे तब न! वे पहुंच चुके हैं। वे चारों तरफ इकट्ठे हैं। उन्होंने उसके वचनों की व्याख्या करनी शुरू कर दी है। वह कुछ भी कहे, पंडित उसकी व्याख्या कर रहे हैं कि यही तो उपनिषद में लिखा है, यही गीता में लिखा है, यही तो शास्त्रों का सार है। वे शास्त्रों में सब डुबा देंगे उसके सत्य को। तुम फिकर मत करो। हमारा काम पंडित सदियों से करते रहे हैं। हमें खुद सीधे जाने की जरूरत नहीं है। और सब तरह के पागल इकट्ठे हो गए हैं। जल्दी ही वहां सब तरह की राजनीति चलेगी, प्रतियोगिता चलेगी, गलाघोंट प्रतियोगिता पैदा होगी। और जल्दी ही वे एक-दूसरे से लड़ेंगे, एक-दूसरे को मारेंगे, काटेंगे, पीटेंगे। और सदियां बीत जाती हैं, उपद्रव जारी रहते हैं।

यहूदियों ने जीसस को सूली दी, दो हजार साल हो गए, मगर संघर्ष अभी भी खतम नहीं हुआ है। यहूदी अभी भी जीसस को ज्ञानी मानने को तैयार नहीं हैं। यहूदियों के पंडित मानने दें तब न! जीसस जैसे प्यारे व्यक्ति को भी यहूदी ज्ञानी मानने को राजी नहीं हो पाते। यहूदियों का कसूर नहीं है। वे बीच में खड़े हुए पंडित हैं, पुरोहित हैं। वे व्याख्या कर रहे हैं कि यह जीसस खतरनाक आदमी है। इसने तो भ्रष्ट किया। इसने तो हमारे शास्त्रों को तहस-नहस कर दिया। इसने हमारी परंपरा को उखाड़ दिया। इसके कारण ही तो हम बरबाद हुए हैं।

और स्वभावतः ईसाई दुश्मन हैं यहूदियों के, दो हजार साल से बदला ले रहे हैं। एक आदमी को सूली क्या लगा दी थी, लाखों लोगों को सूली लगा दी है ईसाइयों ने। बदला अभी तक चुका ही नहीं। बदला चलता ही जा रहा है। यहूदी दो हजार साल से सूली पर लटके हुए हैं। एक आदमी को सूली पर लटकाने का फल भोग रहे हैं।

मैंने सुना है, अमरीका में यह घटना घटी। दो हिप्पी--महाहिप्पी कहना चाहिए--बहुत भूखे थे, पैसा पास न था। कुछ और उपाय सूझता न था। लेकिन देखने-दाखने में, बाल लंबे थे, दाढ़ी थी, बिल्कुल जीसस जैसे मालूम होते थे। तो उन्होंने सोचा कि एक उपाय करें। रविवार का दिन था, भूख जोर से लगी थी, चर्च के पास

से गुजरते थे, सोचा कि चलें भीतर। प्रोटेस्टेंट चर्च था। तो उन्होंने एक तैयारी की, एक नाटक रचा। एक युवक ने दो लकड़ियां जोड़ कर क्रॉस बनाया, उसको कंधे पर रखा, वह पीछे हुआ और एक युवक आगे। पहला युवक अंदर प्रविष्ट हुआ और उसने कहा, रास्ता दो, प्रभु का आगमन हो गया है! महाप्रभु आ रहे हैं, रास्ता दो!

ईसाइयों ने देखा, बिल्कुल जीसस जैसे आदमी मालूम हो रहे थे। एकदम पैरों पर गिर पड़े। सूली भी लिए हुए हैं! जल्दी से दान लोगों ने दिया। कोई चालीस-पचास डालर इकट्ठे हुए। बड़े खुश हुए। दोनों बाहर निकले। उन्होंने कहा, यह तो बड़ा गजब का काम है, यह धंधा अच्छा है! एक सप्ताह चल जाएगा। दूसरे सप्ताह दूसरे चर्च में।

दूसरे सप्ताह एक कैथलिक चर्च के सामने पहुंचे। वही ढंग। अब थोड़ा और भी संवार लिया था ढंग को, अभ्यास भी कर लिया था। पहला युवक भीतर घुसा, उसने जोर से घोषणा कीः सावधान! जो वचन दिया था वह पूरा हो रहा है। प्रभु का आगमन हो चुका है! वे आ रहे हैं, रास्ता दो! और तब दूसरा युवक सूली लिए हुए भीतर प्रविष्ट हुआ।

तहलका मच गया। स्त्रियां तो गश खाकर गिर गईं। पुरुषों ने एकदम चरण पकड़ लिए। नोटों की वर्षा हो गई। कोई सौ-डेढ़ सौ डालर लेकर दोनों बाहर निकले। बड़े खुश थे कि यह तो बड़ा गजब का काम हुआ। पहले से क्यों नहीं सूझा!

तीसरी बार सोचा, मजाकिया, कि चलो जरा इस बार यहूदियों के सिनागॉग, उनके मंदिर में चलें, वहां क्या होता है! पैसे काफी थे, दो-तीन सप्ताह चलेगा, अभी जल्दी भी नहीं थी। यहूदी क्या व्यवहार करते हैं, जरा देखें! वही किया उन्होंने। पहले व्यक्ति ने जाकर आवाज दी कि सावधान! प्रभु आ गए हैं। जो वचन उन्होंने दिया था वह पूरा किया जा रहा है! और दूसरा युवक सूली लिए भीतर प्रविष्ट हुआ।

यहूदियों के बूढ़े पुरोहित ने चश्मे के ऊपर से गौर से देखा और अपने युवक सहयोगी को कहा कि जा खीलियां ला, हथौड़ी ला। मालूम होता है यह हरामजादा फिर आ गया!

दो हजार साल हो गए, मगर यहूदी क्षमा नहीं कर सके अभी तक। कभी नहीं करेंगे। वे पुरोहित करने नहीं देंगे।

धर्म तो एक है! धर्म दो कैसे हो सकते हैं? जब विज्ञान ही दो नहीं होते, जब पदार्थ का विज्ञान तक एक होता है, तो चैतन्य का विज्ञान तो कैसे अनेक हो सकता है?

पृथ्वी पर तीन सौ धर्म हैं और तीन सौ धर्म के कम से कम तीन हजार उपधर्म हैं, और कम से कम तीन लाख उन उपधर्मों के छोटे-छोटे संप्रदाय हैं। इतने छोटे-छोटे संप्रदाय कि उनके नाम भी याद रखना मुश्किल है।

अब एक मित्र बार-बार पूछे जाते हैं कि आप यह बताइए, गहोई समाज का किसने निर्माण किया?

एक दूसरे सज्जन आ गए हैं, वे प्रश्न पूछते हैं कि विश्नोई समाज का कौन जन्मदाता था? आप महावीर पर बोलते हैं, बुद्ध पर बोलते हैं, कृष्ण पर बोलते हैं, क्राइस्ट पर बोलते हैं, मोहम्मद पर बोलते हैं; आप हमारे भगवान जंभेश्वरनाथ पर क्यों नहीं बोलते? जंभेश्वरनाथ ने विश्नोई समाज का निर्माण किया था।

जरूर किया होगा। एक से एक उपद्रव, कितने उपद्रव चल रहे हैं! और उनको फिक्र नहीं है समझने की कुछ। जो गहोई है, उसको फिक्र यह पड़ी है कि गहोई का क्या अर्थ है? जो विश्नोई है, उसको--विश्नोई का क्या अर्थ है? सबको अपनी-अपनी पड़ी है। सत्य से किसी को लेना-देना नहीं है। और सत्य एक है--न गहोई, न विश्नोई। और वह सत्य एक तुम्हारे भीतर छिपा है--न वेद में है, न कुरान में है, न बाइबिल में है। ध्यान से उस सत्य को खोजो।

ध्यान का अर्थ हैः शांत होओ, मौन होओ, भीतर जागो! तुम भी संबुद्ध हो सकोगे। जरा सा श्रम चाहिए। जरा सा रुख परिवर्तन चाहिए। जितनी शक्ति तुम बाहर दौड़ने में लगा रहे हो, जितनी शक्ति तुम व्यर्थ की चीजों को संगृहीत करने में लगा रहे हो, उसका दसवां हिस्सा भी अगर तुम भीतर बैठने में लगा दो तो क्रांति हो जाए। तो हजार-हजार सूरज तुम्हारे भीतर भी ऊग आएं! तुम्हारे भीतर भी नृत्य हो, संगीत हो। तुम्हारे भीतर भी आनंद के फव्वारे फूटें, हंसी की फुलझड़ियां छूटें, रास-महारास रचे! तुम्हारे भीतर भी फाग हो, रंग झरें, पिचकारियां भरी जाएं, गुलाल उड़े!

ऐसे ही मर जाना है? जीवन को बिना जाने मर जाना है?

अधिक लोग ऐसे ही मर जाते हैं। जीते ही नहीं और मर जाते हैं। इतना ही कस्द करो कि बिना जीए नहीं मरेंगे, जीवन को जान कर ही विदा होंगे। और आश्चर्य की बात तो यह है कि जो जीवन को जान लेता है, उसकी फिर कोई मृत्यु नहीं है। जीवन को जान लिया तो प्रभु को जान लिया, तो शाश्वत को जान लिया, तो सत्य को जान लिया। सत्य कहो, शाश्वत कहो, प्रभु कहो, निर्वाण कहो, बुद्धत्व कहो--ये सब एक ही घटना के अलग-अलग नाम हैं। इन नामों में मत उलझ जाना।

मेरा तो एक ही छोटा सा सूत्र है, छोटा सा संदेश हैः भीतर डुबकी मारो। जितने गहरे जा सको, जाओ--अपने में! वहीं पाओगे जो पाने योग्य है। और उसे पाकर निश्चित ही बांट सकोगे। पृथ्वी तुम्हारे हंसी के फूलों से भर सकती है।

दूसरा प्रश्नः ओशो, जैसा आपने कहा कि जब हम सब जाग जाएंगे, उस दिन आप हंसेंगे। क्या इसका यह अर्थ नहीं हुआ कि हम आपको कभी हंसते नहीं देख सकेंगे?

शीला, ऐसा उदास अर्थ लेने की क्या जरूरत है? क्यों नहीं तुम सब जाग सकोगे? इतने निराशावादी होने का क्या कारण है? यही तो मेरी सारी चेष्टा है कि तुम्हारे भीतर आशा जगे; तुम्हारी आशा के बीज अंकुरित हों।

मुल्ला नसरुद्दीन के दो बेटे हैं--एक आशावादी, एक निराशावादी। परेशान है। एक मनोवैज्ञानिक से सलाह ली कि क्या करूं। मनोवैज्ञानिक ने कहा, ऐसा करो, यह दीवाली आ रही है। जो आशावादी है, उसको एक कमरे में रखो और कमरे में घोड़े की लीद ही लीद भर दो। क्योंकि अति आशावादी होना ठीक नहीं है। लीद की बदबू और कमरे में लीद ही लीद देख कर थोड़ी तो निराशा पैदा होगी ही, कि यह क्या भेंट दी पिताजी ने दीवाली की! यह कोई भेंट है! उससे थोड़ा संतुलन आएगा। और जो निराशावादी है, उसके कमरे में फूल ही फूल सजा दो, दीये ही दीये जला दो, फुलझड़ियां ही फुलझड़ियां, पटाखे, खेल-खिलौने, मिठाइयां, जो भी सुंदर तुम पा सको बाजार में, सब खरीद कर उसके कमरे में भर दो। देखें फिर वह क्या और कैसे अपनी निराशा को सम्हालता है! उसमें थोड़ी आशा जगेगी कि नहीं, जिंदगी में रस भी है, मजा भी है। इस तरह दोनों अपनी अतियों से हट जाएं, मध्य में आ जाएं।

मुल्ला को बात जंची। उसने यही किया। दो घंटे बाद गया पहले कमरे में, जिसमें फूल सजाए थे, दीये जलाए थे, खिलौने रखे थे; और निराशावादी बेटे को छोड़ा था। निराशावादी बेटा बीच में पद्मासन लगाए बैठा था--बिल्कुल उदास, आंसू टपक रहे थे।

उसने पूछा कि बेटा, तू रो रहा है? मिठाइयां वैसी की वैसी रखी हैं, खिलौने तूने छुए नहीं, फुलझड़ियां-पटाखे वैसे के वैसे रखे हैं। मामला क्या है?

उस बेटे ने कहा, मैं रो रहा हूं! मैं रो रहा हूं इसलिए कि मिठाइयों से क्या होगा? अरे जरा सा स्वाद और फिर पेट में दर्द और फिर बदहजमी। ये कष्ट मैं बहुत भोग चुका, अब धोखे में आने वाला नहीं हूं। ये मिठाइयां नहीं हैं, जहर हैं।

और बाप ने कहा, और इतने सुंदर फूल?

उसने कहा, कितनी देर लगेगी मुरझाने में? अभी हैं, अभी मुरझा जाएंगे! इनका क्या भरोसा? अरे क्षणभंगुर हैं!

नसरुद्दीन भी मुश्किल में पड़ा कि इससे करो क्या! और उसने कहा कि ये खेल-खिलौने?

उसने कहा, खेल-खिलौनों का क्या है, छुए कि टूटे। खेल ही खिलौने हैं!

और फुलझड़ी-पटाखे?

उसने कहा, क्या हाथ-पैर जलवाने हैं? अखबारों में देखते नहीं कि हर दीवाली पर कितने बच्चे मर जाते हैं! तुम क्या मेरी जान लेने के पीछे पड़े हो? इसीलिए तो मैं रो रहा हूं कि यह बाप है कि हत्यारा है!

एक उदास आदमी का दृष्टिकोण है। उसको तुम कुछ भी दे दो, वह उदासी खोज लेगा। उसे गुलाब की झाड़ी के पास ले जाओ, वह कांटे गिनेगा, फूल नहीं। उदास आदमी से पूछो, वह कहेगाः क्या रखा है दुनिया में! अरे दो रातों के बीच में एक छोटा सा दिन। और दो लंबी रातें! क्या सार है! जनम के पहले अंधेरा, मृत्यु के बाद अंधेरा; अरे चार दिन की जिंदगी, इसमें रखा क्या है! यूं कट जाएगी। पानी की लहर है जिंदगी तो। और तुम्हारे साधु-महात्मा भी इसी वर्ग के हैं, निराशावादी, जिन्हें जीवन में सब जगह कांटे दिखाई पड़ेंगे, अंधेरा दिखाई पड़ेगा; जो कसम लिए बैठे हैं कि फूल देखेंगे ही नहीं, और देखेंगे भी तो फूल में भी दोष खोज लेंगे।

फिर उसने सोचा कि देखूं आशावादी का क्या हुआ? उस बेचारे पर उसे भी दया आ रही थी कि इस मूरख के लिए मैंने इतना किया और इसने यह जवाब दिया, उसकी क्या हालत है? थोड़ा डरा भी कि कहीं एकदम मार-पीट पर उतारू न हो जाए। क्योंकि जब यह रो रहा है और कह रहा है कि तुम क्या हत्यारे हो! तो उसके कमरे में तो लीद ही लीद भरी है।

मगर जब उसने उसका कमरा खोला तो दंग रह गया। वह तो लीद को उछाल रहा है और अंदर घुस कर लीद के कुछ खोज रहा है और इतना आनंदित हो रहा है। नसरुद्दीन ने पूछा कि क्या हो रहा है, तू इतना खुश क्यों हो रहा है?

उसने कहा कि जहां इतनी लीद है वहां घोड़ा भी कहीं न कहीं होगा! मैं घोड़े को खोज रहा हूं! आओ तुम भी। अरे खोजने से क्या नहीं मिलता! जिन खोजा तिन पाइयां, गहरे पानी पैठ!

शीला, तू भी खूब पागल है! तू कह रही है कि "जैसा आपने कहा कि जब हम सब जाग जाएंगे, उस दिन आप हंसेंगे... "

तो क्यों नहीं जाग जाएंगे सब? जब सब सो सकते हो तो जाग क्यों नहीं सकते? जब सब रो सकते हो तो हंस क्यों नहीं सकते? यही आंखें रोती हैं, यही आंखें हंसती हैं। यही आंखें सोती हैं, यही आंखें जागती हैं।

नहीं, निराश होने का कोई कारण नहीं है। और घबड़ाओ मत, यह घड़ी आएगी। इस घड़ी को आना ही पड़ेगा। जरा श्रम करना जरूरी है। और जहां इतने प्रतिभाशाली लोग इकट्ठे हुए हैं... मैं अपने को सौभाग्यशाली

मानता हूं, क्योंकि शायद इतने प्रतिभाशाली संन्यासी किसके पास होंगे! इतने युवा, इतने ऊर्जा से भरे हुए लोग किसके पास होंगे! हम इस पूरी पृथ्वी को हंसी से भर दे सकते हैं।

और वह तो मैंने प्रतीक की बात कही। प्रतीकों को जोर से नहीं पकड़ लेना चाहिए। प्रतीक तो केवल इशारे हैं। वह तो मैंने तुम्हें एक प्रलोभन दिया कि देखो जल्दी जागो, अगर मुझे हंसता देखना है। चलो, इसी बहाने जागो।

नहीं जागोगे, जिद ही कर रखी होगी तुमने, तो भी मैं हंसूंगा--तो हंसूंगा इस बात पर कि गजब के लोग थे! हठयोगी थे! कसम खाकर ही पैदा हुए थे कि चाहे कुछ भी हो जाए, हिलेंगे-डुलेंगे नहीं; चाहे लाख हिलाओ-डुलाओ, करवट नहीं लेंगे, आंख नहीं खोलेंगे। कितना ही चिल्लाओ, कितना ही पुकारो, सुन भी लेंगे तो अनसुनी कर देंगे। होश में भी आ जाएंगे तो कहे जाएंगे कि हम बेहोश हैं।

वह तो मैंने प्रतीक की बात कही। तुम्हें प्रलोभन दिया। एक संकेत। हंसता तो अभी भी हूं। नहीं हंस सकता हूं यहां, उसका इतना ही कारण नहीं है कि तुम जब सब जागोगे तभी हंसूंगा। असल में चुटकुले कहने का राज और कीमिया यही है कि कहने वाला न हंसे। अगर कहने वाला हंस दे तो सुनने वाले चुप हो जाते हैं।

ऐसा कहा जाता हैः अगर किसी अंग्रेज से चुटकुला कहो तो वह दो बार हंसता है। पहली बार शिष्टाचारवश। समझ में उसकी कुछ आता नहीं। अंग्रेज होता है अकड़ा हुआ आदमी। हंसने के लिए थोड़ा विराम, थोड़ा विश्राम, थोड़ा हलका-फुलका होना चाहिए। अंग्रेज हलका-फुलका नहीं होता, भारी-भरकम होता है। सारी पृथ्वी का भार ही वह लिए हुए है। व्हाइट मेन्स बर्डन! वह हंसे तो कैसे हंसे! लेकिन होता शिष्टाचारी है। बहुत शिष्टाचारी होता है। अगर तुमने कुछ मजाक की बात कही तो हंसेगा--कि तुम्हें बुरा न लग जाए। इतना शिष्टाचारी होता है कि मैंने सुना है, एक बुढ़िया रास्ते से जा रही थी लंदन के। एक कार वाला रुका, बूढ़ी स्त्री को देख कर उसने कहा कि मां, तू बैठ जा। कहां उतरना है, मैं उतार दूंगा। वह बैठ गई। दो मील चलने के बाद उसने पूछा कि तुझे कहां जाना है वहां मैं छोड़ दूं! उस बुढ़िया ने कहा, बेटे, अब तू पूछता है तो कहती हूं। जाना तो मुझे दूसरी तरफ था। तो उसने कहा, माई, फिर बैठ क्यों गई? उसने कहा, शिष्टाचारवश! तूने इतने प्रेम से कहा, तो अंग्रेज हूं, नहीं नहीं कही जाती।

तो अंग्रेज दो बार हंसता है--एक बार शिष्टाचारवश और दूसरी बार जब आधी रात को उसे नींद नहीं आती और मजाक समझ में आती है पड़े-पड़े, तब हंसता है कि अरे, सो यह था मतलब! जरा देर से आती है।

अमरीकन्स के संबंध में कहा जाता है कि तुम उनसे मजाक की बात कहो, वे तत्क्षण हंसते हैं। क्योंकि वे तत्क्षण समझते हैं, देर-दार नहीं करते, देर-दार का काम भी नहीं है।

और जर्मनों के संबंध में कहा जाता है कि वे भी दो बार हंसते हैं--पहली बार शिष्टाचारवश, जैसा अंग्रेज हंसता है और दूसरी बार जब वे उसी मजाक को बिना समझे किसी और को सुनाते हैं। दूसरा तो नहीं हंसता, मगर वे हंसते हैं और हैरान होते हैं कि दूसरा हंस क्यों नहीं रहा, बात क्या है!

और यहूदियों के संबंध में कहा जाता हैः तुम उनसे कोई मजाक सुनाओ, वे कहते हैं, बहुत पुरानी है। और दूसरी बात, तुम सब उलटी-सीधी सुना रहे हो। हंसने की तो बात ही दूर और उलटे डांटते हैं कि यह मजाक बहुत पुरानी है। और दूसरी बात, तुम उलटी-सीधी सुना रहे हो, तुम्हें ठीक से सुनाना भी नहीं आता।

अलग-अलग जातियां अलग-अलग तरह का व्यवहार करती हैं मजाक के साथ। भारतीयों के पास तो अपने कोई मजाक ही नहीं हैं। एक ऐसा मजाक नहीं जो भारतीयों का अपना हो। हो ही नहीं सकता। वेदांत से

फुरसत मिले तब न! वेदांत की चर्चा करते-करते दांत ही गिर जाते हैं। फिर हंसो तो और भद्द होती है। यहां तो गंभीर बातें होती हैं, ब्रह्मचर्चा होती है।

तो ऐसा नहीं कि मैं नहीं हंसता हूं, मगर अदृश्य। हंसता तो जरूर हूं, लेकिन नियमानुसार, जब मजाक की कोई बात कही जा रही हो तो हंसना नहीं चाहिए। सो नियम का पालन करता हूं। एक ही नियम का तो जीवन में पालन करता हूं! और शीला, तू उसको भी तोड़ने पर पड़ी है। और तो मेरे जीवन में कोई नियम है ही नहीं।

लेकिन कभी-कभी ऐसा मजाक भी कहने का मौका आ जाता है, बहुत मुश्किल से कभी-कभी, जब अपने को नहीं रोक पाता। बड़ी मुश्किल हो जाती है। तब मुझे पता चलता है कि संयम कितनी कठिन चीज है। जैसे इस कहानी में! जब भी यह कहानी मैंने कही है, तो मैंने मन ही मन संयमों को, संयमी लोगों को सिर झुका कर नमस्कार किया है।

कहानी सीधी-सादी है। नाम शायद तुमने सुना होः चूहड़मल-फूहड़मल सिंधी! यह तो पूर्व-नाम है। अब तो लोग उनको दादाजी करके जानते हैं। सिंधियों के गुरु हैं। उल्हासनगर निवासी। हैं चमत्कारी। पहले उल्हासनगर में ही रहते थे और मेड इन यू.एस.ए. चीजें बनाते थे। फाउंटेन पेन, बैटरी, जो भी चीज बनाते--मेड इन यू.एस.ए.। किसी ने पूछा कि रहते उल्हासनगर में, बनाते मेड इन यू.एस.ए. चीजें! चूहड़मल-फूहड़मल ने कहा कि यू.एस.ए. पर कोई अमरीका का कब्जा है? कोई ठेका ले लिया है अमरीका ने? यू.एस.ए. किसी के बाप का है? अरे यू.एस.ए. का कोई एक ही मतलब थोड़े ही होता है। यू.एस.ए. का मतलब होता हैः उल्हासनगर सिंधी एसोसिएशन।

फिर यू.एस.ए. का माल बनाते-बनाते थक गए, जैसा कि इस देश में सभी लोग आखिर थक जाते हैं। धोखाधड़ी करते-करते थक जाते हैं तो महात्मा हो गए, संन्यासी हो गए। एक जगह वेदांत की चर्चा कर रहे थे। शायद पूना में ही कर रहे हों। चंदूलाल की पत्नी भी अपने बेटे को लेकर सुनने गई थी। और बेटा बीच-बीच में बार-बार कह रहा था कि मम्मी, पेशाब करने जाना है। और बेचारी मम्मी, अब वेदांत की चर्चा चलती, ब्रह्म की चर्चा चलती, तो वह उसको डांट देती थी कि चुप रह, ऐसी बात नहीं करते। मगर वह चुप भी कैसे रहे! आखिर उसने कहा कि मम्मी, जाने देती हो कि नहीं, फिर मेरे वश में न रहेगा। अब मेरा संयम टूटा जा रहा है।

चूहड़मल-फूहड़मल भी सुन रहे थे। उन्होंने कहा कि बाई, ले जा। और अपने बेटे को कुछ समझा। धर्मचर्चा में ऐसे शब्दों के उपयोग नहीं करते।

तो चंदूलाल की पत्नी ने कहा, फिर क्या करें? बच्चे हैं।

बच्चे हैं जरूर, मगर इनको समझा दे। एक प्रतीक बना दिया; जैसे कि बच्चे को समझा दे कि जब भी तेरे को "पेशाब करना है", ऐसा कहना है; ऐसा नहीं कहना, कहना कि भजन करना है। सो कोई समझ भी न पाएगा। और धर्मचर्चा चल रही है, लोग भी सुनेंगे, प्रसन्न होंगे कि बेटा भी कैसा धार्मिक है। और तू समझ जाएगी। कोड-वर्ड!

जंचा चंदूलाल की पत्नी को। उससे बेटे को समझा दिया। छह महीने गुजर गए। फिर दादाजी आए, चंदूलाल के घर ही ठहरे। उसी रात कोई चंदूलाल के रिश्तेदार मर गए तो पत्नी को जाना पड़ा। तो बेटे को दादाजी के पास सुला गई, कि इसे सुलाए रखना। आधी रात को बेटे ने कहा हिला कर, दादाजी, दादाजी! भजन गाना है।

आधी रात को नींद खोलो तुम किसी की... दादाजी ने कहा, चुप! यह कोई वक्त है भजन गाने का? सुबह ब्रह्ममुहूर्त में गाना।

उस लड़के ने कहा, ब्रह्ममुहूर्त तक नहीं रुक सकते। भजन अभी गाना है।

दादाजी ने कहा, तू पागल है क्या? अरे आधी रात को न सोएगा न सोने देगा! चुपचाप सो जा। अगर बोला तो ठीक नहीं होगा।

थोड़ी देर बेटा चुप रहा। उसने फिर--जब तक नींद लग गई दादाजी की--फिर हिलाया। उसने कहा कि नहीं दादाजी, मैं नहीं रुक सकता। मैं तो भजन गाकर रहूंगा।

दादाजी ने कहा, हद हो गई! तू गाएगा भजन, मुझको जगाएगा, मुहल्ले-पड़ोस के लोग जग जाएंगे। और लोग क्या कहेंगे! अरे भजन कोई ऐसी चीज थोड़े ही है कि हर कभी गाना!

लड़के ने कहा, तलफ लगी है!

दादाजी ने अपना सिर पीट लिया कि कहां के मूरख से पाला पड़ा है! भूल ही भाल गए अपना महात्मापन। कहा कि बदतमीज, हरामजादे, यह कोई वक्त है?

लड़के ने कहा, गाली दो या कुछ भी करो, या तो गाने दो या बोलो!

दादाजी भी एक ही थे, उन्होंने कहा कि नहीं गाने दूंगा यह बेवक्त का काम।

लड़के ने कहा कि फिर मैं कहे देता हूं, भजन निकल जाएगा! बिल्कुल निकलने के करीब है! फिर मत कहना कि भजन में भिगा दिया!

दादाजी ने कहा, हद हो गई! भजन में भिगा दिया, क्या कह रहा है तू! नहीं मानता भैया तो ऐसा कर, धीरे से मेरे कान में गा दे।

लड़के ने कान में भजन गा दिया। जब कुनकुना-कुनकुना भजन दादाजी के कान में पड़ा तब उनको अकल आई, कि मारे गए! उचक कर खड़े हो गए। कहा कि तेरा बाप चंदूलाल, वह भी मूरख है, तेरी मां मूरख और तू महामूरख है! अरे इसको भजन कहते हैं? अधर्म की हद हो गई! नास्तिकता की हद हो गई!

उस लड़के ने कहा, मैंने तो पहले से ही कहा था दादाजी, कि अगर नहीं माना तो भिगो दूंगा। और यह कोई रुकने वाली चीज नहीं है कि ब्रह्ममुहूर्त तक रुक जाए। और यह भी बता दूं कि आपने ही छह महीने पहले मेरी मम्मी को समझाया था।

तब दादाजी को याद आया।

प्रतीक कभी-कभी महंगे पड़ जाते हैं। प्रतीक कभी-कभी मुश्किल के हो जाते हैं। यह तो मैंने प्रतीक की बात कही। इसका तुम ऐसा मतलब मत समझ लेना कि मैं हंसूंगा ही नहीं। तुम नहीं हंसे तो इस बात पर हंसूंगा। तुम हंसे, तुम जागे, तो तुम्हारे जागरण पर।

मैं तो हंस ही रहा हूं। मेरा आनंद तो चल ही रहा है--अहर्निश। तुम्हें भी उसमें सम्मिलित कर लेना चाहता हूं। यह संन्यास उसके लिए ही निमंत्रण है।

और यह जो मैं कह रहा हूं ये सब तो प्रतीक हैं। इनको जड़ता से मत पकड़ लेना। कई पत्र आ गए मेरे पास कि आपकी बात सुन कर हम बहुत उदास हो गए।

क्या खाक तुम उदास होओगे! तुम पहले ही से इतने उदास हो कि मैं तो नहीं समझता कि और उदास हो सकते हो। सिद्धार्थ ने लिखा है कि आपकी बात सुन कर मैं तो बहुत उदास हो गया।

अब सिद्धार्थ की शक्ल मैं याद करता हूं, मैं नहीं सोच सकता कि यह सिद्धार्थ और कैसे उदास हो सकते हैं! इससे ज्यादा भी उदासी हो सकती है? सिद्धार्थ तो बिल्कुल उदासीन साधु हैं। कहीं किसी और साधुओं की जमात में होते तो महात्मा हो जाते। यहां बेचारों को कोई पूछता नहीं। यहां तो हिसाब ही उलटा है, यहां तो उलटी खोपड़ियां जुड़ी हैं। यहां का गणित और है।

और भी पत्र आ गए कि इसका तो यही अर्थ होगा कि आपको हम कभी हंसते न देख सकेंगे।

तुम जब हंस रहे हो तो मैं तुममें हंस रहा हूं। मेरे संन्यासी मेरे हाथ हैं। मेरे संन्यासी मेरे प्राण हैं।

रामकृष्ण जब मर रहे थे, उनको गले का कैंसर हुआ था, भोजन नहीं ले सकते थे, पानी नहीं पी सकते थे। विवेकानंद ने उनसे कहा कि परमहंसदेव, आप परमात्मा से इतना नहीं कह सकते? जरा सी बात है, आप कह भर दें कि हो जाएगी। आपकी कही बात और टाली जाए, यह तो नहीं हो सकता। जरा सी बात है, आप कह दें कि यह क्या कर रहे हो? कम से कम भोजन तो करने दो! पानी तो पीने दो!

विवेकानंद ने कहा, तो रामकृष्ण तो बहुत सीधे-सादे भोले आदमी थे, उन्होंने आंख बंद की। आंख खोली और कहा कि देख, तूने ऐसी बात की, तेरी बात मान कर मैंने कहा, तो परमात्मा ने मुझे बहुत झिड़का और मुझे कहा कि सुन, तू अपने ही गले पर भरोसा किए जाएगा? कब तक? तो तेरे शिष्यों के गलों से कौन भोजन कर रहा है? उनके गलों से कौन पानी पी रहा है?

तो विवेकानंद को कहा कि देख, इस तरह की सलाह मुझे मत देना अब आगे से। मैं सीधा-सादा, मान लेता हूं, तो उलटी मुझे झिड़क खानी पड़ी। और बात तो ठीक है। अब कब तक अपने ही गले से पानी पीऊंगा? अब तुम्हारे गले से पीऊंगा! अब कब तक इस देह में जीऊंगा? अब तुम्हारी देह में जीऊंगा! और परमात्मा ठीक कह रहा है। अब फैल जाऊंगा तुम सब में।

तुम जब हंसते हो तो मैं तुममें हंसता हूं। तुम्हारे कंठ मेरे कंठ हैं। संन्यस्त होने का अर्थ ही यही होता है कि मुझमें और तुममें अब कोई दूरी न रही, कोई फासला न रहा। दीवाल हटा दी हमने। बीच के सारे बंधन, सीमाएं समाप्त कर दीं। मिलन हुआ। जहां गुरु और शिष्य का मिलन है, वहीं तो संन्यास का फूल खिलता है। तुम हंसते हो तो मैं हंसता हूं। तुम नाचते हो तो मैं नाचता हूं। मुझे अलग से नाचने की, अलग से हंसने की कोई जरूरत नहीं है।

तीसरा प्रश्नः ओशो, जब भी कोई लड़की वाला मुझे वर के रूप में देखने आता है तो मैं फौरन अपने कमरे में देववाणी ध्यान या सक्रिय ध्यान शुरू कर देता हूं। परिवार वाले इससे नाराज हैं। क्या और भी कोई सरल उपाय है?

प्रेम प्रदीप, और कोई सरल उपाय नहीं है। यह तो सरलतम तुमने चुन लिया। यह तो बड़ा कारगर उपाय तुमने चुना। होने दो घर वालों को नाराज। एक बात पक्की है कि तुम बड़े उपद्रवों से बच जाओगे। और जान बची तो लाखों पाए, लौट के बुद्धू घर को आए! अगर घर आना है तो दिल खोल कर करो। जब भी कोई आए देखने तब चूकना ही मत। और ढीला-पोला भी मत करना, दिल खोल कर करना कि मुहल्ले वाले भी इकट्ठे हो जाएं।

फ्रांस में, इटली में, जर्मनी में युवकों को अनिवार्य रूप से सेना में भरती होना पड़ता है। अब कुछ संन्यासी हो गए। अब वे कहते हैं, हम क्या करें?

मैंने कहा, तुम फिक्र मत करो, जाओ। और जब दफ्तर में तुम्हें बुलाया जाए इंटरव्यू के लिए, तो वहीं सक्रिय ध्यान करने लगना। कुंडलिनी करना। ज्ञान-चर्चा छेड़ देना। ब्रह्मज्ञान से नीचे मत उतरना। समझ कर कि तुम पागल हो, वे खुद ही भरती नहीं करेंगे।

और यह काम दो-तीन बार तो कारगर हुआ, मगर अब जरा शक पैदा हो गया है उन लोगों को कि जो आए वही एकदम से सांसें लेने लगता है! यह मामला क्या है? दो-तीन तो बच गए। वे पूछ रहे हैं नाम और वह ले रहा है सांसें जोर-जोर से। वे पूछ रहे हैं कुछ, वह कर रहा है कुंडलिनी। तो स्वभावतः समझेंगे कि इसका मस्तिष्क ठीक नहीं है।

यह तो तुमने बिल्कुल ठीक किया अपने मस्तिष्क को बचाने का उपाय। परिवार वाले दुखी होंगे जरूर, क्योंकि एक बड़ी अदभुत दुनिया है हमारी। जिस पीड़ा में वे खुद जीए हैं, उसी पीड़ा में तुम्हें भी डालना चाहते हैं। काश वे एक दफा सोच-विचार कर देखें कि उन्होंने क्या पा लिया है परिवार बना कर, विवाह करके, बच्चों की कतार लगा कर? उन्होंने क्या पा लिया है? सिवाय दुख के, सिवाय परेशानी के! मगर नहीं, मूर्च्छित हैं। सोचते हैं कि तुम्हें बसा जाएं, जैसे उनके मां-बाप उन्हें बसा गए और उनके मां-बाप उनके मां-बाप को बसा गए थे। ऐसी पीढ़ियों से चल रही है बीमारी और हर मां-बाप अपने बच्चों को दे जाते हैं।

तुम फिक्र न करो, प्रेम प्रदीप। धीरे-धीरे अपने आप लड़की वाले आएंगे ही नहीं। और अगर लड़कियों को पता चल गया तो तुम बेफिक्र रहो। तुम चाहो भी किसी दिन कि विवाह करना है, तो मुश्किल है। तब तक लड़कियां भी सक्रिय ध्यान करना सीख रही हैं, ख्याल रखना।

जिंदगी में जब तक तुम्हारा स्वयं भाव न हो विवाह के अनुभव में उतरने का, तब तक उतरना ही मत। स्वयं का भाव हो तो जरूर उतरना। मैं कोई विवाह-विरोधी नहीं हूं। स्वयं का भाव हो तो जरूर उतरना। स्वयं का भाव न हो, तो दुनिया कहे तो भी मत उतरना। सावधान रहना, बचे रहना--जितनी देर तक बच सको। हां, भाव हो तो फिर एक क्षण भी बचने की जरूरत नहीं है। अगर भाव हो तो तुम विवाह करके सीखोगे। कुछ लोग अनुभव से सीखते हैं। कुछ लोग केवल दूसरों का अनुभव देख कर सीख लेते हैं।

राजस्थान के एक गांव में रामलीला हो रही थी। सूर्पणखा की नाक कटने का दृश्य आता है--

लोग, लुगाइयो
सज्जन भाइयो
थानै एक राज की बात बताऊं
रामलीला में मैं
लछमन को पारट कियो थो
बीं को इक किस्सो सुनाऊं
जे दिन सूरपणखां की नाक कटनी थी
बीं दिन मैं अकड़ो-अकड़ो सो
या सोचै थो
रे लछमन!
आज तो तेरी जयजयकार बुलेगी

पण तभी स्टैज पै बेलन आयो

अइयां लागो
जइयां कोई आने से पहलां
अपणो विजिटिंग कारड भिजवावे
और बीं बेलन के पाछै पाछै
मेरी घरवाली भी आ जावै
और लोग या सोच के
कि सूरपणखां आगी
ताली पीटी
मैं चुपके से अपणो माथो पीटो

परदा के पीछे से डायरेक्टर बोल्यो--
"थारी घरवाली तो साचाणी
सूरपणखां लागे है
थे इनकी ही नाक काट दो"
मैं बोल्यो--
"रे डायरेक्टर, काटनी तो दूर
मैं तो आज ताणी छुई भी कोनी"
वा कही--
"थे लछमण बना हो
तो थानै काटनी ही पड़ेगी"

मैं पास खड़ा रामचंदर जी से बोल्यो--
"भाया म्हारी लाज राख दै
आज ई सूरपणखां की नाक काट दै
बाद में चाहे रावण मेरा से ही मरवा लिए"
पण वा क्यूं माखी के छाता में
हाथ देवे थो
साफ नाट गियो
मैं तुलसीदास जी ने कोसन लागो--
"रे तुलसीदास!
तू तो रामायण लिख कर चलो गियो
पण म्हारी जान ने तो महाभारत कर दी
लछमण कै तेरो दूस्मण लागै था
जो तू सगला काम तो रामचंदर जी से कराया
और नाक लछमण से कटवाई"

पण कोसबा से कै होवै थो
मैं डर के मारे थर-थर कांपण लागो
और लोग या सोच कै
कि मैं गुस्सा के मारे कांपूं हूं
ताली पीटी
पण ताली पीटबा से कै होवै थो
परदा के पीछै से औज्युं डायरेक्टर बोल्यो--
"जी इब थे कड़क कर कहो--
रे रावण की बहन सूरपणखां
दूर हो जा
वरना तेरी नाक काट लूंगो"

पण म्हारे में किसी कड़क धरी थी
किसा डायलाग याद रहवै था
मैं सगला डायलाग भूल कर कही--
"रे कल्लू की मां!
मैं तेरो इकलौतो खसम लागूं हूं
आज तू मेरी लाज राख लै
म्हारे से नाक कटा लै
घर जाकै चाहे म्हारी
गरदन ही काट लीए"

पण म्हारी घरवाली के तो
चंडी चढ़ रही थी
वा म्हारी नाक काट कै
लहूलुहान कर दी
और लोग ताली पीटी
लोगों ने तो नाक कटना से मतलब थो
चाहे लछमण की कटो
चाहे सूरपणखां की

सो भाई मैं तो नाक कटाकै
घरां नै आयो
और या सोची

ईं देस में भी याही हो रिहो है
आज जें की नाक कटनी चाहे
बें की कटे कोनी
जें की रहनी चाहे
बें की रहवे कोनी
आज भी सूरपणखां लछमण की नाक काटै है
तो या जनता तालियां बजावै है
तालियां बजाती हुई जनता
या भूल जावै है कि
नाक उं की भी कटी हुई है
इज्जत उं की भी गई हुई है।
आत्मा उं की भी बिकी हुई है।

तुम्हारा परिवार तो दुखी होगा। उनकी नाक कटी है, वे तुम्हारी भी कटवाने के लिए उत्सुक हैं। तुम अपनी बचाओ। जब तक बचा सको, बचाओ।

प्रेम प्रदीप, मेरा आशीर्वाद है, ईश्वर करे तुम्हारी नाक बचे! न माने, तो कोई न कोई सूर्पणखा नाक काटेगी। लेकिन नाक कटवाने की ही किसी दिन इच्छा जग जाए--जगती हैं, इच्छाओं का क्या है! एक से एक इच्छाएं जगती हैं--तो कटवा लेना भैया! इतनों ने कटवाई, सो कुछ सोच कर ही कटवाई होगी। कटवा कर कुछ पाया ही होगा।

मेरे पास लोग पूछने आ जाते थे, जब मैं विश्वविद्यालय में शिक्षक था, युवक आ जाते कि हम विवाह करें या न करें? मैं उनसे कहता, जरूर करो। वे कहते, और आपने क्यों नहीं किया? मैंने उनसे कहा, मैं किसी से पूछने नहीं गया। जब तुम पूछने आए हो, मामला साफ है। पूछने की बात क्या है? जिसको नहीं करना, वह पूछने नहीं जाएगा।

तुम्हें सच में ही अगर बचना है तो कुछ हर्ज नहीं है बचने में, तुम्हें अधिकार है अपने को बचाने का--व्यर्थ की झंझटों में जाने से। स्त्रियों को भी अधिकार है, पुरुषों को भी अधिकार है। सच तो यह है, दुनिया से अगर विवाह की संस्था विदा हो जाए तो मनुष्य-जाति के जीवन में एक नये सौभाग्य का उदय हो। नहीं कि स्त्री-पुरुष प्रेम न करेंगे, लेकिन प्रेम फिर बंधन नहीं होगा। प्रेम करेंगे, लेकिन प्रेम फिर मैत्री होगी, इससे ज्यादा नहीं।

मेरी मनुष्य-जाति की कल्पना में विवाह के लिए कोई गुंजाइश नहीं है। बच्चों का इंतजाम, बच्चों की व्यवस्था कम्यून को करनी चाहिए, समूह को करनी चाहिए। और समूह जितने बच्चे चाहे उतने ही बच्चे पैदा भी होने चाहिए; उससे ज्यादा बच्चे पैदा करने का हक भी किसी को नहीं है। क्योंकि समूह को ही फिक्र करनी है, समूह ही बच्चों की फिक्र लेगा। और समूह को ही तय करना चाहिए कि कैसे लोग बच्चे पैदा करें। हर कोई बच्चे पैदा करने का अधिकारी नहीं होना चाहिए। लूले-लंगड़े, अंधे-काने, बुद्धिहीन, अपंग, कुरूप, न मालूम किस-किस तरह के लोग--पागल, विक्षिप्त--वे भी सब बच्चे पैदा किए जा रहे हैं! वे पृथ्वी को गंदगी से भरे जा रहे हैं।

इससे ज्यादा समझदारी तो हम गाय-बैलों के संबंध में व्यवहार करते हैं, कुत्तों के संबंध में व्यवहार करते हैं। आखिर कुत्तों की जाति रोज-रोज श्रेष्ठ होती जाती है, क्योंकि गलत कुत्तों को बच्चे पैदा करने का हक नहीं

मिलता। मैं भारतीय कुत्तों की बात नहीं कर रहा हूं। भारत के बाहर। भारत में तो सब कुत्ते आवारा हैं। उनका तो कोई हिसाब-किताब... यहां आदमी का हिसाब-किताब नहीं है, कुत्तों की कौन फिक्र करे! यहां तो आदमी भी बस कीड़े-मकोड़ों की तरह बच्चे पैदा करने में लगे हुए हैं। और जैसे कोई कला ही नहीं आती, एक ही सृजनात्मक काम जानते हैं। और छाती फुला कर चलते हैं; जितने ज्यादा बच्चे, उतनी छाती फुला कर चलते हैं।

चंदूलाल अपने बीस बच्चों को लेकर सर्कस में पहुंचे थे। सर्कस में जगह-जगह कई तरह की चीजें थीं। आस्ट्रेलिया से अदभुत-अदभुत जानवर आए हुए थे, अफ्रीका के जानवर थे। एक अनूठा गेंडा आया हुआ था, जिसकी जाति अब करीब-करीब खो गई है। उस गेंडे के कठघरे के बाहर परदा टंगा हुआ था और एक आदमी चिल्ला रहा थाः एक आने में, अदभुत गेंडे के दर्शन!

लाइन लगी थी उस गेंडे को देखने के लिए। चंदूलाल के बच्चे भी उत्सुक थे, चंदूलाल भी खड़े हुए लाइन में बीस बच्चों को लेकर। सबको सम्हाल रहे थे। घसर-पसर, कोई यहां भाग रहा था, कोई वहां भाग रहा था। इसको पीट रहे थे, उसको ठीक कर रहे थे। आखिर उस गेंडे के मालिक से न रहा गया, उसने पूछा कि क्या ये बीस ही आपके हैं? चंदूलाल ने कहा, हां! मेरे नहीं तो क्या तेरे बाप के हैं? किसके हैं? अरे मेरे हैं! तो उसने कहा कि फिक्र न करो टिकिट लेने की तुम, मैं गेंडे को बाहर लाता हूं। अरे वह देख तो ले कि जिंदगी हो गई, एक ही बच्चा पैदा कर पाया, और जाति मरी जा रही है और इधर देखो! वह ले आया गेंडे को बाहर कि देख, इसको कहते हैं जीवन! एक आदमी ने बीस की कतार लगा दी। और तुझसे कुछ नहीं हो पाया, एक ही पैदा हुआ। और तेरी जाति मरी जा रही है। और इनकी जाति मरी जा रही है भीड़ से और फिर भी ये बीस! अगर भीड़ से न मर रही होती तो ये पता नहीं दो सौ पैदा करते या कितने पैदा करते, कुछ पता नहीं।

समूह को तय करना चाहिए कि कितने बच्चे हों, कौन बच्चा पैदा करने का अधिकारी हो। हरेक को अधिकार नहीं होना चाहिए। तो मनुष्य की जाति में भी बुद्धों, महावीरों, कृष्णों, आइंस्टीन, न्यूटन, एडीसन जैसे व्यक्तित्व बड़ी संख्या में पैदा हो सकते हैं।

मगर मां-बाप की तो एक जिद होती है। उन्होंने जो किया, वही तुमसे करवाएंगे। उन्होंने विवाह किया तो तुमसे भी करवाएंगे। उनकी आकांक्षाएं हैं बड़ी। तुम्हारी माताराम की इच्छा होगी कि नाती-पोते देखें। अरे मुहल्ले-पड़ोस में जाकर देख लो! क्यों इस बेचारे को फंसा रही हो? नाती-पोते ही देखने हैं तो किसी के भी देख लो। नहीं लेकिन इसके ही नाती-पोते देखने हैं उनको। जैसे इसके नाती-पोतों में कुछ खास सोना-चांदी लगा होगा। मां-बाप की आकांक्षाएं खुद की अधूरी रह जाती हैं, वे बच्चों के कंधों पर रख कर बंदूक चलाते हैं। वे फिक्र करते हैंः यह बन जाओ, वह बन जाओ।

अब प्रदीप, तुम बन गए संन्यासी, वे घबड़ा रहे होंगे कि यह तो सारी आकांक्षाएं तोड़े दे रहा है।

एक आदमी एक सूटकेस लेकर एक सर्कस के मैनेजर के कमरे में गया और उसने कहा कि क्या आप अनूठी चीजों में उत्सुक हैं?

मैनेजर ने कहा कि निश्चित, हमारा काम ही अनूठी चीजों का है। क्या अनूठी चीज है?

उसने कहा, मेरे पास एक कुत्ता है, जो पिआनो बजाता है।

उस मैनेजर की तो आंखें फटी रह गईं। उसने कहा, कुत्ता कहां है?

उसने सूटकेस खोला, एक छोटा-सा कुत्ता उसमें से निकला और एक छोटा-सा पिआनो उसने निकाला सूटकेस में से। पिआनो रख दिया और वह कुत्ता बैठ कर पिआनो बजाने लगा। क्या गजब का साज उसने छेड़ा! मैनेजर तो भौंचक्का रह गया, सांस रुकी की रुकी रह गई। बहुत खेल देखे थे दुनिया में उसने। काम ही उसका यह

था, इसी तरह की चीजों पर उसका सर्कस चलता था। और तभी एक बड़ा कुत्ता अंदर आया और उस छोटे कुत्ते की गर्दन उसने पकड़ी और बाहर ले गया। मैनेजर तो देखता ही रह गया, वह आदमी भी देखता रह गया। मैनेजर ने कहा, भई, यह मामला क्या है? यह कौन कुत्ता है? उसने कहा, यह इसकी मां है। वह इसको डाक्टर बनाना चाहती है।

मां-बाप की अपनी इच्छाएं हैं। वे तुम्हें पति बनाना चाहते होंगे, पिता बनाना चाहते होंगे, डाक्टर बनाना चाहते होंगे, इंजीनियर बनाना चाहते होंगे। और तुमने सब पर पानी फेर दिया। तुम हो गए संन्यासी। और स्वभावतः जब वे लाते होंगे किसी को दिखाने अपने बेटे को और तुम करते होओगे सक्रिय ध्यान, तो उनकी छाती पर सांप लोटता होगा।

हारो मत! अगर वे नहीं हार रहे हैं तो तुम क्यों हारो! अरे उनके ही बेटे हो! अगर खानदानी हो तो टिके रहो, वे भी टिके हैं। जब वे भी लाए जा रहे हैं लड़कियों के मां-बाप को, दिखाने, तो तुम भी टिके रहो। कोई भय की आवश्यकता नहीं है। दिल खोल कर सक्रिय ध्यान करो, कुंडलिनी करो, जो तुम्हारी मौज आए करो। जब तक तुम्हारे मन में भाव न हो... हां, तुम्हारे मन में भाव हो तो मैं नहीं रोकता। किसी और की इच्छा से स्वतंत्रता भी मिले तो बंधन है। अपनी इच्छा से कोई बंधन में भी जाए तो स्वतंत्रता है। असली सवाल स्वेच्छा का है।

चौथा प्रश्नः ओशो, राजनीति की मूल कला क्या है?

अशोक, राजनीति कोई कला थोड़े ही है, लूट-खसोट है। इसमें कला वगैरह क्या है? कोई डकैती की कला होती है? राजनीति डकैती है। दिन-दहाड़े! जिनको लूटो, वे भी समझते हैं कि उनकी सेवा की जा रही है! यह बड़ी अदभुत डकैती है। डाकू भी इससे मात खा गए। डाकू भी पिछड़ गए। सब तिथि-बाह्य हो गए--आउट ऑफ डेट। इसलिए तो बेचारे डाकू समर्पण करने लगे कि क्या सार है! चुनाव लड़ेंगे, उसमें ज्यादा सार है।

तो राजनीतिज्ञों के सामने डाकू समर्पण कर रहे हैं। क्योंकि देख लिया डाकुओं ने, इतनी तो समझ उनमें भी है, कि मारे-मारे फिरो जंगल-जंगल और हाथ क्या खाक लगता है कुछ! और हमेशा जीवन खतरे में। इससे तो राजनीति बेहतर। यह डकैती की आधुनिक व्यवस्था है, प्रक्रिया है।

एक मिनिस्टर--
जनसंपर्क दौरे पर बाहर निकले।
मंजिल पर पहुंचने से पहले
डाकुओं द्वारा पकड़े गए
रस्सियों से जकड़े गए
कार से उतार कर पेश किए गए
सामने सरकार के
बुरी तरह हांफ रहे थे
मारे डर के कांप रहे थे
तभी बोल उठा सरदार--
"डरो मत यार

हम तुम एक हैं
दोनों के इरादे नेक हैं
दोनों को जनता ने बनाया है
मुझे नोट देकर,
तुम्हें वोट देकर।
तुम्हारे हाथ सत्ता
हमारे हाथ बंदूक
दोनों के निशाने अचूक।
हम बच रहे हैं अड्डे बदल कर
और तुम दल बदल कर
दोनों ही एक-दूसरे के प्रचंड फ्रेंड
जनता को लूटने में दोनों ट्रेंड।
या यों कह लो सगे भैया,
रास्ते अलग-अलग
लक्ष्य दोनों का रुपैया।
दोनों के साथ पुलिस है
हमारे पीछे, तुम्हारे आगे।
यहां आए हो तो एक काम कर जाओ
अपनों के बीच आराम कर जाओ।
बैंक लूटने के उपलक्ष्य में, हमारे पक्ष में
आज की रात ठीक आठ बजे
तुम्हारा भाषण है
और तुम्हारे ही हाथों
नये अड्डे का
कल उदघाटन है।"

राजनीति की कला क्या है? कोई कला नहीं है। सीधी-साफ डकैती है। शुद्ध डकैती है। डाकुओं के दल हैं। और उन्होंने बड़ा जाल रच लिया है। एक डाकुओं का दल हार जाता है, दूसरों का जीत जाता है; दूसरों का हार जाता है, पहलों का जीत जाता है। और जनता एक डाकुओं के दल से दूसरे डाकुओं के दल के हाथ में डोलती रहती है। यहां भी लुटोगे, वहां भी लुटोगे। यहां भी पिटोगे, वहां भी पिटोगे। होश पता नहीं तुम्हें कब आए!

जिस दिन तुम्हें होश आएगा, उस दिन राजनीति दुनिया से उठ जाएगी; उस दिन राजनीति पर कफन ओढ़ा दिया जाएगा; राजनीति की कब्र बन जाएगी। राजनीति की कोई भी आवश्यकता नहीं है।

क्या सुंदर शब्द गढ़ा है लोगों ने--राजनीति! जिसमें नीति बिल्कुल भी नहीं है, उसको कहते हैं राजनीति। सिर्फ चालबाजी है, धोखाधड़ी है, बेईमानी है।

रावण द्वारा सीता-अपहरण के बाद

राम ने अपने भक्त हनुमान को बुलाया
और भरे हृदय से यह बताया--
"दुनिया कुछ भी कहे,
तू मेरा दास है
पर मुझे अपने से भी ज्यादा
तुझ पर विश्वास है।
जाओ, जल्दी से जाओ,
सीता को खोज कर लाओ
यह मेरी निशानी देकर
उसे तसल्ली दे आओ।"

हनुमान ने रामचंद्रजी के पैर छुए
सीता की खोज में रवाना हुए
रावण के दरबार में पहुंचे
उसे देख कर
गुस्से में जबड़े भींचे।
कहा--"दुष्ट, सीता को लौटा दे!
क्यों मरने को तैयार हो रहा है?"

पर कलियुग का रावण होशियार था
उसने बड़े प्यार से हनुमान जी को गले लगाया
और समझाया--
"देख यार,
तू जंगल में पड़ा-पड़ा
क्यों अपनी जवानी बरबाद कर रहा है?
भूख से तेरा पेट कितना सिकुड़ रहा है!
मैं चाहूं तुझे लखपति बना दूं
मेरे मंत्रिमंडल में एक जगह खाली है
तू कहे तो तुझे मंत्री बना दूं।"

सुनते ही
पत्थर से भी ठोस हनुमान जी
ढीले पड़ गए
वे राम के तो पैर छूते थे,
पर रावण के पैरों में पड़ गए।

बोले--

"माई-बाप!
सीता का तो केवल बहाना था,
मुझे तो वैसे ही आपके पास आना था
अरे! मैं आपके इस अहसान की कीमत
कैसे चुकाऊं?
आप मेरी पूंछ में आग लगवा दें
तो उस राम की अयोध्या फूंक आऊं
मैं उसकी किस्मत कभी भी फोड़ सकता हूं
आपके मंत्रिमंडल में
एक जगह और भी खाली हो
तो लक्ष्मण को भी तोड़ सकता हूं
इस गद्दी के लिए एक सीता तो क्या
हजार सीताएं आपके पास
छोड़ सकता हूं।
आप भी बेवकूफ हैं,
कहीं कलियुग में
सीता चुराते हैं!
अरे,
पद के लिए तो आज के राम
अपने आप
आपके पास चले आएंगे
और अपनी सीता
खुद आपके पास छोड़ जाएंगे।"

राजनीति कोई कला नहीं है। कला तो उसे कहते हैं जिससे सृजन हो। राजनीति तो विध्वंस है, शोषण है, हिंसा है। हालांकि नकाब ओढ़ने पड़ते हैं, मुखौटे ओढ़ने पड़ते हैं, अपने को छिपा-छिपा कर चलना पड़ता है। राजनैतिक नेता के पास जितने चेहरे होते हैं उतने किसी के पास नहीं होते। उसको खुद ही पता नहीं होता कि उसका असली चेहरा कौन सा है। मुखौटे ही बदलता रहता है। और दुनिया तब तक धोखे में आती रहेगी, जब तक प्रत्येक व्यक्ति थोड़ा सा जागरूक नहीं होता; थोड़ा होशपूर्वक देखता नहीं कि यह सब क्या जाल है!

देशों की जरूरत है? लेकिन देशों की बात छोड़ो, राजनेता चाहता है, प्रदेश होने चाहिए। प्रदेश ही नहीं होने चाहिए, राजनेता की कोशिश होती है कि हर जिला प्रदेश बन जाना चाहिए। तोड़े जाओ! दुनिया को जितना तोड़ो, उतने प्रधानमंत्री होंगे, उतने राष्ट्रपति होंगे। दुनिया को जोड़ो तो प्रधानमंत्री कहां होंगे? राष्ट्रपति कहां होंगे? राजनीति जुड़ने नहीं देना चाहती आदमी को और तुम्हारे तथाकथित धर्म भी नहीं जुड़ने देना चाहते; दोनों राजनीति के ही दो पहलू हैं।

जो चीज तोड़ती है, वह पाप है। जो चीज जोड़ती है, वह पुण्य है। और पुण्य की कला होती है; पाप की कोई कला होती है? किसी को मारना हो, इसमें कुछ बड़ी कला की जरूरत है? किसी को जिलाना हो तो कला की जरूरत होती है।

धर्म कला है--असली धर्म; राजनीति नहीं।

आखिरी सवालः ओशो, मैं एक कवि हूं, पर कोई मेरी कविताएं पसंद नहीं करता है--न परिवार वाले, न मित्र, न परिचित। कविताएं मेरी प्रकाशित भी नहीं होती हैं। लेकिन मैं तो अपना जीवन कविता को ही समर्पित कर चुका हूं। अब आपकी शरण आया हूं। आपका क्या आदेश है?

गिरीश, जीवन को इतनी जल्दी समर्पित करने की क्या जरूरत है? तुम्हें पक्का है कि काव्य तुम्हारे जीवन की अभिव्यक्ति है? कौन जाने, लोग ही ठीक कहते हों!

सौ में निन्यानबे कवि तो कवि होते ही नहीं, तुकबंद ही होते हैं। और तुकबंदों से लोग बहुत परेशान हैं, बहुत पीड़ित हैं। गांव-गांव कवि हैं, मुहल्ले-मुहल्ले कवि हैं। कविता करना लोगों को सरल मालूम पड़ता है। और फिर अतुकांत कविता तो और भी सरल हो गई--न तुक की कोई जरूरत है, न छंद की कोई जरूरत है। जो दिल में आए सो लिखो। उलटा-सीधा कुछ भी लकीरें जोड़ते चले जाओ। अखबार में से काट लो लकीरें समाचारों की और उनको चिपका लो एक कागज पर--और आधुनिक कविता हो गई, अकविता!

कविता करनी लोगों को आसान लगती है। आसान नहीं है कविता। कविता अत्यंत कठिन बात है। जब तक जीवन तुम्हारा काव्य न हो, तब तक तुम्हारे जीवन से कविता का प्रवाह हो ही नहीं सकता। सिर्फ बुद्धों के जीवन से ही कविता प्रवाहित होती है, बाकी तो सब तुकबंद हैं।

तो मैं तुमसे नहीं कहूंगा कि कविता के लिए जीवन समर्पित कर दो। यह कविता कोई अभिनेत्री थोड़े ही है कि इसके लिए जीवन समर्पित कर दो। पहले जीवन में काव्य को तो आने दो, रस तो आने दो। रसो वै सः! जब परमात्मा का रस तुम्हारे भीतर अनुभव होने लगेगा, अगर वह बहना चाहेगा कविता में तो बहेगा, अगर नृत्य में प्रकट होना चाहेगा तो नृत्य में प्रकट होगा। तुम जिद न करो। तुम्हारी जिद गलत है। तुम्हारी जिद तो अहंकार ही है।

अब तुम कहते हो कि मैं कवि हूं और कविताएं करना पसंद करता हूं।

तुम पसंद करते हो तो करते रहो, मगर दूसरों को न सताओ। अगर वे सुनना पसंद नहीं करते तो कम से कम उनकी आजादी तो न छीनो।

तुम कहते होः न परिवार वाले, न मित्र, न परिचित, कोई मेरी कविता पसंद नहीं करता।

तो उन पर कृपा करो। इतनी अहिंसा तो होनी ही चाहिए। उनको मत सताओ। उनको क्षमा करो। अपनी कविता अपने भीतर रखो। एकांत में गुनगुना लिए, खुद ही सुन लिए।

और मेरी अगर मानो तो मैं तुमसे कहूंगा कि अभी कविता का क्षण नहीं आया। पहले जागो, पहले ध्यान में डूबो। अगर यहां आ गए हो तो तुकबंदी वगैरह छोड़ दो, कुछ दिन के लिए बिल्कुल छोड़ दो। कुछ दिन के लिए मस्ती! मस्ती तुम्हारे भीतर होगी, फिर परमात्मा जो करवाना चाहे करे; जैसा नाच नचाए नाचना। मगर जिद मत करना कि मैं तो ऐसे ही नाचूंगा! कि तू कुछ भी कह, मैं तो ऐसे ही नाचूंगा! कि मुझे तो कविता ही करनी है!

कौन जाने कविता में तुम्हारे जीवन का प्रस्फुटन होगा या नहीं होगा। यह तो केवल ध्यान की अंतिम अवस्था में ही अनुभव होना शुरू होता है, कि मेरी अंतर्क्षमता क्या है। उसके पहले तो आदमी सब गड़बड़ होते हैं। जिसको डाक्टर होना चाहिए, वह इंजीनियर है। जिसको इंजीनियर होना चाहिए, वह डाक्टर है। जिसको दुकानदार होना चाहिए, वह कविता कर रहा है। जिसको कविता करनी चाहिए, वह दुकानदारी कर रहा है। सब अस्तव्यस्त है। यहां आदमी, हर आदमी गलत जगह पर है।

इसीलिए तो इतना दुख है, इतनी पीड़ा है। कोई कहीं तृप्त नहीं मालूम होता। कोई कहीं राजी नहीं मालूम होता। क्योंकि किसी को पता नहीं कि मेरी नियति क्या है, मेरा भाग्य क्या है, मैं क्या बनने को पैदा हुआ हूं--जुही, कि बेला, कि गुलाब, कि कमल। जुही बेला बनने की कोशिश कर रही है। बेला जुही बनने की कोशिश कर रहा है। गुलाब कमल होने की चेष्टा में लगा है। कमल कुछ और होने की चेष्टा में लगा है। सब कुछ और होने में लगे हैं। इसलिए कोई कुछ भी नहीं हो पा रहा है। सब तरफ उदासी है।

नहीं, इतनी जल्दी समर्पण न करो।

मैंने सुना है, एक कवि--रहा होगा तुम्हारे जैसा ही गिरीश--घर से भाग गया। घरवाले उससे परेशान थे, वह घरवालों से परेशान था। सो घरवालों ने इस तरह के विज्ञापन दिए।

गुमशुदा कवि के लिए पिता का विज्ञापन--
मेरा पुत्र छदम्मी लाल
वल्द मौसम्मी लाल
उपनाम नायब है
पिछले तीन महीनों से गायब है
जहां कहीं भी श्रोताओं का जमघट जुटता है
कम से कम बीस कविताएं सुना कर उठता है।
इसको कविता सुनाने की बीमारी
बहुत पुरानी है
बड़े-बड़े डाक्टरों को हैरानी है
इसकी बीमारी में अब तक कई सौ रुपये फुंके हैं
दो बार आगरा और बरेली भी भेज चुके हैं
रांची भेजने का खर्च कहां से लाएं
देश में पर्याप्त पागलखाने कहां हैं
पागलखाने कम हैं, पागल ज्यादा हैं
इसलिए लोग कविता करने पर आमादा हैं
जिन साहब को भी यह गुमशुदा कवि मिले
इससे सावधान रहें!
भूल कर भी कविता सुनाने को न कहें
पहले आपको किसी रेस्ट्रां में चाय पिलवाएगा
फिर अपनी ढेर सारी कविताएं सुनाएगा

रिश्तेदारों से प्रार्थना है--
इसको कोई गिफ्ट न दें
इसकी चाय तो पी सकते हैं
कविता सुनाने की लिफ्ट न दें
थोड़े लिखे को ही बहुत समझ लें आप
निवेदक--
एक कवि का अभागा बाप।

और उसी कवि की खोज में या बचाव में अपने उसके भाई का विज्ञापन--
प्रिय भैया कवि,
तुम जहां कहीं भी हो
वहीं रहना
जो भी कष्ट पड़े, अकेले सहना
तुम्हारे जाने का किसी को दुख होगा
यह सिर्फ मन की भ्रांति है
जब से तुम गए हो
घर में पूर्ण शांति है
तुम्हारी बीमार माता अब सुखी जीवन जी रही है
तुम्हारी पत्नी दोनों वक्त बौर्नविटा पी रही है
तुम्हारे तीनों साले घर पर ही डंड पेल रहे हैं
चारों बच्चे गली में गिल्ली-डंडा खेल रहे हैं
उधार वाले दुकानदार जरूर घबरा गए हैं
कई बार घर के चक्कर भी लगा गए हैं
इसलिए प्रिय भैया कवि!
तुम जहां कहीं भी हो, वहीं रहना
जो भी कष्ट पड़े, अकेले सहना
तुम्हारे जाने से फालतू कविता-प्रेमी
अवश्य दुखी हो गए हैं
पर मुहल्ले के सभी लोग सुखी हो गए हैं
नोट--
जो कोई भी इस गुमशुदा का पता हमें देगा
हमारे साथ दुश्मनी करेगा
जो इसे मना कर
घर ले आएगा
वो पुरस्कार नहीं दंड पाएगा।

और इसी गुमशुदा कवि के नाम पत्नी का विज्ञापन--
हे मेरे बारह बच्चों के बाप,
तुम्हें लग जाए शीतला मइया का शाप
पता नहीं आदमी हो या कसाई
तुम्हें इस तरह जाते शर्म नहीं आई
जाना ही था तो आधे बच्चे अपने साथ ले जाते
आधे दर्जन मुझे दे जाते
पूरी प्लाटून मेरे लिए ही छोड़ गए हो
एक इंजन से बारह डिब्बे जोड़ गए हो
जब इनसे बहुत तंग हो जाती हूं
एक ही बात कह कर डराती हूंः
"नहीं मानोगे तो
तुम्हारे बाप को वापस बुलवा दूंगी
उनकी ढेर सारी कविताएं सुनवा दूंगी!"
बच्चे सहम कर चुप होने लगते हैं
कुछ तो डर कर रोने लगते हैं
इसलिए--
अगर तुम्हारी आंखों की
पूरी शर्म न बह गई हो
थोड़ी-सी भी बाकी रह गई हो
तो कभी घर लौट कर मत आना
ज्यादा तुम्हें क्या समझाना
चाहे जहां नाचो
चाहे जहां गाते रहना
मनीआर्डर हर महीने
घर पर भिजवाते रहना
तुम्हारे प्राणों की प्यासी--
श्रीमती सत्यानाशी!

गिरीश, तुम तो यहां आ गए। कहते होः "अब आपकी शरण आया हूं, अब क्या आदेश है?"

भैया, घर मत जाना। और यहां कविता करना मत। यहां ध्यान करो। हां, ध्यान के बाद भी तुम्हारे जीवन में सहज-स्फूर्त कविता बहे तो समर्पित कर दो सारा जीवन। फिर कोई संकोच नहीं करना। फिर सब दांव पर लगा देना। मगर अभी समर्पण की बात व्यर्थ है। अभी तुम्हें पता ही नहीं तुम कौन हो, किसलिए हो, कहां से आए हो, क्या तुम्हारी नियति, क्या तुम्हारा प्रयोजन है! अभी तुम्हें कुछ भी पता नहीं। अभी पूछोः मैं कौन हूं?

अभी सारा समर्पण ध्यान के लिए। पहले समाधि, फिर शेष सब अपने से हो जाता है। और फिर जो होता है, शुभ है।

अभी तुम जो भी करोगे, अशुभ होगा। कविता भी व्यर्थ होगी अभी। क्या करोगे कविता में? भीतर रोशनी न होगी तो अपने अंधेरे को ही ढालोगे। और भीतर गीत न उठेंगे तो तुम्हारी कविता में गालियां ही होंगी। भीतर ही तो बाहर बह कर आता है।

इसलिए मेरी अगर बात मानो, आ ही गए हो, तो इस ख्याल में मत रहना कि यहां कविता सुनने वाले तुम्हें मिल जाएंगे। इस ख्याल में मत रहना कि मैं हर तरह की बेवकूफियों को सहयोग देता हूं। पहले ध्यान, फिर शेष सब ठीक है। फिर मेरा प्रत्येक कृत्य के लिए आशीष है।

आज इतना ही।

बारहवां प्रवचन

नियोजित संतानोत्पत्ति

पहला प्रश्नः ओशो, आपने योजनापूर्ण ढंग से संतानोत्पत्ति की बात कही और उदाहरण देते हुए कहा कि महावीर, आइंस्टीन, बुद्ध जैसी प्रतिभाएं समाज को मिल सकेंगी। मेरा प्रश्न है कि ये नाम जो उदाहरण के नाते आपने दिए, स्वयं योजित संतानोत्पत्ति अथवा कम्यून आधारित समाज की उपज नहीं थे। इसलिए केवल कम्यून से प्रतिभाशाली संतानोत्पत्ति की बात अथवा संतान का विकास समाज की जिम्मेवारी वाली बात पूरी सही नहीं प्रतीत होती।

रामशंकर अग्निहोत्री, यह सच है कि महावीर, बुद्ध, आइंस्टीन, कबीर, नानक योजनाबद्ध संतानोत्पत्ति से नहीं जन्मे थे। लेकिन कितने महावीर हुए? कितने बुद्ध हुए? यह तो ऐसे है जैसे कोई अंधेरे में तीर चलाए, और लाखों-करोड़ों तीरों में कोई एक तीर निशाने पर लग जाए। इसका यह अर्थ नहीं होता कि अंधेरे में तीर चलाने में कोई सार्थकता है; क्योंकि एक तीर लग गया निशाने पर तो रोशनी की कोई जरूरत नहीं है। लाखों तीर कोई चलाएगा अंधेरे में तो एकाध तो लग ही जाएगा। लग जाए तो तीर, नहीं तो तुक्का। ये सब अंधेरे के तीर हैं।

माली अगर लाख बीज बोए और एक बीज अंकुरित हो जाए तो इस आदमी को माली कहोगे? ये तो यूं ही फेंक दिए होते बीज भूमि पर तो भी एकाध बीज अंकुरित हो जाता। माली तो वह है, लाख बीज बोए तो लाख बीज अंकुरित हों। चलो दो-चार न हों तो चलेगा।

लेकिन अभी तो उलटा ही होता रहा है। करोड़ों बच्चे पैदा होते हैं, उनमें एकाध बुद्ध होता है। यह संयोगवशात है। इससे तुम यह न कह सकोगे कि मैंने जो कहा, वह बात सही प्रतीत नहीं होती।

ये आयोजित समाज-व्यवस्था से पैदा नहीं हुए थे, लेकिन हमारे बावजूद पैदा हुए। हमारी व्यवस्था से नहीं, हमारी योजना से नहीं, हमारी भूल-चूक से पैदा हुए। इसलिए हमने इनसे बदला भी बहुत लिया। हमने इन्हें क्षमा भी आसानी से नहीं किया। जीसस को सूली पर लटकाने की क्या जरूरत है? सुकरात को जहर पिलाने का क्यों आग्रह है? महावीर को कितना सताया है तुमने? कानों में खीले ठोंक दिए महावीर के! गांव-गांव से खदेड़ा, पागल कुत्ते महावीर के पीछे लगा दिए। बुद्ध को तुमने मार डालने की कितनी कोशिशें कीं! चट्टानें गिराईं, पागल हाथी छोड़ा! इन्हें तुमने क्षमा भी नहीं किया। तुम क्षमा इन्हें कर भी न सकते थे। क्योंकि अंधों के समाज में अगर आंख वाला पैदा हो जाए तो अंधों को अखरती है यह बात। आंख वाला अखरता है, क्योंकि आंख वाले के कारण उन्हें बार-बार याद आती है कि हम अंधे हैं; आंख वाला याद दिलाता है। आंख वाले की भी आंखें फोड़ देने की उनकी आकांक्षा पैदा होती है, कि न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी।

इसलिए तुमने इन सबके साथ सदव्यवहार नहीं किया। शायद तुम कहोगेः लेकिन हम इनकी पूजा कर रहे हैं सदियों से। वह पूजा भी इस बात का सबूत है कि तुमने इनके साथ बहुत दुर्व्यवहार किया था। उस पश्चात्ताप और अपराध-भाव से तुम पूजा कर रहे हो। जब ये जीवित थे तब तुमने दुर्व्यवहार किया। दुर्व्यवहार इतना किया कि सदियां बीत गईं, लेकिन तुम्हारे भीतर ग्लानि पैदा होती है। उस ग्लानि से तुम पूजा कर रहे हो। पूजा तुम किसी आनंद से नहीं कर रहे हो, किसी अहोभाव से नहीं कर रहे हो। क्योंकि अगर तुमने बुद्ध की पूजा अहोभाव से की होती, तो तुम फिर जीसस को सूली न देते। तब तक समझ आ गई होती। पांच सौ साल बीत चुके थे। और

अगर तुमने जीसस की पूजा अहोभाव से की होती, तो मंसूर को मार न डालते, क्योंकि तब तक तुम्हें समझ आ गई होती। लेकिन अब भी रवैया वही है। जरा भी भेद नहीं पड़ा। आदमी अब भी वही कर रहा है। आदमी आगे भी वही करेगा, ऐसा मालूम पड़ता है।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि जब किसी व्यक्ति का पिता मर जाता है या मां मर जाती है, तो तुम जो रोते हो, चीखते हो, पुकारते हो, जार-जार टूटे जाते हो--उसका यह कारण नहीं है कि तुम्हारा पिता से बहुत प्रेम था। जिंदा था, तो तुमने दो कौड़ी को न पूछा था। जिंदा था, तो तुमने क्या इसके साथ सदव्यवहार किया था? शायद घर के किसी कोने में पड़ा-पड़ा, सड़ा-सड़ा मरा होगा। और अब मर गया है, तो छाती पीट रहे हो।

यह पश्चात्ताप है, इसका मृत्यु से कोई संबंध नहीं है। अब तुम्हारे भीतर धक्का लगा। अब तुम्हें जरा सा होश आया। मौत ने तुम्हें झकझोरा कि मैंने पिता के साथ क्या किया! और अब क्षमा मांगने को भी यह व्यक्ति कभी मुझे मिल न सकेगा। अब इसके पैर पकड़ कर क्षमा मांग सकूं, इसकी भी कोई सुविधा न रही, बात खतम हो गई। अब ये छाया की तरह तुम्हारे पाप तुम्हारा पीछा करेंगे।

मैंने सुना है, एक धनपति कभी किसी को दान नहीं दिया। गांव में एक मंदिर बन रहा था। धन की जरूरत थी। सब कोशिश कर डाली, और कहीं से धन मिलने का उपाय न था, मजबूरी में उस कंजूस के पास गए। गांव के पांच-सात प्रमुख व्यक्ति इकट्ठे हुए। आशा तो नहीं थी; मगर डूबता क्या न करता, तिनके को भी सहारा मान लेता है। सोचा कौन जाने शायद दया खा जाए! अधूरा मंदिर खड़ा है, रोज वहीं से गुजरता है, देखता भी है। पहुंचे।

उसने बड़े प्रेम से बिठाया। बड़े प्रेम से बात सुनी। हैरान हुए! कहा कि हम तो सोचते थे यह आदमी बड़ा दुष्ट है! चाय-नाश्ता भी कराया और कहा कि अच्छा हुआ आए! जब उनकी पूरी बात हो गई, उन मित्रों ने सब दुख कह दिया और उसने सहानुभूति से सुनी, तब वह बोला कि अब मेरी भी सुनो। मेरा बूढ़ा पिता है, वह हृदय-रोग से बीमार है। मेरी मां अंधी है। मेरा बेटा लंगड़ा है। मेरी पत्नी का पिता मर गया, तो उसकी मां, उसकी लड़कियां, उसका परिवार... मेरे सारे रिश्तेदारों में बस एक मैं ही हूं जिसके पास थोड़ा-बहुत है। जैसा मैं तुम्हें बाहर से दिखाई पड़ता हूं, ऐसा नहीं है; मेरे ऊपर भी बड़े कष्ट हैं, बड़ी मुसीबतें हैं।

उन सबने कहा, हमें तो इस बात का कोई पता ही न था कि आप भी इतने कष्ट में हैं, नहीं तो हम कभी न आते।

उस कंजूस ने कहा, तुम कभी अब आना भी मत। मैं तुम्हें यह भी बता दूं कि मेरा बूढ़ा बाप है, जिसको हृदय की बीमारी है, आज मैं तीन साल से उसे देखने भी नहीं गया। मेरी मां अंधी है, आज सात साल से मैंने उसके दर्शन भी नहीं किए। मेरी लड़कियां क्वांरी बैठी हैं, मगर दहेज के कारण मैं विवाह नहीं कर रहा। अब जो आदमी अपनों की फिक्र नहीं कर रहा, वह तुम्हारे आधे मंदिर को पूरा बनवाने के लिए पैसा देगा? भूल कर भी अब इधर मत आना।

इसकी पत्नी मरे, इसका पिता मरे, तो यह बहुत दुखी होगा। यह बहुत छाती पीटेगा, बहुत शोरगुल मचाएगा। इसके भीतर बड़ा कोलाहल मचेगा।

स्वभावतः एक मनोवैज्ञानिक सत्य है सीधा सा, कि मृत्यु हमें एक ऐसी जगह लाकर खड़ा कर देती है कि जहां रूपांतरित होना अब असंभव; अब कुछ भी नहीं किया जा सकता, माफी भी नहीं मांगी जा सकती। मौत तो एक अध्याय बंद कर दी--अचानक। और अब तुम्हें कचोटेगी यह बात कि तुमने क्या किया!

इसलिए सदियों तक तुम पूजा करते हो। पितृपक्ष मनाते हो। बाप की तस्वीर लगाते हो। बाप की तस्वीर पर कई घरों में मैं फूल चढ़ते देखता हूं। और जिंदा बापों पर कोई फूल नहीं चढ़ाता। बड़ा मजा है! अभी तक तो मैंने नहीं देखा कि जिंदा बाप के चरणों में कोई रोज सुबह दो फूल रख देता हो। जिंदा बाप को तो दो रोटी भी दे दे तो बहुत अहसान। जिंदा बाप को तो देखना भी नहीं सुहाता लोगों को। जब तक बाप जिंदा होता है तो मन में यही होता है कि कब इससे छुटकारा हो। हे परमात्मा, इसको उठा! अब यह कब तक पीछा करता रहेगा! और जैसे ही यह मर जाता है, वैसे ही फोटो बनवाते हैं लोग, मूर्ति बनवाते हैं लोग, स्मृति-मंदिर बनवाते हैं लोग, स्मारक बनवाते हैं लोग। क्या-क्या नहीं करते!

यह पश्चात्ताप है, यह भीतर की पीड़ा है--जिसको ढांकने का उपाय कर रहे हैं। यह बाप के लिए कोई आदर नहीं दिया जा रहा; यह सिर्फ अपने घावों को फूलों में छिपाया जा रहा है।

बुद्ध और महावीर के साथ तुमने दुर्व्यवहार किया है, इसलिए तुम सदियों तक उनका समादर कर रहे हो। मुर्दों का समादर, जिंदों के साथ दुर्व्यवहार!

और दुर्व्यवहार का कारण था, क्योंकि वे तुम जैसे नहीं थे। वे तुम्हारी भीड़ में कुछ अजनबी थे। वे कुछ और ही तरह के लोग थे। उनकी धुन और, उनकी मस्ती और, उनका गीत और, उनकी चाल और, उनके ढंग और, उनकी जीवन को देखने की दृष्टि और। उनसे तुम्हारा कहीं तालमेल नहीं होता।

रामशंकर अग्निहोत्री, तुम पूछते हो कि इस तरह के प्रतिभाशाली व्यक्ति बिना योजनापूर्ण ढंग से संतानोत्पत्ति की व्यवस्था किए भी पैदा हो गए। तो सिर्फ योजनापूर्ण ढंग से ही जब संतान होगी तभी प्रतिभा पैदा होगी, यह बात पूरी सही नहीं मालूम होती।

यह बात पूरी सही है। ये तो सिर्फ भूल-चूक से पैदा हुए लोग हैं। ये तो अंधेरे में लग गए तीर हैं। करोड़ों लोगों में एकाध आदमी, अंगुलियों पर गिने जा सकें इतने थोड़े से लोग अब तक सुगंध को उपलब्ध हुए। बाकी लोग यूं ही जीते हैं और मर जाते हैं। जीते ही नहीं और मर जाते हैं। जब कि प्रत्येक व्यक्ति इसी गरिमा और गौरव को उपलब्ध हो सकता है--होना चाहिए!

प्रत्येक बीज की यह क्षमता है कि वह फूलों तक पहुंचे; सुगंध उड़ाए। और जब कोई बीज वृक्ष बनता है, और पक्षी उस पर गीत गाते हैं, और फूल खिलते हैं, और हवाएं नाचती हैं, और चांद-तारों से वह गुफ्तगू करता है--तो आनंद को उपलब्ध होता है; तो संतुष्टि को उपलब्ध होता है। उस परिपूर्णता में ही, उस वसंत के क्षण में ही आनंद-उल्लास है। कहो परमात्म-उपलब्धि है। कहो निर्वाण है, मोक्ष है।

हम दुखी रहेंगे ही, क्योंकि हम अपनी पूर्ण नियति को ही नहीं पा सकते। अंधे, लूले, लंगड़े, कोढ़ी, मस्तिष्क से विकारग्रस्त लोग--ये सब बच्चे पैदा कर रहे हैं। फिर उल्लू मर जाते हैं, औलाद छोड़ जाते हैं। फिर औलाद भी अपने बाप-दादों से पीछे नहीं रहती, वह और औलाद पैदा करती है। धीरे-धीरे खोटे सिक्कों का चलन बढ़ता चला जाता है। और अक्सर ऐसा हो जाता है कि जो श्रेष्ठतम व्यक्ति हैं, शायद विवाह ही न करें; और जो निकृष्ट हैं, वे एक नहीं चार-चार करें। जितना निकृष्ट आदमी हो, उतने ही उपद्रव खड़े करता है।

बुद्ध ने तो तब भी एक ही बच्चे को जन्म दिया। और महावीर ने भी एक ही लड़की को जन्म दिया। लेकिन सामान्यजन कतार लगा देते हैं। होड़ में लगे हुए हैं कि कौन कितने पैदा करता है! जीसस ने तो कोई बच्चा पैदा नहीं किया, विवाह नहीं किया। शंकराचार्य ने तो कोई बच्चा पैदा नहीं किया। रामकृष्ण ने तो कोई बच्चा पैदा नहीं किया। रमण ने तो कोई बच्चा पैदा नहीं किया।

वे जो श्रेष्ठतम ऊंचाइयां लेते हैं, अक्सर अविवाहित होते हैं। उनमें इतनी क्षमता, समझ होती ही है कि क्यों व्यर्थ के जाल में पड़ना! क्यों व्यर्थ का जाल खड़ा करना! जीवन छोटा है, और यह सारी ऊर्जा अगर एक ही दिशा में लगे तो ही शायद कोई उपलब्धि हो सके; इसे खंड-खंड करेंगे तो उपलब्धि नहीं हो सकती। अगर यह सारी ऊर्जा संगठित हो तो शायद उड़ान बन सके, और परमात्मा तक पहुंचना भी हो जाए। यात्रा लंबी है, कठिन है, दुस्तर है। समग्र-रूपेण व्यक्ति को समर्पित होना होगा, तो ही!

इसलिए विवाह, परिवार, परिवार की झंझटें, इस तरह के लोग कम ही लेते हैं। और ऐसा ही नहीं है कि यह सिर्फ धार्मिक व्यक्तियों के संबंध में सत्य है। दुनिया के बहुत से कवि अविवाहित रहे, और बहुत से चित्रकार अविवाहित रहे, बहुत से वैज्ञानिक अविवाहित रहे।

असल में, एक ही पत्नी काफी होती है, दो पत्नियां मुश्किल हो जाती हैं। फिर वह पत्नी चाहे काव्य हो, साहित्य हो, धर्म हो, विज्ञान हो, कला हो--पर्याप्त है; नहीं तो कलह खड़ी होती है।

सुकरात की पत्नी थी झेनथिप्पे। सुकरात जिंदगी भर परेशानी में रहा। भारत में पैदा हुआ होता तो शायद उसने विवाह ही न किया होता। यूनान में अविवाहित होने की कोई हवा न थी; अविवाहित होने की कोई धारणा न थी। यूनान बहुत पार्थिव देश है। सुकरात का विवाह हो गया। या बचपन में विवाह हो गया होगा, जैसा उन दिनों में होता था। मां-बाप ने कर दिया होगा। बुद्ध का कर दिया था, महावीर का कर दिया था। तब होश ही न रहा होगा उनको और विवाह हो गया होगा। लेकिन पत्नी ने जीवन भर कष्ट दिया।

और कष्ट किस बात का दिया? पत्नी कुछ बुरी न थी। कष्ट यही था कि सुकरात दर्शनशास्त्र में ऐसा उलझा रहता कि पत्नी पर ध्यान न देता। और यही पत्नी के बरदाश्त के बाहर हो जाता कि तुम किसी चीज में इतना रस लो जितना कि तुम पत्नी में नहीं लेते। तो जिस चीज में तुम इतना रस लोगे, पत्नी का उसी चीज से ईर्ष्या का भाव जन्मता है। इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता कि तुम किसी और स्त्री में रस ले रहे हो। तुम बागवानी में रस लो, वह तुम्हारे पौधे उखाड़ देगी। तुम चित्रकारी में रस लो, वह तुम्हारे चित्रों पर पानी फेर देगी। तुम मूर्तिकला में रस लो, वह तुम्हारी मूर्तियां तोड़ देगी। यह सवाल नहीं है कि तुम किसमें रस ले रहे हो। सवाल यह है कि प्रतिस्पर्धा शुरू हो गई, प्रतियोगिता शुरू हो गई। तुम पत्नी के प्रति उपेक्षा करते हुए मालूम पड़ रहे हो।

और निश्चित ही सुकरात उपेक्षा कर रहा था। जान कर नहीं; उसकी भी मजबूरी थी। उसके सारे भाव-प्राण एक और ही लोक में उड़े जा रहे थे। वह किसी अंतराकाश में यात्रा कर रहा था। पत्नी चाहती थी, वह भी साधारणजन जैसा जन हो। रोटी-रोजी कमाए, अच्छा मकान बनाए; पड़ोसियों से ज्यादा गहने हों, साड़ी हो। पत्नी की आकांक्षा में कुछ अस्वाभाविक नहीं है; अस्वाभाविक था तो सुकरात में था।

और सत्संग में लगा हुआ है। जब देखो तब सत्संग--सुबह सत्संग, दोपहर सत्संग, सांझ, रात... । आखिर पत्नी के लिए भी कोई समय चाहिए कि नहीं? एक दिन इतने क्रोध में आ गई कि सत्संग चल रहा था, आई और उबलती हुई केतली पूरी की पूरी सुकरात के ऊपर डाल दी। उसका मुंह सदा के लिए जल गया। आधा मुंह जला ही रहा जीवन भर, काला पड़ गया।

लेकिन सुकरात कुछ बोला नहीं। जिनके साथ बात कर रहा था, वे चीख उठे। लेकिन सुकरात ने कहा कि नहीं, उसका कोई कसूर नहीं; कसूर है तो मेरा। वह ध्यान मांगती है, और मैं ध्यान उसे नहीं दे पाता हूं। यह केवल ध्यान मांगने की एक प्रक्रिया है। ध्यान आकर्षित कर रही है। अब मेरी भी मजबूरी है; मेरा ध्यान कहीं और लगा है। उसकी भी मजबूरी है; उसे पति नहीं मिला, वह बिना पति के है। उसका भी कष्ट मैं समझता हूं।

सधवा होकर भी विधवा है; मेरा होना न होना बराबर है। उलटे मेरी देख-रेख करो, फिक्र करो, मेरे लिए खाना बनाओ--और मैं किसी काम का नहीं!

तो जो श्रेष्ठतम लोग हुए हैं, उन्होंने तो शायद बच्चे ही पैदा नहीं किए; विवाह ही नहीं किए। और जो निकृष्ट हैं, उनके पास और कोई धंधा ही नहीं है। उनके पास एक ही मनोरंजन है--बच्चे पैदा करना। इसलिए जितना गरीब देश हो, उतने लोग ज्यादा बच्चे पैदा करते हैं। क्योंकि गरीब देश के पास मनोरंजन का और कोई साधन नहीं होता। न टी.वी. है, न विश्व-यात्रा पर जाने के लिए खर्चा है, न और तरह के महंगे साधन हैं; बस एक सस्ता साधन है कि बच्चे पैदा करो। अपने को उलझाए रहो, बाल-गोपालों से घिरे रहो। वे किलकारियां मारें और तुम उलझे रहो। ऐसे जिंदगी उलझे-उलझे बीत जाए, कम से कम खालीपन तो न अखरे। कुछ तो कर रहे हो। दुनिया को कुछ तो दे जा रहे हो। कुछ ऐसे ही नहीं आए और चले, निशान छोड़े जा रहे हो! याद करेंगे लोग, याद रखेंगे लोग कि आए थे तुम!

तुम पूछते हो, रामशंकर अग्निहोत्री, कि ये महावीर, आइंस्टीन, बुद्ध जैसी प्रतिभाएं योजित संतानोत्पत्ति से तो पैदा नहीं हुई थीं।

मैं भी स्वीकार करता हूं। लेकिन काश, योजित संतानोत्पत्ति की व्यवस्था लागू हो जाए तो बहुत आइंस्टीन पैदा हो सकते हैं, बहुत बुद्ध, बहुत महावीर। प्रतिभाओं के अंबार लग सकते हैं। प्रत्येक व्यक्ति कुछ न कुछ अद्वितीय दान इस जगत को दे सकता है।

लेकिन सब कूड़ा-करकट पैदा होता है। उसका कारण हैः हम सोच-विचार करते नहीं। पति-पत्नी का भी तुम तालमेल बिठवाते हो तो किससे बिठवाते हो? ज्योतिषी से! जरा उसकी घर की हालत तो देखो। खुद की पत्नी से तालमेल बिठा नहीं पाया और न मालूम कितनों की पत्नियों के, पतियों के तालमेल बिठा रहा है! और चवन्नी-अठन्नी में बिठा देता है!

अभी विज्ञान पैदा नहीं हुआ पूरा-पूरा, अभी विज्ञान पैदा हो रहा है। अब घड़ी आई है कि तालमेल बिठाया जा सकता है। अब हमारे हाथ में बहुत से सूत्र हैं, जिनका उपयोग किया जाना चाहिए। न करें, तो हम मूढ़ हैं। महावीर और बुद्ध के समय में तो सूत्र थे भी नहीं, हमारे हाथ में सूत्र हैं। अब हम जानते हैं कि किस तरह के पुरुष और किस तरह की स्त्री के मिलन से किस तरह का बच्चा पैदा होगा। उसकी कितनी ऊंचाई होगी, उसकी कितनी उम्र होगी, उसकी कितनी प्रतिभा होगी, उसका कितना बुद्धि-अंक होगा। अब इस बात को बिल्कुल निर्धारित किया जा सकता है। अब हम जानते हैं कि उसका नाक-नक्श कैसा होगा; उसके बालों का रंग कैसा होगा; उसकी आंखों का रंग कैसा होगा। यह सब तय किया जा सकता है।

अब हम यह भी जानते हैं कि साधारण संभोग से जो बच्चे पैदा होते हैं, उनके संबंध में बहुत निश्चित नहीं हुआ जा सकता, क्योंकि वह अंधेरे में तीर मारना है। एक संभोग में एक पुरुष से करीब एक करोड़ जीवाणु स्त्री के गर्भ की ओर दौड़ते हैं। वहीं से राजनीति शुरू होती है। दिल्ली दूर नहीं! सारी राजनीति का वहीं जन्म है। अब एक करोड़ जीव-कोष्ठ! संघर्ष शुरू हुआ, जीवन की प्रतियोगिता शुरू हो गई। वे भाग रहे हैं। उनका दो घंटे का ही जीवन होता है। दो घंटे में अगर नहीं पहुंच पाए स्त्री के अंडे तक, तो मर जाएंगे। और तुम्हें लगेगा कि कोई मार्ग बहुत लंबा नहीं है। मगर उनके लिए बहुत लंबा है। आंख से दिखाई भी नहीं पड़ते, इतने छोटे हैं। मीलों लंबा मार्ग है! और कठिन संघर्ष है, एक करोड़ से प्रतियोगिता है। इस भाग-दौड़ में जो सबसे पहले पहुंच जाएगा स्त्री के अंडे तक, वह प्रवेश कर जाएगा।

स्त्री के अंडे की खूबी है कि जो भी जीव-कोष्ठ, पुरुष का स्पर्म सबसे पहले अंडे को छुएगा, अंडा उसे अपने भीतर ले लेता है और इसके बाद अंडा बंद हो जाता है। इसीलिए कभी-कभी दो बच्चे पैदा हो जाते हैं, कभी तीन बच्चे, कभी चार। क्योंकि कभी-कभी संयोगवशात दो स्पर्म एक साथ पहुंच जाते हैं। जब दरवाजा खुला होता है, तब एक साथ पहुंच जाते हैं, तो दोनों ही भीतर हो जाते हैं। अगर बिल्कुल एक साथ जितने भी पहुंच जाएंगे, उतने भीतर हो जाएंगे। एक दफा कोई भी भीतर हो गया, फिर अंडा बंद हो जाता है, सख्त हो जाता है, फिर उसमें प्रवेश नहीं हो सकता, फिर बाकी मारे गए।

तो करोड़ में से एक पहुंच पाएगा। भयंकर प्रतियोगिता शुरू हुई। जीवन-मरण का प्रश्न है। जो बचेगा वह जीएगा। जो बचेगा वह सत्तर साल जीएगा। जो बचेगा वह जिंदगी देखेगा; सूरज, चांद तारे देखेगा; न मालूम क्या-क्या करेगा--बुद्ध बनेगा, महावीर बनेगा, अल्बर्ट आइंस्टीन बनेगा, कि पिकासो बनेगा, कि माइकलएंजलो बनेगा, कि कालिदास, कि पता नहीं कौन! बाकी उस एक को छोड़ कर शेष सब दो घंटे के भीतर मर जाएंगे। हार गए वहीं। उनकी जिंदगी वहीं समाप्त, उनके प्राण वहीं समाप्त हो गए।

अब यह कौन पहुंचेगा? यह जरूरी नहीं है कि जो जीवाणु बुद्ध बन सकता है, वही पहुंचे। इस एक करोड़ में सब तरह के लोग हैं। इसमें चालबाज हैं, बदमाश हैं, राजनेता हैं, मोरारजी देसाई, चरणसिंह--सब तरह के लोग हैं इसमें, तरह-तरह के लोग हैं। हर तरह के दांव-पेंच लगाएंगे। अक्सर इस बात की संभावना है कि सज्जन पुरुष शायद पीछे ही रह जाएं, कि भई इतनी भाग-दौड़ में कौन पड़े। इतनी आपाधापी में कौन उलझे! सज्जन पुरुष यह सोच कर कि विनम्रता ही शोभा देती है, एक कोने में ही खड़े रह जाएं--कि भैया पहले तुम निकल जाओ, फिर देखेंगे। इसमें दादा लोग होंगे, जो धक्कमधुक्की करेंगे और किसी तरह घुस जाएंगे। सौ-सौ जूते खाएं तमाशा घुस कर देखें! कुछ भी हो जाए, मगर जिन्होंने कस्द ही अगर कर लिया है कि पहुंच कर रहेंगे, धमाचौकड़ी मचा देंगे, एक-दूसरे के ऊपर से चढ़ जाएंगे... तुम्हें ख्याल नहीं है। वैज्ञानिक कहते हैं कि इतना उपद्रव मच जाता है... पर इतना सूक्ष्म उपद्रव कि किसी को पता नहीं चलता कि क्या हो रहा है!

इसमें से चुनाव किया जा सकता है। अब हमारे पास विधियां हैं। इसमें से जांच-पड़ताल की जा सकती है। इसीलिए तो एक ही मां-बाप के बच्चे भी सब एक जैसे नहीं होते। आखिर महावीर अकेले बेटे थोड़े ही थे अपने बाप के, और भी बेटे थे; उनका क्या हुआ? आइंस्टीन कोई अकेला ही बेटा तो नहीं था, और भी बेटे थे; उनका क्या हुआ? वे सब कहां खो गए? और उन्हीं मां-बाप से पैदा हुए थे। एक ही मां-बाप से पैदा होने वाले भी दस भाई-बहनों में बहुत अंतर होता है, जमीन-आसमान का अंतर होता है। और अंतर कहां से आता है? अंतर यहां से आता है कि जो जीव-कोष्ठ दौड़ रहे हैं स्त्री के अंडे की तरफ, वे सब अलग-अलग हैं; उनकी सबकी प्रतिभाएं अलग-अलग हैं; उनकी क्षमताएं अलग हैं; उनकी संभावनाएं अलग हैं। अब हमारे पास विधियां हैं कि हम उनकी क्षमताओं को आंक सकते हैं; हम उनके भविष्य में झांक सकते हैं।

इसलिए जैसे अभी हम अस्पतालों में ब्लड-बैंक बनाते हैं, वैसे पश्चिम के देशों में स्पर्म-बैंक बनने शुरू हो गए हैं। यह अच्छी शुरुआत है, यह महत्वपूर्ण शुरुआत है। इस पर भविष्य का बहुत कुछ निर्भर करेगा। इसमें श्रेष्ठतम व्यक्तियों के स्पर्म इकट्ठे किए जा सकते हैं, और उनमें से भी जो श्रेष्ठतम हैं वे स्पर्म चुने जा सकते हैं।

फिर सभी स्त्रियों के अंडे भी श्रेष्ठ नहीं होते। स्त्रियों के अंडे भी भिन्न-भिन्न होते हैं। उन अंडों को भी चुना जा सकता है। और श्रेष्ठतम अंडा अगर श्रेष्ठतम स्पर्म से मेल खाए, तो मैं तुमसे कहता हूं कि वक्त आ सकता है जब हम अतीत को बिल्कुल ही फीका कर दें; बुद्ध और महावीरों को अंगुलियों पर गिनती करने की जरूरत न

रह जाए। हम महान प्रतिभाओं को जन्म दे सकते हैं। मगर इसके लिए बड़ी नियोजित व्यवस्था चाहिए। यह नियोजन के बिना नहीं हो सकता।

हां, अभी जो कभी-कभी इस तरह के लोग पैदा हो गए हैं, ये हमारे बावजूद। रामशंकर अग्निहोत्री, इसे स्मरण रखना। मैंने जो बात कही है उसमें कहीं भी कोई भूल-चूक नहीं है, बात पूरी सही है। ये तो लग गए तीर। तुम भी अंधेरे में तीर चला कर देखो, लग जाएगा एकाध। मगर इससे तुम तीरंदाज न हो जाओगे। तीरंदाज इतनी आसानी से नहीं हो जाते। कभी-कभी संयोगवशात चीजें हो जाती हैं। यह संयोग की बात थी कि एक श्रेष्ठ अंडे से एक श्रेष्ठ स्पर्म का मिलन हो गया। यह करोड़ों घटनाओं में एक घटना हो ही जाएगी।

जीसस ने कहा है कि तुम बीज फेंको, ऐसे ही फेंक दो। कुछ रास्ते पर पड़ेंगे, वे कभी पैदा नहीं होंगे, वे रास्ते पर ही मर जाएंगे। रास्ते पर कहीं कोई बीज पैदा हो सकता है, अंकुरित हो सकता है? और जीसस के जमाने का रास्ता। आजकल का रास्ता तो जीसस को कुछ पता भी नहीं था। अब सीमेंट के रास्ते पर कोई बीज अंकुरित हो सकता है? कि कोलतार के रास्ते पर कोई बीज अंकुरित हो सकता है? कुछ रास्ते के किनारे पड़ेंगे; वे शायद अंकुरित हो जाएं, लेकिन मर जाएंगे। क्योंकि लोग चलते हैं रास्ते के बगल में भी, पटरियों पर भी; दब जाएंगे। कुछ हो सकता है खेत की मेड़ पर पड़ जाएं, वे शायद थोड़े और बड़े हो जाएंगे, मगर वे भी बचेंगे नहीं। क्योंकि मेड़ों पर भी लोग, किसान, चरवाहे चलते हैं। जो बिल्कुल खेत के मध्य में पड़ेंगे, ठीक-ठीक भूमि में पड़ेंगे, वे ही बीज अंकुरित हो पाएंगे। और उनकी भी सुरक्षा चाहिए।

हम बीजों की जितनी चिंता करते हैं, उतनी मनुष्य के बीजों की नहीं करते। हमारे जैसे म.ूढ खोजने कठिन हैं! खेत में बागुड़ लगाते हैं, पानी सींचते हैं; कोई जानवर न घुस जाए, इसका इंतजाम करते हैं, रखवाला रखते हैं। आदमी के लिए हमने क्या इंतजाम किया है? खैर अब तक तो हम कर न सकते थे, हमें पता भी न था। अब हम कर सकते हैं। अगर अब हम न करें तो हम निपट गंवार हैं।

लेकिन पुरानी धारणाएं हमें कठिनाई दे रही हैं। पुरानी धारणाएं हमें बड़ी मुश्किल दे रही हैं।

आनंद मैत्रेय ने पूछा है कि अगर आपकी बात मानी जाए और संतानोत्पत्ति को नियोजित किया जाए, तो व्यक्ति की स्वतंत्रता का क्या होगा?

और संबंधों में व्यक्ति की स्वतंत्रता का क्या होता है? कोई आदमी किसी की हत्या करना चाहे, तब तुम यह नहीं कहते कि इस व्यक्ति की स्वतंत्रता में बाधा पड़ रही है, करने दो हत्या! जब यह करना चाहता है तो करने दो! इसकी स्वतंत्रता में बाधा क्यों डाल रहे हो? किसी व्यक्ति को किसी के घर में आग लगा कर होली जलानी है। इसकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता में बाधा नहीं पड़ती, जब तुम इसको रोकते हो, पुलिस पकड़ कर ले जाती है? किसी को आत्महत्या करनी है, उसको भी तुम नहीं करने देते। यह तो हद हो गई! दूसरे को न मारने दो, चलो ठीक है भई कि दूसरा भी इसमें सम्मिलित है। एक आदमी अपने को ही मारना चाहता है, वह भी पकड़ जाए तो सजा काटेगा।

अपने को भी मारने की स्वतंत्रता नहीं है; और तुम्हें बच्चे पैदा करने की स्वतंत्रता होनी चाहिए! जो कि मारने से भी खतरनाक काम है। क्योंकि तुम हो सकता है ऐसा बच्चा पैदा कर जाओ जो जिंदगी भर दुख भोगे। और फिर वह बच्चे पैदा करेगा। तुम एक सिलसिला शुरू कर जाओ जिसका शायद कभी अंत न हो सके। और तुम्हें इसकी स्वतंत्रता चाहिए! एकाध आदमी को मार दो, इसमें कुछ बड़ा खतरा नहीं है। ऐसे ही आदमियों की

भीड़ बहुत है। मगर एक बच्चे को पैदा करना ज्यादा खतरनाक काम है। उसकी तुम्हें व्यक्तिगत स्वतंत्रता चाहिए कि हम तो जिसे पैदा करना है करेंगे।

नहीं, यह बात ठीक नहीं है। व्यक्तिगत स्वतंत्रता का यह अर्थ नहीं होता। व्यक्तिगत स्वतंत्रता का यह गलत अर्थ हो गया।

अमरीका का एक विचारक हेनरी थारो हुआ। महात्मा गांधी उससे बहुत प्रभावित थे। अमरीकी विधान में लिखा हुआ है कि व्यक्ति को आवागमन की स्वतंत्रता है। इसका उसने क्या अर्थ किया, मालूम है? रेलगाड़ी में बिना टिकट चलना! आवागमन की स्वतंत्रता! कोई रोक नहीं सकता। प्रत्येक व्यक्ति को आवागमन की स्वतंत्रता है। जब आवागमन की स्वतंत्रता है तो रेलगाड़ी में बैठेंगे, हवाई जहाज में चढ़ेंगे! वह कई दफे पकड़ा गया, सजाएं भी काटीं, मगर वह यह कहता था कि यह व्यक्ति की मूलभूत स्वतंत्रता है; फिर-फिर चलता था बिना टिकट।

गांधी को असहयोग आंदोलन का ख्याल ही उसी पगले से मिला। उसकी ही किताब पढ़ कर--अंटू दिस लास्ट--गांधी को धारणा मिली कि यह तो बड़े गजब का काम है! असहयोग किया जा सकता है इस तरह से। गांधी ने उसकी किताब का अनुवाद किया। अंटू दिस लास्ट का उन्होंने जो नाम दिया, वह सर्वोदय--किताब का। उसी से सर्वोदय शब्द पैदा हुआ।

व्यक्तिगत स्वतंत्रता का क्या अर्थ होता है? तुम्हें हक है कि तुम किसी भी तरह का बच्चा पैदा करो? उस बच्चे के संबंध में क्या? तुम कौन हो उस बच्चे का भविष्य बिगाड़ने वाले? अगर वह बुद्धू होगा, तो तुम जिम्मेवार हो। अगर वह अपाहिज होगा, तो तुम जिम्मेवार हो। अगर अंधा होगा, तो तुम जिम्मेवार हो। अगर वह बुद्धिहीन होगा, तो कौन जिम्मेवार है? अगर वह जीवन भर परेशान होगा, तो कौन जिम्मेवार है?

हमें ये सब धारणाएं बदलनी पड़ेंगी। यह व्यक्तिगत स्वतंत्रता की बात मूढ़तापूर्ण है। यही तो इस मुल्क में हमारे प्राण लिए ले रही है। बुद्ध के जमाने में दो करोड़ आबादी थी इस देश की; अब इस देश की आबादी सत्तर करोड़ है। और अगर हम पाकिस्तान और बंगला देश को भी जोड़ लें, तो नब्बे करोड़ के करीब पहुंच रही है। दो करोड़ आबादी से नब्बे करोड़! तुम अगर दीन हो, दरिद्र हो, तो कौन जिम्मेवार है? और फिर तुम कहते हो व्यक्तिगत स्वतंत्रता! तो तुम्हें दरिद्र होने की व्यक्तिगत स्वतंत्रता है। तो तुम्हें भूखे मरने की व्यक्तिगत स्वतंत्रता है। फिर शोरगुल क्यों मचाते हो? फिर क्यों चिल्लाते हो कि हम भूखे हैं, कि हम दीन हैं, कि हम दरिद्र हैं, कि दुनिया हमारी फिक्र करे! बच्चे तुम पैदा करो और फिक्र दुनिया तुम्हारी करे? सारी दुनिया पर नाराज हो। और नाराजगी का कारण? जिम्मेवारी तुम्हारी है। कोई और कारण नहीं है।

यह सब अब आगे नहीं चल सकता। हमें व्यक्तिगत स्वतंत्रता की धारणा बदलनी होगी। व्यक्ति ही कहां हैं? जिनमें बोध हो उनको व्यक्ति कहो। इन मशीनों को व्यक्ति कहते हो? जिनको कुछ बोध नहीं है--क्यों बच्चे पैदा कर रहे हैं? किस लिए कर रहे हैं? क्या जरूरत है? जरूरत है भी या नहीं? क्यों पृथ्वी का बोझ बढ़ा रहे हैं? ऐसे ही भीड़-भाड़ बहुत है, अब कृपा करो! मगर वे कहते हैं कि नहीं, व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर बाधा हो जाती है।

मैत्रेय जी ने पूछा है कि इससे तो अधिनायकवाद आ जाएगा!

हम तो शब्द पकड़ लेते हैं। जिंदा रहना है तो कुछ सूझ-बूझ से काम लेना होगा। और अगर जीवन को सुंदर बनाना है तो काफी सूझ-बूझ से काम लेना होगा। यह शब्दों के जाल में पड़ने की बहुत ज्यादा जरूरत नहीं है। निर्णय तो अब विशेषज्ञों के हाथ में ही होना चाहिए कि कौन बच्चे पैदा कर सकता है, किससे बच्चे पैदा कर सकता है।

और अब हमारे पास सुविधा है। कोई जरूरत नहीं है कि तुम अपनी ही पत्नी से बच्चा पैदा करो; कि तुम्हारी पत्नी तुमसे ही बच्चा पैदा करे। ये पुरानी मूढ़तापूर्ण धारणाएं छोड़ो। तुम्हारा बच्चा सुंदर होना चाहिए। तुम्हारा बच्चा मेधावी होना चाहिए। तुम्हारा बच्चा ऐसा होना चाहिए कि खिल जाए एक कमल। इसकी फिक्र करो।

उसकी तो फिक्र नहीं है, बस केवल फिक्र इसकी है कि वह मेरी औरत से हो, कि मेरे पति से हो। और अब बहुत सुविधा है। अब तो इंजेक्शन से भी बच्चा पैदा हो सकता है। अब कोई जरूरत नहीं है। ...

और एक अदभुत बात है, एक आदमी के शरीर में इतने स्पर्म होते हैं जीवन में कि एक आदमी से हम पूरी पृथ्वी भर सकते हैं बच्चों से। एक करोड़ एक संभोग में बच्चे पैदा हो सकते हैं। एक आदमी अपने तीस-चालीस साल के संभोग के जीवन में इतने बच्चे पैदा कर सकता है कि सारी पृथ्वी को भर दे। अगर हम श्रेष्ठतम स्पर्म का उपयोग करें, तो कोई जरूरत नहीं है कि तुम अपने रद्दी-खद्दी स्पर्म से ही बच्चे पैदा करने का आग्रह लिए बैठे रहो--कि हम इससे ही बच्चा पैदा करेंगे! चाहे कैसा ही हो, ऊबड़-खाबड़ हो, कच्चा-पक्का हो, चलेगा, मगर हमारा तो है!

हमारे का इतना ही मतलब होगा कि तुम स्पर्म का इंजेक्शन खरीद कर लाए हो। तुमने पैसा खर्च किया है, किसी और ने नहीं! किसी और के बाप का नहीं! तुमने चुनाव किया है। तुम गए थे केमिस्ट की दुकान पर खुद, नौकर को नहीं भेज दिया था। और वहां तुमने जांच-पड़ताल की, तुमने खोजबीन की; पत्नी को भी ले गए थे। दोनों ने सोचा-विचारा, विशेषज्ञ से पूछा। फिर तुमने निर्णय किया कि कैसा बच्चा तुम चाहोगे--कितनी प्रतिभा का, कितनी ऊंचाई का, क्या रंग, क्या रूप, कैसा नाक-नक्श, कैसी देह, कितना स्वास्थ्य।

नहीं तो हम बीमारियां देते चले जाते हैं। पीढ़ी दर पीढ़ी बीमारियां उतरती चली जाती हैं। उन्हीं-उन्हीं बीमारियों को हम बढ़ाते चले जाते हैं।

स्वस्थ बच्चे हो सकते हैं, जो कभी बीमार न हों, या हों तो होना बड़ा न्यून हो जाए। और धीरे-धीरे मनुष्य की नस्ल भी अतिमानव को छू सकती है, सुपरमैन को छू सकती है। नीत्शे की कल्पना कभी पूरी हो सकती है, अब पूरे होने का दिन करीब आया।

तो मैं तो पुनः दोहराऊंगा कि संतानोत्पत्ति नियोजित होनी चाहिए। और बच्चों का सारा भार कम्यून पर होना चाहिए, ताकि कम्यून ही तय करे कि कितने बच्चे हों, किसके बच्चे हों। और अब अड़चन नहीं है, क्योंकि अब बच्चे और संभोग का संबंध टूट चुका है। पुराने दिन में यह अड़चन थी कि अगर बच्चे रोकना हों तो ब्रह्मचर्य जैसी कठिन बात साधनी पड़ती, जो कि शायद कोई एकाध साध पाए। अब तो बच्चे का और संभोग का संबंध टूट गया।

मनुष्य-जाति के इतिहास में संतति-निरोध के लिए जो पिल ईजाद हुई है, वह सबसे बड़ी क्रांतिकारी ईजाद है। इससे बड़ी कोई क्रांतिकारी ईजाद नहीं है; क्योंकि इससे आने वाले भविष्य का सारा का सारा रूप-रंग और होगा। इसने एक बड़ी क्रांति कर दी, इसने संभोग और बच्चों का संबंध तोड़ दिया। तुम संभोग का सुख

ले सकते हो जब तक तुम्हें लेना है। जब तक तुम्हें बुद्धि नहीं आती संभोग से ऊपर उठने की, तुम संभोग का सुख ले सकते हो और बच्चों से बच सकते हो। बच्चे अनिवार्य नहीं हैं। बच्चों को अब तुम व्यवस्थित होने दो।

और थोड़ी समझ आए तो इसमें अड़चन नहीं होती। यह कोई जबरदस्ती नहीं थोपा जाता। यहां मेरे कम्यून में तुम देखो, यहां तीन हजार संन्यासी हैं और केवल ढाई सौ बच्चे हैं। डेढ़ हजार जोड़ों में ढाई सौ बच्चे। अगर इन डेढ़ हजार जोड़ों को भारतीय शैली सिखा दी जाए तो यहां जो किलकिल-दांती मचे, ऐसा सत्संग हो यहां... । दस-पंद्रह हजार बच्चे हों, जिनको सम्हालने में ही सारा काम लगे। लेकिन खुद अपनी समझ से युवकों ने आपरेशन करवा लिए हैं, युवतियों ने आपरेशन करवा लिए हैं। डाक्टरों ने जिसको सुझाव दिया, आपरेशन करा लिया।

और जैसे ही यह कम्यून पूरी तरह निर्मित होती है, वैसे ही जो मैं कह रहा हूं यह सब प्रयोग होने वाला है। क्योंकि जो मैं कह रहा हूं, मैं हवाई बात करना पसंद नहीं करता। अगर दुनिया में कहीं पहली दफा कम्यून का ठीक-ठीक प्रयोग हो सकेगा और बच्चे पूरे-पूरे कम्यून के होंगे... । एक हमने अलग बच्चों के लिए भवन बना रखा है। वहां बच्चे ही रह रहे हैं। क्योंकि बच्चे मां-बाप की झंझट में नहीं रहना चाहते। और मां-बाप भी क्यों झंझट में रहें! तो बच्चों का अपना निवास-स्थल है। उनसे थोड़े बड़े उम्र के बच्चे उस निवास-स्थल को सम्हाल रहे हैं। और बड़े अदभुत ढंग से सम्हाल रहे हैं! सब व्यवस्थित चल रहा है।

नये कम्यून में, जैसे ही हमारी पूरी व्यवस्था अपनी हो जाती है, हमारा अपना पूरा नगर हो जाता है, दस हजार संन्यासी बस जाते हैं, मैं चाहूंगा कि हम पूरे विशेषज्ञों का उपयोग करें और बच्चे इस तरह पैदा हों जिस तरह कि अब विज्ञान चाहता है कि बच्चे पैदा होने चाहिए। हम एक उदाहरण पेश करना चाहते हैं। हम दिखाना चाहते हैं कि कैसे बच्चे पैदा हो सकते हैं। और जितने दूर के मां-बाप या जितने दूर के स्त्री और पुरुष के जीव-कोष्ठ मिलें, उतने ही अदभुत बच्चे पैदा होते हैं; उतने ही श्रेष्ठ बच्चे पैदा होते हैं, जितना फासला हो।

मेरे संन्यासियों में कोई पचास देशों के संन्यासी हैं--दूर-दूर देशों के। इनसे हम एक नई मनुष्य-जाति का सूत्रपात कर सकते हैं।

दूसरा प्रश्नः ओशो, क्या जीवन-मूल्य भी समयानुसार रूपांतरित होते हैं?

सत्यानंद, समय में जो पैदा होता है वह अनिवार्य रूप से रूपांतरित होता है। जीवन-मूल्य भी समय की उत्पत्ति हैं, उपज हैं। वैदिक ऋषियों के समय में जो सही था, आज सही नहीं है। आज जो सही है, शायद कल सही नहीं होगा। रोज जागरूकता से देखते रहना जरूरी है कि समय की धारा जब बदले तो हम भी बदलें। लेकिन हम कल में जीते हैं और अस्तित्व सदा आज है। हम होते हैं कल में, बीते कल में, और अस्तित्व है आज; हमारा तालमेल टूट जाता है। इससे महादुख पैदा होता है, इससे नरक निर्मित हो जाता है। क्योंकि हम हमेशा चूकते चले जाते हैं।

वर्तमान से संबंध न हो पाए तो परमात्मा से भी संबंध हो नहीं सकता, क्योंकि वर्तमान परमात्मा है। और हम रहते हैं अतीत में। हमारी धारणाएं अतीत की। वे कितनी ही मूढ़तापूर्ण हो जाएं, मगर हम उन्हें दोहराए जाते हैं, हम पीटे चले जाते हैं। हम कहते हैं, हमारे बाप-दादों के समय से चली आईं। कभी उनकी अर्थवत्ता रही होगी, जरूर रही होगी। वे पैदा इसीलिए हुईं कि समय की मांग रही होगी। लेकिन अब? अब उनका कोई मूल्य नहीं।

जैसे वैदिक ऋषि आशीर्वाद देते थे नव-दंपतियों को कि तुम्हारे बहुत बच्चे हों! आज अगर कोई यह आशीर्वाद देगा तो गलत होगा। आज तो आशीर्वाद होना चाहिएः तुम्हारे बच्चे बिल्कुल न हों! आज "बहुत बच्चे हों", यह आशीर्वाद नहीं है, यह तो अभिशाप हो जाएगा।

समय बदल गया, स्थिति बदल गई। वैदिक ऋषियों के समय में पृथ्वी ज्यादा थी, लोग कम थे। आज पृथ्वी कम है और लोग ज्यादा हैं। लोगों से दबी जा रही है पृथ्वी, मिटी जा रही है पृथ्वी। तो वही जीवन-मूल्य नहीं रह सकते।

मुझसे लोग पूछते हैं कि संतति-नियमन का उपयोग करना... तो जो आत्माएं रुक जाएंगी, पैदा न हो पाएंगी, उनका क्या होगा? और क्या संतति-नियमन करना हिंसात्मक नहीं है? क्योंकि तुमने किसी को पैदा नहीं होने दिया, उसकी हत्या कर दी! होने के पहले ही हत्या कर दी!

जो आत्मा पैदा नहीं हुई, वह कोई और द्वार-दरवाजा खटखटाएगी; कोई तुम्हारा ही द्वार-दरवाजा है? कोई तुम एक ने ही ठेका ले रखा है? तुम जैसे मूढ़ बहुत हैं। और कोई यह एक ही पृथ्वी है? वैज्ञानिक कहते हैं, इस तरह की कम से कम पचास हजार पृथ्वियों पर जीवन है। कम से कम पचास हजार! ज्यादा पर होगा, लेकिन कम से कम पचास हजार पर तो निश्चित है। तो तुम्हें क्या चिंता पड़ी? तुमने कौन सा ठेका लिया हुआ है आत्माओं को जन्माने का? जो चलाता है इस विश्व को, चलाएगा उनको भी। उसकी जिम्मेवारी, उसकी समस्या वह समझे। तुम क्या परमात्मा की समस्याएं हल करने बैठे हो? तुम अपनी सुलझा लो, उतना ही बहुत।

लेकिन लोग तरह-तरह के प्रश्न पूछते हैं सिर्फ इसलिए कि पुरानी धारणा किसी तरह बची रहे, किसी तरह हम पुराने से चिपके रहें। और सब बदल गया है।

मुल्ला नसरुद्दीन कल मुझसे कह रहा था। कह रहा थाः

कल रात
अकस्मात
एक ब्यूटी गर्ल ने हमें रोका
हम समझे पहचानने में हो गया धोखा!
हम कवि-सुलभ लज्जा से
दृष्टि झुकाए गुजर गए
कन्या के केश मारे गुस्से के बिखर गए
जोर-जोर से चीखने लगी--
"शहर के जवां मर्दो, आओ
इस शरीफजादे से मुझको बचाओ
मैं अलकों में अवध की शाम
होंठों पे बनारस की सुबह
और चेहरे पर कश्मीर का पानी रखती हूं
फिर भी इस लफंगे ने मुझको नहीं छेड़ा
क्या मैं इसकी मां लगती हूं?"

जीवन रोज बदला जाता है। पुराने मूल्य बह जाते हैं पानी में, नये मूल्य आ जाते हैं। पुरानी धारणाएं टूट जाती हैं, नई धारणाएं आ जाती हैं।

सोच में पड़े हैं सेठ किशोरीरमण
क्योंकि डाकुओं ने
उनकी पत्नी का कर लिया अपहरण
अब आया है पत्र उनके पास
कि आप एक किलो सोना
गंदे नाले पर रख दीजिए
जो कि
हमारे द्वारा
स्वयं सहेज लिया जाएगा
और यदि
आपने ऐसा न किया तो
आपकी सेठानी को वापस भेज दिया आएगा।

वे दिन गए जब कि डाकू कहते थे कि अगर रुपया न भेजा तो हम पत्नी को छोड़ेंगे नहीं। वे दिन गए! अब तो वे कहते हैं, पत्नी को घर वापस भेज देंगे सकुशल।

तुम पूछते हो, सत्यानंदः "क्या जीवन-मूल्य भी समयानुसार रूपांतरित होते हैं?"

निश्चित ही! सभी चीजें बदलती हैं। बदलनी ही चाहिए। बदलना ही जीवन का क्रम है। और बदलना शुभ भी है। बदलती हैं, इसलिए तो जीवन नया रहता है, ताजा रहता है, प्रफुल्लित रहता है। इस देश में नहीं बदलतीं, यही हमारी अड़चन है। इस देश में सब सड़ गया है, सब गंदा हो गया है। इस देश में आज तो है ही नहीं, बस कल ही कल है। रामराज्य हो चुका, स्वर्ण-युग हो चुका, सतयुग हो चुका--सब हो चुका! अब हम यहां क्या कर रहे हैं? कोई यह पूछता ही नहीं कि अब तुम क्या कर रहे हो? जब सब हो ही चुका तो अब तुम भी हो चुको! अब तुम क्यों नाहक कष्ट उठा रहे हो? अब कुछ होने को तो बचा नहीं। अब तो कलियुग ही कलियुग है, दुर्दिन ही दुर्दिन हैं, अब तो दुख ही दुख है। अब सार क्या है जीने में?

दो हिप्पी केलिफोर्निया के एक रास्ते से गुजर रहे थे। महा हिप्पी! मील भर तक चलते रहे चुपचाप। अपनी-अपनी धुन में मस्त। आखिर एक ने दूसरे से कहा कि अब बरदाश्त के बाहर है। क्या तूने अपने पतलून में पाखाना किया है? इतनी भयंकर बदबू आ रही है! और मील भर से मैं देख रहा हूं कि अगर यह बदबू कहीं और से आ रही होती तो छूट गई होती पीछे, मगर यह साथ ही चल रही है।

दूसरे ने कहा कि नहीं-नहीं, बिल्कुल नहीं।

मगर पहला भी ऐसा मानने वाला न था। उसने कहा कि उतार पतलून! सो उसके मित्र ने पतलून उतारी। पतलून उतारते ही वह दूसरा चिल्लाया कि देख मैं क्या कहता था! और तू कहता है कि नहीं-नहीं। तूने पाखाना किया है! यह क्या रहा!

दूसरे ने कहा, मैंने समझा भाई तुम पूछ रहे हो आज की। आज नहीं किया।

ऐसी इस देश की दशा है। यहां आज तो कुछ है ही नहीं--कुछ भी नहीं! सब कल हो चुका। बस उसको ढोते रहो--मुर्दा लाशों को। सड़ गई हैं, बास उठ रही है। मगर बड़ी प्यारी हैं। अपनों की हैं। और सदियों से पूजी गई हैं। सम्मान-सत्कार होता रहा है। सो सजाए रहो, संवारे रहो। बाप-दादे भी यही करते रहे, तुम भी यही करते रहो।

हम कुछ भी बदलना नहीं चाहते। महावीर ने कहा था अपने मुनियों को कि नंगे पैर चलना। कहने का कारण था, क्योंकि उस समय जूते बनते थे, वे सिर्फ चमड़े के बनते थे। और चमड़ा तो हिंसा होगी, पशु मारे जाएंगे। तो ठीक था, अपने जूतों के लिए पशुओं को क्या मारना!

फिर दूसरे, कोई कोलतार के और सीमेंट के रास्ते तो थे नहीं। खुली मिट्टी थी, मिट्टी के ही रास्ते थे। मिट्टी पर चलने में कोई अस्वास्थ्य नहीं है। मिट्टी पर चलने में तो स्वास्थ्य है। हम भी तो मिट्टी के बने हैं। मिट्टी मिट्टी से मिलती है तो जीवन पाती है। तो अगर तुम कभी नंगे पैर थोड़ी देर मिट्टी पर रोज चलो तो लाभपूर्ण है, स्वास्थ्यप्रद है। हर्जा नहीं है जरा भी।

मगर अब ये जैन मुनि अभी भी चले जा रहा है--कोलतार की सड़क पर, सीमेंट रोड पर! सोचता ही नहीं कि महावीर को क्या बेचारों को पता कि सड़कें ऐसी भी होंगी। कोलतार की जलती हुई सड़क, गर्मी के दिन, पैर में फफोले पड़े जा रहे हैं, मगर वह चला जा रहा है। और अब तो जूते कपड़े के भी बनते हैं, कैनवास के भी बनते हैं, रबर के भी बनते हैं। अब कोई चमड़े पर ही रुके हैं हम? अब तो जूते में कोई हिंसा नहीं है। अगर महावीर वापस लौट आएं तो मैं तुमसे पक्का कहता हूं, और कुछ पहनें कि न पहनें, जूते जरूर पहनेंगे।

एक दिन एक आदमी ने और उसकी पत्नी ने मुल्ला नसरुद्दीन के द्वार पर दस्तक दी। दरवाजा खोला नसरुद्दीन ने, झांक कर देखा। पति-पत्नी खड़े हैं। पति-पत्नी भी बहुत हिचकिचाए, क्योंकि मुल्ला बिल्कुल नंगा था। जूते पहने था और टोप लगाए था! टाई भी बांध रखी थी! अब एकदम से जा भी नहीं सकते थे। अब आ ही गए। और मुल्ला भी नहीं कह सकता कि जाओ। पुराने परिचित थे। कहा, आइए-आइए, विराजिए! बड़े सौभाग्य हैं!

पति आगे घुसा, पत्नी छिपी-छिपी पीछे। पति तो इधर-उधर देखने लगा, अब क्या कहे क्या न कहे! कुछ सोच कर भी आया था, जिस काम से, वह भी एकदम भूल गया। यह नंग-धड़ंग आदमी... और बिल्कुल नंगा होता तो भी ठीक था, यह टोप भी लगाए है, जूते भी पहने है और टाई भी बांधे है! और बाकी सब चीजें नदारद! असली चीजें नदारद! मगर पत्नी से न रहा गया। पत्नी ने कहा कि मुल्ला जी, क्या मैं पूछ सकती हूं कि आप नंगे क्यों बैठे हैं?

मुल्ला ने कहा कि बाई, इस समय मुझे मिलने कोई आता ही नहीं। यह मेरे फुरसत का समय है, विश्राम का समय है। सो घर में कोई है ही नहीं, तो अकेला अपने मस्त नग्न बैठता हूं। आराम करता हूं। अब दिन भर कसे-कसे, बेल्ट बांधे हुए हैं, पैंट बांधे हुए हैं, जैकिट पहने हुए हैं, कोट चढ़ाए हुए हैं, जान निकल जाती है। तो जरा आराम कर रहा था।

तो उसने कहा, यह भी समझ में आ गया। तो फिर ये जूते और यह टाई और यह हैट, ये क्यों पहने हुए हो?

तो मुल्ला ने कहा कि ये इसलिए कि शायद भूले-भटके कोई आ ही जाए। अब तुम ही आ गए। ऐसा कभी-कभी कोई भूले-भटके आ जाए।

मैं तुमसे पक्का कहता हूं, महावीर अगर दोबारा हों तो जूते जरूर पहनेंगे। टाई और हैट की तो मैं नहीं कह सकता। वैसे अच्छा रहेगा चटाई का हैट, धूप-धाप में बचाव भी करेगा और चटाई में कोई हिंसा भी नहीं है। जापानी ढंग का चटाई का हैट सुंदर रहेगा।

लेकिन जैन मुनि लकीर का फकीर है। वह कैसे पहन सकता है! पैर में फफोले पड़ जाते हैं जैन साध्वियों के, साधुओं के। कपड़े बांध लेते हैं उन पर। मेरे पास एक दफा जैन साध्वियां मिलने आईं। उनके पैर में फफोले, घाव। उन पर वे कपड़े बांधे हुए हैं। कपड़े भी उन्होंने इस तरह से बांधे हुए हैं कि करीब-करीब जूते का काम दे रहे हैं।

मैंने कहा, यह मतलब क्या है? फिर जूते में क्या हर्जा है? इतनी चिंदियां बांधी हैं कि वे करीब-करीब जूते का काम ले रही हैं उन चिंदियों से। इतनी गंदी चिंदियां ढोने की बजाय कपड़े के जूते में क्या हर्ज है?

उन्होंने कहा, आप कहते हैं तो हम भी समझते हैं, मगर शास्त्र में नहीं लिखा है।

तो मैंने कहा, शास्त्र में लिख लो, शास्त्र का कोई... शास्त्र क्या रोक सकता है? मेरे पास ले आओ, मैं लिख देता हूं। शास्त्र की क्या हैसियत है जो रोके किसी को? अरे शास्त्र अपना है कि हम शास्त्र के हैं?

समय बदलेगा तो सभी मूल्य बदलेंगे। और वही जाति जीवित होती है जो समय के साथ बदल जाती है। वही व्यक्ति जीवित होते हैं जो समय के साथ बदल जाते हैं।

यह देश मुर्दा है, कब्रिस्तान है, एक मरघट है--बड़ा मरघट, जिस पर महात्मा धूनी रमाए बैठे हैं। बस धूनी रमाने का काम, और कुछ काम बचा नहीं है। सब काम पहले हो चुका। अब तो निष्काम भाव से मरघट पर बैठो, धूनी रमाओ, राम-राम जपो। कुछ बचा नहीं जैसे हमारे हाथ में करने को। सारी पृथ्वी कितने महत कार्यों में संलग्न है! शायद इतने महत कार्य कभी नहीं हुए थे जितने महत कार्य आज हो रहे हैं; क्योंकि इतना विज्ञान न था, इतनी टेक्नॉलॉजी न थी, इतने हमारे हाथ में साधन न थे, इतनी समझ न थी। आज सब साधन हैं, सब समझ है। आज हम इस पृथ्वी को स्वर्ग बना सकते हैं। मगर ये पुराने मूल्य और पुरानी धारणाएं हमें नरक से बांधे हुए हैं।

तीसरा प्रश्नः ओशो, आप कहते हैं न आवश्यकता है काबा जाने की, न काशी जाने की। क्या आपकी दृष्टि में स्थान का कोई भी महत्व नहीं है?

स्वदेश, है भाई, स्थान का महत्व क्यों नहीं!

चंदूलाल मुझसे कह रहे थे कि चौपट हो गया, जब से विवाह किया तब से चौपट हो गया।

मैंने उनसे पूछा कि पत्नी से मिले कहां थे?

उन्होंने कहा, चौपाटी पर!

मैंने कहा, होगा ही चौपट। स्थान! अरे सोच-समझ कर मिला करें। पत्नी से पहली दफे मिले, एक तो वैसे ही खतरा, और वह भी मिले चौपाटी पर!

मगर मैंने उनसे कहा कि तुम्हारी पत्नी कुछ और ही कहती है। वह तो कहती फिरती है कि जब से मेरा विवाह हुआ, तो चंदूलाल लखपति हो गए। और तुम कहते हो चौपट हो गया।

चंदूलाल ने सिर से हाथ मार लिया। कहा, वह भी ठीक कहती है।

मैंने कहा कि यह तो बड़ी पहेली हो गई! तुम कहते हो चौपट हो गए और पत्नी कहती है कि लखपति हो गए।

वह कहने लगे, हां, ठीक कहती है। पहले मैं करोड़पति था।

अब तुम पूछते हो, स्वदेश, कि स्थान का कोई मूल्य होता है कि नहीं?

कहां की पागलपन की बातें पूछते हो! सारी पृथ्वी एक है। इसमें क्या काबा और क्या काशी? जहां झुके परमात्मा के प्रेम में, वहां काबा, वहां काशी! और ऐसे तुम काबा में ही बैठे रहो और न झुको, तो क्या खाक काबा कर लेगा! और क्या खाक काशी कर लेगी! काशी में कितने तो बैठे हैं मुर्दे, तुम सोचते हो कुछ लाभ हो जाता है?

कबीर मरते वक्त बोले कि मैं काशी में नहीं मरूंगा, मुझे काशी से ले चलो।

लोगों ने कहा, पागल हो गए आप! लोग मरने के लिए काशी आते हैं, आखिरी करवट लेने काशी आते हैं। क्योंकि सदा से समझा जाता है कि काशी में जिसने आखिरी करवट ली वह स्वर्ग गया। और तुम्हारा दिमाग फिर गया! जिंदगी भर काशी रहे, अब मरते वक्त कहते हो काशी नहीं रहेंगे।

कबीर ने कहा, काशी में मरे और स्वर्ग गए, तो वह काशी का अहसान होगा। अपना क्या गुण? नहीं, काशी में न मरेंगे। स्वर्ग जाएंगे तो अपने बल से जाएंगे, काशी के बल से न जाएंगे।

हट गए काशी से, नहीं मरे काशी में। इसको कहते हैं हिम्मत के लोग।

कबीर सिर्फ इतना ही कह रहे हैं कि स्थानों का कोई मूल्य होता है! कोई काशी में मरने का सवाल है! सारी पृथ्वी उसकी है। सारा आकाश उसका है। मरते किस ढंग से हो, इस पर निर्भर करता है। कहां मरते हो, इससे क्या होने वाला है? किस आनंद से मृत्यु को अंगीकार करते हो--नाचते, गाते--तो मृत्यु भी फिर परमात्मा का द्वार बन जाती है।

तुम्हें फिक्र पड़ी है स्थान की! अजीब-अजीब बातें हमारे दिमाग में भरी हुई हैं। किसी को स्थान की फिक्र है, किसी को समय की फिक्र है, किसी को दिन की फिक्र है--कि कोई दिन शुभ होता है, कोई अशुभ होता है; कोई स्थान शुभ, कोई स्थान अशुभ। अपने पर न फिक्र करना, और सब चीजों पर टालना--स्थान, तिथि, दिन। एक बात भर छोड़ रखनाः खुद के भीतर मत खोजना।

मैंने सुना, चार सहेलियां थीं। साथ ही पढ़ीं, साथ ही बड़ी हुईं। पहली सहेली का विवाह हुआ बजरंगबलीपुर में। बच्चा हुआ। विवाह हो और साल भर के भीतर बच्चा न हो, तो लोग अंगुलियां उठाने लगते हैं कि मामला क्या है! सो साल भर के भीतर बच्चा होना ही चाहिए। पति, पहली बार बच्चा हो रहा था, छाती फुलाए बाहर बैठे थे। नर्सें आ रहीं, जा रहीं। बार-बार उठ कर खड़े हो जाते, कोई भी नर्स निकलती--कि हुआ कि नहीं! एक नर्स ने कहा, हां, हो गया है, ज्यादा न घबड़ाओ, शांत बैठे रहो। तो पूछने लगे कि लड़की कि लड़का? उसने कहा कि अभी कुछ पक्का पता नहीं चला। तब और घबड़ाहट हुई कि पक्का पता नहीं चला! छोटी सी बात है, यह तो पहले ही पता चल जाता है। अरे लड़की कि लड़का, कोई कपड़ा पहन कर थोड़े ही पैदा होते हैं! इसमें पता क्या चलाना है? क्या कोई खुर्दबीन लगा कर पता लगाओगे?

दूसरी नर्स आई। वह भी घबड़ाई हुई सी, पसीना-पसीना। पूछा रोक कर कि बच्चा हुआ कि बच्ची? उसने कहा, भाई, बकवास न करो अभी, अभी कुछ पता नहीं चला। हो गया है।

अब तो उसकी घबड़ाहट बहुत बढ़ गई। उसको भी पसीना बहने लगा। उसने कहा यह मामला क्या है! तब डाक्टर निकला, वह भी बहुत हड़बड़ाया हुआ। उसने तो डाक्टर का हाथ पकड़ लिया--बाप ने। उसने कहा, बताना ही पड़ेगा।

उसने कहा, हम भी क्या बताएं! जब से हुआ है, एकदम से छलांग लगा कर शैंडेलियर पर चढ़ गया है। उतरे तो हम देखें कि लड़का है कि लड़की। वह शैंडेलियर से उतर नहीं रहा है। उसी को उतारने की कोशिश में तो लगे हैं, पसीना-पसीना हुए जा रहे हैं। और तुम्हें पड़ी है यह कि लड़का है कि लड़की। अरे क्या खाक करोगे जान कर कि लड़का है कि लड़की! इतना ही जान लो कि शैंडेलियर पर पढ़ गया है।

सो बाकी सहेलियां बहुत घबड़ा गईं तीनों, कि स्थान का महत्व होता है। बजरंगबलीपुर! ये बजरंगबली के अवतार पैदा हो गए। दूसरी सहेली ने बहुत सोच-विचार कर विवाह किया। गांव का पक्का पता लगा लिया, और फिक्र ही नहीं की उसने। इसकी फिक्र ही नहीं की कि पतिदेव कैसे हैं, क्या हैं। सारा ध्यान इसका रखा कि गांव--अद्वैतपुरम!

शादी हुई कि पतिदेव मर गए। अकेली रह गई। अद्वैतपुरम!

बाकी दो सहेलियां तो और घबड़ा गईं। उन्होंने कहा, अब तो बहुत ही सोच-समझ कर कदम रखना जरूरी है, यह तो बड़ा खतरनाक मामला है। तो वे गांव की खोज-बीन करें, भूगोल पढ़ें। खोज-बीन करके द्वैतपुरम खोजा। और भारत में तो क्या नहीं है! तीसरी सहेली ने द्वैतपुरम में शादी की। सो दो बच्चे एक साथ पैदा हुए।

चौथी ने तो सिर पीट लिया। और तभी उसका एक युवक से प्रेम हो गया। गांव में ही हो गया। उसने कहा यह अच्छा हुआ। अब कोई झंझट न रही भूगोल में खोजने करने की। प्रेम आगे बढ़ा, बात में से बात चली, विवाह तक पहुंच गई। जब बिल्कुल सब पक्की बात हो रही थी, तब उसे ख्याल आया कि यह तो पूछ ले कि तुम रहने वाले कहां के हो? उसने पूछा कि आप रहने वाले कहां के हो? तो उसने कहा, सहस्रपुर! उसने कहा, क्षमा करो! खतम करो बात! जब द्वैतपुरम में दो बच्चे पैदा हुए तो सहस्रपुर में क्या हालत हो जाएगी!

स्वदेश, क्या फिजूल की बातों में पड़ते हो! स्थानों का कोई मूल्य नहीं है--न काबा का, न काशी का; न गिरनार का, न कैलाश का। मूल्य है तुम्हारे जागरण का। जहां जाग जाओ वहीं तीर्थ है। जहां सो गए वहीं नरक है।

चौथा प्रश्नः ओशो, कल आपने एक कवि के प्रश्न के संबंध में जो कुछ कहा, उससे मेरे मन में भी चिंता पैदा होनी शुरू हुई है। मैं हास्य-कवि हूं। इस संबंध में आपका क्या कहना है?

कृष्णराज, हंसना-हंसाना अच्छी बात है। सेहत के लिए अच्छी है। तंदुरुस्ती के लिए अच्छी है। हंसना-हंसाना शुद्ध व्यायाम है, प्राणायाम है। हंसो-हंसाओ, कुछ हर्ज नहीं है। लेकिन इतना स्मरण रखो कि हंसने की भी दो विधाएं हैं। एक तो आदमी इसलिए हंसता है कि अपने रोने को छिपा ले। वह गलत विधा है। वह गलत आयाम है। और या आदमी इसलिए हंसता है कि उसके भीतर हंसी के फव्वारे फूट रहे हैं। उसके भीतर आनंद जगा है। वह आनंद को बांट रहा है। तब हंसी में अध्यात्म है। तब हंसी में मुक्ति है। तब हंसी मोक्षदायी है।

दुख को भुलाने के लिए लोग हंस लेते हैं। तो हंसना फिर एक नींद की दवा है। दुख को कम कर लेने का एक उपाय है। थोड़े हंस लिए, अपने को भुलावा दे लिया, अपने को छलावा दे लिया। इसलिए हास्य-कवियों की

बाढ़ आ गई है। क्योंकि लोग इतने दुखी हैं, लोग चाहते हैं कि किसी भी बहाने, किसी भी निमित्त हंस लें। चलो थोड़ी देर को तो भूल जाएंगे--जीवन की समस्याएं, जीवन की उलझनें, जीवन का विषाद, जीवन का संताप थोड़ी देर तक तो कम से कम स्मरण न रहेगा।

फ्रेड्रिक नीत्शे ने कहा है कि मैं हंसता हूं इसलिए ताकि रोने न लगूं।

तुम्हारी हास्य की कविताएं तुम्हारे आंसुओं को छिपाने का ढंग तो नहीं, कृष्णराज! अगर ऐसा हो तो मैं कहूंगा, रोना बेहतर, क्योंकि आंसू प्रामाणिक होंगे, सच्चे होंगे और हलका करेंगे और आंखों की धूल बहा ले जाएंगे। झूठी हंसी सच्चे रोने से ज्यादा मूल्यवान नहीं हो सकती। झूठ कभी भी मूल्यवान नहीं होता। सच्चा रोना भी मूल्यवान है; झूठा हंसना भी आखिर झूठ ही है।

मुखौटा मत लगाओ। हां, अगर तुम्हारे भीतर रस बहा हो, गीत उठे हों, तुम्हारे भीतर जीवन का उत्सव प्रकट हुआ हो, तुम्हें जीवन का रास अनुभव हो रहा हो--फिर हंसो, फिर बांसुरी बजाओ। फिर तुम जो करोगे वही काव्य होगा। तुम्हारे जीवन के ढंग में, तुम्हारे उठने-बैठने में फूल झरेंगे।

मुल्ला नसरुद्दीन भी हास्य की कविताएं लिखते हैं। कल ही नौकरी के लिए एक दफ्तर में हाजिर हुए थे। लौट कर मुझे कहने लगे--

कल जब था मेरा इंटरव्यू
प्रश्न हुआ--
भूगोल पढ़ा है?
मैंने कहा, जी खूब पढ़ा है
अच्छा तो बतलाओ भाई
वर्षा जहां अधिक होती
वहां अधिक क्या पाया जाता?
उत्तर था--
बरसाती छाता।

प्रश्न दूसरा--
तुमने तो साहित्य पढ़ा है?
जी हां बिल्कुल
बतलाओ वाद कौन-कौन से प्रिय हैं तुमको
और कि रस कितने होते हैं?
उत्तर था--
सर, वाद सिर्फ दो प्रिय हैं मुझको
उखाड़वाद और पछाड़वाद
और जहां तक प्रश्न रसों का
पूछ रहे साहित्य-क्षेत्र में
वह तो केवल एक बचा है

गन्ने का रस
शेष सभी दुनिया यह मुझको
श्रीमन! नीरस ही लगती है।

प्रश्न तीसरा--
कुछ जनरल नालेज भी है?
जी हां, जी हां
तो बोलो इस वर्ष पद्मश्री किसे मिली है?
उत्तर था--
सर, केवल मुझको
तुमको?
जी हां,
इसी वर्ष श्रीमान!
विवाह हुआ है मेरा
पत्नी जी जो मुझे मिली हैं
नाम उन्हीं का पद्मश्री है।

अफसर गुस्से से झल्लाए
और प्रश्न अंतिम कर डाला--
क्वालिफिकेशन?
उत्तर में तब कार्ड दे दिया
लिखा हुआ था
लार्ड गिरगिटानंद
एम.ए.बी.एफ., आई.सी.एस.
अफसर बोले--
यह डिगरी कुछ समझ न आती
बोलो इसका मतलब क्या है?
बड़ी नम्रता से उत्तर था--
सर, पहले हम लैंडलार्ड थे
पर कानून बना है जब से सत्यानाशी
लैंडलार्ड की लैंड हो गई सब सरकारी
तब से बस लार्ड ही रह गए
एम.ए.बी.एफ. का मतलब है--
मैट्रिक ऐपियर्ड बट फेल्ड
आई.सी.एस. का अर्थ यही है--

आइसक्रीम सेलर सर।

अफसर गरजे--बड़े गधे हो!
मैंने कहा--नहीं-नहीं, श्रीमान!
आप तो माई-बाप हैं
मैं छोटा हूं, बड़े आप हैं।

कृष्णराज, करो जी खोल कर। हास्य-रस की कविताएं करनी हैं, हास्य-रस की कविताएं करो। हंसो-हंसाओ।

इतना ही ख्याल रखना कि लोग इस तरह के कवियों से बहुत ऊब गए हैं, बहुत घबड़ा गए हैं। जिस गांव में कवि-सम्मेलन होता है, उस गांव में सभी सड़े केले, सड़े अंडे एकदम बिक जाते हैं। टमाटर! चले लोग सब। अब तो हास्य-रस के कवि भी होशियार हो गए हैं। वे पहले से ही जाकर सब खरीद लेते हैं--सड़े अंडे, सड़े केले, सड़े टमाटर--एकदम खरीद लेते हैं पूरे गांव में से। नहीं तो जनता फेंकती है ये चीजें।

और एक हास्य-रस का कवि पकड़ ले माइक तो छोड़ता ही नहीं। जनता हूट करे, पैर पटके, शोरगुल मचाए, कोई फिक्र नहीं। लोग जमे ही रहते हैं! लोग सुना कर ही रहेंगे, कोई सुनने वाला हो या न हो। लोग सुनने वालों की तलाश में घूमते हैं, कहीं भी कोई मिल जाए।

ऐसे हास्य-कवि न होना। लोग वैसे ही परेशान हैं, उन्हें और परेशान न करना।

एक गांव में कवि-सम्मेलन हुआ, सारे लोग उठ कर चले गए, मगर पहला ही कवि जो जमा था सो जमा ही रहा। तीन आदमी और बैठे थे। उस कवि ने जब अपनी कविताएं समाप्त कीं, उन तीन से पूछा कि आप लोग बड़े काव्य-मर्मज्ञ मालूम होते हैं।

उन्होंने कहा, खाक काव्य-मर्मज्ञ! हम को भी कविताएं सुनानी हैं। अब तुम बैठो! अभी तक तुमने हमें मारा, अब हम तुम्हें मारते हैं। छठी का दूध याद दिला देंगे। यह रात है और हम हैं और तुम हो! हमसे ज्यादा काव्य-मर्मज्ञ तो वह आदमी है जो वहां दरवाजे पर बैठा हुआ है।

एक आदमी दरवाजे पर बैठा हुआ था और बड़ा सिर हिला रहा था। उसने कहा कि नहीं, क्षमा करिए। मैं तो नींद में सिर झपका रहा हूं। और काव्य से मुझे कुछ लेना-देना नहीं है। मैं तो यहां बैठा हूं कि कब कवि-सम्मेलन खतम हो तो मैं दरवाजा बंद करूं और घर जाऊं। मैं यहां का नौकर हूं, यह हाल का दरवाजा बंद करना है। और अगर आप लोग रात भर यहीं टिकने को हों तो मैं यह चाबी आपके पास छोड़े जाता हूं। सुबह दरवाजा बंद करके चाबी मेरे घर देते हुए निकल जाना।

आनंद जगे तुम्हारे भीतर तो ठीक है। नहीं तो क्या?

मैंने सुना है, एक हास्य-कवि मर गया। उसके एक मित्र चंदा मांगने गए। जो उन्हें अनुभव हुआ, उन्होंने कविता में लिखा है। लिखा--

एक हास्य-कवि मर गया
मैं उसके लिए चंदा करने गया
लोग बोले--"अजीब मसखरा था

जब कफन के लिए पैसे नहीं थे
तो क्यूं मरा था?"

मैंने कहा--"क्यूं मजाक करते हो?"
वे बोले--"और उसने हमारे साथ क्या किया था!
वह भी तो हमें बेवकूफ बनाता था
डेढ़ घंटे कविता सुनाता था
उसका गद्य तो अच्छा था
पर कविता के मामले में वह बच्चा था
अब आप भी तो हास्य-रस के हैं
आप कल मरने का वादा करें
आज चंदा हाजिर है
बाद में भी मरें तो बंदा हाजिर है।"

मैंने कहा--"भूल गए वे दिन
जब आप चमचमाती कारों में आते थे
रंग-बिरंगे कपड़े पहन कर कुर्सियों पर सज जाते थे
और वह फटेहाल आदमी
अपनी ऊलजलूल हरकतों से आपको हंसाता था
आपको मनोरंजन देने के लिए
खुद हास्यास्पद बन जाता था
आज जब वह चला गया है
तो आप आंखें चुरा रहे हैं
पांच रुपये तक देने में कतरा रहे हैं?"

एक लाला बोले--"क्या बताएं
जब देखो कोई न कोई कलाकार मरता ही रहता है
आप यहां के सारे कवियों की लिस्ट लाइए
और नाम सहित उनकी संख्या बताइए!"
मैंने कहा, "दस।"
वे बोले, "बस!"
यह सौ का नोट ले जाइए
और एक साथ सबको निपटाइए
और आइंदा मत आइए।"

लोग थक गए हैं। कृष्णराज, ऐसी कविता मत करना।

मेरी दृष्टि में, एक तो काव्य होता है जो तुम्हारे भीतर ऐसे उठता है जैसे फूलों से गंध उठती है। और एक काव्य होता है, तुम खींचतान कर जबरदस्ती बिठा-बिठू कर तैयार कर लेते हो। क्योंकि लोगों से कुछ और न बने तो इतना तो बन ही जाता है। तुकबंदी बिठा लेने में तो कोई अड़चन नहीं है। और कुछ ऊलजलूल बातें कह कर लोगों को थोड़ी देर हंसा भी लिया तो उसका भी कोई प्रयोजन नहीं है।

ध्यान रहे, मनुष्य जितना दुखी होता जाता है उतना ही मनोरंजन के ज्यादा साधनों की उसे जरूरत होती है। कारण सिर्फ इतना है कि दुखी आदमी अपने भुलाने के लिए कुछ उपाय खोजता है। हमें चाहिए कि लोग सुखी हों और सुख में अगर उत्सव मनाएं, गीत गाएं, नाचें, काव्य का रस लें, संगीत का रस लें, तो और बात है। लेकिन लोग दुखी हों और सिर्फ मलहम-पट्टी की तरह मनोरंजन का उपयोग करें, तो घातक है। उचित नहीं है। अफीम का नशा है। लोगों को अफीम का नशा मत दो। लोगों को जागरण दो, सुलाओ मत।

और हमारी साधारणतः सारी कविताएं सिवाय लोरियों के और कुछ भी नहीं हैं। जैसे छोटे-छोटे बच्चों को हम लोरियां सुना देते हैं और सुला देते हैं, ऐसे बड़े-बड़े बच्चों को कविताएं सुनाई जा रही हैं, कहानियां सुनाई जा रही हैं, पुराण सुनाए जा रहे हैं, शास्त्र सुनाए जा रहे हैं। सब लोरियां हैं, कि किसी तरह सोए रहो।

और तुम भी लोरियों की तलाश में हो। तुम भी सांत्वना चाहते हो, सत्य नहीं चाहते। मुश्किल से कभी कोई आदमी मिलता है जो सत्य का खोजी है। लोग सांत्वना खोज रहे हैं। लोग चाहते हैं किसी तरह राहत मिल जाए। किसी भी तरह हो, जीवन में थोड़ी देर के लिए समस्याओं से छुटकारा मिल जाए। मगर समस्याएं अपनी जगह खड़ी रहेंगी। ऐसे समस्याएं छूट नहीं सकतीं। समस्याएं तो मिटती हैं समाधि से। उन्हें मिटाने का और न कभी कोई उपाय था, न आज है, न कभी आगे होगा।

तुम मन से छूटो तो तुम दुख से छूटो। तुम मन से छूटो तो तुम समस्याओं से छूटो।

और मैं मन से छूटने की कला ही सिखा रहा हूं। संन्यास का मेरा अर्थ इतना ही है केवलः मन से छूटो। अ-मनी अवस्था को अनुभव करो। साक्षी बनो इस मन के--जहां दुख हैं, जहां सुख हैं; जहां हंसी भी है और आंसू भी हैं; जहां सब तरह के द्वंद्व हैं। इन दोनों के साक्षी बनो। हंसी आए तो उसे भी जाग कर देखना। रोना आए तो उसे भी जाग कर देखना। और इतना स्मरण रखना निरंतर कि मैं तो वह हूं जो जागा हुआ देख रहा है--न आंसू हूं, न मुस्कुराहट हूं, दोनों का साक्षी हूं।

इस साक्षी-भाव में तुम ठहर जाओ, थिर हो जाओ, इस साक्षी-भाव में तुम रम जाओ, तो तुम्हारे जीवन में महारास है! तो तुम्हारे जीवन में फिर दीवाली ही दीवाली है, फाग ही फाग है! फिर तुम्हारा जीवन सावन का महीना है। फिर डालो झूले, फिर गाओ गीत। फिर तुम्हारे गीतों का रंग और, ढंग और, प्रसाद और, सौंदर्य और!

मगर उसके पहले क्या गीत गाओगे? गीत गाने वाली भूमिका कहां है? नाचने वाले पैर कहां हैं, हृदय कहां है, आत्मा कहां है? ऐसे ऊपर से लीपा-पोती करते रहोगे, कृष्णराज, उससे कुछ लाभ होने का नहीं है।

अंतिम प्रश्नः ओशो,

मेरी विनम्र लघु आशा है, बनूं चरण की दासी। स्वीकृत करो कि न करो, पर हूं मैं एक बूंद की प्यासी।

वीणा भारती, संन्यास देता हूं, उसका अर्थ यही है कि मैंने स्वीकार किया, अंगीकार किया! कि मैंने तुम्हें अपने हृदय में लिया! कि मैंने तुम्हारा हाथ अपने हाथ में पकड़ा! इस जगत में सारे संबंध ऊपर-ऊपर हैं; सिर्फ एक गुरु और शिष्य का संबंध है, जो ऊपर-ऊपर नहीं है। इस जगत के सारे संबंध शरीर के हैं; सिर्फ गुरु और शिष्य का संबंध है, जो आत्मा का है, जो देह का नहीं है।

तेरी आशा तो पूरी हो चुकी है। स्वीकृत तो तू हो चुकी है।

और क्या बूंद की प्यास! सागर ही पूरा दूंगा, उससे कम क्यों? तू बूंद मांगे तो भी सागर दूंगा। और सागर से ही यह प्यास मिटने वाली है; बूंद से मिटेगी भी नहीं। बूंद से तो और जगेगी। बूंद से तो और कंठ को स्वाद लगेगा। प्राणों में और भी अभीप्सा सघन होगी। निश्चित ही पहले बूंदाबांदी होती है, फिर घनघोर वर्षा होती है। बूंदाबांदी तुझ पर होनी शुरू हो गई है, घनघोर वर्षा भी होगी।

तेरी आंखों में झांकता हूं तो देखता हूं कि चल पड़ी तू। बहुत चल पड़े हैं। चल पड़ा जो, वह आधा पहुंच ही गया। असली कठिनाई चल पड़ने की है! सबसे बड़ी कठिनाई पहला कदम उठाने की है। फिर तो सब सुगम हो जाता है, क्योंकि हजारों मील की यात्रा भी एक-एक कदम उठा कर ही तो पूरी होती है। जिसने एक कदम उठा लिया, अब उसके लिए कोई कदम कठिन न रहा। एक ही कदम तो उठाना है बार-बार। अब हजारों मील की यात्रा पूरी हो जाएगी।

और तूने पहला कदम उठा लिया। जिसने संन्यास लिया उसने पहला कदम उठा लिया।

संन्यास तो प्रेम-सगाई है परमात्मा से--उस परम सत्य से! यह तो अनंत की खोज है। और संन्यास वसंत का आगमन है।

शुरू-शुरू में वसंत आता है तो एकाध फूल खिलता है। मगर एक फूल भी खिलता है तो वसंत के आगमन की खबर आ जाती है--आ गया वसंत! अब फूलों पर फूल खिलेंगे। इतने फूल खिलेंगे कि गिनती भी न कर सकोगी। गिनने का कोई उपाय भी नहीं है। सब गिनती पीछे छूट जाती है। सब गणना पीछे छूट जाती है। सब तौल-तराजू पीछे छूट जाते हैं। सब माप-मापदंड पीछे छूट जाते हैं। सब नाप पीछे छूट जाते हैं। क्योंकि यह तो अमाप की और असीम की यात्रा है।

वीणा, यात्रा शुरू हो गई है। धन्यवाद दो परमात्मा को! अनुग्रह मानो कि पहला कदम उठा सकी हो। पहला कदम ही... लोग बहुत झिझकते हैं, हजार बहाने खोजते हैं। अहंकार हर तरह की बाधाएं डालता है कि मत उठाओ पहला कदम। किस-किस तरह से समझाता है जिसका हिसाब नहीं। अहंकार बड़े तर्क खोज लाता है। सब तर्क बुद्धूपन के होते हैं, क्योंकि अहंकार मूढ़ता है। इसलिए उसके तर्कों में कोई बल नहीं होता। मगर दिखलाता होशियारी है। और जब तक हम अहंकार को ही जानते हैं, तब तक हम सोचते हैं यही होशियारी है।

एक सिपाही ने एक चोर को रंगे हाथों पकड़ लिया। किसी के घर में घुसा था, सिपाही भी पीछे हो लिया। भीतर जाकर उसको पकड़ लिया। बाहर ले आया। आकर नोटबुक में नाम वगैरह लिखने लगा और कहा कि चलो मेरे साथ!

उसने कहा कि अभी चलता हूं, जरा भीतर जाकर फोन करके घर अपने खबर कर दूं और अपने वकील को खबर कर दूं।

यह बात पुलिसवाले को जंची। उसने कहा कि ठीक है। वह भीतर गया सो पीछे की खिड़की से कूद कर भाग गया। घंटे भर तक सिपाही रास्ता देखता रहा, फिर अंदर गया। वहां तो कोई था ही नहीं। खिड़की खुली पड़ी थी। समझ गया कि धोखा हो गया, बेईमानी कर गया।

छह महीने बाद संयोग की बात कि वही आदमी, वही चोर एक जवाहरात की दुकान में घुसा और उसी सिपाही ने उसको जवाहरातों सहित पकड़ लिया। उसने कहा कि बच्चू, अब न भाग सकोगे।

उसने फिर कहा कि मगर अपने वकील को तो खबर कर दूं फोन करके।

उसने कहा कि अब तुम किसी और को धोखा देना। पकड़ो ये जवाहरात, खड़े रहो तुम यहां, मैं जाकर तुम्हारे वकील को फोन कर आता हूं।

थे तो वही के वही बुद्धू! जब तक लौट कर आए, वह जवाहरात लेकर नदारद हो गया।

अहंकार निपट मूढ़ता है, क्योंकि झूठ है अहंकार। हम अलग नहीं हैं परमात्मा से, हम उसके हिस्से हैं। और अहंकार हमें यह भ्रांति देता है कि हम अलग हैं। और यही अहंकार हमें मिलने में बाधा डालता है--हर जगह बाधा डालता है। यह कहेगा, कपड़े बदलने से क्या होगा? जैसे कि तुम आत्मा बदलने को तैयार हो! कपड़े बदलने तक की हिम्मत नहीं है।

.जरीन ने संन्यास लिया। कुलीन पारसी घर की महिला है। तो पारसियों में तहलका मच गया। लोग उससे कहने लगे कि ये कपड़े बदलने से क्या होगा? लेकिन .जरीन ने उनसे कहा, तो तुम भी कपड़े बदल कर देखो न! अगर कपड़े बदलने से कुछ नहीं होता तो डरते क्यों हो? और कपड़े बदलने की भी तो तुममें हिम्मत नहीं है, और क्या खाक बदलोगे?

कपड़े बदलने से क्या होगा, वे लोग कह रहे हैं जो कपड़े भी नहीं बदल सकते। और बात इस तरह की कर रहे हैं कि जैसे आत्मा बदलेंगे! आदमी बड़ा बेईमान है। आदमी अपने को ही धोखा देता जाता है। ध्यान करने से क्या होगा? लोग पूछते हैं। किया नहीं कभी। प्रश्न उठाते हो! ये बातें स्वाद की हैं, अनुभव की हैं। करोगे तो ही जानोगे।

संन्यास से क्या होगा? ऊपर-ऊपर से तो कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता। यह बात ऊपर की है ही नहीं; यह तो भीतर-भीतर की बात है। यह तो अंतरतम की बात है। यह तो तुम डूबोगे, डुबकी मारोगे, तो जानोगे। यह तो शराब जैसी चीज है, पीओगे, मदमस्त होओगे, तब जानोगे। यह तो मयखाना है, मधुशाला है, मयकदा है।

वीणा, तूने हिम्मत की, पियक्कड़ों में सम्मिलित हो गई। तुझे डोलते देखता हूं तो प्रसन्न होता हूं। कल रात को ही इतने संन्यासी नाच रहे थे, डोल रहे थे; मगर जो गैर-संन्यासी थे वे डोल भी नहीं सकते। वे पत्थर की तरह बैठे रहते हैं, हिलते भी नहीं, कि कहीं हिले-करे और कुछ छींटाछांटी हो जाए, कुछ बूंदाबांदी लग जाए, कोई नशा पकड़ जाए। हिलो ही मत! अपने को संयम से रखो! तो मैं कल देख रहा था, थोड़े से गैर-संन्यासी आ गए थे। मेरी उत्सुकता नहीं है कि गैर-संन्यासी बहुत आएं। इसलिए उन्हें कोई निमंत्रण देते नहीं हम। लेकिन उत्सुकतावश आ जाते हैं, आ जाते हैं तो ठीक है। मगर वे हिलते भी नहीं, भागीदार भी नहीं होते। ताली भी नहीं बजा सकते। ताली बजानी तो दूर, मैं हाथ जोड़ कर उनको नमस्कार करता हूं तो वे हाथ जोड़ कर नमस्कार का उत्तर भी नहीं दे सकते, कि पता नहीं कुछ गड़बड़ हो जाए! कोई सम्मोहन हो जाए! पता नहीं हाथ जोड़ने का क्या राज हो! जोड़े और फिर कहीं जुड़े न रह जाएं! फिर खोलना कहीं मुश्किल न हो जाए! क्योंकि देखते हैं कई के जुड़े रह गए हैं। सो वे सम्हल कर बैठे रहते हैं।

एक मित्र ने पूछा है कि आप हमें हाथ जोड़ कर नमस्कार न करें। हमें बहुत दुख होता है कि आप हमें हाथ जोड़ कर नमस्कार करें। आप तो हमें आशीर्वाद दें!

कहां की बातें कर रहे हो! नमस्कार तक का उत्तर लोग देते नहीं। नमस्कार तक स्वीकार नहीं कर सकते, आशीर्वाद कैसे स्वीकार कर सकेंगे? आशीर्वाद के लिए तो झोली फैलानी पड़ती है। हां, जिनकी झोली फैली है

उनके लिए मेरा नमस्कार भी आशीर्वाद है। मेरे नमस्कार में भी उन्हें आशीर्वाद ही मिल रहा है, जिनकी झोली फैली है।

लेकिन लोग इतने कृपण हैं, ऐसे कंजूस हो गए हैं! और कभी-कभी तो बड़ा आश्चर्य होता है कि इस देश में जहां हाथ जोड़ कर नमस्कार करना सहज औपचारिकता रही है, वहां पचास दूसरे देशों के लोग जहां कि हाथ जोड़ कर नमस्कार करने की कोई परंपरा नहीं रही, उनको देखते हैं कि हाथ जोड़ कर नमस्कार कर रहे हैं और भारतीय मित्र, गैर-संन्यासी, जकड़े बैठे रहते हैं, हिलते नहीं। हिले-डुले, पता नहीं क्या हो जाए! ऐसे बैठे रहते हैं कि किसी तरह बच कर अपने घर पहुंच जाएं। जान बची तो लाखों पाए, लौट कर बुद्धू घर को आए!

वे जो बुद्धू रात को लौट कर घर पहुंच गए हैं, खाली के खाली, वे बड़े निश्चिंत होंगे कि चलो, अपने घर आ गए, उलझे नहीं, कोई झंझट में नहीं पड़े, सब देखा, मगर अपने को बचा कर आ गए। उनको पता नहीं क्या गंवा कर आ गए! काश डोल सकते, काश नाच सकते, काश सम्मिलित हो सकते--तो थोड़ा स्वाद लगता!

वीणा, तुझे तो स्वाद लगा, तू तो नाच उठी, तू तो सम्मिलित हो गई है इस महारास में! अब फिक्र मत कर, अब जिम्मेवारी मेरी है। जो चल पड़ा मेरे साथ, उसकी जिम्मेवारी मेरी है। चलो भर तुम, फिर शेष सारी जिम्मेवारी मेरी है।

आज इतना ही।

तेरहवां प्रवचन

धर्म और विज्ञान की भूमिकाएं

पहला प्रश्नः ओशो, श्रेष्ठ मानव-शरीर पैदा करने का आयोजन विज्ञान कैसे कर सकता है, इसकी आपने चर्चा की। लेकिन केवल श्रेष्ठ शरीर मिलने से क्या होगा? श्रेष्ठ आत्माएं विज्ञान कैसे चुन सकता है? और श्रेष्ठ आत्माओं को ही उत्कृष्ट शरीर में प्रविष्ट कैसे कराएगा? यह काम तो आप जैसे शुद्ध-प्रबुद्ध आत्मा को ही करना पड़ेगा। विज्ञान कोई वैज्ञानिक या हिटलर पैदा कर सकेगा, लेकिन कोई कृष्ण, महावीर या बुद्ध पैदा कराने का आयोजन कैसे हो सकता है? इस बात पर प्रकाश डालने की कृपा करें।

आनंद वीतराग, शरीर और आत्मा को जितना भिन्न हमने माना है, इतने वे भिन्न हैं नहीं। शरीर और आत्मा के बीच जितनी खाई हमने बना रखी है, उतनी खाई कल्पित है। शरीर प्रभावित करता है आत्मा को, आत्मा प्रभावित करती है शरीर को। यूं समझो कि आत्मा है शरीर का अंतरंग; शरीर है आत्मा का बहिरंग--एक ही अस्तित्व का बाहर और भीतर। दोनों संयुक्त हैं, जुड़े हैं। एक को बदलो, दूसरा रूपांतरित होता है।

योग क्या करता है? आखिर योग की सारी प्रक्रियाएं शरीर की ही प्रक्रियाएं हैं, लेकिन परिणाम आत्मा पर होने शुरू हो जाते हैं। अगर शरीर बिल्कुल थिर हो, सिद्धासन में हो, तो चित्त भी थिर हो जाता है। और चित्त थिर हो तो शरीर भी थिर हो जाता है।

तुम शराब पी लो; शराब कोई आत्मा में तो जाती नहीं, जाती तो देह में है, मिलती तो रक्त में है; लेकिन मूर्च्छित हो जाओगे। और मूर्च्छा तो भीतर की घटना है। शरीर क्या मूर्च्छित होगा! शरीर तो मिट्टी है। और तुम बीमार पड़ते हो, तो तुम देखते हो रुग्ण अवस्था में तुम्हारा चित्त भी रुग्ण हो जाता है, उदास हो जाता है, दीन हो जाता है, हीन हो जाता है। और जब तुम स्वस्थ होते हो, ऊर्जा से आपूरित होते हो, उमंग होती है, उत्साह होता है, तो तुम्हारे भीतर भी एक नृत्य होता है।

शरीर और आत्मा का द्वैत भी भ्रांति है। इसलिए मैं तुमसे यह कहना चाहूंगा, विज्ञान जो कर सकता है वह विज्ञान को करने दो। बुद्ध, महावीर और कृष्ण जो कर सकते हैं, वह वे करेंगे। विज्ञान को विज्ञान का काम पूरा करने दो। बुद्ध भी बीमार पड़ जाते थे तो चिकित्सक ही इलाज करता था। एक चिकित्सक बुद्ध के साथ चलता था, जीवक। उस समय का सबसे बड़ा प्रसिद्ध चिकित्सक था, वह बुद्ध का निजी चिकित्सक था। वह वर्षों बुद्ध के साथ निरंतर चलता रहा--उनकी देह-सम्हाल के लिए।

बुद्ध की मृत्यु कैसे हुई? विषाक्त भोजन से। महावीर की मृत्यु कैसे हुई? पेचिश की बीमारी से। महावीर जैसी प्रबल आत्मा भी पेचिश की बीमारी पर विजय न पा सकी! महावीर जैसा पुरुष--जिसको हमने नाम महावीर दिया; जिसने क्रोध जीता, काम जीता, अहंकार जीता--पेचिश की बीमारी से हार गया! छह महीने तक महावीर पेचिश की बीमारी से परेशान रहे। बुद्ध तो दवा लेते थे। बुद्ध का इस दृष्टि से जीवन के प्रति जो रुख है, वह ज्यादा वैज्ञानिक है। महावीर तो दवा लेंगे नहीं। महावीर दवा ले सकते नहीं थे। तो छह महीने तक परेशान रहे, छह महीने तक शरीर क्षीण होता रहा, देह गलती रही, फिर मृत्यु हुई।

कृष्ण की मृत्यु जानते हो कैसे हुई? पैर में तीर लगने से। तीर आत्मा में तो नहीं लगा होगा। तीर आत्मा में लग सके, इसका कोई उपाय भी नहीं है। विश्राम करने लेटे थे एक वृक्ष के नीचे, और किसी शिकारी का भूल-चूक से तीर पैर में लग गया और मृत्यु हुई।

देह की चिंता तो विज्ञान को ही करने दो। देह की चिंता धर्म के हाथ में दी तो मुश्किल में पड़ोगे। और वही मुश्किल यह देश भोग रहा है। तुमने देह की चिंता भी धर्म के हाथ में दे दी है। पानी न गिरे तो तुम मूढ़ पंडितों से यज्ञ करवाते हो। अकाल पड़ जाए तो हवन करो! तुम पागल हो। वर्षा न होती हो तो विज्ञान वर्षा करा सकता है। और अगर उपज न होती हो ठीक से तो विज्ञान उपज करा सकता है। लेकिन पंडित-पुरोहितों के हाथ में सब दे दिया है तुमने। भारत की गौ-माताएं, जिनको तुम माता कहते हो और पूजा करते हो और तुम्हारे संत-महात्मा जिनका गुणगान करते अघाते नहीं हैं--दूध कितना देती हैं? भारत की गौओं को तो इतना दूध देना चाहिए कि दुनिया की कोई गौ न दे। क्योंकि ऐसा सम्मान, ऐसा सत्कार और कहां! ऐसी पूजा, ऐसी अर्चना गौ-माता को और कहां मिलेगी! शंकराचार्य से लेकर विनोबा भावे तक सब एक ही काम में संलग्न हैंः गौ-माता को बचाओ! गौ-वंश को बचाओ! और गौ-माता दूध कितना देती है? कोई पाव भर, कोई दो पाव, कोई सेर भर, कोई दो सेर। स्वीडन में या बेल्जियम में या स्विटजरलैंड में एक-एक गाय साठ-साठ किलो दूध देती है। विज्ञान के हाथ में बात है, पंडित-पुरोहितों के हाथ में नहीं। माता कहने का सवाल नहीं है; वैज्ञानिक सूझ-बूझ, वैज्ञानिक प्रक्रियाओं का सवाल है।

छोटी सी बातों से अंतर पड़ते हैं। बहुत छोटी सी बातों से अंतर पड़ जाते हैं।

अब भारत में स्त्रियां कस कर बांधे हुए हैं साड़ियां। तुम वैज्ञानिक से पूछो कि गर्भवती स्त्री अगर इतना कस कर साड़ी बांधेगी तो बच्चे के मस्तिष्क पर क्या प्रभाव पड़ेगा?

बच्चा जन्म से ही सरदार पैदा होगा! और पैदा होते ही से बारह बजे! गर्भवती स्त्री को ढीला-ढाला कपड़ा पहनना चाहिए। इतना कस कर कपड़ा बांधोगे तो बच्चे के मस्तिष्क के तंतु तो अभी बहुत नाजुक हैं, वे सब तन जाएंगे, खिंच जाएंगे, दब जाएंगे, उनको हानि पहुंच जाएगी। वह बुद्धिहीन बच्चा पैदा होगा।

मां को क्या भोजन मिलना चाहिए, यह पंडित-पुरोहितों से मत पूछो, यह वैज्ञानिकों से पूछो। क्योंकि बच्चा जब मां के पेट में है तो मां को खास तरह का भोजन चाहिए; जो बच्चे की जरूरत है, वह मां को मिलना चाहिए। बच्चा तैरता है पानी में मां के पेट में। और उस पानी में ठीक वही रासायनिक तत्व होने चाहिए जो समुद्र के पानी में होते हैं। अगर उनमें जरा भी कमी रह गई, तो बच्चे के व्यक्तित्व में कमी रह जाएगी। उसमें उसी मात्रा में नमक होना चाहिए जिस मात्रा में सागर में होता है। इसीलिए गर्भवती स्त्रियां नमकीन चीजें पसंद करने लगती हैं। कुछ भी नमकीन, और उनको प्यारा लगता है। नमक के प्रति एकदम आकर्षण बढ़ जाता है। उसका कारण उनके भीतर नहीं है; वह बच्चे की जरूरत है, बच्चे की मांग है।

बच्चे की और भी मांगें हैं, जो हम पूरी नहीं कर पाते। पैदा हो जाने के बाद भी बच्चे की बहुत सी जरूरतें हैं, जो हम पूरी नहीं कर पाते। इसलिए प्रतिभा पैदा नहीं होती। हमारे देश में करोड़ों लोग पैदा होते हैं, लेकिन प्रतिभाएं कितनी हैं? कितने व्यक्तियों को नोबल प्राइज मिलती है भारत में? कितने लोग जीवन की पराकाष्ठा को उपलब्ध होते हैं, मेधा को उपलब्ध होते हैं? यहां तो मेधा ही मेधा होनी चाहिए, क्योंकि यहां तो धार्मिक ही धार्मिक लोग हैं। कोई हनुमान-चालीसा पढ़ रहा है, कोई रामचंद्र जी का जाप कर रहा है, कोई माला फेर रहा है। मंदिरों में, मस्जिदों में, गुरुद्वारों में लोग डटे हैं। मगर परिणाम क्या है? परिणाम है--दीनता, गरीबी, भुखमरी। और लोग इस तरह सोचते हैं जैसे जिम्मेवारी किसी और की है।

एक सज्जन ने लिखा है पत्र मुझे आज कि आप रॉल्स में चलते हैं, अगर इसको बेच दें और जरूरतमंदों को बांट दें, तो कितना अच्छा न हो!

कितने जरूरतमंदों को कितना मिलेगा? सत्तर करोड़ जरूरतमंद हैं भारत में। अब तुम आ गए कम से कम, तुम अपना हिस्सा ले जाओ--एक पैसा भी नहीं पड़ेगा तुम्हारे हिस्से में। बाकी जो जरूरतमंद आएंगे, उनको हम देते जाएंगे। लेकिन मजा यह है कि मैं रॉल्स में नहीं चल रहा था, तब भी जरूरतमंद इतने ही थे, अब भी इतने ही हैं। मैं पैदल चलता था, तब भी इतने ही थे। लेकिन मूढ़तापूर्ण बातों, क्षुद्र बातों पर सारा मस्तिष्क अटका हुआ है।

और जिन सज्जन ने पूछा है उनसे मैं पूछता हूं, तुमने जरूरतमंदों के लिए क्या किया? तुम अपनी साइकिल बेचे? तुमने अपना मकान बेचा? तुमने अपनी दुकान बेची? तुमने जरूरतमंदों के लिए क्या किया? और कोई करे भी क्यों! आखिर जरूरतमंद खुद क्या कर रहे हैं? उनका काम एक ही है कि वे जरूरतें पैदा करते चले जाएं, वे बच्चों की कतार लगाएं, यह उनका काम है। जैसे कि वे कोई उपकार कर रहे हैं!

प्रश्न उन्होंने ऐसा ही पूछा है कि जैसे वे मुझे बड़ी सलाह देने आए हुए हैं! तुम यहां तक नाहक आए, इतना पैसा खराब हुआ, किसी जरूरतमंद को देते। तुम यहां पहुंचे कैसे? बिना टिकिट? कपड़े-लत्ते पहनते हो कि नहीं? बांटो! दिगंबर मुनि हो जाओ! क्योंकि यह बात कहां रुकेगी?

मैं सस्ती से सस्ती गाड़ी में चलता था, स्टैंडर्ड हेराल्ड में। लोग मुझको तब भी पूछते थे कि आप जरूरतमंदों की फिक्र नहीं करते, इसको बेच कर जरूरतमंदों को... । मैंने उसको बेच कर फिएट खरीद ली। चलो झंझट मिटाओ इसकी। लोग कहने लगे कि अरे आप फिएट में चलते हैं! जरूरतमंद! ... मैंने उसको बेच कर इंपाला खरीद ली। लोग फिर कहने लगे कि जरूरतमंदों को... । मैंने इंपाला बेच कर बैंज खरीद ली। लोग कहने लगे, आप क्या कर रहे हैं? मैंने कहा, चलो रॉल्स ले आओ! अब तुम मेरे से यह प्रश्न मत पूछो, क्योंकि अब मेरे पास कोई उपाय नहीं है, अब और क्या खरीदो!

मेरे सोचने के अपने ढंग हैं। जरूरतमंद हो तो तुम जिम्मेवार हो, कोई मैं जिम्मेवार नहीं हूं। एक बच्चा भी मैंने पैदा किया नहीं। और आगे के लिए भी आश्वासन देता हूं कि नहीं पैदा करूंगा। और क्या चाहिए? किसी से एक पैसा मांगता नहीं हूं, किसी पर निर्भर नहीं हूं। तुम्हें परेशानी क्या होती है?

लेकिन इस देश में एक ख्याल है, जैसे कि जो लोग जरूरतमंद हैं वे बड़ी कृपा कर रहे हैं और लोगों पर--जरूरतमंद रह कर! सेवा का अवसर दे रहे हैं! यही तो महान बात है, सेवा का अवसर देना। क्योंकि जो सेवा करेगा वह मेवा पाएगा। और जो सेवा करवाएंगे उनको क्या मिलेगा? यह तो मैंने सुना कि जो सेवा करेगा वह मेवा पाएगा; यहां पाएगा नहीं, अगले जनम में, मृत्यु के बाद। अब ऐसे मेवे का क्या भरोसा! और जो सेवा करवाएगा, उसका क्या होगा? वह नरक में सड़ेगा क्या? उसको नरक में सड़ना ही चाहिए।

मैं किसी को नरक में नहीं सड़ाना चाहता। इसलिए मैं किसी की सेवा न करता हूं और न किसी से कहता हूं किसी की सेवा करना। क्योंकि तुम तो मेवा लूटोगे और वह बेचारा! उसकी दुर्गति तो न करो। उसको भी मौका दो कि खुद अपने पैरों पर खड़ा हो।

शरीर और आत्मा का यह जो इतना बड़ा भेद खड़ा कर रखा है, यह गलत है। शरीर और आत्मा संयुक्त हैं, जैसे संसार और परमात्मा संयुक्त हैं। परमात्मा इस संसार की आत्मा है। यह संसार उसकी देह है। तुम एक छोटे से विश्व हो। तुम्हारे भीतर परमात्मा के दोनों अंग प्रकट हुए हैं--शरीर और आत्मा। ये दो पंख हैं; इनमें से एक भी कट जाएगा तो मुश्किल हो जाएगी। ये दोनों ही स्वस्थ होने चाहिए।

और ध्यान रखना, पहली जरूरत शरीर की है, फिर आत्मा की। भूखे भजन न होहिं गोपाला! इसलिए विज्ञान पहली जरूरत है, धर्म नंबर दो की जरूरत है। धर्म ऊंची जरूरत है, इसलिए नंबर दो की जरूरत है। इसे तुम्हें समझने में थोड़ी कठिनाई होगी, क्योंकि तुम समझते हो कि ऊंची चीज नंबर एक होनी चाहिए। ऐसा नहीं है। अगर मंदिर बनाना हो, शिखर तो सबसे ऊपर चढ़ेगा, स्वर्ण-शिखर धूप में चमकेगा; लेकिन नींव के पत्थर पहले रखने होंगे। नींव के पत्थर किसी को दिखाई भी नहीं पड़ेंगे। लेकिन मंदिर उन्हीं पर टिकेगा। और नींव के पत्थर न हुए तो स्वर्ण-कलश चढ़ेंगे नहीं।

धर्म तो स्वर्ण-कलश जैसा है। नींव के पत्थर नहीं हैं, और स्वर्ण-कलश लिए घूम रहे हो।

इस देश का दुर्भाग्य यह है कि यहां नींव के पत्थर नहीं हैं। नींव के पत्थर केवल विज्ञान रख सकता है। हमारे पास स्वर्ण-कलश की तो बड़ी योजनाएं हैं, मगर नींव के पत्थर न होने से सब योजनाएं कचरा हैं, उनका कोई मूल्य नहीं है। पश्चिम ने नींव के पत्थर तो भर लिए हैं, मगर उसके पास स्वर्ण-कलश की कोई योजनाएं नहीं हैं। अगर इन दोनों में चुनना हो तो मैं पश्चिम को चुनूंगा, क्योंकि कम से कम नींव तो तैयार है। जब नींव तैयार है तो आज नहीं कल स्वर्ण-कलश की योजना भी बन जाएगी। और अगर नींव ही तैयार नहीं है तो स्वर्ण-कलश की योजना बनाते रहो, तुम पागल हो, विक्षिप्त हो, तुम्हारी योजना का कोई मूल्य नहीं है।

पश्चिम ने मौलिक जरूरत पूरी कर ली है, इसलिए अब सूक्ष्म जरूरतें पूरी की जा सकती हैं। जैसे कोई आदमी भूखा हो, उसको तुम क्या संगीत सिखाओगे! उसके हाथ कंप-कंप जाएंगे। क्या तुम उसको सितार बजाना सिखाओगे! तुम उसे बांसुरी पकड़ाओगे, वह रोएगा। उसकी आंखों से आंसू गिरेंगे। तुम उससे कहोगे कि नाचो, वह क्या नाचेगा! वह नर-कंकाल हो रहा है।

इसलिए मैं विज्ञान का अस्वीकार नहीं करता। विज्ञान की मेरी दृष्टि में बड़ी कीमत है, बहुत मूल्य है। और विज्ञान के अतिरिक्त मनुष्य कभी भी स्वस्थ नहीं हो पाएगा। यह जो तुम्हारा देश रुग्ण है, अस्वस्थ है और ये जो जरूरतमंदों की कतारें लगी हुई हैं, ये लगी ही रहेंगी, ये बढ़ती ही जाएंगी। तुम पृथ्वी के कलंक हो गए हो। होना चाहिए था पृथ्वी का सौभाग्य तुम्हें, क्योंकि तुम सबसे पुरानी जाति हो, पृथ्वी पर सबसे लंबे समय तक तुम अस्तित्व में रहे हो। और तुम्हें काफी सौभाग्य के अवसर मिले हैं। लेकिन एक चूक होती चली गई। विज्ञान न होने से धर्म की ऊंची से ऊंची बात भी हवा में खो गई। उसके लिए जमीन पर आधार न मिल सका। फूलों की तो हमने बातें की हैं, बीज हम बो न सके। आकाश तो हमने छूना चाहा, पंख हम उगा न सके।

मेरी दृष्टि विज्ञान और धर्म को भिन्न नहीं करती। विज्ञान को मैं धर्म की पहली सीढ़ी मानता हूं। अगर विज्ञान लोगों को स्वस्थ शरीर दे सके तो स्वस्थ आत्माएं अपने आप उनमें प्रवेश कर जाएंगी।

आनंद वीतराग, तुम पूछते हो कि श्रेष्ठ शरीर मिलने से क्या होगा?

श्रेष्ठ शरीर अवसर है। ऐसा समझो कि कोई कहे, कोई माली कहे कि हमने अगर श्रेष्ठतम बीज भी बो दिए और सुंदरतम पौधे भी आ गए--हरियालियों से भरे हुए, स्वस्थ, ताजे, जिनमें से रस झरा पड़ता है, जो लद-फद हो रहे हैं हरियाली से--तो भी क्या होगा?

क्या होगा! इन्हीं में सुंदर फूल लगेंगे। तुमने अवसर पैदा कर दिया, अब सुंदर फूल अपने आप लगेंगे। इन्हीं में सुंदर फल लगेंगे। इनमें और भी सुंदर बीज लगेंगे, जिनसे और सुंदर फूल आते चले जाएंगे। जीवन एक विकास है।

विज्ञान मनुष्य को सुंदर शरीर दे सकता है, स्वस्थ शरीर दे सकता है। स्वस्थ शरीर और सुंदर शरीर हो तो अपने आप श्रेष्ठ आत्माएं प्रवेश करेंगी; किसी को प्रवेश करवाने की जरूरत नहीं है। तुमने कैसे इस शरीर में

प्रवेश किया था, आनंद वीतराग, कुछ कह सकते हो? इस शरीर में तुम कैसे प्रविष्ट हुए? अपने आप प्रविष्ट हो गए। यह सहज ही हो गया। जैसे पानी गड्ढों की तरफ बहता है, ऐसे आत्माएं गर्भों की तरफ बहती हैं। गर्भ अगर सुंदर और स्वस्थ होंगे तो उनके भीतर आत्माओं को भी सुंदर और स्वस्थ होने की सुविधा मिलेगी, अवसर मिलेगा। और अवसर बड़ी बात है। अवसर हो तो विकास सुगम हो जाता है।

अभी तो हालत बड़ी अजीब है। मगर अभी भी अगर तुम गौर करोगे तो तुम यह पाओगे, जैनों के चौबीस तीर्थंकर ही राजपुत्र थे। क्यों? क्यों राजघरानों में जैनों के चौबीस तीर्थंकर पैदा हुए? वहां सुविधा थी तीर्थंकर के विकसित होने की। हिंदुओं के सब अवतार राजपुत्र हैं और बुद्ध भी राजपुत्र हैं। भारत में तीन धर्म पैदा हुए, तीनों धर्मों के अवतारी पुरुष राजपुत्र हैं। क्यों? ये भिखमंगों के घर क्यों पैदा न हुए? इन्होंने जरूरतमंदों को क्यों न चुना? ये किसी भूखी मरती स्त्री के गर्भ में क्यों न आए? कम से कम इनको तो दया करनी थी। महावीर जैसे अहिंसक को तो कम से कम सोचना था जन्म के पहले, कि महारानी को चुन रहा है। अरे किसी मेहतरानी को चुनता! बड़े हरिजन थे तो मेहतरानी को चुनना था! मगर चुना महारानी को। महारानी की कोख में ही संभावना थी। स्वस्थ मिले शरीर, सुंदर मिले देह, तो भीतर भी सौंदर्य के उपाय बन सकते हैं।

क्या तुम यह कहोगे कि सुंदर वीणा होने से और स्वस्थ तार होने से वीणा के, संगीत का क्या लेना-देना?

नहीं, यह तुम न कहोगे। क्योंकि अगर वीणा सुंदर हो, स्वस्थ हो, तार ठीक-ठीक बिठाए गए हों, सुमधुर हो, तो फिर संगीत की संभावना ज्यादा है। अब तुम पकड़ा दो किसी को टूटी-फूटी वीणा, हों वे महासंगीतज्ञ, तो भी क्या होगा? बैठे-बैठे टुन-टुन टुन-टुन करते रहेंगे। कुछ संगीत पैदा नहीं कर पाएंगे।

फिर मेरी दृष्टि में दोनों में कोई भेद नहीं है। मैं दोनों के बीच समन्वय को स्थापित हुआ देखना चाहता हूं। इसलिए मैं इस पक्ष में हूं कि विज्ञान को पूरा अवसर दिया जाए। शुरू से ही, प्रारंभ से ही, जहां से गर्भाधारण होता है, वहीं से अवसर दिया जाए, क्योंकि वहीं असली सवाल है। बीज बोते वक्त ही असली सवाल है। गर्भाधारण के समय से ही अगर विज्ञान को अवसर दिया जाए तो हम इस पृथ्वी को बड़े सुंदर और स्वस्थ लोगों से भर सकते हैं।

तुम जान कर चकित होओगे कि दूसरे महायुद्ध के बाद जापानियों की ऊंचाई दो इंच औसत बढ़ गई। यह कैसे हुआ? सदियों से जिनकी ऊंचाई नहीं बढ़ी थी, दूसरे महायुद्ध के बाद उनकी दो इंच ऊंचाई कैसे बढ़ गई?

अमरीकी भोजन का परिणाम हुआ। अमरीकी सैनिकों के साथ आया अमरीकी भोजन। वह ज्यादा स्वस्थ था। नहीं तो जापानी बेचारा चावल खा रहा था और मछली। चावल और मछली, बस बंगाली बाबू पैदा करती है--फुसफुसा! तुम देखते हो, बंगाली को ही बाबू कहते हैं; पंजाबी को कोई बाबू कहे, जंचती ही नहीं बात। पंजाबी बाबू शब्द ही नहीं बनता। बंगाली बाबू बिल्कुल जंचते हैं। उनकी ढीली-ढाली धोती, कि कांछ उनकी खुली ही जा रही है। किसी तरह सम्हाल-सम्हूल कर अपने चल रहे हैं। वह फुसफुसापन बंगाली में ही होता है।

और जापानी तो और भी फुसफुसी हालत में थे। लेकिन दूसरे महायुद्ध ने क्रांति कर दी। अमरीका के प्रवेश से भोजन में फर्क हो गया, दवाओं में फर्क हो गया।

मैंने सुना है, दो इजरायली शराबखाने में बैठे शराब पी रहे थे और गपशप भी कर रहे थे। एक इजरायली ने कहा कि मैं तो तुमसे कहता हूं कि इजरायल की समस्याएं तब तक हल न होंगी जब तक हम अमरीका पर हमला न करें।

दूसरे ने कहा, तुम होश में हो? अरे कितनी ही शराब मैं पी गया होऊं, तुम्हारी बात सुन कर मेरा नशा उतर गया! इजरायल और अमरीका पर हमला करे! क्या हम जीत सकते हैं? हार निश्चित है।

उस दूसरे ने कहा, यही तो मैं कह रहा हूं कि हार निश्चित है। और अमरीका से जो भी हारा वही लाभ में रहा। क्योंकि पहले अमरीकी हराते हैं, फिर उसको बनाते हैं, व्यवस्था देते हैं।

आज जर्मनी ज्यादा सुंदर और सुखद, स्वस्थ, समृद्ध है--जितना दूसरे महायुद्ध के पहले था। रूसी हिस्से को छोड़ दो। लेकिन अमरीका के हाथ में जो हिस्सा पड़ गया था, उसमें चमक आ गई, रौनक आ गई।

जापान को तुम देखो। आज से बीस-पच्चीस-तीस साल पहले, दूसरे महायुद्ध के पहले, किसी भी चीज को जापानी कह देने का मतलब गाली देना था। किसी आदमी को अगर नकली बताना हो तो हम कहते थे--जापानी है। जापानी मतलब थोथा, कुछ भी नहीं; ऊपर का दिखावा ठीक है, भीतर कुछ भी नहीं। जापानी घड़ी का मतलब यह कि बस दो-चार दिन चल जाए तो बहुत है। और अब? जापान अमरीका को मात कर रहा है। जापान ने कुछ चीजों में तो अमरीका, जर्मनी, इंग्लैंड, सबको मात कर दिया है। इलेक्ट्रानिक्स में, रेडियो में, टेलीविजन में, टेपरिकार्डरों में... और अब तो घड़ियों पर भी उतारू हो गया है! सारे जमीन के बाजार को उसने घड़ियों से भर दिया है। जो घड़ी स्विटजरलैंड की तीन हजार की हो, वह उतनी ही मजबूत घड़ी, उतनी ही सुव्यवस्थित, जापान तीन सौ रुपये में देने को तैयार है। आज जापानी माल की प्रतिष्ठा है। क्या हो गया?

जापान थोड़ा स्वस्थ हुआ है। जो तत्व मनुष्य के मस्तिष्क के लिए जरूरी हैं, वे जापान के भोजन में नहीं थे। वे तत्व जरूरी थे।

भारत के भोजन में बहुत से तत्वों की कमी है, इसलिए भारत में प्रतिभा पैदा नहीं होती। जब तक हम यह भोजन न बदलेंगे, तब तक भारत में प्रतिभा पैदा होगी भी नहीं। मस्तिष्क के लिए कुछ तत्व बिल्कुल जरूरी हैं, कुछ विटामिन जरूरी हैं, जो हमारे भोजन में नहीं हैं।

यह कैसे होगा? यह कोई राम-राम जपने से, माला फेरने से नहीं हो जाने वाला है। विज्ञान को अवसर देना होगा। और मत कहो कि विज्ञान को यह अवसर देना व्यक्ति की स्वतंत्रता छीन लेना है। सच तो यह है, अभी व्यक्ति की स्वतंत्रता क्या है? तुमने जो बच्चा पैदा किया है, तुम सोचते हो तुमने स्वतंत्रता से पैदा किया है? तुम्हारी क्या खाक स्वतंत्रता है! तुम चाहते थे लड़का पैदा हो, लड़की पैदा हो गई। इसको तुम स्वतंत्रता कहते हो? तुम चाहते थे दुनिया का सुंदरतम व्यक्ति पैदा हो जाए, और हो गए अष्टावक्र, आठ जगह से टेढ़े, कि ऊंट भी उनको देख ले तो झेंप जाए। तुम्हारी क्या खाक स्वतंत्रता है! तुम चाहते थे बच्चा ऐसा हो, वैसा हो। कौन मां-बाप नहीं चाहते! मगर होता क्या है? यह कोई स्वतंत्रता है?

स्वतंत्रता विज्ञान तुम्हें देगा, क्योंकि तब तुम देख सकोगे। आज यह संभव है। तुम्हें इसका पता हो या न हो, आज यह संभव है। तुमने जैसा कि फूलों के कैटेलाग देखे, कि उसमें बीजों के साथ फूल भी होते हैं, चित्र बने होते हैं कि इन बीजों को खरीदने पर इस तरह के फूल पैदा होंगे! ठीक इस तरह के कैटेलाग आदमियों के संबंध में उपलब्ध हो सकते हैं--कि अगर यह जीवाणु, अगर यह जीवकोष्ठ मां के गर्भ में डाला गया तो इस तरह का बच्चा पैदा होगा; उसकी इतनी ऊंचाई होगी, उसका इतना रंग होगा, इतने दिन जिंदा रहेगा, इतना स्वस्थ रहेगा, इतना उसके पास मस्तिष्क होगा, इतनी उसके पास बुद्धि होगी। इस सबकी व्यवस्था दी जा सकती है। ठीक तुम चित्र देख सकते हो, कैटेलाग में चुनाव कर सकते हो बैठ कर कि तुम्हें कौन से तरह का बच्चा चाहिए।

मैं उसको स्वतंत्रता कहूंगा। क्योंकि तब तुम अपने निर्णय से अपने बच्चे को जन्म दे रहे हो। हालांकि इतनी भर अड़चन हो जाएगी कि वह ठीक तुम यह नहीं कह सकते कि मेरे ही अणुओं से पैदा हुआ है। तो इतना भी क्या आग्रह कि तुम्हारे ही अणुओं से पैदा हो? ये सारे अणु उसी परमात्मा के हैं। इसमें से श्रेष्ठतम को चुनो। यह क्या आग्रह है? ये ओछे आग्रह अहंकार से भरे हुए हैं, इनका स्वतंत्रता से कोई संबंध नहीं है।

और आत्माएं उत्सुक हैं, अनंत आत्माएं भटकती हैं हमेशा, तैयार हैं--गर्भों में प्रवेश पाने के लिए। और यह जान कर तुम हैरान होओगे कि साधारण आत्माएं तो तत्क्षण प्रविष्ट हो जाती हैं, क्योंकि साधारण गर्भ हमेशा उपलब्ध हैं, हजारों मूढ़जन संभोग करने में संलग्न हैं, चौबीस घंटे कहीं न कहीं... कहीं न कहीं रात है। और अब तो आधुनिक आदमी तो रात-दिन भी नहीं मानता; वह तो संभोग करने में लगा है, दिन हो कि रात हो, किसको फिक्र है! हर जगह गर्भ मौजूद है साधारण आदमी को पैदा होने के लिए। लेकिन असाधारण व्यक्तियों को पैदा होने के लिए बहुत वर्ष तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है, क्योंकि उतना असाधारण गर्भ उपलब्ध नहीं होता।

अगर हम असाधारण गर्भ उपलब्ध करा सकें तो हम पृथ्वी को बुद्धों से भर सकते हैं, महावीरों से भर सकते हैं। और निश्चित ही, अगर लोग स्वस्थ हों, संपन्न हों, बुद्धिमान हों, तो तुम जो कहते हो, आनंद वीतराग, कि यह काम तो आप जैसे शुद्ध-प्रबुद्ध आत्मा को ही करना पड़ेगा, तो मेरा काम सरल हो जाए। आत्मा को जगाने का काम बहुत सरल हो जाए। आत्मा को ध्यानस्थ करने का काम बहुत सरल हो जाए। आत्मा को समाधि की तरफ ले जाने की बात बहुत सरल हो जाए।

अभी तो हिम्मत ही नहीं है लोगों में। जरा सा साहस नहीं है अज्ञात की यात्रा पर जाने के लिए। एकदम डरपोक लोग हैं, भयभीत लोग हैं, कायर लोग हैं। छोटी सी बात से डरते हैं। गैरिक वस्त्र पहनने में ही घबड़ाहट लगती है--कि कोई क्या कहेगा! इस तरह के कमजोर लोग आत्मा को जान पाएंगे? कि लोग हंसेंगे, कि लोग पागल समझेंगे--इतने कमजोर लोग, इतने भीरु लोग क्या परमात्मा को जान पाएंगे? परमात्मा कायरों का है?

परमात्मा उनका है, जिनके भीतर अदम्य साहस है। यह सागर की बड़ी चुनौतीपूर्ण यात्रा है, अनंत की यात्रा है। तुममें बल चाहिए। यह कोई आकस्मिक बात नहीं है कि मेरे पास सारी दुनिया से संन्यासी आ रहे हैं और भारतीय बैठे सोचते ही रहते हैं--कि लेना कि नहीं लेना! क्या ठीक, क्या नहीं ठीक! परिणाम क्या होगा!

तुममें छलांग लगाने की हिम्मत ही खो गई है। तुममें कोई भी नया प्रयोग करने की आकांक्षा ही मर गई है। बस पुरानी लकीर को पीटते रहो, घूमते रहो वर्तुल में। जो सिखा गए हैं मां-बाप, चाहे वह सार्थक हो या न हो, उसी को दोहराते रहो।

एक मारवाड़ी युवक ने एक नवयुवती से मंगनी कर ली। विवाह से पहले एक बार वह अपनी मंगेतर से मिलने उसके शहर चला। युवक के पिता ने, जो और भी ज्यादा मारवाड़ी था स्वाभाविक, उसे बुला कर कहा, बेटा, सौदा अच्छा करना। विवाह थोड़े ही है, सौदा है। विवाह के समय लड़की के बाप से तुम्हें अच्छी रकम मिलनी चाहिए। यदि वह भला है तो एक हजार रुपये लेने पर राजी हो जाना। अगर दिवालिया हो तो दो हजार से कम मत लेना।

मारवाड़ियों में यह हिसाब है कि जिसने जितने दिवाले डाले उसके पास उतना धन। असल में, इज्जत ही दिवालिये की है मारवाड़ियों में। जब किसी मारवाड़ी की प्रशंसा कोई करता है किसी से, तो कहता है, इसने तीन बार दिवाले डाले। इसने सात बार डाले। जितनी बार डाले, उसका मतलब है कि उतना पचा गया। तो बाप ने कहा कि ख्याल रखना अगर दिवालिया हुआ हो, तो दो हजार से कम मत लेना। यदि किसी अपराध के कारण जेल भी हो आया हो, तो पांच हजार से कम मत लेना। क्योंकि मारवाड़ी जेल जाए, तो लाखों न पचा जाए तब तक नहीं जाएगा।

पहुंचने के अगले दिन युवक ने पिता को तार दियाः ससुर को छह साल पहले फांसी लगी थी, कितने पर सौदा तय करूं?

बस सिखाए पूत... कितने दूर तक जा सकते हैं! कितनी यात्रा कर सकते हैं! अपनी तो कोई बुद्धि ही नहीं है।

मुल्ला नसरुद्दीन और उसका एक मारवाड़ी मित्र रेस्तरां में बैठे थे। रसगुल्लों का आर्डर दिया। जैसे ही बैरा प्लेट लेकर आया, मारवाड़ी ने झट से बड़ा वाला रसगुल्ला उठा कर अपने मुंह में दबोच लिया। मुल्ला ने झुंझला कर कहा, हमारे देश में शिष्टाचार की बड़ी चर्चा होती है, लेकिन कम ही लोग शिष्टाचार जानते हैं। मारवाड़ी के बच्चे, सच कहता हूं, यदि तेरी जगह मैं होता तो खुद छोटा वाला रसगुल्ला उठाता।

मारवाड़ी ने प्रेम से कहा, भाई नसरुद्दीन, तुम्हें छोटा वाला रसगुल्ला तो मिल गया न, अब रोते क्यों हो? यदि तुम मेरी जगह होते तब भी तुम्हें वही मिलता न आखिर? बेटा, अब मजा करो!

साहस खो गया है। साहस की जगह कायरता है, बेईमानी है, चालबाजी है। चालबाजी को हम चतुरता समझने लगे हैं। चालाकी को हम प्रतिभा समझने लगे हैं। इस सबको मिटाना जरूरी है।

इसलिए आनंद वीतराग, मैं पक्ष में हूं कि विज्ञान को पूरा अवसर दिया जाए कि वह मनुष्य के भीतर, जो कुछ भी शरीर और मन के तल पर हो सकता है, करके दिखा दे। फिर आत्मा के तल पर जो हो सकता है, वह निश्चित ही वे ही लोग कर सकेंगे जिन्होंने आत्मा को जाना है और पाया है। मगर उनके करने के लिए भूमिका मिल जाएगी। उनके करने के लिए ठीक-ठीक भूमि मिल जाएगी, ठीक-ठीक वातावरण मिल जाएगा, ठीक-ठीक लोग मिल जाएंगे। फिर तो दीये से दीये जलते जा सकते हैं। फिर तो दीवाली हो सकती है।

अभी तो हालत दिवाले की है। इस देश को देखो, चेहरों पर दिवाला ही दिवाला है! और किसी को यह नहीं है ख्याल कि मैं कुछ करूं। कोई कुछ करे! हमने तो इतनी ही बड़ी कृपा कर दी है कि हम हैं और तैयार खड़े हैं, करो सेवा! पैर पसारे बैठे हैं कि दबाओ पैर! झोली फैलाए बैठे हैं कि भरो झोली! और नहीं भरते, बेईमान हो, चोर हो, शोषक हो।

ये क्या ढंग हैं? यह कैसी हमने पद्धति सीखी? और इस सबका जिम्मा हमारे तथाकथित महात्माओं पर है। वे हमें एक से एक मूढ़ताएं सिखा गए हैं। वे हम से कह गए हैं कि शरीर तो माया है, आत्मा सत्य है; संसार तो झूठ है, परमात्मा सत्य है।

मैं तुमसे कहता हूं कि अगर संसार झूठ है तो परमात्मा भी झूठ है। अगर संगीत झूठ है तो संगीतज्ञ भी झूठ है। अगर सृजन झूठ है तो स्रष्टा भी झूठ है। अगर वीणा झूठ है तो वीणा से उठे हुए स्वर कैसे सच हो सकते हैं?

मैं तुमसे कहता हूं, अगर शरीर असत्य है तो तुम्हारी आत्मा वगैरह भी सब बकवास है। मेरे हिसाब में शरीर उतना ही सत्य है जितनी आत्मा। वे एक ही सत्य के दो पहलू हैं, जैसे एक ही सिक्के के दो पहलू होते हैं। मैं उनमें जरा भी भेद नहीं करना चाहता।

मैं एक ऐसे धर्म को जन्म देना चाहता हूं, जिसकी बुनियाद विज्ञान हो और जिसका शिखर अध्यात्म हो। जहां विज्ञान और धर्म दोनों मिलेंगे, वहीं हम इस पृथ्वी को स्वर्ग बनाने में समर्थ हो सकते हैं; अन्यथा हमने नरक बनाने में सफलता पा ली है।

दूसरा प्रश्नः ओशो, प्रेम-अनुरागी मीरा तथा स्वयं को जानने वाला सुकरात, दोनों विषपान किए। पीवत मीरा हांसी रे! लेकिन सुकरात का देहावसान हो गया। क्यों? बताने की अनुकंपा करें!

उमाशंकर भारती, इससे सिर्फ इतना ही सिद्ध होता है कि मीरा के समय में भी चीजें शुद्ध नहीं मिलती थीं। जहर में मिलावट रही, तभी तो पीवत मीरा हांसी रे! और यूनान, जहां सुकरात को जहर दिया, वह जहर ही था। सुकरात नहीं हंसे। वह कोई भारत थोड़े ही था। यहां तो हर चीज में मिलावट है।

मुल्ला नसरुद्दीन मरना चाहता था। जहर खरीद लाया। पीकर सो गया। सोच रहा है कि अब मर गए, अब मर गए... । आंख खोल-खोल कर देखता है। मगर वही कमरा, वही बगल में पत्नी घर्राटे भर रही है। मामला क्या है? ग्यारह बज गए, बारह बज गए, एक बज गया, दो बज गया। अपने को चिकोटी काट कर भी देखी कि जिंदा हूं कि मर गया! चिकोटी भी काटी तो पता चला कि जिंदा हूं। बड़ी हैरानी मालूम होने लगी। तभी पेशाब भी लगी। उसने कहा कि हद हो गई, मर भी चुके और पेशाब भी लग रही है! हम तो सोचते थेः मर गए तो फिर ये सब झंझट से छुटकारा हो जाएगा।

थोड़ी देर तो पड़ा रहा सम्हाले, मगर नहीं सम्हला तो फिर बाथरूम गया। आईने में भी चेहरा देखा, सब वही का वही। सुबह भी हो गई, लड़के-बच्चे स्कूल जाने लगे। पत्नी बोली कि उठो, अब कब तक पड़े रहोगे? दफ्तर नहीं जाना?

हद हो गई, मरने के बाद भी सब वही का वही है! कोई फर्क ही नहीं हो रहा! दफ्तर भी जाना पड़ेगा तो मरे ही काहे के लिए! सीधा गया जहर की दुकान पर और पकड़ ली गरदन उस आदमी की, दुकानदार की, कि बेईमान कहीं के!

उसने कहा कि इसमें मेरी क्या बेईमानी है? कौन सी चीज शुद्ध मिल रही है? अरे दूध नहीं मिलता शुद्ध तो जहर मिलेगा? हर चीज में मिलावट है, मैं क्या करूं? जो उपलब्ध है सो बेच रहा हूं। अब नहीं मरे तो मैं क्या कर सकता हूं?

इसीलिए मीरा हंसी होगी।

तुम मुझसे ऐसे प्रश्न पूछ कर दिक्कतों में मत पड़ा करो। मीरा एकदम हंसी होगी कि ले आए भारतीय जहर, आ जाओ! अब दिखाती हूं चमत्कार! पीवत मीरा हांसी रे! मगर सुकरात बेचारे ने चुपचाप पी लिया; यूनानी जहर था, इसमें कुछ हेर-फेर होने वाला नहीं था, मौत निश्चित थी। पीकर एकदम लेट गया। शिष्य इकट्ठे थे, वे पूछने लगे कि क्या हो रहा है? कैसा लग रहा है? उसने कहा कि पैर ठंडे हो गए। अब घुटनों के ऊपर भी सब ठंडा हो गया। अब हाथ भी ठंडे हुए जा रहे हैं। अब धड़कन भी बहुत दूर सुनाई पड़ती है। सांसें भी धीमी पड़ती जा रही हैं।

यह असली जहर था। लेकिन तुम समझे कि यह चमत्कार हो गया। चमत्कार वगैरह कुछ भी नहीं होते। संसार नियम से चलता है। नियम किसी के लिए नहीं तोड़े जाते--न मीरा के लिए टूटते हैं, न महावीर के लिए टूटते हैं। सीधी-सीधी बात है। इसमें कुछ राज नहीं है।

तुम पूछते होः क्यों?

तुम्हारा ख्याल होगा शायद कि मीरा ने सुकरात को हरा दिया, कि सुकरात रहे ज्ञानी, मगर भक्त ज्ञानी से आगे निकल गया! कि मीरा थी प्रेम-अनुरागी, कि देखो भक्त की विजय ज्ञान के ऊपर।

नहीं भैया, भक्त और ज्ञानी का कोई संबंध नहीं। यह भारतीय और यूनानी जहर का फर्क है।

तीसरा प्रश्नः ओशो, क्या संसार में कोई भी अपना नहीं?

राधारमण, ऐसे तो अपने ही अपने हैं। कोई पिता है, कोई मां है, कोई भाई है, कोई बहन है, कोई पत्नी है, कोई पति है। ऐसे तो सब अपने ही अपने हैं। मगर सब नाटक के अपने हैं, वक्त पर काम न पड़ेंगे। तुम मर जाओ तो कोई साथ न जाएगा। मरघट तक पहुंचा आएं, यही बहुत। इधर तुम मरे कि जल्दी से लोग अरथी तैयार करने लगेंगे--वही लोग, जो क्षण भर पहले पैर दबा रहे थे, बड़ी प्रशंसा कर रहे थे। एकदम जल्दी में लग जाएंगे कि खतम हो गया, अब चलो, जल्दी निपटारा करो, जितनी जल्दी निपटारा हो अच्छा! उस अर्थ में कोई अपना नहीं है।

मगर इसका दुरुपयोग किया तुम्हारे महात्माओं ने। इस विचार का भी दुरुपयोग किया। यह समझाया तुम्हें कि कोई अपना नहीं है, इसलिए छोड़-छाड़ कर भाग जाओ।

छोड़-छाड़ कर भाग जाने का अर्थ क्या? जब अपना कोई है ही नहीं, तो किसको छोड़ कर भाग जाओ? इसलिए मैं कहता हूंः कहीं छोड़ो मत, कहीं भागो मत। कोई अपना है ही नहीं। छोड़ना किसको? अपना हो तो छोड़ते।

तुमने कभी रामलीला में देखा कि रामचंद्रजी ने बीच में ही संन्यास ले लिया? कि अरे यहां कौन अपना! कि चलो अच्छा ही हुआ रावण सीता को चुरा ले गया! कौन किसका है! हम चले, हम संन्यासी हो जाते हैं! तो मैनेजर धक्के देकर बाहर ले आएगा कि क्या कर रहे हो? ऐसे नहीं चलेगा, नाटक पूरा करो! अरे जब फीस पूरी ली है तो नाटक भी पूरा करना पड़ेगा।

वह विनोद हमारे सामने बैठे हैं। उनसे पूछो। किसी डायरेक्टर से ले ली फीस, फिर तो बीच में तुम कहने लगो कि अब हम संन्यासी हो गए, तो वह कहेगाः तुम्हारा संन्यास तुम जानो, मगर अभिनय पूरा करना पड़ेगा।

अब विनोद भागना चाहते हैं, मगर दो साल तक अटके रहना पड़ेगा, क्योंकि जब तक वे फिल्में पूरी न हो जाएं। फिल्मों में थोड़े ही संन्यास ले सकते हो! फिल्मों से कैसे संन्यास लोगे?

यह सारा जगत ही एक बड़ा अभिनय है, एक बड़ी मंच है। इस मंच में कहां भागना? किसको छोड़ना? छोड़ने का तो अर्थ हुआ कि तुमने अपना मान ही लिया। वहीं भूल हो जाती है। एक भूल है अपना मानना और एक भूल है कि अपना कोई नहीं है, इसलिए चले!

कहां जा रहे हो? जहां जाओगे वहां भी कोई अपना नहीं है। पहले सोचते थेः पति अपना है, पत्नी अपनी है, बेटा अपना है। फिर चले गए जंगल, फिर सोचने लगेः शिष्य अपना है, चेला-चांटी इकट्ठे हो गए, ये अपने हैं। वे भी अपने नहीं हैं। वे भी तुम खतम हो जाओगे तो वही करेंगे जो तुम्हारे लड़कों ने किया होता। जैसे तुम्हारे लड़के राह देख रहे थे कि अब पिताजी सरको, कि अब हम बहुत थक गए, आखिर हमको भी थोड़ा मौका दो! गद्दी पर तुम्हीं बैठे रहोगे? अब हम भी बैठें थोड़ा! वैसे ही तुम्हारे शिष्य भी कोशिश में रहेंगे कि अब उठो गुरुदेव!

मैं एक धर्म-सम्मेलन में निमंत्रित था। एक शंकराचार्य ने धर्म-सम्मेलन बुलाया हुआ था। पता नहीं किस भूल-चूक में मुझे बुला बैठे। अब उन्होंने भूल की तो मैंने कहा, अब तुम भूल कर रहे हो तो मैं भी क्यों चूकूं! मैं चला गया। उन्होंने अपने सब शिष्यों का परिचय मुझे कराया। उनका तख्त ऊपर लगा हुआ था, उस तख्त के नीचे एक छोटा तख्त लगा हुआ था। उस तख्त पर एक सज्जन बैठे हुए थे--संन्यासी, बिल्कुल घुट्टमघुट्ट! सबसे पहले उन्होंने उनका परिचय कराया, कहा कि ये इलाहाबाद हाईकोर्ट के चीफ जस्टिस थे। बड़े विनम्र हैं! कितना ही इनसे कहूं कि आ जाओ मेरे तख्त पर बैठो, कभी नहीं बैठते। देखो, नीचे तख्त पर बैठे हैं!

मैंने कहा, यह तो बात जंच रही है, साफ दिखाई पड़ रहा है। मगर और लोग जमीन पर बैठे हैं, ये जमीन पर नहीं बैठते। इनको तो असल में, जहां भी बैठें वहां गड्ढा खोद कर बैठना चाहिए। अगर सच्चे विनम्र हैं, तो कुदाली साथ लेकर चलना चाहिए, कि जहां बैठे, जल्दी से गड्ढा खोदा, बैठ गए, ताकि कोई इनके नीचे न पड़ जाए। अब इसमें कई लोग तो नीचे बैठे हैं और ये बीच में बैठे हैं। आप ऊपर बैठे हैं।

और मैंने कहा कि ये न्यायाधीश रहे हैं, पहले वकील रहे होंगे।

उन्होंने कहा, हां, वकील तो रहे पहले।

तो मैंने कहा, ये हिसाब लगा रहे हैं। तुम खिसको, तो ये बिल्कुल बगल में ही बैठे हैं, एकदम चढ़ कर ऊपर बैठ जाएंगे, देख लेना।

वे बोले, आप भी कैसी बातें करते हैं!

मैंने कहा, मैं सच्ची बातें कर रहा हूं। जैसी बात करनी चाहिए वही कर रहा हूं। अब सांसारिक क्या बातें करनी, संन्यासियों से तो शुद्ध बातें करनी चाहिए। यह आदमी चालबाज है।

वे आंखें बंद किए बैठे थे, उन्होंने एकदम आंखें खोल लीं। मैंने कहा, यह बहुत उस्ताद आदमी मालूम होता है। अभी तक आंखें बंद किए था, अब एकदम आंखें खोल लीं इसने। यह बना-ठना बैठा है। यह सिर्फ राह देख रहा है। यह भीतर ही भीतर कह रहा होगा कि उठो, खिसको गुरुदेव! बहुत दिन बैठ लिए, अब मुझे शंकराचार्य होने दो! यह तुम्हारे मरने की राह देख रहा है। नहीं तो यह बीच के तख्त पर क्यों बैठा हुआ है? या तो सबके साथ नीचे बैठे। सबके साथ नीचे नहीं बैठ सकता, क्योंकि यह न्यायाधीश रहा है। और तुम्हारे साथ ऊपर बैठ नहीं सकता, तुम्हारे सामने विनम्रता का प्रभाव पैदा करना है, क्योंकि तुम विनम्रता को ही सम्मान दोगे। और तुम अभी तक नहीं भूले और यह भी नहीं भूला कि हाईकोर्ट के चीफ जस्टिस थे। अब जो बात हो गई हो गई। जो भूल हो गई हो गई, उसको बार-बार क्या दोहराना! और किसी के घाव बार-बार क्यों छूना! अब इसके पाप की कथा आप बार-बार क्यों सभी को बताते हैं कि यह पहले यह था, पहले वह था? लेकिन यह पाप की कथा नहीं है। आप असल में, इसके माध्यम से अपने अहंकार की तृप्ति कर रहे हैं, कि मेरे शिष्य कोई साधारण नहीं हैं। यह देखो, चीफ जस्टिस हाईकोर्ट का था! यह मेरा शिष्य है! और कितना विनम्र कि देखो बेचारा, मेरे साथ नहीं बैठता, थोड़ा नीचे बैठा हुआ है! तुम इसकी प्रशंसा कर रहे हो। तुम इसके अहंकार की पूर्ति कर रहे हो। और तुम भी अपने अहंकार की पूर्ति कर रहे हो इसके माध्यम से कि मैं कोई साधारण शंकराचार्य नहीं हूं। बड़े-बड़े लोग मेरे शिष्य हैं!

घर-द्वार छोड़ दोगे, पत्नी-बच्चे छोड़ दोगे, तो जाकर कहीं दूसरे उपद्रव में पड़ जाओगे। कोई अपना नहीं है, यह बोध पर्याप्त है। फिर छोड़ना क्या? फिर पकड़ना क्या?

हमारे शहर में एक जादूगर आया
आते ही उसने ढिंढोरा पिटवाया--
"मैं आंख की पुतली को दांतों से मिला दूंगा
जो नहीं हो सकता उसे करके दिखा दूंगा।"
एक आदमी नशे में बोला--"बेवकूफ बनाता है
पुतली को दांतों से मिलाता है
हम पांच सौ रुपये की शर्त लगाता है।"

जादूगर ने आदमी को जड़ से हिला दिया
बाएं आंख की नकली पुतली निकाली
और उसे दांत से मिला दिया।

आदमी बोला--"दूसरी पुतली भी मिलाओ।"
जादूगर बोला--"पांच सौ और दिलवाओ।"
इस बार उसने कमाल किया
नकली दांत निकाला और उसे पुतली से मिला दिया।
कुछ लोग नाचने लगे, कुछ गाने लगे
बचे-खुचे तालियां बजाने लगे।

जादूगर बोला--"खामोश,
यह तो कुछ भी नहीं
परसों शाम को कंपनी बाग में कमाल दिखाऊंगा
जो लोग इस शहर में एक हफ्ता पहले मरे हैं
उन सबको जिंदा करके दिखाऊंगा।
इससे पहले यह प्रयोग मैं कई शहरों में कर चुका हूं
तीन मुर्दों को झुमरी तलैया में जिंदा कर चुका हूं।"

उसी रात जादूगर के पास एक नौजवान आया
और बोला--
"गुरु, यह क्या कर रहे हो
मुर्दों को जिंदा कर रहे हो
मेरा बाप बीस लाख छोड़ कर मरा है
उसे जिंदा कराओगे
तो क्या मुझे मरवाओगे?"

उसके बाद एक महिला आई
उसने भी अपनी दास्तान सुनाई--
"मेरा पति चार रोज पहले मरा है
अपने पूर्व-प्रेमी से मैंने विवाह करा है
उसे जिंदा कराओगे
तो क्या मुझे दो-दो की पत्नी बनाओगे?"

अंत में
नगरपालिका का चेयरमैन आया
उसने अपना दुखड़ा इस प्रकार सुनाया--
"पिछला चेयरमैन अभी परसों ही मरा है
बड़ी मुश्किल से तो मुझे चार्ज मिला है
गुरु, ये दस हजार ले लो
और यह जिंदे-मुर्दे का खेल कहीं और दिखाओ।"

जादूगर सोचने लगा--
"इतने बड़े शहर में कोई यह कहने नहीं आया
कि मेरी मां या बहन को जिला दो
या मेरे बिछुड़े हुए भाई से मुझे मिला दो
हाय रे ये स्वार्थ की दुनिया
यहां कोई अपना नहीं, सब दिखावा है
जीते जी तो ये सब लोग
कठपुतली की तरह नाचते हुए चाबी के खिलौने हैं
पद और प्रतिष्ठा में बहुत बड़े हैं
पर भावना के मामले में बौने हैं
जीते जी तो ये लोग
नाटक के पात्रों की तरह झूठा प्यार दिखाते हैं
और मरने के बाद लोग सबको भूल जाते हैं।"

राधारमण, इस अर्थों में कोई अपना नहीं है, क्योंकि मृत्यु सबसे तोड़ देगी। इस सत्य को जान कर जीवन को अभिनय की तरह जीओ। गंभीरता से मत लो। बस नाटक के पात्र होओ। मैं इसी को संन्यास कहता हूं--भागने को नहीं, जागने को!

चौथा प्रश्नः ओशो, आपके आश्रम में तो बिना अंग्रेजी जाने जीना मुश्किल है। जितने विदेशी मैंने यहां देखे इतने एक स्थान पर तो एकत्रित कहीं न देखे थे। अब मैं क्या करूं? मैं तो आश्रम में ही रहने आई थी, क्या अब बुढ़ापे में अंग्रेजी सीखूं?

सीता मैया, अब बुढ़ापे में यह कहां का उपद्रव करोगी! बिना अंग्रेजी सीखे चलेगा। कोई बाधा न पड़ेगी। यहां इतने विदेशी हैं, उनमें से बहुत से अंग्रेजी नहीं जानते। कोई सिर्फ जापानी समझता है, कोई सिर्फ स्पेनिश समझता है, कोई सिर्फ इटेलियन समझता है, कोई सिर्फ जर्मन समझता है, कोई सिर्फ फ्रेंच समझता है, कोई सिर्फ डच समझता है। अब तुम कौन-कौन सी भाषा सीखोगी? हिंदी समझने से बिल्कुल चलेगा, कोई अड़चन नहीं है।

यह तो विश्व-परिवार है। इससे घबड़ाने की कोई जरूरत नहीं है। और बुढ़ापे में अंग्रेजी सीखने बैठोगी, उलटा-सीधा कुछ हो जाए! कुछ का कुछ हो जाए!

चंदूलाल कल ही मुझसे कह रहे थे--

एक दिन हमारी श्रीमती को
बैठे बिठाए अंग्रेजी सीखने का
शौक चर्राया
उन्होंने हमें बुलाया--
"हमें भी एक मास्टरनी लगवा दो
हमें भी अंग्रेजी में गिटपिट करना सिखा दो।"
थोड़े दिनों के बाद
एक खूबसूरत मिस--
उनको पढ़ाने लगी
उनसे ज्यादा हमें भाने लगी
अंग्रेजी सीखने के पहले ही दिन
हमसे बोली--
"सुनते हो
शर्मा जी का ट्रांसफार्मर हो गया
विदाई दे आओ।"
हमने कहा--
"गलत अंग्रेजी बोल कर
हमारा दिमाग मत खाओ।"
दूसरे दिन बोली--
"क्रिकेट की डाकूमंत्री को सुना
ये इंडिया वाले
एक इवनिंग से हारेंगे।"
तीसरे दिन उनकी मिस ने पूछा--
"अंग्रेजी के सेंटेंस लिख लिए?"
पत्नी बोली--"वह तो सुबह ही लिख लिए थे
अब आप करेप्शन कर दीजिए।"
चौथे दिन
उनकी सहेली का टेलीफोन आया
हमारी श्रीमती ने उठाया
सहेली ने पूछा--
"सुना है तुम्हारे पड़ोस में

गुप्ता जी गुजर गए?"
पत्नी बोली--
"अजी ससपेंस हो गया
सुबह तक तो सेंस में थे
शाम को नानसेंस हो गया।"

सीता मैया, कहां की झंझट में पड़ना! पुरानी सीता मैया की याद करो। लंका में रह आईं बिना अंग्रेजी सीखे। अब वहां कोई हिंदी बोलता था लंका में! अशोक-वाटिका में कोई हिंदी बोलता था तुम सोचती हो? रावण हिंदीभाषी था तुम सोचती हो? लंका में कहां हिंदीभाषी! अगर बहुत ही बहुत खींचो तो तमिलभाषी रहा होगा। बहुत खींचो अगर।

कोई झंझट में पड़ने की जरूरत नहीं। अगर यहां आने का मन है, यहां रहने का मन है, बस उतना काफी है। सबका काम चल रहा है। विश्व-परिवार की तो यह बात होनी ही चाहिए। इशारों से भी काम चल जाता है। काम की बात के लिए रास्ता निकल आता है। इसलिए इसका भय न लो, इससे परेशान न होओ।

और इतने जो तुम्हें भिन्न-भिन्न देशों के लोग दिखाई पड़ रहे हैं, इनको विदेशी मत समझो। कौन देशी, कौन विदेशी! सब एक ही परमात्मा की उपज हैं। सब एक ही पृथ्वी पर खिले हुए फूल हैं। ये धारणाएं छोड़ो। यह देशी-विदेशी का भेद-भाव छोड़ो। यहां तो घुलमिल जाओ। और तुम्हें कभी अड़चन न होगी, कोई अड़चन न होगी।

भाषा थोड़े ही मिलाती है, भाव मिलाता है। भाषा तो शायद तुड़वा दे, झगड़ा करवा दे, विवाद करवा दे। भाव--न विवाद, न झगड़ा, न उपद्रव।

मेरे एक जर्मन संन्यासी हैं--हरिदास। वह जापानी नहीं समझते। और उनका प्रेम हो गया एक जापानी लड़की से, वह जर्मन नहीं समझे। खूब चली दोनों की! और बड़े मजे से चली! झगड़ा-झांसे का सवाल ही नहीं। उनकी प्रेयसी गीता, उसे गुस्सा आए तो जापानी में आए, तो आता रहे! हरिदास समझें कि पता नहीं गीत गा रही है कि भजन कर रही है कि क्या कर रही है! हरिदास गरमा जाएं तो जर्मन में। तो गीता हंसती ही रहे; उसको क्या पता कि ये क्या बक रहे हैं! तो मुझे तो बहुत अच्छा लगा कि यह तो काम अच्छा हुआ। ऐसा होने लगे तो पति-पत्नी के बहुत झगड़े कम हो जाएं।

कहते हैं कि सबसे सौभाग्यशाली जोड़ा वह है जिसमें पत्नी हो अंधी और पति हो बहरा। क्योंकि पत्नी कितना ही बके, पति को कुछ सुनाई न पड़े। और पति कैसी ही हरकतें करे, मुहल्ले भर में किसी के पीछे दौड़े, भागे, पत्नी को दिखाई न पड़े। बस, इसको कहते हैंः राम मिलाई जोड़ी!

पांचवां प्रश्नः ओशो, हमने प्रतिभावान व्यक्तियों की क्षमता का क्या उपयोग किया? आइंस्टीन ने खोजा भौतिकी का गूढ़ रहस्य और हमने उससे हिरोशिमा व नागासाकी को जला कर राख कर दिया। कभी-कभी लगता है कि काश अगर न हुए होते जीसस और मोहम्मद तो इस पृथ्वी पर लाखों-करोड़ों लोगों का खून कम बहा होता! धर्म तथा विज्ञान के जगत में मिले आज तक के सभी वरदान पंडितों और राजनीतिज्ञों के हाथों में पड़ कर मनुष्य-जाति के लिए अभिशाप सिद्ध हुए हैं। क्या भविष्य में इस दुर्भाग्य से बचने की संभावना है? कल

आपने प्रतिभा को जन्माने की प्रक्रिया की चर्चा की। प्रतिभाओं का सम्यक उपयोग कैसे हो, इस संबंध में आपकी क्या दृष्टि है?

शैलेंद्र, यह सच है कि हम, मनुष्य-जाति में अब तक जो जन्मी प्रतिभाएं थीं, उनका सदुपयोग तो नहीं कर पाए, दुरुपयोग ही किया। मगर इसका कारण?

इसका कारण यह था कि प्रतिभाएं कम थीं और प्रतिभाहीन लोगों की भीड़ है। आइंस्टीन रहस्य खोजता है भौतिकशास्त्र के, अणुबम का राज खोजता है, अणुबम बना देता है। लेकिन अणुबम का उपयोग कौन करेगा? अणुबम का उपयोग करेंगे वे लोग जिनके पास कोई प्रतिभा नहीं है। आइंस्टीन का कसूर नहीं है अणुबम का खोज लेना। कसूर यह है कि अणुबम उनके हाथों में पड़ेगा जिनके पास कोई प्रतिभा नहीं है। वे भी क्या करें!

अब बंदर के हाथ में तलवार दे दोगे तो बंदर क्या करेगा? कुछ न कुछ उपद्रव होगा। या तो किसी को मारेगा या खुद को लहूलुहान कर लेगा। इस बात की आशा करनी तो मुश्किल है कि बंदर तलवार का कोई भी ठीक उपयोग कर पाएगा। असंभव! वह बंदर की क्षमता नहीं है।

इसलिए मैं कहता हूं कि हमें ज्यादा प्रतिभाएं चाहिए, ताकि छोटी-मोटी प्रतिभाएं अब तक जो हमसे पैदा हुईं, उन्होंने जो-जो हमें दिया, उसका सदुपयोग हो सके, उसका सम्यक उपयोग हो सके! काश हमारे पास सभी क्षेत्रों में प्रतिभाएं होतीं आइंस्टीन की हैसियत की, तो अणुबम की खोज इतनी महान खोज थी कि पृथ्वी से सारा दीन-दारिद्र्य मिट जाता! प्रतिभा की ऐसी बाढ़ आती कि कोई दुख, कोई बीमारी बच न पाती; सब बाढ़ में कचरा बह जाता। मगर प्रतिभाओं की कमी है, इसलिए हानि हुई।

बुद्ध और महावीर ने जो कहा, जीसस और मोहम्मद ने जो कहा, वह पंडित-पुरोहितों के हाथ में पड़ गया, क्योंकि और प्रतिभाशाली लोग नहीं थे जो उसे अपने हाथ में ले सकते। इसलिए तो मैं कहता हूंः हमें ज्यादा प्रतिभाओं की जरूरत है। पृथ्वी पर इतनी प्रतिभाएं होनी चाहिए कि अब पंडित-पुरोहितों और राजनीतिज्ञों का चलन बंद ही हो जाए। जाता ही कौन है इनके पास? इनको नमस्कार कौन करता है? इनसे भी दीन-हीन लोग। ये खुद ही दीन-हीन हैं, इनसे दीन-हीन लोग इनको नमस्कार करते हैं।

तुम्हारे पंडित की हैसियत कितनी है जिससे तुम पूजा करवाते हो? उसकी समझ कितनी है? उसका बोध कितना है? वह बुद्धू तुम्हारा मालिक बना बैठा है। वह तुमको मार्गदर्शन दे रहा है, जिसके खुद के जीवन में अंधकार ही अंधकार है।

राजनीतिज्ञों के हाथ में अणुबम पड़ गया, तो खतरा हुआ, होना ही था। आश्चर्य तो यह है कि बहुत ज्यादा नहीं हुआ, थोड़ा ही हुआ, दो ही नगर मिटे। सारी पृथ्वी मिट सकती है।

लेकिन दूसरा पहलू भी देखो। अल्बर्ट आइंस्टीन, रदरफोर्ड और जिन लोगों की मेहनत से अणुबम का जन्म हुआ, उसका सिर्फ एक ही पहलू देखा गया कि नागासाकी और हिरोशिमा, दो लाख की बस्ती के नगर बरबाद हो गए। मगर दूसरा पहलू जो बहुत महत्वपूर्ण है, वह किसी ने देखा नहीं। वह पहलू यह है कि अणुबम और उदजनबम के कारण ही तीसरा महायुद्ध नहीं हो रहा है। क्योंकि अब बुद्धू से बुद्धू राजनीतिज्ञों को भी यह बात समझ में आ गई कि अगर तीसरा महायुद्ध होता है तो कोई जीतेगा नहीं, सब मरेंगे। और जीत का तो मजा तभी है जब हम बचें। अगर रूस भी मिट जाए और अमरीका भी मिट जाए, तो युद्ध का फायदा क्या? युद्ध का अर्थ क्या? इतना ही ज्यादा से ज्यादा फर्क पड़ेगा कि दस मिनट का फर्क पड़ेगा; एक दस मिनट पहले मरेगा, दूसरा दस मिनट बाद, बस इतना ही फर्क पड़ेगा, इससे ज्यादा फर्क पड़ने वाला नहीं है। पूरी पृथ्वी के नष्ट होने

में ज्यादा से ज्यादा दस मिनट लगेंगे। मगर इससे क्या फायदा? कौन दस मिनट पहले मरा और कौन दस मिनट बाद, इससे कुछ बहुत फर्क पड़ने वाला है? और कौन पीछे हिसाब रखने को रहेगा कि कौन दस मिनट पहले मरा और कौन दस मिनट बाद? कोई बचेगा नहीं।

तो अणुबम की खोज ने एक महत्वपूर्ण काम किया, वह यह कि तीसरा महायुद्ध नहीं हो सकता है अब। अब तक जितने युद्ध हो सके वे इसीलिए हो सके कि कोई जीतता था, कोई हारता था। अब युद्ध हो गया चरम अवस्था पर। यह युद्ध समग्र है; इसमें कोई जीतेगा नहीं, कोई हारेगा नहीं, सब मरेंगे। कोई मरना नहीं चाहता। हां, किसी को मारने का मजा अगर हो तो आदमी मरने को भी तैयार होता है। मगर इसमें तो मारने का मजा ही नहीं है। यह तो सीधी आत्महत्या है। नागासाकी, हिरोशिमा ने चौंका दिया। बुद्धुओं को भी थोड़ी सी बुद्धि आई। यह दूसरा पहलू है।

मेरे देखे, तीसरा महायुद्ध हो नहीं सकता। भूल-चूक से हो जाए तो बात अलग। भूल-चूक का मतलब ऐसा कि कोई कंप्यूटर भूल कर दे। क्योंकि अब कंप्यूटर के हाथ में सारी चाबियां हैं। कंप्यूटर झूठी खबर दे दे। कंप्यूटरों का क्या भरोसा! अभी-अभी कोई महीने भर पहले अमरीका के एक कंप्यूटर ने गलती कर दी। अगर दो मिनट और लग जाते और गलती नहीं पकड़ी जाती तो युद्ध हो गया होता। एक कंप्यूटर ने खबर दे दी कि रूस हमला कर रहा है। कंप्यूटर का क्या भरोसा! मशीनें मशीनें हैं! अरे आदमी का भरोसा नहीं किया जा सकता, मशीनों का क्या! आ गई होगी जोश-खरोश में। ज्यादा डंड-बैठक लगा गई होगी। भंग इत्यादि पी गई, कुछ भी हो गया होगा। और कंप्यूटर तो बहुत ही नाजुक मशीनें हैं, जरा सी बिजली की भूल-चूक हो गई होगी, और उसने खबर दे दी, सिग्नल दे दिया कि युद्ध होने के करीब है, अमरीका हमले की तैयारी कर ले।

मगर युद्ध इतना भयंकर है कि जिस जनरल को यह सूचना मिली, उसने भी पहले जांच-पड़ताल कर लेनी चाही कि कंप्यूटर कोई गलती तो नहीं कर रहा है। आखिर कंप्यूटर कंप्यूटर है! कहावत है कि आदमी से गलतियां होती हैं, मगर असली गलतियां करवानी हों तो कंप्यूटर चाहिए। आदमी से छोटी-मोटी गलतियां होती हैं; बड़ी गलतियों के लिए कंप्यूटर चाहिए। पता चला कि कंप्यूटर ने गलत खबर दे दी। अमरीका के राष्ट्रपति को खबर मिलने के पहले पता चल गया, नहीं तो बस खबर पहुंचने वाली थी। और एक दफा खबर पहुंच गई होती अमरीका के राष्ट्रपति को, तो उन्होंने अस्त्र-शस्त्र छोड़ दिए होते सुरक्षा के लिए। और कोई उपाय नहीं था।

हां, ऐसी कोई भूल हो जाए और युद्ध हो जाए तो बात अलग। अन्यथा अब बुद्धू से बुद्धू राजनीतिज्ञ भी समझ रहे हैं कि युद्ध का कोई अर्थ नहीं रह गया है, युद्ध व्यर्थ हो गया है। युद्ध अतीत की बात हो गया है। भविष्य में कोई युद्ध की संभावना नहीं है। छोटी-मोटी लड़ाइयां चल सकती हैं, मगर बड़े युद्धों का कोई अर्थ नहीं है। अब बड़ा युद्ध नहीं हो सकता। यह लाभ हुआ।

तुम कहते हो कि इस पृथ्वी पर करोड़ों-लाखों लोगों का खून बहा होगा। अगर बुद्ध, महावीर, कृष्ण, क्राइस्ट, मोहम्मद, मूसा न हुए होते तो यह खून बच जाता।

नहीं बचता। अरबों का बहा होता। इस सत्य को भी अभी तक नहीं देखा गया है।

महावीर-बुद्ध के रहते हुए भी लाखों का बहा, तो तुम सोचते हो महावीर-बुद्ध अगर न हुए होते तो कम का बहा होता? तो कई गुना ज्यादा का बहा होता। जब उनके बावजूद बहा तो उनके बिना तो क्या कहना था! उनके बिना तुम अभी भी लंगूरों की तरह वृक्षों पर लटक रहे होते; तुम आदमी ही न होते उनके बिना। उनके कारण ही तुम आदमी हो। और उनके कारण ही तुम्हारे मन में यह दया-भाव उठता है, यह करुणा उठती है कि

करोड़ों लोगों की हत्या हुई। उनके कारण ही! अन्यथा किसके कारण? और आदमी तो ऐसे भी मरता है, वैसे भी मरता है। कोई आदमी बच तो नहीं जाते, मरते ही। कुछ देर-अबेर मरते।

और तुम एक बात ख्याल रखो कि आदमियों को लड़ना है तो वे कोई भी बहाने से लड़ते हैं। फुटबाल का मैच हो रहा है, उसमें झगड़ा हो जाता है। अब वहां तो कोई धर्म का सवाल नहीं है, कोई मोहम्मद और जीसस का सवाल नहीं है, कि एक पार्टी जीसस की और एक मोहम्मद की। एक इस मुहल्ले की, एक उस मुहल्ले की, दूसरे मुहल्ले की, और दंगा-फसाद हो जाता है और मारपीट हो जाती है, खून हो जाता है, गोली चल जाती है, लकड़ी चल जाती है। आदमी को लड़ना है।

अब फुटबाल के खेल में तुम देखते हो, होता क्या है? सिवाय बुद्धुओं के और कौन खेलता होगा! मैं तो कभी किसी खेल में सम्मिलित हुआ नहीं, क्योंकि मुझे बचपन से ही दिखाई पड़ने लगा कि यह भी क्या बुद्धूपन है--गेंद को इधर से उधर फेंको, उधर से इधर फेंको! अरे ऐसा ही ज्यादा शौक है तो एक गेंद तुम रख लो, एक हम रख लेते हैं, झंझट खतम करो। इधर-उधर फेंकना और परेशान होना और भागा-दौड़ी करनी, क्या सार है? अपनी-अपनी गेंद रखो, अपने-अपने घर जाओ। लेकिन लोग लगे हैं, जी-जान से लगे हुए हैं--फुटबाल, वालीबाल, क्रिकेट--और कैसा जोश-खरोश चलता है! अब क्रिकेट कोई धर्म तो नहीं है। मगर कुछ लोगों के लिए धर्म है बिल्कुल। उनकी अगर टीम हार जाए तो देखो उनकी हालत।

मेरे एक मित्र हैं, वे दीवाने हैं क्रिकेट के! उनकी पार्टी हार गई, रेडियो पर बैठे कमेंटरी सुन रहे थे, रेडियो उठा कर पटक दिया। इतने गुस्से में आ गए, रेडियो तोड़ दिया। फिर पीछे पछताए कि यह तो अपना ही नुकसान हुआ। मगर अब पछताने से क्या होगा? अब पछताए होत का जब चिड़िया चुग गई खेत! मैंने उनसे कहा कि कुछ जरा अकल लाओ। इससे तुम्हारी बुद्धि का पता चलता है।

लेकिन लोग इसी तरह हैं। कोई लाल कुर्ती वाली पार्टी है, कोई हरी कुर्ती वाली पार्टी है। हरी कुर्ती वाली जीतना चाहिए! लाल कुर्ती वालों को हरा कर रहेंगे! पार्टियां बन जाती हैं। दो पहलवान कुश्ती लड़ते हैं, और पार्टियां बनी हुई हैं--कौन जीतता है, कौन हारता है? लाखों लोग देखने इकट्ठे होते हैं। इन पागलों को तुम सोचते हो कोई मोहम्मद की और महावीर की जरूरत है झगड़ा करवाने के लिए? अरे कोई भी करवा देगा। ये झगड़े को तैयार हैं। ये बिना झगड़े के रह नहीं सकते। ये तो बैल को देख कर कहते हैंः आ बैल, सींग मार! ये तो तलाश में घूमते हैं सुबह से कि हो जाए किसी से। ये तो डंड-बैठक लगाते हैं, हनुमान-चालीसा पढ़ते हैं। ये तो लंगोटी बांधे घूम रहे हैं कि है कोई जवां मर्द तो आ जाए। इनको चैन नहीं है, जब तक ये किसी की छाती पर न चढ़ जाएं। ये नई-नई तरकीबें निकालते हैं। ये कोई न कोई बहाने लड़ेंगे। इनको तुम लड़ाई से बचा नहीं सकते। मुर्गे लड़ाते हैं! अब मुर्गों का क्या कसूर? और मुर्गे लड़ाने लोग इकट्ठे हो जाते हैं और हजारों लोग देखते हैं मुर्गों की लड़ाई। तीतर लड़ाते हैं। आदमी की अकल तो देखो! इनसे तुम आशा करते हो कि बुद्ध-महावीर न हुए होते तो ये बिना लड़े रह जाते। सांड लड़ाते हैं। सांडों से आदमियों को लड़ाते हैं।

और यह सदियों से चल रहा है।

यूनान में जो सबसे पहले स्टेडियम बने, वे इसीलिए बने थे, जिनमें लाखों लोग बैठ सकें। वहां एक काम होता था। आदमियों को जंगली जानवरों के साथ छोड़ देते थे--शेर, चीते, सिंह, उनके साथ छोड़ देते थे। खासकर ईसाइयों को। अभी जीसस को मरे ज्यादा दिन नहीं हुए थे। उनके नये-नये संन्यासी थे, जैसे मेरे संन्यासी।

वह तो जमाना अच्छा है अब कि तुम्हारे पीछे कोई सिंह वगैरह नहीं छोड़ता, बहुत से बहुत किसी ने लगा दिया कुत्ता वगैरह--लग-छू! वह बात अलग। और कुत्तों को लगाने की जरूरत नहीं, कुत्ते कुछ अजीब ही हैं। वे पहले ही से वर्दी के खिलाफ हैं। पुलिसवाले के पीछे लग जाएं, क्योंकि वर्दी। सैनिक के पीछे लग जाएं, संन्यासी के पीछे लग जाएं। कुत्ते जानी दुश्मन हैं वर्दी के। कोई भी एक रंग के कपड़े पहने दिखा कि उनको गुस्सा आया।

मगर यूनान में, रोम में, बड़े-बड़े स्टेडियम बने। एक ईसाई फकीर को पकड़ा गया। एक लाख आदमी देखने इकट्ठे हुए। ईसाई फकीर खड़ा हो गया। सिंह छोड़ दिया गया उसके ऊपर। कुछ हुआ। जैसे मीरा के साथ हुआ। पता नहीं सिंह नकली था या क्या मामला था, क्योंकि कभी-कभी नकली सिंह भी होते हैं। अरे जब नकली आदमी होते हैं! सिंह आया और रुक कर खड़ा हो गया, हमला न किया उसने। शोरगुल मच गया कि मारो इस फकीर को, यह कोई जादू-मंतर कर रहा है।

तो उस फकीर की पहले पिटाई की गई कि तू जादू-मंतर बंद कर। अरे न्याययुक्त ढंग से लड़। लड़ा रहे हैं सिंह से, मगर न्याययुक्त ढंग से लड़! सिंह कोई जादू-मंतर तो जानता नहीं। तो तू जादू-मंतर पढ़ रहा है?

दूसरा सिंह लाया गया कि यह सिंह तो दिखता है कुछ गड़बड़ है। वह दूसरा सिंह झपटा। लेकिन किसी के ऊपर भी झपटोगे--फकीर माना कि फकीर था--जब सिंह झपटा तो वह जरा एक तरफ बच गया। सिंह निकल गया तेजी में एक किनारे से। लोगों ने कहा कि बेईमान है, इसको जमीन में गाड़ दो। उसको जमीन में गाड़ दिया गया, सिर्फ गर्दन ऊपर छोड़ी; हाथ-पैर सब गाड़ दिए, सिर्फ गर्दन ऊपर। और फिर से छोड़ा सिंह को। सिंह फिर आया तेजी में और उस फकीर ने फिर गर्दन बचा ली और सिंह फिर निकल गया। लोग एकदम चिल्लाने लगे--लाखों लोग--कि यह आदमी बेईमान है! इसे लड़ने का ढंग नहीं आता, कोई तौर-तरीका नहीं!

अब देख रहे हो, उसको गड़ा दिया है, उससे तौर-तरीके की आशा कर रहे हैं। सिर्फ सिर ऊपर छोड़ा है! इसकी गर्दन काटो।

उसकी गर्दन काट दी गई। लाखों लोग देखने इकट्ठे होते थे यह--कि गर्दन काटी जाएं, सिंह चीर डालें, चीथ डालें लोगों को, खा जाएं, कच्चा मांस चबा जाएं। और लोग तालियां पीट रहे हैं!

और अभी भी स्पेन में आदमियों को लड़ाते हैं सांडों से और हजारों-लाखों लोग इकट्ठे होते हैं, दूर-दूर देशों से देखने आते हैं। स्पेन प्रसिद्ध है उसी के लिए।

तुम क्या सोचते हो कि मोहम्मद और जीसस न होते तो आदमी न लड़ता?

हां, धर्म के नाम पर न लड़ता, किसी और नाम पर लड़ता। इधर अभी हमारे देश में यह घटना घटी है, इसलिए हमको अनुभव है। सैंतालीस के पहले, आजादी आने के पहले, हिंदू-मुसलमान लड़ते थे। धर्म की वजह से लड़ते थे। तो धर्म झगड़े का कारण था, ऐसा लोग समझते थे। मैं नहीं मानता कि धर्म कोई झगड़े का कारण था। लोग झगड़ना चाहते हैं, धर्म तो खूंटी है। जैसे तुमको कोट टांगना है, खूंटी मिल गई तो खूंटी पर टांग दिया; नहीं मिली तो खीली लगी हुई है तो उस पर टांग दिया; नहीं मिली खीली तो खिड़की पर ही टांग दिया। कहीं न कहीं तो टांगोगे! सवाल कोट टांगने का है, खूंटियों का नहीं है। हिंदू-मुसलमान तो सिर्फ खूंटी थी।

फिर हिंदुस्तान-पाकिस्तान बंट गया, तो सोचा कि चलो झंझट मिटी, अब कोई झगड़ा नहीं होगा। मेरा ऐसा ख्याल नहीं था कि झगड़ा नहीं होगा। अब झगड़े नये नाम से होंगे।

अब तुमने देखा, पाकिस्तान दो हिस्सों में टूट गया; दोनों तरफ मुसलमान थे, मगर बंगाली मुसलमान और पंजाबी मुसलमान! अब यहां धर्म का कोई झगड़ा न था। अब एक नया झगड़ाः बंगाली और पंजाबी। सैकड़ों

बंगाली काट डाले गए; सैकड़ों पंजाबी काट डाले गए। मुसलमान कट कर मर गए। अभी भी पाकिस्तान में एक और विभाजन हो सकता है, क्योंकि सिंधी मुसलमान और पंजाबी मुसलमान, अभी उसके बीच कलह चलती है। अभी झगड़े का वहां डर है, किसी भी दिन पाकिस्तान और भी दो टुकड़ों में टूट सकता है।

और हिंदुस्तान की क्या गति है! यहां हिंदू-मुसलमान का झगड़ा क्षीण हुआ, खतम तो नहीं हुआ, क्योंकि सारे मुसलमान पाकिस्तान गए नहीं, बहुत बड़ा हिस्सा रह गया। मगर यहां नये झगड़े शुरू हो गए। हिंदू हिंदुओं को जला रहे हैं। सवर्ण अछूत को जला रहे हैं। अब इन दोनों का धर्म एक है; कोई हिंदू-मुसलमान नहीं हैं ये, दोनों हिंदू हैं। रोज उपद्रव होते हैं। और गुजराती-मराठी में छुरेबाजी हो जाती है कि बंबई गुजरात में रहे कि महाराष्ट्र में। अब क्या मतलब है? बंबई कहीं भी रहे, बंबई जहां है वहीं रहेगी। कोई बंबई चल कर महाराष्ट्र में आएगी कि गुजरात में जाएगी? मगर छुरेबाजी हो जाएगी। एक जिले पर अटकी है बात कि वह कर्नाटक में जाए कि महाराष्ट्र में रहे; उस पर काफी छुरेबाजी हो चुकी है, दंगे-फसाद हो चुके हैं।

आदमी को लड़ना है, तो बहाने तुम देखते हो! अब हिंदी और गैर-हिंदी का झगड़ा है। उत्तर और दक्षिण का झगड़ा है। हिंदुस्तान कभी भी टूट सकता है उत्तर और दक्षिण में। जैसा पाकिस्तान टूटा, वही गति हिंदुस्तान की हो सकती है। झगड़ना है तो नये-नये रास्ते झगड़े के तुम खोजते चले जाओगे।

इसलिए मैं ऐसा नहीं मानता कि कोई जीसस और कृष्ण की वजह से झगड़े हुए। हां, इतना जरूर मानता हूं, उन्होंने झगड़ों को कम से कम थोड़ा सा शिष्टाचार दिया, झगड़ों को थोड़ी सभ्यता दी, झगड़ों को थोड़ा सिद्धांत दिया। कम से कम झगड़ों को थोड़ा सौंदर्य दिया। झगड़े तो हुए, मगर थोड़ा सौंदर्य दिया। झगड़ों को भी थोड़ी महानता दी। कम से कम झगड़ों को भी ऊंचे मूल्य दिए। कम से कम नीची खूंटियों से हटाया, ऊंची खूंटियां बनाईं।

मगर परिणाम जो हुए, वे जीसस और मोहम्मद के कारण नहीं हुए। मनुष्य में प्रतिभा की कमी है। तो इन प्रतिभाशाली लोगों ने जो दिया, उसको झेलने वाली प्रतिभाएं नहीं थीं। हमें चाहिए अनंत प्रतिभाएं, ताकि जब एक प्रतिभा कुछ दे तो अनंत प्रतिभाएं उसे लेकर अनंत गुना कर दें। और फैलती जाए वह संपदा। तो इस पृथ्वी से झगड़े मिट सकते हैं--धर्म के भी, राजनीति के भी। और ये छोटे-मोटे व्यर्थ के सब झगड़े व्यर्थ हैं।

आखिरी सवालः ओशो, मैं अभी-अभी विश्वविद्यालय से स्नातक हुआ हूं। संसार को बदलने की बड़ी इच्छा है। इस महान कार्य के लिए शहीद भी होना पड़े तो मैं सहर्ष तैयार हूं। मार्गदर्शन दीजिए।

राकेश, एक उम्र में इस तरह के फितूर चढ़ते हैं। जैसे एक उम्र में मुंहासे निकलते हैं न, ऐसे एक उम्र में क्रांति पैदा होती है। और कुछ लोगों को बुढ़ापे तक मुंहासे निकलते हैं, तो कुछ लोग बुढ़ापे तक क्रांतिकारी रहते हैं--जैसे जयप्रकाश नारायण इत्यादि। ये बुढ़ापे तक क्रांतिकारी रहते हैं। जवानी में ऐसा लगता है कि अरे बदल देंगे, सारी दुनिया को बदल देंगे! जैसे बच्चे खिलौनों से खेलते हैं, ऐसे जवानी क्रांतियों से खेलती है।

अभी-अभी स्नातक हुए हो, जरा ठहरो, इतनी जल्दी संसार को न बदलो। थोड़ा संसार में उतरो। थोड़ा शादी-विवाह रचाओ। थोड़े बाल-बच्चे आने दो। फिर सिर पीटोगे कि यह तो संसार ने मुझी को बदल दिया। और मैं तो संसार बदलने निकला था!

असल में, संसार को बदलने की इच्छा भी अहंकार की एक यात्रा है। क्यों? जब संसार को नहीं बदलना तो तुम क्यों बदलोगे? अगर संसार को बदलना होगा, बदल जाएगा। तुम्हारे लिए रुका है, तुम सोच रहे हो?

तुमसे पहले जवान नहीं हुए? तुमसे पहले भी बहुत पागल हो चुके हैं। सदियों से पागल होते रहे हैं। क्यों पीछे पड़े हो संसार के? संसार को नहीं बदलना, तो कोई जबरदस्ती है? कि बदल कर ही रहेंगे! कि तुम मानो या न मानो!

हां, कुछ ऐसे लोग होते हैं। मैं जब यात्राएं करता था तो बहुत मुश्किल में पड़ जाता था। आधी रात ट्रेन में लोग चढ़ जाएं। मैं उनसे कह रहा हूं, भाई मुझे सोना है। वे कह रहे हैं, आप सोएं, मगर हमें आपकी सेवा करनी है। वे पैर दबा रहे हैं। मैं उनसे कहता हूं कि तुम पैर दबाओगे तो मैं सोऊंगा कैसे? वे कहते, वह आप जानो, मगर हम तो सेवा करेंगे!

और ऐसा गैर पढ़े-लिखे लोग नहीं, नासमझ लोग नहीं, गांव के ग्रामीण नहीं...

उदयपुर में मैं दोपहर को एक सर्किट हाऊस में सोया। दिन भर का थका हुआ, रात भर यात्रा करके आया। लगा कि कोई खपड़ों पर चढ़ रहा है ऊपर। थोड़ी देर तो मैं टालता रहा कि नींद न टूटे तो अच्छा है। लेकिन फिर ऐसा लगा कि रोशनी भी आनी शुरू हो गई है ऊपर से। तो मैंने आंख खोल कर देखा, तो खपड़ा उठा कर एक सज्जन झांक रहे हैं--जिनको मैं भलीभांति जानता था। वकील थे। पढ़े-लिखे आदमी। हाईकोर्ट के वकील।

मैंने पूछा कि महाराज, आप यहां क्या कर रहे हो?

उन्होंने कहा, आपके दर्शन कर रहा हूं। वे संयोजक लोग आपसे मिलने ही नहीं देते। और मुझे तो मिलना है। तो मैं तो दर्शन करूंगा। अब रोके मुझे कौन रोकता है!

मैंने कहा, यह बात जरूर सही है। अब संयोजकों को पता ही नहीं है कि कोई खपड़े पर चढ़ा हुआ है। मगर मुझे सोने दो।

वे बोले कि आप सोओ, मगर मैं तो दर्शन करूंगा।

अब कोई छाती पर बैठा हो, गिर पड़े, खपड़ा छूट जाए इसके हाथ से और मैं उसके ठीक नीचे सो रहा हूं, वह कह रहा हैः आप तो सोओ, हम दर्शन कर रहे हैं!

ऐसे लोगों से दुनिया भरी है।

तुम क्यों संसार की फिक्र में पड़े हो? पहले अपने को तो बदल लो! अपने को बदल लिया तो बहुत। और संसार को बदलने का वही एकमात्र रास्ता हैः अपने को बदल लो। अपने से शुरू करो बदलाहट। दूसरे को बदलने में न तो तुम सफल हो सकते, क्योंकि दूसरा राजी क्यों होगा तुमसे बदले जाने को? कोई राजी नहीं होता। क्योंकि यह अपमानजनक है कि तुम और किसी को बदलो! तुम हो कौन? बड़े महात्मा! संत पुरुष! बदलने चले आए! जिसको भी बदलोगे वही डंडा लेकर खड़ा हो जाएगा कि मुझे और तुम बदलोगे? अरे मैं ही तुम्हें बदल दूंगा! देखें कौन किसको बदलता है! पहले हो जाए हाथापाई। जो हार जाए वह बदला जाए और जो जीत जाए वह बदले।

बदलने का मजा क्या है?

बदलने का मजा दूसरे को नीचा दिखाना है। यह एक तरकीब है दूसरे को दीन करने की, हीन करने की, कि हम बदलेंगे तुम्हें। तुम अनैतिक हो, हम तुम्हें नैतिक बनाएंगे। तुम चरित्रहीन हो, हम तुम्हें चरित्रवान बनाएंगे। यही तो तुम्हारे महात्मागण कर रहे हैं। यही तो मजा वे ले रहे हैं कि बदलेंगे दुनिया को, धर्म देंगे! जैसे किसी ने ठेका लिया हुआ है किसी और का!

तुम अपने को बदलो, राकेश। उतना ही कर पाओ तो बहुत है। और तुम अगर अपने को बदल लो तो शायद कुछ लोग तुमसे पूछने लगें कि कैसे तुमने अपने को बदला? तुम्हारा दीया जले तो शायद कुछ बुझे हुए लोग अपना दीया जलाने तुम्हारे पास आ जाएं। फिर बात और है। कोई मांगे सलाह तुमसे तो दे देना।

मगर अभी सलाह भी क्या दोगे? अभी अपने को बदलने की कला भी नहीं सीखे, तुम दूसरों को समझाओगे क्या? बताओगे क्या? कैसे उनको बदलोगे? खुद बुझे दीये हो, किसी का दीया जलाओगे क्या?

बेटा है तू शरीफ का, मत मुस्कुरा के चल,
टांगें हैं तेरी बेंत-सी, इनको टिका के चल।
सड़कों की भीड़-भाड़ में, कोहनी बचा के चल,
कालेज के कार्टून, तू नजरें झुका के चल।
लड़की मिले जो राह में, उसको न छेड़ तू,
तुझको परायी क्या पड़ी, अपनी निबेड़ तू।
लाला को अपनी ऊंची हवेली से प्यार है,
माली को अपनी शोख चमेली से प्यार है।
कुढ़ता है क्यों, गुरु को जो चेली से प्यार है,
तुझको भी तो बहन की सहेली से प्यार है।
जो तेरे मन में चोर है, उसको खदेड़ तू,
तुझको परायी क्या पड़ी, अपनी निबेड़ तू।
ओढ़े था तन पे शाल सुदामा, फटा हुआ,
पहने है कोट कल्लू का मामा फटा हुआ।
मत हंस किसी का देख के जामा फटा हुआ।
तेरा भी तो है, देख, पजामा फटा हुआ।
मत दूसरों के सूट की बखिया उधेड़ तू,
तुझको परायी क्या पड़ी, अपनी निबेड़ तू।
रहता है हर घड़ी जो हसीनों की ताक में,
करता है हाय-हाय, जो उनकी फिराक में।
कहता है लड़कियों को जो लैला, मजाक में,
जिसकी वजह से दम है मोहल्ले का नाक में।
अपने तो उस सपूत की चमड़ी उधेड़ तू,
तुझको परायी क्या पड़ी, अपनी निबेड़ तू।
तुकबंदियों पे, यार, न इतना तू नाज कर,
घर में इकट्ठे आज ही म्यूजिक के साज कर।
बुद्धू पड़ोसियों का न बिल्कुल लिहाज कर,
छत पर तमाम रात तू डट के रियाज कर।
तबला बजाए बीबी तो सारंगी छेड़ तू,
तुझको परायी क्या पड़ी, अपनी निबेड़ तू।

ढल जाए क्या गरज तुझे बीबी के रूप से,
मतलब है सिर्फ तुझको तो बच्चों की ट्रूप से।
कब तक इन्हें रिझाएगा कद्दू के सूप से,
कैसे इन्हें बचाएगा कड़की की धूप से।
मत भूल, है खजूर का बेसाया पेड़ तू,
तुझको परायी क्या पड़ी, अपनी निबेड़ तू।
बीबी से और तलाक! मत ऐसा गुनाह कर,
फेरे लिए हैं सात, मत इनको तबाह कर।
कम्मो से तू न खेल, न बिम्मो की चाह कर,
धन्नो यही है तेरी, तू इससे निबाह कर।
अनपढ़ समझ के इसको न घर से खदेड़ तू,
तुझको परायी क्या पड़ी, अपनी निबेड़ तू।

तुम्हें अभी से परायों की चिंता करने की जरूरत नहीं है। अभी ताजे हो विश्वविद्यालय से। जैसे विश्वविद्यालय से कोई निकलता है, बड़ी-बड़ी आकांक्षाएं-अभीप्साएं लेकर निकलता है। ऐसे ही जैसे मैंने सुना है, एक लोमड़ी सुबह-सुबह उठी, चली। सूरज उग रहा था। उगते सूरज के कारण उसकी बड़ी छाया बनी, दूर तक छाया बनी। उसने सोचाः अरे! फूल कर कुप्पा हो गई कि मैं भी कोई छोटी नहीं हूं, इतनी बड़ी हूं! जिसकी छाया इतनी बड़ी उसका मूल कितना बड़ा न होगा! आज तो मुझे कम से कम नाश्ते के लिए एक ऊंट मिलना ही चाहिए। हाथी नहीं तो ऊंट तो चाहिए ही चाहिए। नहीं तो मेरा पेट कैसे भरेगा!

भटकती रही हाथी-ऊंट की तलाश में। दोपहर हो गई, न कोई ऊंट मिला, न कोई हाथी मिला। भूख भी बहुत लग गई थी, नाश्ता भी नहीं हुआ था। भोजन की तो बात ही दूर थी। झुक कर फिर एक बार देखा छाया को। सूरज ऊपर आ गया था, छाया सिकुड़ कर बिल्कुल नीचे हो गई थी। लोमड़ी ने कहाः अरे! अब तो एक चींटी भी मिल जाए तो काम चल जाएगा।

जैसे समझ थोड़ी बढ़ेगी और सूरज जब ऊपर आएगा, तब तुम ख्याल कर पाओगे कि जवानी में बड़ी लंबी छाया बनती है और बड़ी आकांक्षाएं उठती हैं, बड़े ख्याल उठते हैं--ऐसा करूं, वैसा करूं! अब तुम कह रहे हो कि संसार को बदलने की बड़ी इच्छा है।

ऐसी झंझटों में न पड़ो।

तुझको परायी क्या पड़ी, अपनी निबेड़ तू!

तुम अपने को बदल लो। समय रहते अपने को बदल लो। अभी यह जो शक्ति बन रही है संसार को बदलने की आकांक्षा, इसको अपने पर लौटा लो।

तुम कहते होः "इस महान कार्य के लिए शहीद भी होना पड़े तो मैं तैयार हूं, सहर्ष तैयार हूं। मार्गदर्शन दीजिए।"

एक बात तुमसे साफ कह दूं, राकेश, शहीदों वगैरह में मेरी कोई उत्सुकता नहीं है। मैं तो शहीद होने की जो आकांक्षा है, उसको आत्महत्या की ही आकांक्षा कहता हूं। वह तो आत्महत्या करने का ही जरा सुंदर ढंग है--जरा शैली से, जरा होशियारी से। मगर वह आत्महत्या का ही ढंग है। कुछ लोग यूं ही आत्महत्या कर लेते हैं और कुछ लोग जरा तरकीब से करते हैं, आड़ लेकर करते हैं। आड़ लेकर आत्महत्या करने वाले शहीद हो जाते हैं।

लेकिन तुम्हारे मन में शहीद होने की इच्छा क्यों पैदा हो रही है? अभी जीए भी नहीं। अभी जीवन जाना भी नहीं। अभी जीवन से परिचित भी नहीं हुए और मरने की इच्छा? शायद तुमने सुना होगा कि शहीदों की चिताओं पर जुड़ेंगे हर बरस मेले, मरने वालों का यही बाकी निशां होगा! अहंकार खुश हो रहा होगा कि अरे मजा आ जाएगा, हजारों के मेले जुड़ेंगे!

कहीं जुड़ते करते नहीं हैं। वह भ्रांति में मत पड़ो। कौन पूछता है शहीदों को? भगतसिंह की चिता पर कितने मेले जुड़ रहे हैं? चंद्रशेखर की चिता पर कितने मेले जुड़ रहे हैं? कितने शहीद हुए! अगर सब शहीदों की चिताओं पर मेले जुड़ें तो साल भर मेले ही जुड़ते रहें, फिर और कोई काम ही नहीं हो सकता।

मेले जुड़ते हैं नेताओं के इर्द-गिर्द, कुर्सियों के इर्द-गिर्द। मेले जुड़ते हैं दिल्ली में। कहां तुम शहीद होने के चक्कर में पड़े हो? ऐसी बातों में मत फंस जाना। यही नेतागण लोगों को समझाते रहते हैं। नेतागण लोगों को समझाते हैंः सेवा करो! सेवा करो, मतलब उनकी सेवा करो! स्वयं-सेवक बनो। स्वयं-सेवक बनो, मतलब नेताजी भाषण करें तो तुम फट्टी इत्यादि बिछाओ और उठाओ। और नेताजी कहते हैं कि शहीद हो जाओ, क्योंकि शहीदों की चिताओं पर जुड़ेंगे हर बरस मेले! अब मरने के बाद तुम तो लौटोगे नहीं, मेला-वेला कुछ जुड़ेगा नहीं, फिर कर भी क्या लोगे? कोई मुकदमा थोड़े ही चलाने आओगे। मगर यह अहंकार मन में पलता है।

मौत की आकांक्षा कोई शुभ आकांक्षा नहीं है, चाहे वह किसी बहाने से हो। ये भ्रांतियां छोड़ो। शहीद वगैरह होना हो तो कहीं और। मैं तो यहां जीना सिखाता हूं। और जो जीना जानता है वही मरना जानता है। जीने की कला और मरने की कला में भेद नहीं है, वे एक ही कला के दो पहलू हैं।

कंधे पर लदे बैताल ने
विक्रमादित्य से कहा--"राजन!
मेरे एक प्रश्न का उत्तर दो
अन्यथा तुम्हारा सर धड़ से अलग हो जाएगा
तुम्हारा अस्तित्व हमेशा के लिए खो जाएगा।
आज मैंने अखबार में पढ़ा
एक महिला, जिसका पति
देवता होकर आदमी की तरह जीया
इसी अपराध पर
किसी ने उसे सम्मान नहीं दिया,
गले में सदाचार का ताबीज लटकता रहा
इसीलिए मास्टर बन कर दर-ब-दर भटकता रहा,
हर साल करता रहा गायत्री का जाप
हर साल बनता रहा लड़कियों का बाप
इस साल बजरंग का पांव छुआ
तो उसकी पत्नी को पत्थर का टुकड़ा हुआ,
इसका क्या कारण है?"

विक्रमादित्य चौंका,
बीड़ी का जोरदार कश लिया
और उसके प्रश्न का उत्तर यों दिया--
"सुन बैताल!
उस औरत के पूर्वजन्म का हाल,
वो औरत एक शहीद की मां थी
देश-भक्ति की परंपरा उसके यहां थी
जीवन भर सैनिकों की वर्दियां सीती रही
बेटे को शहीद देखने की कामना में जीती रही;
खून को देती रही पसीने का कर्ज
बढ़ता रहा देश-भक्ति का मर्ज
मेघदूत युद्ध का संदेश लाया
संगीनों ने आषाढ़ गाया
बेटा सरहदों पर सर बो गया
इतिहास की गुमनाम वादियों में हमेशा के लिए खो गया।

मां अपने सौभाग्य पर मुस्कुराती रही
बेटे की तस्वीर को फौजी लिबास पहनाती रही,
रोज पढ़ती रही अखबार
ढूंढती रही बेटे के शहीद होने का समाचार,
नेताओं की आदमकद तस्वीरें हंसती रहीं
इतिहास में शासक को जगह मिलती है
शहीदों को नहीं!

जो इतिहास के पन्ने सीते हैं
वो इतिहास पर नहीं, सुई की नोक पर जीते हैं,
भूगोल होता है जिनके रक्त से रंगीन
उनके बच्चों को मयस्सर नहीं
दो गज जमीन,
शहादत कहां तक अपना लहू पीती रही
केवल शहीद को जन्म देने के लिए
जीती रही,
स्वर्ण अक्षरों में लिखा गया उनका नाम
जो बेचते रहे शहीदों का खून
बढ़ाते रहे चीजों के दाम,

इत्र में नहाते रहे
शहीदों के खून की खुशबू छुपाते रहे,
कुर्सी-पुत्रों ने बड़े कष्ट झेले
शहीदों की लाशें सरहदों पर पड़ी रहीं नंगी
और इनके बंगलों पर लगे रहे मेले,
वो उधर कफन को तरसते रहे
इन पर गुलाबों के फूल बरसते रहे,
पूरे दो मिनट तक खड़े रहे मौन
पी.ए.से पूछते रहे--आखिर मर गया कौन?

पी.ए.बोला--मुझसे पूछते हैं आप
इसी दिन तो मरे थे आपके बाप।
हम तो उन्हीं का मातम मना रहे हैं
लगे हाथ शहीदों को भी निपटा रहे हैं।
आप भी आंसुओं का रिजर्व स्टाक निकालिए
एक शहीद स्मारक की घोषणा कर डालिए
आपकी बिल्डिंग अधूरी पड़ी है
जनता चंदा लेकर खड़ी है
क्या इरादा है आपका
शहीद मरने के बाद भी होता है सवा लाख का,
सिर्फ कहने को समाधि में सोता है
वरना शताब्दियों तक हमारा बोझ ढोता है
आज्ञा दीजिए
किस शहीद को जगाऊं
या अपनी फाइलों से एक नया शहीद बनाऊं?
जिसका बलिदान हमारे लिए चंदा उगाए
और हर चुनाव में स्टेच्यु बन कर खड़ा हो जाए।

तो सुन बैताल!
आगे का हाल
शहीद स्मारक के लिए किए गए चंदे
मगर ये आसमान से उतरे हुए
ईश्वर के बंदे
चंदे की थैलियां भी ले गए
शिलान्यास का खाली पत्थर दे गए

मां जिसे छाती से लगाकर सो गई
खुद शहीद का स्मारक हो गई
ममता ने उसी का बदला लिया है
सीमा पर लड़ने के लिए शहीद नहीं
शिलान्यास का पत्थर दिया है।"

छोड़ो पागलपन। शहीद वगैरह होने का कोई न तो कारण है, न कोई जरूरत है। जीओ! जीने की कला सीखो! भरपूर जीओ! ईश्वर को जीओ! प्रेम को जीओ! आनंद को जीओ! ऐसे जीओ कि तुम्हारे जीने की लपट औरों के जीवन में भी रोशनी बन जाए।

मगर संसार को बदलने की आकांक्षा अच्छी आकांक्षा नहीं। इसको मैं दुष्ट आकांक्षा मानता हूं। यह शैतानी आकांक्षा है। हां, संसार बदल जाए तुम्हारे जीने के ढंग से, तुम्हारी हवा में बह जाए, वह बात और है, गौण है। परोक्ष में हो, प्रत्यक्ष नहीं। किसी की न सेवा करनी है, न किसी को बदलना है, न किसी को आचरण देना है। जीना है स्वयं! फिर उस जीने से अगर सुगंध उठे और लोगों के नासापुट उस सुगंध से भर जाएं--शुभ है।

आज इतना ही।

चौदहवां प्रवचन

तथाता और विद्रोह

पहला प्रश्नः ओशो, आप कहते हैं कि धर्म स्वीकार है, तथाता है। और आप यह भी कहते हैं कि धर्म विद्रोह है। धर्म एक साथ तथाता और विद्रोह दोनों कैसे है?

आनंद मैत्रेय, धर्म स्वीकार है--स्वभाव का; और विद्रोह है--उस सबसे, जो स्वभाव पर जबरदस्ती आरोपित किया गया है।

धर्म है तथाता--अपनी निजता की; और विद्रोह है--उस सबसे, जो दूसरों ने तुम्हारे ऊपर थोप दिया है।

धर्म है तथाता--चैतन्य के संबंध में; और विद्रोह है--समाज से, परंपरा से, रूढ़ि से, संस्कारों से।

जैसे ही बच्चा पैदा होता है, समाज उसे अपने रंग-ढंग में ढालना शुरू कर देता है। कोई चिंता नहीं करता उसके स्वभाव की; किसी को फिक्र नहीं है कि वह जुही होने को है, कि गुलाब, कि चंपा, कि कमल। किसी को फिक्र नहीं है--वह प्रार्थना से परमात्मा को जान सकेगा या ध्यान से? कृष्ण उसे भाएंगे कि बुद्ध? सूफियों का रास्ता उसके मन को आनंद देगा कि झेन का रास्ता? योग उसके अनुकूल होगा या प्रतिकूल? किसी को चिंता नहीं है उसके स्वरूप की। चिंता है इस बात की कि मैं जो मानता हूं, चाहे मेरे मानने से मुझे भी कुछ न हुआ हो, मगर वही इस छोटे से नये आए हुए जगत में सुकुमार स्वरूप पर आरोपित कर दूं, थोप दूं। तो हिंदू घर में पैदा होगा तो उसे हिंदू होना ही पड़ेगा और जैन घर में पैदा होगा तो जैन होना ही पड़ेगा। यह इस जगत में चल रही सबसे बड़ी ज्यादती है।

धर्म जन्म से नहीं मिलता। धर्म की तो प्रत्येक व्यक्ति को जिज्ञासा करनी होती है; खोजना होता है धर्म। दुनिया से धर्म खो गया है, क्योंकि हम खोजने ही नहीं देते किसी को। हम नकली धर्म पहले ही पकड़ा देते हैं। और नकली मैं उसको कहता हूं, जिसको दूसरे तुम्हें पकड़ा दें; जिसे तुमने न चाहा हो; जो तुम्हारी अभीप्सा न हो; जिसके कारण तुम्हारा हृदय न नाचा हो; जिसकी सुगंध से तुम आनंदमग्न न हो गए हो। वह धर्म थोथा है, झूठा है; किसी और के लिए सच्चा रहा होगा, तुम्हारे लिए सच्चा नहीं है।

मैं ऐसे लोगों को जानता हूं जिनके लिए भक्ति रास आएगी, मगर संयोगवशात वे ऐसे घरों में पैदा हुए जहां भक्ति की कोई संभावना नहीं है। जैन घर में पैदा हुआ कोई, वहां भक्ति का कोई उपाय नहीं है, वहां भक्ति का कोई अर्थ ही नहीं है। वह शुद्ध ज्ञान का मार्ग है। और मैं ऐसे लोगों को जानता हूं, जिन्हें ज्ञान का मार्ग ही पहुंचा सकता है। मगर वे किसी भक्त संप्रदाय में पैदा हुए हैं--वल्लभ संप्रदाय में पैदा हुए हैं या रामानुज संप्रदाय में पैदा हुए हैं। तो वे जीवन भर करते रहेंगे पूजा-पाठ, तालमेल उनका बैठेगा नहीं; प्राण उनके दूर-दूर रहेंगे, अछूते रह जाएंगे। पूजा भी चलती रहेगी और पूजा कभी होगी भी नहीं। क्योंकि पूजा ऐसे थोड़े ही होती है। तुम्हारे अंतर्जगत से आविर्भूत होनी चाहिए।

जैसे हम पुराने समय में--और अब भी इस देश में--बाल-विवाह कर देते थे, मां-बाप तय कर देते थे कि किस लड़की से तुम्हारा विवाह हो, किस लड़के से तुम्हारा विवाह हो। न तो लड़की से पूछा जाता, न लड़के से। जिनको जीना है साथ-साथ, उनको छोड़ कर और सबसे पूछा जाता--पंडित से, पुरोहित से, ज्योतिषी से। और सब बातों की चिंता ली जाती--कि जिस परिवार की लड़की है, वह कुलीन है या नहीं? उस परिवार की प्रतिष्ठा

है या नहीं? उस परिवार के पास धन है या नहीं? और सब बातें देखी जातीं, एक बात भर छोड़ दी जाती--कि ये दो व्यक्ति जिनको हम साथ-साथ बांधे दे रहे हैं, एक-दूसरे के लिए बने भी हैं या नहीं? यह कौन तय करे? यह कैसे तय हो? इसीलिए बाल-विवाह कर देते थे। क्योंकि अगर ये युवक हो गए तो विद्रोह करेंगे। ये कहेंगे, यह लड़की तो मुझे रास आती नहीं; यह लड़का तो मुझे जमता नहीं। फिर अड़चन होगी। इसलिए बाल-विवाह कर दो।

जैसा बाल-विवाह था, ऐसे ही तुम्हारा धर्म के संबंध में भी बाल-विवाह किया गया है।

मेरी दृष्टि में, जब तक तुम वयस्क न हो जाओ... राजनीति में भी वोट देना हो तो इक्कीस वर्ष की उम्र चाहिए। राजनीति जैसी मूढ़तापूर्ण दुनिया में भी इक्कीस वर्ष का अनुभवी व्यक्ति चाहिए, तो धर्म के जगत में तो कम से कम बयालीस साल! तो मुक्ति से खोजने दो। मेरे हिसाब से बयालीस साल की उम्र तक आते-आते व्यक्ति इस योग्य होता है कि तय कर पाए। जीवन के कड़वे-मीठे अनुभव, भूल-चूकें, भटकना, फिर लौटना, प्रयोग, बहुत से प्रयोग--ऐसे धीरे-धीरे निचोड़ पाता है सार को--कि अब मैं कहां जाऊं! कौन मंदिर मेरा मंदिर है! कौन सा मंदिर मेरी मधुशाला बनेगा! कहां मैं मस्त हो जाऊंगा! कहां उठेगी महक मेरे जीवन में!

जब तक कोई व्यक्ति स्वयं नहीं खोजता, तब तक उस पर हम जो भी थोप दें... और हम बड़ी अच्छी भावना से ही थोपते हैं। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि मां-बाप की कोई बुरी भावना होती है। मगर अच्छी भावनाओं से नरक का रास्ता पटा हुआ है। अच्छी भावनाओं से क्या होता है? दृष्टि ही नहीं है। अंधे हो, अच्छी भावना क्या करेगी? तुम्हारे मां-बाप तुम पर थोप गए, उनके मां-बाप उन पर थोप गए थे। तुम अपने बच्चों पर थोप जाओगे, वे अपने बच्चों पर थोप देंगे। कोई इसकी चिंता नहीं करेगा कि तुम्हारे मां-बाप के जीवन में धर्म की कोई बात थी? धर्म का कोई संगीत था? धर्म का कोई उत्सव था? जब उनके जीवन में न था, तो तुम्हारे ऊपर वे थोप गए; जिंदगी भर वे ढोते रहे बोझ, अब तुम ढोओ बोझ। और जब तुम थक जाओ तो अपने बच्चों की छाती पर चढ़ा जाना इस बोझ को और ढोते रहना, क्योंकि मां-बाप ढोते रहे।

धर्म पैदाइश से नहीं मिलता, इसलिए बगावत की जरूरत पड़ती है। रूढ़ि से बगावत करनी होगी, परंपरा से बगावत करनी होगी--तभी तुम धर्म को पा सकोगे। सोचो कि बुद्ध अगर हिंदू ही रह गए होते--पैदा तो हिंदू घर में हुए थे--तो दुनिया वंचित हो जाती, एक महत संपदा से वंचित हो जाती! सोचो कि जीसस अगर यहूदी ही रह गए होते--मां-बाप तो यहूदी थे--तो दुनिया, जीसस ने जो दान दिया जगत को, उसकी कल्पना करो, दुनिया कितनी दरिद्र रह गई होती! मोहम्मद तो मूर्ति-पूजक घर में पैदा हुए थे, लेकिन इस्लाम ने जो निराकार की तरफ हाथ उठाए, वे कभी न उठते, अगर मोहम्मद अपने मां-बाप से राजी हो गए होते।

इस जगत में जो भी श्रेष्ठ पैदा हुआ है वह बगावत से पैदा हुआ है। बगावत किससे? बगावत उस सबसे जो तुम पर थोपा गया है। वह कितना ही सुंदर लगता हो, वह कितना ही रंगीन हो, मगर जो थोपा गया है वह मिथ्या है। तुम्हें अपने स्वरूप की खोज करनी होगी। तुम्हें अपने भीतर उतरना ही होगा, खोदना ही होगा। तुम्हें अपने जलस्रोत तलाशने ही होंगे।

यह जरा दुस्तर कार्य है। इसलिए बहुत थोड़े से लोग इस यात्रा पर निकलते हैं। कौन झंझट करे! मान लेते हैं, जो दूसरे कहते हैं वही मान लेते हैं। इस मान लेने में धर्म नहीं है। इस मान लेने में धर्म से बचने का उपाय है। इतने लोग आस्तिक हैं जितने लोग मंदिर, मस्जिदों, गिरजों और गुरुद्वारों में जाते हैं? अगर इतने लोग आस्तिक होते तो पृथ्वी की यह दशा होती? इतनी आस्तिकता और पृथ्वी ऐसा नरक होती? इतने मंदिर, इतने मस्जिद, इतने गिरजे, इतने गुरुद्वारे, इतने दीप, इतने नैवेद्य, इतने आराधन, इतने पंडित, इतने पुजारी, इतने पुरोहित--

परिणाम क्या है? जरूर कहीं कुछ गलत हो रहा है, कहीं मौलिक रूप से गलत हो रहा है, कहीं जड़-मूल से क्रांति की जरूरत है।

मेरे देखे, जो सबसे बुनियादी भूल हो रही है, वह भूल हैः हम धर्म को थोप रहे हैं। और सभी धर्मगुरु बड़े उत्सुक होते हैं कि बच्चों को जल्दी से जल्दी थोप दो, यहूदी बना लो, ईसाई बना लो, हिंदू बना लो। कहीं ऐसा न हो कि बच्चे में समझ आ जाए! खुद सोचने लगे, इसके पहले उसकी खोपड़ी में भर दो जो तुम्हें भरना है। सोचने के पहले, विचारने के पहले। उसे मौका मत दो। क्योंकि कौन जाने सोच-विचार करे तो कहां जाए! क्या करे! फिर मुश्किल हो जाएगा। इसलिए जल्दी से पैरों में जंजीर बांध दो, हाथों में हथकड़ियां पहना दो। हां, हथकड़ियों को कहना आभूषण हैं। जंजीरों को कहना, कितनी प्यारी हैं! वेद की ऋचाएं लिख देना जंजीरों पर। कुरान की आयतें खोद देना जंजीरों पर। सोने से मढ़ देना। हीरे-जवाहरात जड़ देना। खूब बहुमूल्य बना देना जंजीरों को, ताकि खुद भी छोड़ना चाहे तो न छोड़ सके। घबड़ाए, डरे--इतनी बहुमूल्य चीजें छोड़ी जाती हैं कहीं! और फिर बाप-दादे मानते रहे सदियों-सदियों से, जरूर सच होगा, जरूर कुछ सच होगा। इतने लोग इतने दिन तक क्या झूठ को मानते रह सकते हैं?

और मैं नहीं कहता कि झूठ है; किसी के लिए सच रहा होगा। इस मौलिक सत्य को स्मरण रखोः जो किसी के लिए सत्य है, जरूरी नहीं कि तुम्हारे लिए सत्य हो। मेरा सत्य जरूरी नहीं कि तुम्हारे लिए सत्य हो। जो मेरे लिए अमृत है, तुम्हारे लिए जहर हो सकता है। जो तुम्हारे लिए अमृत है, मेरे लिए जहर हो सकता है। जो औषधि एक मरीज के काम की है, वह सभी के काम की नहीं है। हरेक की बीमारी अलग है। हरेक को औषधि भी अलग चाहिए। लेकिन हम रामबाण औषधियों में भरोसा करते हैं कि बस एक ही औषधि सब में काम कर जाएगी।

कोई औषधि नहीं है ऐसी पृथ्वी पर, जो सभी बीमारियों में काम कर जाए। और कोई जीवन-सूत्र ऐसा नहीं है जो सभी के काम आ जाए। भिन्न-भिन्न तरह के लोग हैं। दुनिया में बड़ा वैविध्य है। और वैविध्य है, इसलिए दुनिया इतनी सुंदर है। वैविध्य है, इतना दुनिया में रस है। इतने फूल खिले हैं बगिया में! जरा सोचो तो, गुलाब ही गुलाब होते तो क्या करते? भैंसों को चराते। करते क्या गुलाब ही गुलाब होते? गुलाब की कोई कीमत होती? नहीं, बहुत ढंग के फूल हैं। इसलिए जगत रंगीन है, सतरंगा है, इंद्रधनुष है।

ऐसे ही मनुष्य भी भिन्न-भिन्न हैं। दो मनुष्य एक जैसे मिले तुम्हें कभी? दो जुड़वां भाई भी एक जैसे नहीं होते, उनमें भी थोड़ा फर्क होता है। शायद अजनबियों को न पहचान में आता हो, लेकिन मां तो पहचानती है। घर के लोग जानते हैं कि कौन कौन है। लाख एक जैसे हों, फिर भी बिल्कुल एक जैसे नहीं होते। थोड़ा न बहुत फासला होता है। दो व्यक्ति एक जैसे होते ही नहीं। बुद्धि-भेद होगा। प्रतिभा का भेद होगा। जब दो व्यक्ति एक जैसे नहीं होते तो दो व्यक्तियों को एक जैसी जीवन-व्यवस्था नहीं दी जा सकती।

फिर क्या किया जाए? अगर सम्यकरूपेण हम समाज को नियोजित करना चाहते हों तो हमें व्यवस्था न देनी चाहिए, होश देना चाहिए, सोच-विचार की क्षमता देनी चाहिए। विश्वास नहीं देना चाहिए, विवेक देना चाहिए। अभी तक हम विश्वास देते रहे। हम बच्चों से कहते हैंः मानो। भरोसा करो। हम कहते हैं, इसलिए मानो। मैं तुम्हारा पिता हूं, इसलिए मानो।

पिता होने से थोड़े ही कुछ प्रयोजन है। तुम पिता हो, इससे यह अर्थ नहीं होता कि तुम्हें यह अधिकार है कि तुम अपने बच्चे पर अपनी धारणाओं को थोप दो। फिर तो कल कम्युनिस्ट बाप कहेगा कि तू कम्युनिस्ट हो,

क्योंकि मैं पिता हूं। कांग्रेसी बाप कहेगा, तू कांग्रेसी हो, क्योंकि मैं पिता हूं। फिर तो बड़ी मुश्किल खड़ी हो जाएगी। फिर तो बड़ी अड़चन खड़ी हो जाएगी। अपनी धारणाएं तुम बच्चों पर थोपोगे।

नहीं, बच्चों को अगर तुम सच में प्रेम करते हो तो उनको इस योग्य बनाओ, उनको इतनी क्षमता दो सोच की, विचार की; विवेक दो, इतना बोध दो, इतना चैतन्य दो, इतनी जागरूकता दो कि वे अपने जीवन में मार्ग खोज सकें। खोज सकें--किस घाट से मुझे उतरना है? खोज सकें--किस नाव में मुझे यात्रा करनी है? उनको इतना सबल बनाओ कि अगर वे समझें कि नाव से जाना नहीं, तैरना है, तो तैर कर भी जा सकें।

लेकिन हम विश्वास देते हैं। विश्वास कचरा है। विश्वास का अर्थ होता हैः विवेक की हत्या, बोध का विनाश। बोध को अंकुरित ही नहीं होने देना चाहते। और छोटा बच्चा असहाय होता है, तुम पर निर्भर होता है। तुम जो मनवाओगे, मानेगा। तुम जो करवाओगे, वही करेगा। जानता है कि तुम्हारे बिना जी नहीं सकता। तुम इस मौके का दुरुपयोग कर रहे हो। तुम बच्चे के साथ ज्यादती कर रहे हो। तुम शोषण कर रहे हो उसकी असहाय अवस्था का। इसलिए बगावत।

आनंद मैत्रेय, तुम पूछते हो कि आप कहते हैं धर्म स्वीकार है, तथाता है और यह भी कहते हैं कि धर्म विद्रोह है।

हां, दोनों है। तथाता है--अपने स्वभाव के प्रति और विद्रोह है--उस सबके प्रति, जो स्वभाव नहीं है तुम्हारा, लेकिन दूसरे तुम पर थोप गए हैं। वे कोई भी हों--माता हों, पिता हों, परिवार-जन हों, शिक्षक हों, अध्यापक हों, पुरोहित हों, पंडित हों, धर्मगुरु हों--वे कोई भी हों, जो तुम पर थोप गए हैं उस सब कचरे को हटा देना जरूरी है। उसको तुम हटा सको तो ही तुम्हारी आंख शुद्ध हो, तुममें देखने की क्षमता आए। तुम मुक्त भाव से विचार कर सको, तलाश कर सको।

परमात्मा को खोजना होता है, मानना नहीं होता। मानने वाले कभी उसे पाते नहीं। जिसने माना उसने गंवाया। अगर पाना हो तो मानना मत। मानना नपुंसकता का लक्षण है। मानने का मतलब यह है कि कौन झंझट करे, हम तो ऐसे ही मान लेते हैं।

और चीजें तुम ऐसे ही नहीं मान लेते। तुम अगर भिखमंगे हो और मैं कहूं कि नहीं, तुम भिखमंगे नहीं हो, तुम तो सम्राट हो, मान लो। तुम नहीं मानते। तुम कहते होः ऐसे कैसे मान लें? बैठे हैं सड़क पर, हाथ में भिक्षापात्र लिए, वह भी टूटा-फूटा, भीख मांग रहे हैं। भीख तो आप देते नहीं, उलटा कहते हो--तुम सम्राट हो, मान लो। ऐसे कैसे मान लें? और मैं मान लूंगा तो क्या होता है? अभी भोजन मुझे खरीदना है, दुकान वाला तो नहीं मानेगा। वह कहेगा पैसे लाओ।

लेकिन जिनको ईश्वर का कोई पता नहीं है, उन भिखमंगों को तुमने समझा दिया है, मनवा दिया है कि ईश्वर है, मान लो। जिनको आत्मा का कुछ पता नहीं है, उनको पिला दिया है, मां के दूध के साथ घोंट-घोंट कर पिला दिए हैं शास्त्र, कि मान लो आत्मा है।

और यही बात नास्तिक देशों में की जा रही है। कोई भेद नहीं है। रूस में, चीन में अब यह समझाया जा रहा है कि न कोई परमात्मा है, न कोई आत्मा है। तुम जो बच्चों को पिला दो! अब यह पिलाया जा रहा है। बच्चे इसी को पी रहे हैं। बच्चे तो मुसीबत में हैं। जो पिलाओगे, वही पीएंगे। बच्चे कर भी क्या सकते हैं? बच्चों को धोखा देने के लिए देखा, माताएं बाजार से रबर के धोखे खरीद लाती हैं--चुसनी। अब गरीब बेटा, उसको कुछ पता नहीं, वह झूले में पड़ा है। उसको भूख लगी, वह रोता है, उसके मुंह में चुसनी थमा दी। वह गरीब रबर को ही चूसता रहता है।

तुम्हारे विश्वास चुसनी हैं, इनमें से कुछ निकलेगा नहीं। चूसो कितना ही, थक जाओगे, और कुछ भी नहीं होगा। मगर छोड़ते भी न बनेगा, क्योंकि जो पकड़ा गए उनके प्रति अनादर होता मालूम होता है। जो पकड़ा गए उनका तुम पर इतना प्रेम था कि गलत कैसे पकड़ा जाएंगे! वह तो यही बड़ी अच्छी बात है कि बच्चे बड़े होकर चुसनियां छोड़ देते हैं। नहीं तो कहें कि हमारे बाप-दादे दे गए, ऐसे छोड़ सकते हैं? तो तुम जगह-जगह लोगों को देखोगे चुसनियां लगाए चले जा रहे हैं! मगर चुसनियों की आदत पड़ जाती है, वह नहीं छूटती। तो कोई पान चबा रहा है, कोई तंबाकू चबा रहा है, कोई सिगरेट पी रहा है। ये सब चुसनियों के परिपूरक हैं।

तुम मनोवैज्ञानिकों से पूछो। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि जब तक हम बच्चों को चुसनियां पकड़ाते रहेंगे, तब तक दुनिया से तंबाकू और पान और सिगरेट इस तरह की चीजें मिटाई नहीं जा सकतीं। कुछ न कुछ मुंह में चाहिए बच्चे को। चुसनी तो दबा नहीं सकता, क्योंकि लोग क्या कहेंगे! तो बड़ों के लिए हमने जरा और तरह की चुसनियां बना ली हैं, जो और घातक हैं। चुसनी तो बिल्कुल निर्दोष है। कुछ मिलेगा नहीं, यह ठीक है; मगर कम से कम जहर तो नहीं फैलेगा शरीर में। लेकिन तंबाकू चबा रहे हैं! तंबाकू भी कोई चबाने जैसी चीज है? लेकिन अभ्यास तो तुम जिस चीज का कर लो। लोग धुआं पी रहे हैं। जैसे शुद्ध हवा पीते-पीते बिल्कुल थक गए हैं! क्या प्राणायाम की तरकीब निकाली है तुमने! ये सब चुसनियां हैं।

मेरे पास अगर कोई आकर पूछता है कि मैं सिगरेट कैसे छोडूं? तो मैं उसको कहता हूं कि छोड़ने का एक ही उपाय है। और मैंने बहुत लोगों की सिगरेट छुड़वाई है। सिगरेट छुड़वाने में मेरी कोई आकांक्षा नहीं कि कोई छोड़े। क्योंकि मैं यह नहीं मानता कि सिगरेट पीने वाला नरक जाएगा। सिगरेट पीने में कोई पाप मुझे नहीं दिखाई पड़ता। बुद्धूपन तो है, मगर पाप बिल्कुल नहीं है! अब बुद्धू तो यहीं नरक बहुत भोग रहे हैं, अब इनको और क्या नरक भेजना! ये तो वैसे ही काफी तकलीफ पा रहे हैं, अब इनको और क्या तकलीफ देनी! मरों को क्या मारना!

तो मेरा तो मानना है कि सब बुद्धू स्वर्ग जाएंगे। क्योंकि काफी कष्ट वे यहीं उठा ले रहे हैं, अपने हाथ से उठा ले रहे हैं, इनके लिए और शैतान वगैरह का इंतजाम करने की क्या जरूरत है? ये तो यहीं अपने को जलाए ले रहे हैं, खाक किए ले रहे हैं अपने सीने को। अब इनके लिए और नरक में चूल्हा जलाओ और उसके ऊपर कड़ाही चढ़ाओ! तेल की वैसे ही कमी है, और उसमें फिर इनको पकाओ पकौड़ों की तरह! ये तो खुद ही अपने को पका रहे हैं, क्या इन बेचारों को कष्ट देना! ये तो शैतान का काम खुद किए दे रहे हैं। ये तो अपने दुश्मन खुद हैं।

मैंने तो सुना है यह कि जो भी आदमी मरते हैं, अगर वे नरक पहुंचते हैं तो पहला सवाल यही पूछा जाता हैः कहां से आ रहे? अगर वे कहते हैं पृथ्वी से, तो वे कहते हैंः स्वर्ग जाओ। नरक तुम भोग चुके, अब यहां किसलिए आए हो? तुमने देख लिया नरक, अब और क्या देखने को बचा है?

मूढ़ता तो है, पाप नहीं। इसलिए अगर कोई मुझसे पूछता है तो ही मैं सलाह देता हूं, अन्यथा मैं नहीं कहता कि सिगरेट छोड़ो। अभी जिंदगी में और बड़ी-बड़ी चीजें हैं जो तुम पकड़े हुए हो, वे छुड़ाने की हैं। सिगरेट-विगरेट छुड़ाने से क्या होगा? और सिगरेट छोड़ दोगे तो क्या फर्क पड़ता है, कुछ और पकड़ लोगे। क्योंकि अगर मूल जड़ कहीं और है, तो बीमारी इधर से बदल कर दूसरी तरफ से प्रकट होनी शुरू हो जाएगी।

स्त्रियां--कम से कम भारत में--सिगरेट नहीं पीतीं। अशोभन माना जाएगा--स्त्री की लज्जा! पुरुष ही समझाते रहे उनको। खुद तो मजा लेते रहे जिस-जिस चीज का लेना है, स्त्रियों को समझाते रहे कि तुम सती हो, सीता हो, सावित्री हो! अब सीता मैया सिगरेट पीएं, जंचेगा? मर्द बच्चों की बात और है। यह पुरुष ही समझाते

रहे और स्त्रियां समझती रहीं। न उनको पढ़ने दिया, न लिखने दिया, न सोचने दिया, न समझने दिया। तो जो समझाया वह उन्होंने मान लिया। मगर वे भी बदला लेती हैं। बदला लेती हैं वे भी फिर, जान के पीछे पड़ी रहती हैं पुरुषों के, कि सिगरेट बंद करो! कि यह क्या लगा रखा है पीना सिगरेट का? मुंह से बास आती है। वे भी जान खाती हैं। खाएंगी ही। क्योंकि तुमने उनकी स्वतंत्रता छीनी, उसका बदला वे भी लेंगी परोक्षरूपेण। वे भी तुम्हें सताएंगी।

स्त्रियां सिगरेट नहीं पीतीं तो वे बकवास करती हैं। मुंह चलाना तो पड़ेगा ही न!

मैंने सुना, एक बस एक शराबघर के सामने रुकी। बड़ी लंबी बस! ड्राइवर उतरा और उसने आकर शराबघर के मालिक को कहा कि तुम्हें थोड़ी अड़चन तो होगी। ये बस में साठ लोग हैं, ये सब बहरे हैं और गूंगे हैं। ये बहरे-गूंगों के आश्रम के निवासी हैं। इनको हम नगर घुमाने आए थे। ये सब कह रहे हैं कि थोड़ी शराब चख लें। इन बेचारों को मौका भी कभी मिला नहीं। एक अवसर मिल गया है बाहर आने का, तो थोड़ी-थोड़ी सबको पिला दो। मगर ये बोल नहीं सकते, सुन भी नहीं सकते, तो तुम इनके इशारे समझ लो। अगर कोई बायां हाथ उठा कर कहे तो समझना कि वह व्हिस्की मांग रहा है, अगर दायां हाथ उठा कर कहे तो समझना कि बियर मांग रहा है। इस तरह उसने सब प्रतीक बता दिए। साठ आदमियों को छोड़ना, इतना बड़ा नुकसान उठाने के लिए मालिक भी राजी नहीं था। और फिर दया भी आई उसे। उसने कहा कि नहीं, ले आओ, कोई हर्जा नहीं।

सब ठीक-ठाक चला। सबके इशारे उसने समझ कर सबकी सेवा की जितनी बन सकी। फिर पांच-सात उनमें से उठ कर आकर बिल्कुल उसके काउंटर के पास खड़े हो गए और एकदम मुंह खोलें और बंद करें। तो वह थोड़ा घबड़ाया कि यह क्या कह रहे हैं, क्योंकि यह तो उसने, ड्राइवर ने बताया नहीं था--मुंह खोलना और बंद करना! और थोड़ी उसे बेचैनी भी होने लगी कि ये बेचारे कह क्या रहे हैं--मुंह खोलना, बंद करना! मगर यह प्रतीक उसे मालूम भी नहीं था तो वह जरा टाला भी कि कौन बकवास करे, अब फिर जाकर ड्राइवर से पूछो! मगर थोड़ी देर में देखा कि पांच सात और आ गए। और वे तो खड़े ही हैं। अब चौदह-पंद्रह हो गए। तो उसे और जरा घबराहट होने लगी। फिर तो उसने देखा कि वे साठ के साठ खड़े हो गए घेर कर काउंटर और सब मुंह खोलें और मुंह बंद करें। वह भागा, उसने ड्राइवर से पूछा कि भई, यह तुमने बताया ही नहीं कि जब मुंह खोलें और बंद करें तो क्या करना, इनका मतलब क्या है?

ड्राइवर ने सिर पीट लिया। उसने कहा, अब मुश्किल हो गई। वे गाना गा रहे हैं! और अब उनको घर ले जाना बहुत मुश्किल है। तुमने ज्यादा पिला दी। उल्लू के पट्ठे, इतनी पिलानी थी? अब बहुत मुश्किल मामला है। अब उन साठ को बस में भरना बहुत मुश्किल है। अब तो वे गाना पूरा करेंगे; कितनी देर में पूरा करेंगे, कहा नहीं जा सकता। अब तो वे मस्ती में आ गए। जो धार्मिक हैं वे भजन कर रहे होंगे। जो गैर-धार्मिक हैं वे फिल्मी गाना गा रहे हैं। मुंह खोल रहे हैं, बंद कर रहे हैं!

स्त्रियां सिगरेट पी नहीं सकतीं, तो अब क्या करें? वे मुंह खोलती हैं, बंद करती हैं। वे एकदम लगी ही रहती हैं चर्चा में। उनकी चर्चा का अंत ही नहीं आता। बात में से बात निकालती रहती हैं, बेबात की बात निकालती रहती हैं।

ये सब चुसनियां हैं, जो बचपन में दी गई थीं, फिर तुमने छोड़ दीं, मगर वह आदत नहीं छूटी। वह आदत अभी भी पकड़ी हुई है। वह आदत बहुत गहरी हो गई।

तुम्हारे विश्वास भी बस चुसनियां हैं। तुम्हें पकड़ा दिए हैं। थोथे हैं। हनुमान जी के मंदिर के सामने से निकले, एकदम झुक कर नमस्कार! न तुमने कभी सोचा कि यह पत्थर जिसको कुछ लोगों ने पोत-पात कर खड़ा

कर दिया है, ये कैसे हनुमान जी! क्या कर रहे हो तुम? कहां सिर झुका रहे हो? किसलिए सिर झुका रहे हो? नहीं मगर सिर झुक ही जाता है एकदम से। बचपन से ही झुकता रहा। मां-बाप पकड़-पकड़ कर झुका गए; बिठा गए भाव; डर बिठा गए कि अगर सिर नहीं झुकाया तो मुश्किल हो जाएगी।

एक गांधीवादी सज्जन का पत्र आया है, फोन भी आया कि आप इंदिरा को कहें कि इस भारत पुण्य-भूमि में ऐसा कार्य नहीं होना चाहिए। सुना है कि अब फिर बंदर अमरीका भेजे जा रहे हैं। और बंदर तो बजरंगबली के प्रतीक हैं, हनुमान जी के प्रतीक हैं। बंदरों को अमरीका बेचना ठीक नहीं है। यह तो बड़ी अधार्मिक बात हो रही है।

मैंने उनको खबर भिजवाई कि तुम्हें भी जाना है? तो बड़ी कृपा होगी! और बाकी गांधीवादियों को भी ले जाओ। और जितने बजरंगबली के भक्त हों उनको भी ले जाओ। छुटकारा करो यहां से। और बजरंगबलियों को भी लेते जाओ, जगह-जगह बहुत हैं। उनको भी ले जाओ। सब भक्तों को जिनको भी ले जाना है, ले जाओ। छुटकारा करो, पिंड छोड़ो।

अब बंदर ही न चले जाएं!

लखनऊ में एक बंदर पिछली दफा पागल हो गया, तो उसको पुलिस पकड़ न सके, क्योंकि हिंदू खिलाफ। उसको पकड़ो तो मतलब हनुमान जी को पकड़ रहे हो! और बंदर पक्का लफंगा था वह। वह लोगों को सताए, खासकर रिक्शेवालों के खिलाफ था वह। पता नहीं क्यों, शायद रिक्शेवाले बिठालते न हों बंदरों को! अब कौन रिक्शेवाला बंदरों को बिठालेगा? और फिर पैसा किससे लोगे? तो वह रिक्शावालों पर हमला करे। उत्तर प्रदेश की विधान सभा में तक सवाल खड़ा हुआ कि अब क्या करना है!

इस तरह की मूढ़ता सिर्फ इस पुण्य-भूमि में ही हो सकती है कि विधान सभाओं में इस पर विचार-विमर्श हो कि अब करना क्या है। मतलब बंदर को पकड़ा जा नहीं सकता, गोली मारी नहीं जा सकती। अरे बंदर कोई कुत्ता थोड़े ही है कि गोली मार दो! वह तो तुम कुत्तों को गोली मार देते हो, म्युनिसिपल कमेटी के लोग पकड़ कर ले जाते हैं, तो बड़ा अच्छा है कि कुत्तों की कोई धार्मिक परंपरा नहीं है, नहीं तो बड़ी मुश्किल खड़ी हो जाती।

वह तो क्यों लोग चूहों को भी मारने दे रहे हैं, यह भी हैरानी की बात है; वह गणेश जी का वाहन है। और तभी तो गणेश जी प्रसन्न नहीं हैं तुम पर। लिखो लाख तुम श्री गणेशाय नमः, वे बिल्कुल नाराज रहते हैं। क्योंकि उनके चूहे मारे जा रहे हैं। अरे किसी की सवारी छीनोगे तो कोई नाराज नहीं होगा? पता नहीं अभी तक क्यों ख्याल नहीं आया धार्मिक पुरुषों को, महात्माओं को, शंकराचार्यों को, विनोबा भावे को, अभी तक क्यों ख्याल नहीं आया! गौ माता और बंदरों की तो रक्षा होती है, चूहों की क्यों नहीं?

मूढ़तापूर्ण बातें जो भी हमें पकड़ा दी जाएं, वे फिर हम जिंदगी भर पकड़े बैठे रहते हैं। इसलिए विद्रोह इस सबसे, जो हमारे ऊपर थोप दिया गया है। और स्वीकार उस सबका जो हमारे भीतर हमारे बोध में जन्मे, जगे।

इसलिए मेरे वक्तव्य में कोई विरोधाभास नहीं है। स्वीकार--स्वयं का। और विद्रोह--जो भी उस स्वयं की सत्ता के विपरीत जाता हो, उस सबसे विद्रोह। फिर चाहे कुछ भी कीमत चुकानी पड़े, कीमत चुकाने जैसी है। ऐसे ही व्यक्ति की आत्मा पैदा होती है। इन्हीं चुनौतियों में व्यक्ति की आत्मा पैदा होती है।

कायरों के पास आत्मा नहीं होती; सिर्फ उनके पास आत्मा होती है जो चुनौती स्वीकार करते हैं। जो संघर्ष स्वीकार करते हैं, जो आग से गुजरने को तैयार होते हैं, उनका ही सोना शुद्ध होकर कुंदन बनता है।

दूसरा प्रश्नः ओशो, मीरा के इस वचन "पीवत मीरा हांसी रे", से कई गुना अदभुत वचन तो यह है--"म्हारो देश मारवाड़"--जिसके कारण मेरे हृदय में अन्य जाग्रत व्यक्तियों की अपेक्षा मीरा का अधिक सम्मान है। आप क्या कहते हैं?

प्रफुल्ल भारती, जरूर मीरा ने कहा होगाः म्हारो देश मारवाड़! देख कर मारवाड़ की हालत, देख कर मारवाड़ियों की हालत कि धन्य रे देश मारवाड़! चकित हुई होगी मीरा, चौंकी होगी, कि ऐसे देश में भी और मैं पैदा हो गई! यह चमत्कार ही है। यह प्रभु की कृपा ही समझो कि मारवाड़ और मीरा पैदा हो जाए! मारवाड़ में तो और ही तरह के लोग पैदा होते हैं। मारवाड़ का मीरा से क्या लेना-देना? और कहीं होती तो चलती। मारवाड़ में पैदा हो गई! चौंक कर कहा होगाः म्हारो देश मारवाड़!

प्रफुल्ल भारती, तुम क्या मारवाड़ी हो, जो तुम्हें यह बात हृदय को बहुत प्रसन्न करती है?

एक कवि महोदय साहित्य-प्रेमी मारवाड़ी सेठ धनीराम जी के घर पहुंचे। काव्य-संग्रह अंदर भिजवा कर वे परिणाम की प्रतीक्षा करने लगे। धनीराम जी ने कुछ पृष्ठ पढ़े और नौकर को हुक्म दिया, मुनीम जी से कहो, तुरंत पचास रुपये कविजी को दे दें। नौकर अभी कुछ कदम बढ़ा ही था कि धनीराम जी ने फिर आवाज दी, रुको, सौ रुपये देना। फिर कुछ पृष्ठ और पढ़ कर चिल्लाए, पूरे डेढ़ सौ देना। पर आगे के पृष्ठ पढ़ कर वे अपना धैर्य खो बैठे। दूसरे नौकर को उन्होंने हुक्म दिया, इस कवि को धक्के मार कर भगा दो। अगर मैं इसकी कविता पढ़ता गया तो कंगाल हो जाऊंगा।

मारवाड़ी के सोचने के ढंग अपने ही तरह के होते हैं। उसकी पकड़ अपने तरह की होती है। मारवाड़ी की पकड़ होती है धन पर। और मीरा की पकड़ है प्रेम पर। और धन और प्रेम दुश्मन हैं। इसलिए कहा होगाः म्हारो देश मारवाड़! कि वाह रे वाह, हे परमात्मा, तूने भी कैसा चमत्कार किया--म्हारो देश मारवाड़!

प्रेम और धन विपरीत हैं। क्यों? क्योंकि अगर कोई प्रेमी हो तो धन को इकट्ठा करना बहुत मुश्किल हो जाए। प्रेम बांटता है। प्रेम बांटना जानता है। प्रेम का अर्थ ही बांटना होता है। तुम जिसको प्रेम करते हो, उसको तुम सब दे डालना चाहोगे, कुछ बचाओगे न, कुछ संकोच न करोगे देने में। प्रेम कंजूस नहीं होता, कृपण नहीं होता। कृपण भी कहीं प्रेम होता है!

और जो धन को पकड़ता है, एक बात पक्की है, उसको अपने प्रेम को मार डालना पड़ता है। उसके भीतर से प्रेम हट जाना चाहिए। अगर प्रेम जरा भी बचा तो धन को इकट्ठा करना मुश्किल हो जाएगा। इसलिए कृपण व्यक्ति में तुम प्रेम का अभाव पाओगे, प्रेम हो ही नहीं सकता। ये दोनों बातें एक साथ चलानी बहुत मुश्किल हैं, असंभव हैं।

असल में, जो लोग प्रेम के जीवन में विकास नहीं कर पाते, वे ही लोग कृपण हो जाते हैं। जिनके लिए प्रेम का आनंद नहीं मिला, वे सोचते हैंः जो प्रेम से नहीं मिला, शायद धन से मिल जाए। जिन्होंने प्रेम को जाना है, उन्होंने तो अमृत को पा लिया। अब उन्हें चिंता नहीं है। हो धन तो ठीक, न हो धन तो ठीक। जिन्होंने प्रेम को जान लिया वे मृत्यु के पार हो गए।

धन को आदमी क्यों पकड़ता है? इतनी जोर से क्यों पकड़ता है? क्यों इतने जोर से इकट्ठा करता है? इसी डर से कि कल बुढ़ापा होगा, परसों मौत आएगी, कब जरूरत पड़ जाए! और कौन है इस जगत में संगी-

साथी? सिवाय धन के और कोई संगी-साथी दिखाई नहीं पड़ता। धन तो साथ देगा, अपनी तिजोड़ी में बंद है। अपना और तो कोई भी नहीं है। किसका भरोसा करो? जो किसी का भरोसा नहीं कर सकता, वह धन का भरोसा करता है। जो किसी का भरोसा कर सकता है, वह धन की चिंता नहीं करता। वह कहता हैः इतना प्रेम दिया है, कोई न कोई फिक्र कर लेगा। और जिसने प्रेम दिया है, वह जानता है कि प्रेम लौटेगा। प्रेम लौटता है, अनंत गुना होकर लौटता है।

मीरा तो प्रेम-दीवानी है, इसलिए कहा होगा कि म्हारो देश मारवाड़! यह प्रश्नवाचक विचार उठा होगा कि कैसे यह घटना घटी? मगर परमात्मा तो सर्वशक्तिमान है, वह तो कुछ भी कर सकता है। मीरा को भी मारवाड़ में पैदा कर सकता है! सर्वशक्तिमान को क्या अड़चन? लंगड़ों को पहाड़ चढ़ा दे। अंधों को दर्शन करा दे। अरे जीसस को पानी पर चला दिया! मूसा के लिए समुद्र में राह बना दी, समुद्र कट कर खड़ा हो गया! मगर यह चमत्कार कुछ भी नहीं, इससे बड़ा चमत्कार यह है कि मारवाड़ में मीरा को पैदा कर दिया।

चंदूलाल ने एक मारवाड़ी सेठ को राह चलते हाथ पकड़ कर रोक लिया और बोला, सुनिए जी, मैं आपसे कुछ कहना चाहता हूं।

क्या?

क्या मैं आपसे कुछ मांग सकता हूं?

सेठजी बोले, घबड़ाओ मत ऐ नौजवान, मैं जानता हूं तुम क्या मांगोगे। बड़ी खुशी से मांगो। तुम यही चाहते हो न कि मैं अपनी सुंदर बेटी का विवाह तुम्हारे साथ कर दूं?

चंदूलाल ने डरते-डरते कहा, नहीं, जी नहीं। मैं तो केवल पांच रुपये उधार चाहता हूं।

क्या कहा? पांच रुपये उधार चाहिए! मारवाड़ी ने अपनी पगड़ी सम्हालते हुए आश्चर्य से कहा। वह मैं तुम्हें कैसे दे सकता हूं? अरे मैं तो तुम्हें जानता तक नहीं।

लड़की देने को राजी था, पांच रुपये उधार देने को राजी नहीं है। लड़की तो देने को खुशी से राजी था कि चलो झंझट मिटी, खुद ही आ गया अपने आप। तलाश भी न करनी पड़ी। परमात्मा ने भेज दिया मालूम होता है। एकदम दिल बाग-बाग हो गया होगा। लेकिन जब पांच रुपये मांगे तो उसने पगड़ी सम्हाल ली--यह बेईमान तो गलत बातें कर रहा है! कभी पहले देखा भी नहीं, जान-पहचान भी नहीं, जात-पांत का भी पता नहीं, घर-ठिकाने का भी कुछ हिसाब नहीं--और एकदम चला पांच रुपये मांगने! एकदम पांच रुपये!

सम्मेलन के मंच पर काका किया किलेष,
कुश्ती लड़ने लग गए, रूपक, उपमा, श्लेष।
रूपक, उपमा, श्लेष, लगा कर तुक में धक्के,
छंद छोड़ छह-छह लाइन के मारे छक्के।
अनुप्रास, कल्पना, कवित्व, कमाल देखिए,
यह तो मेरी दुलकी है, रोहाल देखिए।
लट्टू हम पर हो गए सेठ हुलासी राव,
"अति सुंदर है आपकी कविता काका शाब!
कविता काका शाब, हाश्यरश म्हाने भायो,
पण कविता को भाव शमझ में कोन्नी आयो।

"सेठानी ने कहा--"भाव के पूछो वान्ने।

छै पांती की कविता के दे दो छै आन्ने।"

मारवाड़ी की दुनिया है--पैसा। हर चीज का भाव--पैसा। हर चीज कीमत में तौली जाती है। धन से बड़ी और कोई चीज नहीं है।

इसलिए प्रफुल्ल, मीरा ठीक ही कहती हैः म्हारो देश मारवाड़!

और मारवाड़ ने मीरा के साथ क्या किया? कौन सा सदव्यवहार किया? सब तरह का दुर्व्यवहार किया। सब तरह से बेइज्जत किया। सब तरह से बदनाम किया। मारवाड़ छोड़ने को बाध्य किया। मीरा के साथ सदव्यवहार तो नहीं किया।

हम तो सोचते थे कि खैर मंसूर, जीसस, सुकरात, पुरुष थे, लोगों ने अगर दुर्व्यवहार किया तो चलेगा। लेकिन मीरा तो स्त्री थी, स्त्री के साथ भी सज्जनता न बरत सके; उसके साथ भी जितनी दुष्टता बरत सकते थे, बरती।

लेकिन मीरा एक और ही जगत की वासिनी है--प्रेम के जगत की। उसके हृदय में तो सिर्फ प्रेम के ही फूल खिल रहे हैं, प्रेम के ही दीये जल रहे हैं। इसलिए लात मार दी धन-दौलत पर, लात मार दी राजपाट पर, लात मार दी महलों पर। फिरने लगी गांव-गांव। हो गई भिखारिन। सब लोक-लाज छोड़ दी।

प्रेम चिंता ही नहीं करता किसी लोक-लाज की। प्रेम अभय है। और प्रेम परमात्मा से अपने को इतना निकट पाता है, इतना अपने को परमात्मा के हाथों में पाता है, कि न कोई चिंता, न कोई फिक्र।

मीरा अनूठी स्त्री है। पृथ्वी पर बहुत कम स्त्रियां हुईं जो इस कोटि में आती हों। सूफियों में एक स्त्री हुई--राबिया। और कश्मीर में एक स्त्री हुई--लल्ला। और मीरा। ये तीन नाम हैं। ये तीन नाम ऐसे हैं स्त्रियों में, जैसे बुद्ध, कृष्ण, क्राइस्ट पुरुषों में। उसी कोटि के! उसी महिमा के!

तीसरा प्रश्नः ओशो, आज तक जाने गए बुद्धपुरुषों को किसी पशु ने मारा हो, ऐसा उल्लेख नहीं है। और शास्त्रों में कई ऐसे भी उल्लेख हैं कि नाग या शेर या सिंह जैसे पशु भी बुद्धपुरुषों के पास आकर बैठते थे। ओशो, इसका राज क्या है?

कैलाश गोस्वामी, मनुष्य की एक खूबी हैः वह गिरे तो पशुओं से नीचे गिर सकता है, उठे तो देवताओं से ऊपर उठ सकता है। वह सिर्फ मनुष्य की खूबी है। वह मनुष्य की ही गरिमा है। बात तुम्हारे हाथ है। मनुष्य एक सीढ़ी है--जिसका एक छोर पशुओं से नीचे चला गया है और दूसरा छोर बादलों के पार। तुम चाहो तो इसी सीढ़ी पर ऊपर चढ़ो और तुम चाहो तो इसी सीढ़ी पर नीचे उतरो। सीढ़ी एक ही है।

कोई पशु मनुष्य से नीचे नहीं गिर सकता। अगर मनुष्य गिरने का ही तय कर ले तो सभी पशुओं को मात कर देगा। चंगीजखान, तैमूरलंग, नादिरशाह, इनका कौन मुकाबला कर सकेगा, कौन पशु? लाखों लोग काट डाले। खैर ये तो अतीत इतिहास हो गए; अभी-अभी अडोल्फ हिटलर ने, जोसेफ स्टैलिन ने लाखों लोग काट डाले। किस पशु ने इतने लोग काटे?

और एक बड़े मजे की बात है, कोई पशु अपनी जाति के पशुओं को नहीं मारता। कोई सिंह किसी दूसरे सिंह को नहीं मारता। कोई कुत्ता किसी दूसरे कुत्ते को नहीं मारता। सिर्फ आदमी अकेला है, जो आदमियों को मारता है। और अकारण भी मारता है। जैसे मारने की एक धुन सवार है आदमी को! पशु अगर मारते भी हैं...

एक तो अपनी जाति के पशुओं को कभी नहीं मारते, इतनी सज्जनता तो बरतते हैं। इतनी तो पहचान उनको है, कि सिंह दूसरे सिंह पर हमला नहीं करता, कितना ही भूखा हो। लेकिन दूसरी जाति के पशुओं को भी तभी मारते हैं जब भूखे होते हैं।

मैंने सुना है, एक सिंह और एक खरगोश एक होटल में प्रविष्ट हुए। दोनों बैठ गए। मैनेजर थर-थर कांपने लगा। वेटरों की तो हिम्मत ही टूट गई, पैर थर्रा गए, जहां खड़े थे वहीं बैठ गए। आखिर मैनेजर ने हिम्मत की। अब ग्राहक आ ही गए हैं तो जाकर खड़ा हुआ और कहा कि क्या सेवा कर सकता हूं? खरगोश ने आर्डर दिया कि अंडे ले आओ, काफी ले आओ, यह ले आओ, वह ले आओ। उसने कहा, और आपके मित्र के लिए? खरगोश ने कहा कि मित्र को अगर भूख लगी होती, तुम सोचते हो मैं यहां बैठा होता? या तो मित्र के भीतर होता या नदारद हो गया होता। मित्र को भूख नहीं है, इसीलिए तो साथ चल रहे हैं।

जब तक भूख न लगी हो तब तक कोई जानवर किसी जानवर पर हमला नहीं करता है। शिकार के लिए तो जानवर हमला करते ही नहीं। शिकार भी अजीब बात है! खेल-खेल में मारना! और बड़ा मजा है, तुम मारो तो शिकार और सिंह तुम्हें मार दे तो दुर्घटना। और तुम मारो तो मचान बांध कर, बंदूक लेकर। न सिंह के पास मचान है, न बंदूक है। और तुम मारो तो सौ-पचास लोग मशालें लेकर सिंह को खदेड़ें, तुम्हारे पास ले आएं। और तुम मारो तो नीचे बांध रखा है गाय का बछड़ा, सिंह उसे खाने में लग जाए, तब तुम गोली मार दो। और तब भी पक्का नहीं है कि तुम्हारी गोली लगे।

मुल्ला नसरुद्दीन हमेशा हांकता रहता था काफी हाउस में बैठ कर, कि ऐसा शिकार किया, वैसा शिकार किया! आखिर एक आदमी से न रहा गया, उसने कहा कि चलो जी, चलें ही! सामने ही करके दिखाओ। मैं भी शिकारी हूं। तुम्हारी बातों से मुझे जंचता नहीं कि तुमने कभी शिकार किया हो।

मुल्ला ने कहा, क्या बात करते हो! कल ही चलेंगे। दोनों की पत्नियां भी साथ हो लीं कि हम भी देखेंगे मचान पर बैठ कर कि क्या शिकार करते हो। दोनों की पत्नियां एक मचान पर बैठीं, दोनों दूसरे मचान पर बैठे। और जब सिंह आया, नसरुद्दीन के हाथ कंपने लगे। गोली तो चली; रोक नहीं सका सो चली, लेकिन लगी मित्र की पत्नी को। वह धड़ाम से नीचे गिरी। मित्र ने कहा, यह क्या करते हो जी? यह कोई शिकार है? शर्म नहीं आती स्त्री जाति पर हमला करते हुए?

अरे--मुल्ला ने कहा--भई, इतने क्या नाराज होना! अरे तुम मेरी पत्नी को मार दो, और क्या! दोनों की झंझट मिटी, अपने घर चलेंगे। इससे बेहतर शिकार और क्या! अब जो भूल हमसे हो गई हो गई, बदले में तुम हमारी पत्नी को मार लो। और वह कुछ कर सकती है नहीं, अभी मचान पर चढ़ी है। अगर नीचे उतर आई तो मुसीबत खड़ी कर देगी। निपटारा करो जल्दी।

आदमी मारे तो शिकार, खेल; और सिंह मारे तो शिकार नहीं।

आदमी नीचे गिरता है तो पशुओं से नीचे चला जाता है। ये कहानियां सिर्फ इसी बात के सबूत हैं। ये कहानियां हुई होंगी, ऐसा मैं नहीं मानता। ऐसा मैं नहीं मानता कि कोई बुद्ध के पास सिंह आकर बैठ गए हों। हां, भूखे न रहे हों, जैसे खरगोश के पास बैठे थे, ऐसे बैठ गए हों तो बात अलग। पेट भरा रहा हो, सोचा हो कि चलो जरा सत्संग करें! पेट भरे होने पर सत्संग का ख्याल आता है--कि चलो बुद्ध महाराज बैठे हैं झाड़ के नीचे, चलो थोड़ा सत्संग हो जाए। बैठे ठाले और कोई काम भी नहीं है। फुरसत का समय भी है। सिंह एक ही बार भोजन करता है चौबीस घंटे में। कर लिया भोजन, फिर चौबीस घंटे के लिए कोई उससे भय का कारण नहीं है। मैं यह नहीं मानता कि कोई चमत्कार इसमें हुआ होगा। या हो सकता है कोई नकली सिंह, सर्कसी सिंह रहे हों।

अभी मैंने सुना कि जब जनता पार्टी हार गई और जनता पार्टी के नेता सब बेकार हो गए और हालत उनकी खस्ता हो गई--गए सब पद, गए सब बंगले, गईं सब कारें, लूट-खसोट के सब अवसर भी गए--तो जगह-जगह तलाश करने लगे काम की। और राजनेताओं को कौन काम दे! लोग वोट दे देते हैं कि लो भई, वोट ले लो, सार्वजनिक संपत्ति को लूटो। मगर काम पर अपने घर में कौन रखे! राजनेता को कोई अपने घर में रखेगा काम पर? क्या हरकत करे क्या पता! कोई काम देने को राजी नहीं। तो एक राजनेता, सर्कस आई थी, उसमें चला गया। सर्कस के मैनेजर से कहा कि अब तो बहुत हालत हो रही है, कड़की की हालत हो गई है। कोई न कोई काम चाहिए।

उसने कहा, भई और तो कोई काम नहीं है, हमारा सिंह मर गया है, तो उसकी खाल निकाल कर रख ली है, तुम उसमें प्रवेश कर जाओ। और तुम्हारे साथ में हम टेप-रिकार्डर दे देते हैं, सो अंदर से ही समय-समय पर टेप-रिकार्डर, अपने आप, आटोमेटिक है, हुंकार भरेगा। इसमें रिकार्ड की हुई है सिंह की हुंकार। सो यह जब हुंकार भरे, तुम मुंह बा देना। दहाड़ जाएगा। एकदम सारे सरकस में आए लोगों की छाती दहल जाएगी। और बाकी तुम्हारा कोई काम नहीं है। और चक्कर काटते रहना कठघरे में।

उसने कहा, यह भी अच्छा है।

यह फुरसत का काम भी है। और कोई खास नहीं, विश्राम है, बाकी दिन आराम है। शाम को भर जब सरकस देखने लोग आएं, तब टहलने लगना और बीच-बीच में दहाड़ देते वक्त ख्याल रखना कि मुंह खोल देना। इतना ही तुम्हारा काम है।

नेता राजी हो गया। टेप-रिकार्डर लेकर शेर की खाल में घुस गया, जाकर अंदर गया, दहाड़ मारी। एकदम तहलका मच गया। बच्चे रोने लगे, स्त्रियां बेहोश होने लगीं। कोई असली सिंह भी क्या ऐसा दहाड़ेगा! क्योंकि टेप-रिकार्ड की हुई आवाज थी, उसको खूब बढ़ा कर तैयार किया गया था। प्रसन्न हुआ कि यह काम भी अच्छा है, मजा भी आएगा। कई खादीधारी उसने देखे कंप रहे हैं। कई जनता पार्टी के लोग भी डर रहे हैं। उसने कहा, यह भी अच्छा रहा। तभी उसने देखा कि दरवाजा खुला कठघरे का और दूसरा सिंह दहाड़ मारता अंदर आया। वह तो भूल ही गया। चिल्लाया एकदम कि बचाओ! बचाओ! मारे गए!

जनता तो हैरान हो गई कि सिंह यह क्या कह रहा है! सर्कस तो बहुत देखे थे, मगर सिंह साफ हिंदी में बोल रहा है--बचाओ! बचाओ! मारे गए! वह भूल ही गया। यह तो झंझट हो गई, यह कभी बताया ही नहीं था मैनेजर ने कि दूसरा सिंह भी अंदर आएगा। वह तो सोच रहा था, अकेले ही टहलना है। दूसरे सिंह ने कहा, अबे उल्लू के पट्ठे, चुप रह! तू क्या समझता है कि तू ही चुनाव हारा है? तब राज खुला कि वे दूसरे नेता हैं।

मगर तब तक पहले सिंह का जीवन-जल बह गया था। उस दूसरे सिंह ने कहा कि कम से कम इसको सम्हाल! अगर हमारे नेता मोरारजी देसाई को पता चल गया तो वे बहुत नाराज होंगे, क्योंकि यह बड़ी बहुमूल्य चीज है! इसको ऐसे नष्ट नहीं करते भैया!

अभी मैंने सुना कि दिल्ली में जनता पार्टी की कार्यकारिणी की बैठक हुई, छह घंटे तक चली। सब नेता उठ-उठ कर बाथरूम गए, सिर्फ मोरारजी नहीं गए। पत्रकार भी चिंतित हुए--जो बाहर बैठे थे इस आशा में कि कुछ खुसुर-पुसुर नेता करते हुए निकलते हैं, तो उनसे कुछ खबरें मिल जाएंगी। वे भी चिंतित हुए। सब गए, मगर सिर्फ मोरारजी नहीं गए। तो किसी से पूछा उन्होंने कि सब बाथरूम गए, कोई दो दफे गया, कोई तीन दफे--छह घंटे का लंबा वक्त--मोरारजी नहीं गए! तो जिससे पूछा, उसने कहा कि मेरा नाम भर मत छापना। इतनी बहुमूल्य चीज को वे सम्हाल कर रखते हैं! ऐसा हर जगह बरबाद नहीं करते फिरते।

तो या तो नकली सिंह रहे होंगे, जिनकी तुम बात कर रहे हो कि बुद्धपुरुषों के पास... नाग या शेर या सिंह जैसे पशु भी बुद्धपुरुषों के पास आकर बैठते थे। और या फिर खाए-पीए रहे होंगे। वैसे नागों में सत्तानबे प्रतिशत में जहर होता नहीं, तीन ही प्रतिशत में होता है। वे बहुत मुश्किल से मिलते हैं जहरीले। लोग मर जाते हैं, वे इसलिए मर जाते हैं कि सांप ने काटा। कोई जहर से कम ही लोग मरते हैं। इसीलिए सांप झाड़ने वाले सफल हो जाते हैं। सत्तानबे प्रतिशत सांप झाड़ने वाला सफल हो जाता है, क्योंकि सांप जहरीला होता ही नहीं सत्तानबे प्रतिशत मौकों पर। मगर यह घबराहट--कि सांप काट गया, मारे गए--पर्याप्त है मारने को।

इन कहानियों से तुम यह अर्थ मत ले लेना कि ऐसे सांप और बिच्छू और शेर और सिंह बुद्धपुरुषों को पहचान गए और उनके पास बैठ कर सत्संग करने लगे। इस भ्रांति में मत पड़ना। आदमी नहीं पहचान पाता तो ये बेचारे गरीब जानवर क्या पहचानेंगे!

मगर कहानियां यह कह रही हैं कि गरीब जानवर भी पहले पहचान लेंगे और आदमी नहीं पहचान पाएगा। कहानियां यह कह रही हैं कि धिक्कार है आदमी तुझ पर! कि ये पशु भी पहचान लें शायद, मगर तू नहीं पहचान पाता। कहानियां तो सिर्फ तुम्हें सूचना दे रही हैं तुम्हारी मूर्च्छा की। ये प्रतीक-कथाएं हैं। इनमें चमत्कार मत समझ लेना। हम इनकी जो व्याख्या कर लेते हैं, हमारे पंडित-पुरोहित जो व्याख्या कर लेते हैं, वह चमत्कार की होती है। और हम चमत्कार की जब व्याख्या कर लेते हैं, हम कहानियों का सारा अर्थ नष्ट कर देते हैं।

महावीर को सांप ने काटा था, तो दूध निकला। बस जैन पंडित-पुरोहित लगे हैं सदियों से व्याख्या करने में, कि महावीर इतने अदभुत व्यक्ति थे कि उनके शरीर में खून नहीं, दूध ही दूध भरा था। एक जैन मुनि से मैंने पूछा कि तुम थोड़ा सोचो तो कि अगर दूध ही दूध भरा हो, तो कब का दही जम गया होता! और महावीर से ऐसी दही कि गंध उठती कि पहली तो बात सांप पास आता ही नहीं, काटना तो दूर रहा।

एक जैन मुनि चित्रभानु और मैं एक ही साथ एक बार एक सभा में बोले। वे मुझसे पहले बोले। उन्होंने कहा कि यह बात वैज्ञानिक रूप से सिद्ध की जा सकती है कि पैर से दूध निकला। आखिर स्त्रियों के स्तन से दूध निकलता है कि नहीं? वह भी तो शरीर ही है। ऐसे ही पैर से निकला।

मैं उनके पीछे बोला। जनता ने तो ताली बजा दी। जैनियों की भीड़ थी। वे ही थे। उन्होंने कहा, वाह, क्या वैज्ञानिक व्याख्या की! मैं उनके पीछे बोला। मैंने कहा कि मुझे भी बहुत आनंद आया। इसका तो मतलब यह हुआ कि महावीर के शरीर पर जगह-जगह स्तन थे, क्या मामला है! क्योंकि स्त्री के और किसी अंग से नहीं निकलता दूध। तो या तो सब जगह स्तन रहे हों, क्योंकि स्तन के बिना दूध पैदा नहीं हो सकता। स्तन में पूरी रासायनिक प्रक्रिया होती है; वह तो यंत्र है जिससे कि पूरी रासायनिक प्रक्रिया से गुजर कर खून छंट कर दूध बनता है। ऐसे ही थोड़े कोई दूध बन जाता है। तो पैर में या तो स्तन रहा होगा, जो कि ज्यादा बड़ा चमत्कार है, कि पहले से ही स्तन लगाए बैठे थे कि आए सांप और काट! और सांप भी गजब का है कि ठीक जगह काटा! और या फिर पूरे शरीर पर स्तन ही स्तन रहे होंगे। यह तो बड़ा उपद्रव हो जाएगा। और नंग-धड़ंग घूमना और स्तन ही स्तन! जनता पी जाती कभी का! जहां जाते वहीं लोग लग जाते और पीने लगते कि महावीर स्वामी को क्या छोड़ना! अरे ऐसा प्रसाद, दुग्धाहार! मारे गए होते बेचारे कभी के। सांप से तो बच भी जाते, मगर आदमियों से? अगर आदमी न भी पीते, तो जो भी जाता कम से कम धक्का-मुक्की करता ही। और एक अजीब दृश्य उपस्थित हो जाता। और कोई सज्जन होते तो जल्दी से कंबल ओढ़ा देते कि ये स्तन ही स्तन! कोई देख-दाख न ले! उनको नंगे लोग रहने भी नहीं देते, कि भैया तुम तो कपड़े पहनो ही!

क्या-क्या बेवकूफी की बातें लोग करते रहते हैं! और कैसी बेवकूफी की बातों पर अंधे भक्त, अंधे विश्वासी तालियां बजाते रहते हैं!

ये प्रतीक-कथाएं हैं सारे धर्मों में। इन प्रतीक-कथाओं का इतना ही अर्थ है कि आदमी ने अब तक जैसा व्यवहार किया है अपने बुद्धपुरुषों के साथ, वह इतना बदतर है कि हम पशुओं से भी ऐसी आशा नहीं करते। बस इतना ही समझना। इससे ज्यादा नहीं। पशु भी ऐसा नहीं कर सकते हैं। एक दफा उनको भी दया आ जाती। एक दफा उनको भी होश आ जाता। एक दफा सांप भी काटते-काटते रुक जाता, सिंह भी हमला करते-करते ठहर जाता, पागल हाथी भी झुक जाता। मगर आदमी पागल हाथियों से ज्यादा पागल है, सिंहों से ज्यादा खूंखार है, सांपों से ज्यादा जहरीला है। इस बात की खबर देने के लिए ये कहानियां हैं। इन कहानियों को तुम प्रतीक समझो। इन कहानियों को कोई ऐतिहासिक तथ्य मत समझ लेना।

मगर इन कहानियों की इसी तरह व्याख्या की जाती है जैसे ये ऐतिहासिक तथ्य हैं। इनको ऐतिहासिक तथ्य बनाने की कोशिश में हम सिर्फ अपने महापुरुषों को हंसी का पात्र बना देते हैं।

इसलिए कैलाश गोस्वामी, राज वगैरह कुछ भी नहीं है; कुछ बातों को सरल ढंग से कहने की प्रक्रिया है यह। कथानक के ढंग से कहने की प्रक्रिया है। कम से कम समझ का आदमी भी समझ सके, इस तरह कहानियों में बड़े-बड़े सत्य छिपा दिए गए हैं। ईसप की कहानियां हैं, वे सब जानवरों की कहानियां हैं। इसका मतलब यह नहीं कि जानवर बोलते हैं। ईसप की कहानियों में बोलते हैं।

एक छोटा सा भेड़ का बच्चा, मेमना, पानी पी रहा है--एक झरने पर, एक छोटे से झरने पर। उसी झरने पर ऊपर एक सिंह पानी पी रहा है। सिंह की लार टपक गई। देखा कि सुंदर मेमना, ताजा, कोमल! सुबह-सुबह का वक्त, अच्छा नाश्ता हो जाएगा। मगर कोई बहाना तो चाहिए, एकदम से हमला भी तो नहीं कर सकते। जानवर भी पहले बहाना खोजते हैं, फिर हमला करते हैं। उसने कहा, क्यों रे मेमने, तू कल मुझे गाली दे रहा था!

उस मेमने ने कहा, कल मैं यहां था ही नहीं, महाराज। मैं दूसरे जंगल से आज ही आया हूं।

सिंह तो और गुस्सा हो गया। उसने कहा कि तो तू न होगा, तेरी मां होगी। मगर तेरी शक्ल मुझे पहचानी लगती है। या तेरा बाप होगा। मगर गाली तेरे बाप ने या तेरी मां ने दी थी।

उस मेमने ने कहा, महाराज, मेरे मां-बाप को मरे काफी दिन हो गए। आप ही जैसे सिंहों की कृपा से वे कभी के समाप्त हो चुके। वे क्या गाली देने आएंगे, स्वर्गीय हो गए।

सिंह ने देखा कि यह तो बात बिगड़ती जा रही है। उसने कहा कि और तू हरामजादे, मैं पानी पी रहा हूं, पानी को गंदा कर रहा है!

उस मेमने ने कहा, महाराज, आप ऊपर हैं, झरना मेरी तरफ आपकी तरफ से बह रहा है। गंदा आप कर रहे हैं। मैं कैसे गंदा कर सकता हूं? झरना आपकी तरफ नहीं जा रहा है मेरी तरफ से। मैं नीचे खड़ा हूं, आप ऊपर खड़े हैं। और ऐसी अपराध की बात मैं कभी कर सकता हूं कि आपके ऊपर खड़ा हो जाऊं? अरे आपके रहते! कभी नहीं, कभी नहीं!

सिंह ने देखा यह तो छिटका ही जा रहा है हाथ से। नाश्ते का मौका ही निकला जा रहा है। उसने एक झपट्टा मारा और उसने कहा कि छोटा होकर बड़ों से मुंह लड़ाते शर्म नहीं आती?

अब क्या जवाब दो! वह तो खा गया, गप्प कर गया कि छोटे होकर और बड़ों से मुंह लड़ाते शर्म नहीं आती!

मगर यह कहानी कुछ होती नहीं, मगर कहानी महत्वपूर्ण है। यह दुनिया में चल रहा है। आदमियों में चल रहा है, राष्ट्रों में चल रहा है, जातियों में चल रहा है। सब बहाने खोजते हैं एक-दूसरे को हड़प जाने के। यह कहानी बड़ी महत्वपूर्ण है। बाप अपने बेटे से कहता हैः छोटे होकर बड़ों से मुंह लड़ाते शर्म नहीं आती? मुंह बंद कर!

तुम क्या कह रहे हो? तुम सिर्फ इतना कह रहे हो कि हम तुमसे शक्तिवान हैं, एक दो झापड़ रसीद कर देंगे, सही-गलत का कहां सवाल है! और हो सकता है बच्चा सही ही कह रहा हो। बच्चे अक्सर सही कहते हैं। बच्चे झूठ नहीं बोलते। झूठ बोलना सीखने के लिए समय लगता है। झूठ बोलना लंबे अभ्यास से आता है। बच्चे तो सच-सच कह देते हैं।

मुल्ला नसरुद्दीन के बेटे से किसी ने पूछा कि नसरुद्दीन घर पर हैं कि नहीं?

उसने कहा कि तुमने मुझे मुश्किल में डाल दिया। हैं तो घर पर ही, पर उन्होंने कहा है कि कोई पूछे तो कह देना कि घर पर नहीं हैं।

उसने सच्ची बात कह दी। और मुल्ला सुन रहा है भीतर से। बुला कर एक चपत रसीद की उसको, कि मैंने तुझसे कहा था कि कहना कि घर पर नहीं हैं।

उसने कहा कि मैंने यही कहा कि हैं तो घर पर ही, मगर कह रहे हैं कि घर पर नहीं हैं।

अब ऐसे बेटे से झंझट... ।

एक दिन उसको भेजा कुएं पर पानी भरने। मटकी हाथ में दी, रस्सी हाथ में दी। और जब जाने लगा तो बुला कर दो चपतें लगा दीं उसको। और कहा, जा, सम्हाल कर पानी लाना।

एक आदमी पास बैठा था, उसने कहा, हद हो गई! अभी गया भी नहीं बेचारा, कोई मटकी फोड़ी भी नहीं और तुमने दो चपतें लगा दीं!

नसरुद्दीन ने कहा, बाद में चपत लगाने से फायदा ही क्या! अरे फोड़ कर ही आ जाए, फिर चपत लगाने से फायदा ही क्या! सो पहले ही से सीख देना ठीक है।

अब ऐसे बाप का बेटा हो तो धीरे-धीरे सीख ही जाएगा।

एक दिन बेटा चढ़ा है सीढ़ी पर और नसरुद्दीन ने कहा, कूद जा, बेटा, कूद जा! मैं तुझे ले लूंगा। देख मैं हाथ फैलाए हूं।

बेटा डरा, उसने कहा कि मुझे नहीं कूदना। कि नहीं पापा, मुझे नहीं कूदना।

अरे, उसने कहा, तू डरता है? भरोसा नहीं करता अपने बाप पर? अपने सगे बाप पर भरोसा नहीं करता? कूद जा!

बेटा कूद गया और मुल्ला हट कर खड़ा हो गया, वह धड़ाम से नीचे गिरा, घुटने छिल गए। बेटा रोने लगा, उसने कहा कि मैं पहले ही से मना कर रहा था कि मुझे नहीं कूदना।

पर बाप ने कहा कि तुझे पाठ पढ़ाना था। बेटा, अपने सगे बाप का भी कभी भरोसा मत करना। यह दुनिया बड़ी बुरी है। अब सीखे बच्चू! उसने कहा कि अब सीखे! अब मैं भी कहूं कि कूद जा, कूद जा, हाथ फैलाऊं, कुछ भी करूं, तू कूदना ही मत। दुनिया बहुत बुरी है।

समय लगता है मगर यह सीखने में कि दुनिया बहुत बुरी है। बच्चे तो सच बोल देते हैं।

पशुओं के मुंह से ईसप ने सच्ची-सच्ची बातें कहला दी हैं। आखिर पशु भी नाराज हो गए होंगे। मैंने यह कहानी सुनी है कि एक सिंह ने एक दिन ईसप को पकड़ लिया और उसे गप्प करने के पहले कहा कि अब बच्चू,

अब लिखो कहानी! अब इसकी भी कहानी लिख जाना! और उसको हड़प कर गया। कर ही जाएंगे, आखिर जानवरों के संबंध में ईसप ने इतनी कहानियां लिखीं, उनकी काफी भद्द उड़ाई, काफी मजाक की। सिंह अगर नाराज हो गए हों तो कुछ आश्चर्य तो नहीं।

मगर ऐसा लगता है कि ईसप इसको भी लिख ही गया या लिखवा गया किसी तरकीब से। आखिर यह कहानी है कि ईसप को सिंह खा गया और खाते वक्त सिंह ने कहा कि अब बच्चू, लिखो कहानी इसके संबंध में! मगर इतना कम से कम ईसप इंतजाम कर गया। रहा होगा कोई स्टेनो आस-पास कि लिख ले भाई, इतना तो लिख ही ले कम से कम यह आखिरी घटना, उपसंहार!

ये कहानियां प्रीतिपूर्ण हैं, मगर तुम इनको खराब कर देते हो। इनमें बड़ा सौंदर्य छिपा है। तुम नष्ट कर देते हो। तुम इनका रस ही विरस कर देते हो। ये तथ्य नहीं हैं, ये सत्य हैं और बड़े बहुमूल्य सत्य हैं। इतना ही कहा गया है कि बुद्धों और महावीरों के पास पशुओं को भी बोध आ गया, मगर मनुष्यों को न आया। इससे चेतो। ऐसी भूल तुमसे न हो, इसका स्मरण रखो, कैलाश गोस्वामी।

पांचवां प्रश्नः ओशो, आपने मुझे नाम दिया है--योगानंद। इसका रहस्य समझाएं।

योगानंद, रहस्य कुछ भी नहीं है। जब तुम्हें देखा, तुम ऐसे अकड़ कर बैठे थे, कि मुझे लगा कि योगी मालूम होते हो। बिल्कुल एकदम आसन मार कर बैठ गए। और तुम्हारी नाक पर बड़ा अहंकार। और ढंग तुम्हारा ऐसा जैसे कोई बहुत महान कार्य कर रहे हो! संन्यास क्या ले रहे हो, संसार का बड़ा उपकार कर रहे हो, उद्धार कर रहे हो। सो मैंने तुम्हें नाम दे दिया--योगानंद। अब तुम न पूछते तो मैं कभी बताता भी नहीं, क्योंकि ये बातें बताने की नहीं। ये तो मैं अपने भीतर छिपा कर रखता हूं। अब तुमने खुद ही अपने हाथ से झंझट करवा ली।

नामों में क्या रखा है, योगानंद? कुछ न कुछ लेबल चाहिए। मगर कुछ लोग हर चीज में राज खोजने में लगे रहते हैं। जैसे किसी चीज को साधारणतया स्वीकार कर ही नहीं सकते, राज होना ही होना चाहिए! चीजें बस हैं।

पिकासो से एक आलोचक ने कहा कि यह तुम्हारे चित्र का अर्थ क्या है?

पिकासो ने कहा, अर्थ! यह खिड़की के बाहर झांक कर देखो, गुलाब का फूल खिला है, इसका क्या अर्थ है? और अगर गुलाब का फूल खिल सकता है मस्ती से बिना अर्थ के, तो मेरी पेंटिंग में भी अर्थ होने की क्या जरूरत है? कोई मैंने ठेका लिया है अर्थ का? यह भी मौज है, वह भी मौज है।

मगर मैं नहीं सोचता कि आलोचक इससे राजी हुआ हो। आलोचक को तो अर्थ चाहिए ही। वह तो हर चीज में अर्थ होना ही चाहिए। अर्थ न हो तो बस उसकी सब नौका डगमगा जाती है।

तुम अनाम पैदा हुए हो, अनाम ही जाओगे, अनाम ही तुम हो। मगर काम चलाने के लिए नाम रखना पड़ा। नहीं तो यहां तीन हजार संन्यासी हैं, अब तुम्हें बुलाना हो तो बड़ी मुश्किल खड़ी हो जाए। या तो तुम्हारा वर्णन करना पड़े विस्तार से, कि ऐसी नाक, ऐसे कान, ऐसे बाल। और उसमें बड़ी झंझटें हो जाएं।

ऐसा मैंने सुना है कि एक दफा एक आदमी पिकासो के घर चोरी कर गया। पूछा पिकासो से पुलिसवालों ने कि कुछ उस आदमी की हुलिया बताओ।

पिकासो ने कहा, अब हुलिया क्या बताऊं? एक चित्र बना देता हूं उसकी हुलिया का।

पेंटर था, उसने चित्र बना दिया। कहते हैं, पुलिस ने पकड़े, सात आदमी पकड़े, एक लेटर बाक्स पकड़ा, एक रेफ्रिजरेटर पकड़ा! क्योंकि वह जो उसने चित्र बनाया था, उससे ये सब बातें निकलीं। पिकासो के पास जब यह पूरी कतार लेकर वे आए तो पिकासो ने सिर ठोंक लिया, उसने कहा, हद हो गई! और पिकासो ने कहा कि क्षमा करो, किसी की कोई जरूरत नहीं है। क्योंकि जो चीज मैं सोचता था चोरी गई है, वह चोरी गई ही नहीं है। वह चोर आया जरूर था, मगर ले जा कुछ भी नहीं सका, इसलिए फिक्र छोड़ो।

उन्होंने कहा, अब कैसे छोड़ सकते हैं? इन सातों ने तो स्वीकार भी कर लिया है!

अब पुलिस स्वीकार किसी से भी करवा ले। मारो डंडे! जिसने चोरी नहीं की वह भी कहता है कि हां, की है। वही ज्यादा सार है कि हां, की है।

अब योगानंद को अगर मुझे खोजना हो तो मुश्किल खड़ी हो जाएगी। अब कहो कि लाल रंग के कपड़े पहने हुए हैं। कोई लेटर बाक्स निकाल कर ले आए। लेटर बाक्स तो पुराने संन्यासी हैं। कोई मील का पत्थर उखाड़ लाए; वे भी पुते खड़े हैं बिल्कुल संन्यासी रंग में। कौन-कौन सी झंझटें हो जाएं, क्या कहा जा सकता है! इसलिए नाम की जरूरत है। वैसे नामों में क्या रखा है!

नाम-रूप के भेद पर कभी किया है गौर
नाम मिला कुछ और तो शक्ल-अक्ल कुछ और।
शक्ल-अक्ल कुछ और, नैनसुख देखे काने,
बाबू सुंदरलाल बनाए ऐंचकताने।
कहं "काका" कवि, दयाराम जी मारें मच्छर,
विद्याधर को भैंस बराबर काला अक्षर।
मुंशी चंदालाल का तारकोल सा रूप,
श्यामलाल का रंग है जैसे खिलती धूप।
जैसे खिलती धूप, सजे बुश्शर्ट पैंट में
ज्ञानचंद छह बार फेल हो गए टैंथ में।
कहं "काका" ज्वालाप्रसाद जी बिल्कुल ठंडे,
पंडित शांतिस्वरूप चलाते देखे डंडे।
देख, अशर्फीलाल के घर में टूटी खाट,
सेठ छदम्मीलाल के मील चल रहे आठ।
मील चल रहे आठ, कर्म के मिटें न लेखे,
धनीरामजी हमने प्रायः निर्धन देखे।
कहं "काका" कवि दूल्हेराम मर गए क्वांरे,
बिना प्रियतमा तड़पें प्रीतमसिंह बिचारे।
पेट न अपना भर सके जीवन भर जगपाल,
बिना सूंड़ के सैकड़ों मिलें गणेशीलाल।
मिलें गणेशीलाल, पैंट की क्रीज सम्हारी--
बैग कुली को दिया चले मिस्टर गिरधारी।

कहं "काका" कविराय, करें लाखों का सट्टा,
नाम हवेलीराम, किराए का है अट्टा।
दूर युद्ध से भागते, नाम रखा रणधीर,
भागचंद की आज तक सोई है तकदीर।
सोई है तकदीर, बहुत से देखे-भाले,
निकले प्रिय सुखदेव सभी, दुख देने वाले।
कहं "काका" कविराय, आंकड़े बिल्कुल सच्चे,
बालकराम ब्रह्मचारी के बारह बच्चे।
चतुरसेन बुद्धू मिले, बुद्धसेन निर्बुद्ध,
श्री आनंदीलाल जी रहें सर्वदा क्रुद्ध।
रहें सर्वदा क्रुद्ध, मास्टर चक्कर खाते,
इंसानों को मुंशी तोताराम पढ़ाते।
कहं "काका" बलवीरसिंह जी लुटे हुए हैं,
थानसिंह के सारे कपड़े फटे हुए हैं।
खट्टे-खारी-खुरखुरे मृदुला जी के बैन,
मृगनैनी के देखिए चिलगोजा से नैन।
चिलगोजा से नैन, शांता करतीं दंगा,
नल पर नहातीं गोदावरी, गोमती, गंगा।
कहं "काका" कवि लज्जावती दहाड़ रही हैं,
दर्शनदेवी लंबा घूंघट काढ़ रही हैं।
कलियुग में कैसे निभे पति-पत्नी का साथ,
चपलादेवी को मिले बाबू भोलानाथ।
बाबू भोलानाथ, कहां तक कहें कहानी
पंडित रामचंद्र की पत्नी राधारानी।
"काका" लक्ष्मीनारायण की पत्नी रीता,
कृष्णचंद्र की वाइफ बन कर आईं सीता।
अज्ञानी निकले निरे, पंडित ज्ञानीराम,
कौशल्या के पुत्र का रक्खा दशरथ नाम।
रक्खा दशरथ नाम, मेल क्या खूब मिलाया
दूल्हा संतराम को आई दुलहिन माया।
"काका" कोई-कोई रिश्ता बड़ा निकम्मा--
पार्वती देवी हैं शिवशंकर की अम्मा।

योगानंद, कोई राज वगैरह नहीं है। योग से तुम्हारा क्या नाता? न आनंद से कोई संबंध। बस एक लेबल चिपका दिया। कामचलाऊ हैं सब नाम। लेकिन हर चीज में रहस्य खोजने की आदत गलत आदत है। जीवन को सरलता से स्वीकार करो, जैसा है वैसा स्वीकार करो। हर चीज में रहस्य खोजने के कारण न मालूम कितने

मूरख तुम्हारा शोषण करते हैं, क्योंकि वे तुम्हें रहस्य में रहस्य बताते रहते हैं। चले हाथ की रेखाएं बताने! कोई बुद्धू मिल जाएगा लूटने। हाथ की रेखाओं में कोई रहस्य होना ही चाहिए! तुम पांव की रेखाएं क्यों नहीं बतलाते? उनमें भी कुछ रहस्य होना चाहिए। और कौन सी रेखा में कौन सा रहस्य है? और जो तुम्हारे हाथ की रेखा देख रहे हैं उनकी हालत तो देखो। सड़क के किनारे बैठे हैं। चार आने में किसी का भी भाग्य बता दें। अपने भाग्य का कुछ पता-ठिकाना नहीं है।

लेकिन मनुष्य के भीतर एक विक्षिप्तता है--हर चीज में रहस्य खोजने की। इस कारण दुनिया में बहुत तरह के रहस्यवाद चलते रहते हैं, जिनका कोई मूल्य नहीं है। अगर है तो जीवन परम रहस्य है और जीवन की हर चीज रहस्य है। लेकिन उस रहस्य की कोई थाह नहीं है। कोई उसे माप नहीं पाया, कोई उसे माप भी नहीं सकता है। तुम भी रहस्य हो। मगर तुम्हारे नाम में क्या रखा है? तुम हो रहस्य! तुम्हारे होने में रहस्य है!

मगर वह ऐसा रहस्य है कि जितने डूबोगे उतना ही पाओगे--और-और शेष है। जितना जानोगे, उतना पाओगे--और जानने को शेष है।

आखिरी प्रश्नः ओशो, जब भी मैं आपकी बातें सुनता हूं तो मेरा शादी करने का पक्का इरादा चकनाचूर हो जाता है। लेकिन जब भी मैं अपनी ओर से सोचता हूं तो मुश्किल में पड़ जाता हूं कि शादी करूं या न करूं। आपने पिछले दो दिन में बताया कि समझदार आदमी को शादी करनी ही नहीं चाहिए। अब बताएं ओशो, मैं क्या करूं? मेरी तो कुछ समझ में नहीं आता। कृपया मुझे मार्ग दिखावें!

रमेश सत्यार्थी, अपनी ही सूझ-समझ से चलो। मेरी बातें सुन कर उलझोगे तो झंझट में पड़ोगे। झंझट में इसलिए पड़ोगे कि तुम्हारा मन तो तड़प रहा है शादी करने को और मेरी बातें सुन लीं तुमने और तय कर लिया कि नहीं करेंगे। तुम्हारे भीतर द्वंद्व हो जाएगा। और जितना तुम चेष्टा करोगे कि शादी नहीं करनी, उतना ही शादी में आकर्षण बढ़ता जाएगा।

शादी का एक लाभ हैः करते से ही आदमी को विराग पैदा होता है। जब तक नहीं किया, राग पैदा होता है। यह शादी का आध्यात्मिक मूल्य है कि जिसने किया वही सोचने लगता है कि नहीं है कुछ सार संसार में, सब बेकार है। महात्मागण ठीक कह गए हैं।

तुम कहते हो कि मैं कहता हूं कि समझदार आदमी को शादी नहीं करनी चाहिए।

नहीं, मैंने ऐसा नहीं कहा, तुम गलत समझ गए। समझदार आदमी नहीं करता। मगर समझ कहां से लाओगे? शादी करोगे तभी तो समझ आएगी न! पहले शादी करो, उससे समझ आएगी, फिर अगर समझ को कायम रख सको तो बहुत। फिर उस समझ में टिकना। अनुभव के बिना कोई समझ नहीं है। मेरी समझ तुम्हारी समझ नहीं बन सकती। यही तो मैं कह रहा हूं। तुम्हारे पिता कह जाएं, तुम्हारे दादा कह जाएं, उससे क्या होगा? तुम्हारी समझ ही तुम्हारे काम आने वाली है।

शादी एक अनुभव है--कड़वा-मीठा, सुख-दुख भरा; कांटे भी हैं, फूल भी; रात भी, दिन भी। उस अनुभव से गुजरना जरूरी है, उपयोगी है। हां, अगर तुम्हारे भीतर दूसरों को ही देख कर इतनी समझ हो कि तुम चौंक जाओ और तुम्हारे भीतर से ही भाव तिरोहित हो जाए, तो बात अलग। नहीं तो समझ कहां से लाओगे? अभी तो तुम्हारे पास नहीं है।

तुम कहते होः "मेरी कुछ समझ में नहीं आता।"

शादी करो, आएगा समझ में! अरे अच्छों-अच्छों की समझ में आ गया, तुम्हारी क्यों नहीं आएगा? एक से एक बलशाली देखे, समझ में आ गया।

रद्दी में रद्दी डाल, बाबू मुसद्दीलाल
दफ्तर से आए,
पर घर के दरवाजे पर कदम रखने से पहले
ऐसे घबराए--
जैसे, चौखट के अंदर मीलों तक फैला
कोई दहकता रेगिस्तान हो
और वो प्यासे हों।
या फिर प्रेतों का अड्डा
कोई भूतिया मसान हो
और सिर पर गंडासे हों।
घर घर न हो, कोई चिड़ियाघर हो
जिसमें खूंखार जानवर आबाद हों,
सबके सब भूखे हों और आजाद हों।

न जाने उनके ऊपर किस
दुर्वासा के शाप थे
कि वो एक नहीं, दो नहीं,
पांच लड़कियों के बाप थे।
किस्मत की मारी थीं, बेचारी थीं
पीली पड़ रही थीं, हाथ
पीले नहीं हुए थे लेकिन, क्वांरी थीं।

पहली लड़की, लाल स्याही से
अपने नाखून रचा रही थी,
दूसरी भी चाहती थी, ललचा रही थी
पर शर्म से अचकचा रही थी,
तीसरी, कल की चटनी को
कल के लिए बचा रही थी,
चौथी, हाथ में सूखी रोटी लिए
उस चटनी के लिए शोर मचा रही थी,
पांच बरस की पांचवीं, जाने क्यों
रो-रो कर अपनी हड्डियां नचा रही थी।

पत्नी चलती-फिरती जिंदा लाश थी
शायद यमराज को इसी की तलाश थी।
रोगों का सिलसिला शरीर को खा गया था,
लेकिन सारा बल जीभ में आ गया था।
रह-रह कर अपना दिल मसोसती थी,
मुसद्दी को डांटती थी, लड़ती थी, कोसती थी।

इसीलिए घर--
मुसद्दी के लिए सबसे बड़ा डर था
घर में घुसते वक्त
उनका माथा पसीने से तर था।
तो बिना किसी प्राणी या पदार्थ पर नजरें टिकाए
वे सीधे चारपाई तक आए और लेट गए।
सुबह दफ्तर थोड़ा सा लेट गए थे
तो साहब ने डांटा था
यहां पूरे ही लेट गए, तो
पत्नी क्यों न डांटे,
पड़ने लगे तड़ातड़ शब्दों के चांटे--

"आते ही मधेसा से पड़ गए हो,
घर से बिल्कुल ही उखड़ गए हो!
सब्जी आज भी नहीं लाए,
चटनी से कोई कब तक खाए!
न खा रहे हैं, न पी रहे हैं,
राम जाने कैसे जी रहे हैं!
चाय के लिए गुड़ भी निबट गया है
और मेरा फटा हुआ ब्लाऊज
और फट गया है!
सड़ गई है पर तीन बरस से यही
साड़ी चला रही हूं,
मेरी छोड़ो किसी भी तरह
गाड़ी चला रही हूं,
पर इन नासपीटियों की नर तो भरो,
इनके लिए कुछ तो करो।

आफत सी खड़ी हो गई है,
बड़ी, जरूरत से ज्यादा बड़ी हो गई है,
दुछत्ती पर घंटों गुमसुम बैठी
कबूतरों को दाना डालती है
और हर आने-जाने वाले को ताकती है।
मंझली की फीस अभी तक नहीं गई है
और हाय
मेरे दांतों की टीस अभी तक नहीं गई है।
दवाई लाए?
अजी सुनते हो, दवाई लाए?"

मुसद्दी बिचारा क्या बताए
जैसे-तैसे कुछ शब्द उसके ओंठों तक आए--
"दांत के दर्द की क्या कहती हो!
सारे दर्द दांत बन गए हैं,
पूरे जिस्म में गड़ गए हैं--
कर्ज के दांत
मर्ज के दांत
किराए के दांत
फीस के दांत
राशन के दांत
टीस के दांत
महंगाई के दांत
पढ़ाई के दांत
सब काट रहे हैं।"

"क्या बकबक कर रहे हो, भूल गई
पंसारी लाला ने बुलाया था,
मकान-मालिक भी दो बार आया था।
अबके किराया मिल जाएगा जरूर, मैंने कहा था,
मुआ नासपीटा बड़ी को घूर रहा था।
और करम की लागी कैसी बरबादी है
कि अगली एकादशी को ही
भांजी की शादी है।
भात का क्या सोचा है?"

"भात खाने को नहीं है, देने की बात करती है!
क्यों मेरे कलेजे पे घात करती है,
तू तो यमराज को भी मात करती है।
अरी मर रहा हूं,
मौत से नहीं, तुझसे डर रहा हूं।"

इस तरह दोस्तो,
जिस समय हमारे देश के नेता
सोफों में धंसे हुए क्लासिकल म्यूजिक
सुन रहे होते हैं,
इनके यहां कलेसीकल म्यूजिक चलता है,
सब अभ्यस्त हैं, किसी को नहीं खलता है।
कलेसीकल सुर जब क्लाइमेक्स पर आते हैं
तो मुसीबत के मारे मुसद्दीलाल मर जाते हैं।

इसके पहले कि भैया मरो, समझ लो तो अच्छा; जाग जाओ तो अच्छा। क्योंकि शादी तो सिर्फ शुरुआत है, फिर और-और बरबादी है। फिर बच्चे-कच्चे हैं, फिर उनका भी अनुभव आएगा। अभी जैसे शादी करने को मन ललचा रहा है, फिर बच्चे पैदा करने को मन ललचाएगा। अभी पति बनने को मन ललचा रहा है, फिर पिता बनने को मन ललचाएगा। और बात कहीं रुकती है! फिर दादा बनने को मन ललचाता है! परदादा तक बनना चाहते हैं लोग! लोग चाहते हैं कि अपने ही सामने नाती-पोतों को भी देख लें, उनका भी विवाह रचा लें। यह खेल चलता ही चला जाता है।

समझ आ सकती हो तो जल्दी करो। अभी आ जाए तो बहुत अच्छा।

ओ घोड़ी पर बैठे दूल्हे, क्या हंसता है?
देख सामने तेरा आगत
मुंह लटकाए खड़ा हुआ है
अब हंसता है फिर रोएगा
शहनाई के स्वर में जब बच्चे चीखेंगे
चिंताओं का मुकुट शीश पर धरा रहेगा
खर्चों की घोड़ियां कहेंगी
आ अब चढ़ ले
तब तुझको यह पता चलेगा
उस मंगनी का क्या मतलब था?
उस शादी का क्या सुयोग था?

ओ उतावले!
किसी विवाहित से तो तूने पूछा होता
वह तुझको यह समझा देता
ब्याह-वल्लरी के फूलों का फल कैसा है?
किसी पिता से पूछ, तुझे वह बतला देगा
भारत में बापत्व कर्म
कितना भीषण है?

ओ रे बकरे!
भाग सके तो भाग
सामने बलि-वेदी है
दुष्ट बराती नाच-कूद कर
तुझे सजा कर धूमधाम से
दुल्हिनरूपी चामुंडा की
भेंट चढ़ाने ले जाते हैं

मंडप नीचे बैठे ओ मिट्टी के माधो!
हवन नहीं यह, भवसागर
का बड़वानल है
मंत्र नहीं, लहरों का गर्जन
पंडित नहीं, ज्वारभाटा है
भांवर नहीं, भंवर है पगले
दुल्हिन नहीं, व्हेल मछली है
तू गठबंधन जिसे समझता
भाग अरे यम का फंदा है।

ओ रे पगले!
ओ अबोध, अनजान अभागे!
तोड़ सके तो तोड़ अभी हैं कच्चे धागे
पक जाने पर जीवन भर
यह रस्साकसी भोगनी होगी

अरे निरक्षर!
बी.ए.बी.टी. होकर भी तू

पाणिग्रहण का अर्थ
समझने में असफल है
ग्रहण-ग्रहण सब एक, अभागे
सूर्य-ग्रहण हो!
चंद्र-ग्रहण हो!
पाणि-ग्रहण हो!

रमेश सत्यार्थी, फिर जैसी मर्जी!
आज इतना ही।

पंद्रहवां प्रवचन

एक नई मनुष्य-जाति की आधारशिला

पहला प्रश्नः ओशो, आप सरल, निर्दोष चित्त की सदा प्रशंसा करते हैं। यह सरलता, यह निर्दोष चित्तता क्या है?

चिंता, निर्दोष चित्तता चित्त का अभाव है। जब तक चित्त है तब तक निर्दोष होना असंभव है। चित्त ही दोष है। मन ही विकार है।

मन का अर्थ हैः स्मृति, कल्पना, चिंता--भविष्य की, अतीत की। और इस सब ऊहापोह में जो है, उससे हम चूकते चले जाते हैं, उससे हमारा संबंध विच्छेद हो जाता है।

जो है उसका ही दूसरा नाम परमात्मा है। परमात्मा सदा वर्तमान है। और चित्त कभी वर्तमान नहीं हैः या तो अतीत, या भविष्य। अतीत वह जो हो चुका, अब नहीं है। उसके साथ समय गंवाना व्यर्थ है; उसमें उलझे रहना मूढ़तापूर्ण है। भविष्य वह जो अभी आया नहीं है। उसके संबंध में चिंता में डूबे रहना, उस बहुमूल्य को गंवाना है जो हाथ में है। इन दो के बीच आदमी बरबाद होता है--अतीत और भविष्य। इन दोनों के बीच ही चूक जाता है जीवन से। जीवन है दोनों के मध्य में।

इसलिए बुद्ध ने कहाः मज्झिम निकाय। बीच का रास्ता। ठहर जाओ बीच में। न इधर, न उधर। जैसे रस्सी पर चलने वाले नट को देखा है--न बाएं, न दाएं; मध्य में सम्हालता है अपने को। ऐसे ही जो मध्य में सम्हाल लेता है अपने को, वही निर्दोषता को उपलब्ध होता है।

निर्दोषता ध्यान का ही दूसरा नाम है। निर्दोषता अ-मनी अवस्था है। मन बहुत से रोगों का स्रोत है। सबसे पहले तो मन अहंकार को जन्म देता है; वह उसकी पहली संतान है। फिर अहंकार अपने पीछे पंक्तिबद्ध उपद्रव लाता है--क्रोध है, काम है, लोभ है, मोह है, द्वेष है, ईर्ष्या है, मत्सर है। फिर कोई अंत नहीं है। एक अहंकार एक पूरा संसार खड़ा कर देता है। एक झूठ हजार झूठों का जन्मदाता हो जाता है। और अहंकार से बड़ा कोई दूसरा झूठ नहीं है। अहंकार है ही नहीं; भासता है। जैसे अंधेरे में रस्सी सांप दिखाई पड़ गई हो; या सुबह की धूप में ओस की बूंद मोती मालूम पड़ गई हो; पास जाओ तो पानी हाथ लगता है।

मुल्ला नसरुद्दीन रास्ते से गुजर रहा था। पत्नी के साथ था। एकदम झपट्टा मार कर आगे बढ़ा, कुछ उठाया झुक कर सड़क से, फिर क्रोध से बड़ी वजनी गाली दी और जो उठाया था उसे फेंका। और कहा कि अगर यह आदमी मुझे मिल जाए तो इसकी गर्दन काट दूं।

पत्नी ने कहा, मामला क्या है? किसकी गर्दन काट रहे हो? क्या उठाया, क्या फेंका?

उसने कहा कि कोई दुष्ट इस तरह से खंखारता है कि अठन्नी मालूम पड़ती है।

सुबह की धूप में किसी ने खंखारा होगा ढंग से। जैसे खंखारने वाले का कसूर है! उसकी गर्दन उतार लेगा। हम ऐसी ही भ्रांतियों में जीते हैं। न मालूम क्या-क्या पकड़े बैठे हैं! न मालूम किन-किन बातों का भरोसा किया हुआ है! देह पर भरोसा किया है, जो क्षणभंगुर है; आज है, कल नहीं हो जाएगी; मिट्टी है, मिट्टी में मिलेगी ही। मन पर भरोसा किया है, जो कि देह का ही अंग है, उपयोगी है। मगर उसे मालिक बना लिया है। नौकर हो तो ठीक। और जब नौकर मालिक बन जाता है तो बहुत उपद्रव होते हैं। उसे मालिक होना तो आता नहीं, हुआ तो

था नौकर होने को और हाथ मालकियत लग जाए, तो उपद्रव होगा ही। न तौर होगा, न तरीका होगा। कोई सलीका न होगा।

मैंने सुना है, एक झक्की बादशाह ने अपने नौकर पर प्रसन्न होकर कहा कि तेरी जो मर्जी हो पूरी कर दूं। बहुत प्रसन्न हूं आज तुझ पर। तेरी सेवाओं से आनंदित हूं। मांग ले!

नौकर ने कहा, मालिक, और क्या मांगना! ऐसे ही आपने बहुत दिया है। बस एक बात कभी-कभी दिल में उठती है कि एक चौबीस घंटे के लिए मुझे बादशाह बना दें। एक बार मैं भी तो बादशाह होकर देख लूं। यह जिंदगी यूं ही न चली जाए। सिंहासन पर बैठ कर देख लूं।

सम्राट तो झक्की था और फिर कह चुका था। वायदे का पक्का आदमी था। तो चौबीस घंटे के लिए नौकर को बादशाह बना दिया।

चौबीस घंटे में उसने जो उपद्रव किए, वे चौबीस जन्मों में भी कोई बादशाह नहीं कर सकता। पहला काम तो उसने यह किया कि बादशाह को सूली दे दी। तो मामला ही खतम कर दिया। अब चौबीस घंटे के बाद सिंहासन से उतरने की कोई जरूरत ही न रही।

यह कहानी सार्थक मालूम होती है। यह तुम्हारे संबंध में है; हर मनुष्य के संबंध में है। यही हुआ है। मन नौकर हो तो ठीक; उसका उपयोग करो, यंत्र है, उपयोगी यंत्र है। जैसे कलम से लिखते हो पत्र। कलम थोड़े ही लिखती है, लिखते तुम हो। लेकिन यह भ्रांति हो जाए कि कलम लिखती है, तो फिर अड़चन होगी। मन तो केवल कलम जैसा है। उसका तुम उपयोग करते हो। उससे लिखो, उससे पढ़ो।

लेकिन हालात बिगड़ गए हैं। मन कभी का तुम्हारी छाती पर सवार हो गया है। तुम नहीं भी चाहते तो भी चलता चला जाता है। तुम कहते हो रुको, रुकता नहीं। तुम जितना कहो रुको, उतना ही रुकना मुश्किल हो जाता है। यही विकार है। यही तुम्हारे जीवन की रुग्ण अवस्था है। अपने ही मन की मालकियत नहीं है।

निर्दोष व्यक्ति मालिक होता है। सरल व्यक्ति मालिक होता है। मन बहुत कपटी है, बहुत चालबाज है। अगर उसको तुमने मालिक बनाया तो वह तुम्हें भी कपटी कर डालेगा, चालबाज कर देगा। वह तुम्हें भी ऐसी चालबाजियां सिखाएगा, तुमसे भी ऐसे काम करवा लेगा, जो तुमने खुद कभी न किए होते।

तुम जरा सोचना। मैं जो कह रहा हूं, वह कोई सैद्धांतिक बातचीत नहीं है। सिद्धांतों में मेरा रस ही नहीं है। मैं जो कह रहा हूं वह तथ्य की बात है। अपने मन की जांच-परख करना। क्या-क्या तुम्हारे मन ने तुमसे नहीं करवा लिया! कैसी-कैसी मूढ़ताएं नहीं करवा लीं! और फिर उन मूढ़ताओं के लिए कैसे-कैसे कारण नहीं खोज लिए! मन कारण खोजने में भी बहुत कुशल है; वही तो उसके कपटी होने का जाल है। वह हर चीज के लिए कारण खोज लेता है, तर्क खोज लेता है। हर चीज के लिए बहाने खोज लेता है।

लेकिन अगर तुम जरा सा सजग हो जाओ, तो तुम पहचान सकोगे। तुम अगर जरा साक्षी-भाव सम्हालने लगो, थोड़ा सा, इंच भर, तो तुम्हें दिखाई पड़ने लगेगा मन का जाल।

मुल्ला नसरुद्दीन रात सोया। रात नींद में कहने लगा, कमला! कमला! हे प्यारी कमला!

पत्नी सुन रही थी, झकझोर कर उठाया और कहा, यह कलमुंही कमला कौन है? किससे बातें कर रहे हो? सपने में राज खुल गया। शक तो मुझे था ही। तुम्हारे कपड़ों पर रोज लंबे-लंबे बाल देखती हूं जब भी तुम दफ्तर से आते हो। दफ्तर और घर के बीच तुम कहीं और भी जाते हो। और रोज देर से आते हो। हर रोज बहाने। आज राज खुल गया। यह कमला कौन है? बताना ही पड़ेगा, इसी वक्त बताना पड़ेगा!

नसरुद्दीन ने तत्क्षण तर्क खोजा, कहा कि तू भी पागल है, कमला यह एक घोड़ी का नाम है। रेसकोर्स में इसी पर मैंने दाम लगाए हैं। सो उसी की याद आ गई होगी। बड़ी आशा लगाए बैठा हूं कि इस बार शायद रेसकोर्स में कमला जीत जाए, तो हमारे भाग्य खुल जाएं, दुर्दिन मिट जाएं।

समझा-बुझा कर सो गया, पत्नी भी सो गई। दूसरे दिन दफ्तर से लौटा, पत्नी बाहर ही बैठी थी। उसको देख कर ही समझ गया कि कुछ गड़बड़ है। पूछा कि तू इस तरह क्यों देख रही है? मुझे इस तरह देख रही है जैसे मैं कोई अजनबी हूं!

उसकी पत्नी ने कहा कि नहीं, इस तरह नहीं देख रही हूं। उस घोड़ी का फोन आया था, वह कह रही थी कि प्लाजा टाकीज के पास शाम को मिल जाना।

तरकीबें तो मन कर लेता है, जाल भी फैला लेता है, जाल से बचने के लिए और जाल फैला लेता है। मगर कब तक? कहां तक? सच्चाइयां उभर कर आ ही जाती हैं। सच्चाइयों से बचा भी नहीं जा सकता। तुम दबाए जाते हो, छिपाए जाते हो, मगर फिर भी उभर आती हैं। सच्चाइयों का गुण है कि उनको सदा के लिए दबाया नहीं जा सकता। और झूठ का गुण है कि सदा के लिए उसको बचाया नहीं जा सकता। थोड़ी-बहुत देर शायद तुम भरमा लो अपने को, औरों को; मगर यह ज्यादा देर खेल चलता नहीं। और अच्छा है कि ज्यादा देर खेल नहीं चलता। मगर आदमी इतना मूढ़ है कि खेल टूट-टूट जाता है; वह गिर-गिर पड़ता है; फिर-फिर उठ आता है, धूल झाड़ लेता है; फिर-फिर उसी चाल से चलने लगता है; फिर लड़खड़ाता है, फिर गिरता है; गिर कर सम्हल भी नहीं पाता कि फिर गिरने की तैयारियां शुरू कर देता है।

सजगता चाहिए, तो मन के कपट, मन के जाल, मन की बेईमानियों से, चिंता, मुक्ति हो सकेगी। और जैसे ही मन के कपट और जाल से मुक्ति हुई, मन से मुक्ति हुई। फिर रह जाता है एक यंत्र मात्र विचार की प्रक्रिया का। उसका उपयोग करो। उसका बाह्य उपयोग है। अंतर्जगत में उसका कोई उपयोग नहीं है। जैसे भाषा का बाहर उपयोग है। तुमसे बोलना हो तो भाषा। खुद से तो बोलने के लिए भाषा की कोई जरूरत नहीं, भाव पर्याप्त है। बाहर जाना हो तो मन; भीतर जाना हो तो अ-मन।

इसलिए इतनी प्रशंसा करता हूं, क्योंकि जो कपटी है वह बाहर ही अटका रह जाता है। और एक दिन मौत आती है और सब बनाए हुए रेत के घरों को गिरा देती है, सब कागज की नावें डुबा देती है। मगर तब तक बहुत देर हो गई होती है। फिर तुम लाख हाथ-पैर पटको तो भी कुछ कर न सकोगे। इसलिए पहले ही चौंक जाना, पहले ही सम्हल जाना जरूरी है। उस सम्हल जाने का नाम ही संन्यास है।

संन्यास है मालकियत चेतना की मन के ऊपर।

संन्यास है साक्षी-भाव।

संन्यास है इस बात की घोषणा कि अब मैं चेतना को मन से संचालित नहीं होने दूंगा; अब चेतना मन को संचालित करेगी; चेतना के हाथ में लगाम देता हूं मन की।

और मालकियत जब होगी तो तुम्हारे हाथ में होगा, जब चाहो मन का उपयोग करो और जब चाहो तब मन को बंद कर दो।

स्विटजरलैंड में पिछले दो-तीन वर्ष पहले ऐसी एक घटना घटी। एक आदमी अस्पताल में बंद था। एक कार-दुर्घटना में उसके मस्तिष्क को बहुत चोट पहुंची थी। कभी-कभी दुर्घटनाओं में अनूठी बातें घट जाती हैं। चोट से कुछ उसके कानों को ऐसी बात हो गई कि दस मील के इर्द-गिर्द जो रेडियो स्टेशन थे, उनको वह पकड़ने लगा, कान से ही पकड़ने लगा। कान के यंत्र में इतनी संवेदनशीलता आ गई। वह बिस्तर पर पड़ा-पड़ा ही...

साफ तो सुनाई नहीं पड़ता था। जैसे तुम्हारे रेडियो पर दो-तीन स्टेशन साथ-साथ लगे हों, ऐसी हालत थी उसके कान की, भन-भन, लेकिन कभी कोई लकीर समझ में भी आ जाए, कभी कोई गीत पकड़ में भी आ जाए।

पहले तो उसने सोचा कि सब मन का ही भुलावा है। लेकिन जब यह बार-बार होने लगा तो उसने नर्सों को शिकायत की कि कुछ गड़बड़ हो रही है, कुछ भन-भन मेरे भीतर चलती रहती है। ऐसा लगता है जैसे कि कोई रेडियो बिगड़ा हो और दो-तीन स्टेशन एक साथ लग गए हों।

नर्सों ने कहा कि भ्रांति है तुम्हारी। चोट खा गए हो, मस्तिष्क को धक्का लग गया है, स्नायु-तंत्र पूरा का पूरा अस्तव्यस्त हो गया है। सब ठीक हो जाएगा।

टालते ही रहे। लेकिन माना ही नहीं जब वह आदमी, उसने कहा कि मैं बड़ी मुश्किल में पड़ा हूं, न रात सो सकता हूं, क्योंकि यह चलता ही रहता है। जब बारह बजे रेडियो स्टेशन बंद होता है तब यह बंद होता है। बारह बजे बंद हो जाता था। तो नर्सों को भी लगा कि पता नहीं कुछ हो न। तो डाक्टरों को कहा। पहले तो डाक्टरों ने भी न माना। फिर एक डाक्टर ने कहा कि प्रयोग करके तो देखें। तो जाकर बगल के कमरे में एक रेडियो लगा कर देखा और इससे पूछा कि तू बोल, क्या तुझे सुनाई पड़ रहा है? और वह जो बोला वे वही लकीरें थीं गीत की जो रेडियो पर लगी थीं।

फिर तो जांच-पड़ताल की गई और पाया गया कि उसके कानों में कुछ आकस्मिक घटना घट गई है। आपरेशन करके उसके कान ठीक करने पड़े। मगर उससे एक बात वैज्ञानिकों को पता चल गई कि आज नहीं कल मनुष्य के कानों को इस तरह से व्यवस्थित किया जा सकता है कि आदमी को रेडियो लिए फिरने की जरूरत न रहे। यह संभावना का द्वार तो उसकी दुर्घटना ने खोल दिया।

लेकिन तुम सोचो उस आदमी की मुसीबत। रेडियो तुम्हारे घर में भी है, लेकिन मुसीबत नहीं है, क्योंकि जब चलाना हो तो चलाओ, जब न चलाना हो तो मत चलाओ। मगर उसके पास तो बंद करने का कोई उपाय ही न था। चले तो चले, न चले तो न चले।

अभी तुम्हारे मन की हालत उसी आदमी जैसी है। तुम लाख कहो कि चुप हो जा! वह होता ही नहीं; वह अपना काम जारी रखता है; वह अपनी गुनगुन में लगा ही रहता है। और कोई दो-तीन स्टेशन एक साथ लगे हैं। न मालूम कितने स्टेशन एक साथ लगे रहते हैं! कभी बैठ कर एक कागज पर अपने मन में चलती हुई सारी बातों को लिखो। बहुत हैरान होओगे, क्या-क्या कचरा मन में तैरता है! कचरा ही कचरा तैरता है! कहां से कौन सी बात आ जाती है, कुछ पता नहीं चलता। और इसको तुम सोचते हो स्वस्थ अवस्था?

चिंता, यह स्वस्थ अवस्था नहीं है, बड़ी रुग्ण अवस्था है। सामान्य तो है, क्योंकि औरों की भी यही है, मगर स्वस्थ नहीं है। सामान्य होने से ही कोई बात स्वस्थ नहीं होती। सामान्य तो है, लेकिन जैसी होनी चाहिए वैसी नहीं है। जैसे पूरी मनुष्य-जाति एक तरह की विक्षिप्तता में जी रही है। सब अपनी-अपनी विक्षिप्तता को छिपाए चल रहे हैं, कोई कुछ कहता नहीं। मगर कभी-कभी यह विक्षिप्तता निकल जाती है।

कभी क्रोध में तुम ऐसी बातें कह जाते हो, जिनके लिए पीछे पछताते हो। सोची तो तुमने वे बातें बहुत बार थीं, लेकिन कभी कही नहीं थीं। मगर क्रोध में भूल गए। भीतर जो चलता था, वह बाहर निकल गया। कभी-कभी प्रेम में ऐसी बातें कह जाते हो, जिनके लिए पीछे बहुत पछताते हो कि यह मैंने क्या कह दिया! अब क्या होगा! किसी से विवाह का निवेदन ही कर बैठे। अब पछताओ जिंदगी भर! अब रोओ! अब लौटने का रास्ता नहीं सूझता, कि अब वापस कैसे लो निमंत्रण को।

ये तुम्हारे भीतर चलती रहती हैं बातें, बाहर नहीं निकल पातीं, तुम इनको सम्हाले हुए हो। मगर बड़ी पतली सम्हाल है, जरा सा परदा है। इसलिए जरा सी शराब पिला दो किसी को, वह परदा गिर गया। वह आदमी ऐसी बातें बकने लगता है जो तुमने कभी न सोची थीं। खादीधारी है, सज्जन है, गांधीवादी है, जरा सी शराब पिला दी, एकदम गाली-गलौज करने लगा, एकदम परमहंसों की भाषा बोलने लगा। क्या तुम सोचते हो शराब से गाली पैदा हो सकती है? शराब में ऐसा कुछ भी नहीं जो गाली पैदा कर सके। गालियां तो भीतर भरी थीं। खादी के भीतर छिपाए था। राम-राम जपता था, राम-राम की गुहार मचाए था। वह बाहर-बाहर थी, परिधि पर थी। भीतर सब उपद्रव था। वह शराब ने राम-राम की गुहार सुला दी। वह शराब ने भुला दिया कि मैं गांधीवादी हूं।

अकबर निकलता था रास्ते से, अपने हाथी पर सवार। शोभायात्रा निकल रही थी किसी उत्सव के समय। और एक आदमी अपने छप्पर पर खड़े होकर अकबर को अंट-शंट बातें कहने लगा--कि अरे हरामजादे, शरम नहीं आती! हाथी पर चढ़ा बैठा है!

उसे तत्क्षण पकड़वाया गया, जेल में बंद करवा दिया गया। दूसरे दिन अकबर ने उसे बुलाया और कहा कि तू होश में है? क्या बक रहा था?

उसने कहा कि मैंने कुछ भी नहीं कहा, मैं शराब पीए हुए था। इसलिए मैं क्षमा चाहता हूं। कसूर मेरा नहीं है। मैंने जान-बूझ कर कुछ भी नहीं कहा है। और जो कुछ कहा हो, मुझे उसका होश भी नहीं है।

शराब में कोई आदमी तुमसे कुछ कह दे पीए हुए, तो तुम भी कहते हो--शराबी है, जाने दो। मगर यह आदमी जब शराब नहीं पीए होता, तब भी भीतर कहता है। भीतर-भीतर कहता रहे तो ठीक, बाहर न प्रकट हो।

तुम जरा अपने मन में सोचना। घर में मेहमान आ गए हैं, ऊपर-ऊपर तो तुम कहते हो कि आपको देख कर हृदय आह्लादित हो उठा! पलक-पांवड़े बिछाए बैठे थे, कब से राह देखते थे कि आप आओ, घर को पवित्र करो! गरीबखाना धन्य हुआ! और भीतर कह रहे हो कि ये दुष्ट, इन कमबख्तों को भी यही आने का वक्त मिला! हजार मुसीबतें हैं और अब ये आ गए। इनसे अब कैसे छुटकारा हो, इसकी चिंता में पड़े हो। भीतर कुछ चल रहा है, बाहर कुछ कह रहे हो।

हां, शराब पीए होओ तो भीतर जो चल रहा है वही बाहर आ जाएगा। शराब तुम्हारे भीतर के सत्य प्रकट करवा देती है। इसलिए तुम्हारे तथाकथित संतजन शराब के बहुत खिलाफ हैं; उसका कुल कारण इतना है कि शराब तुम्हारे सत्यों को प्रकट करवा देगी।

जार्ज गुरजिएफ के पास जो भी शिष्य आते थे, पहले उनको शराब पिलाता था, खूब डट कर पिलाता था। इतनी पिला देता था कि वे गिर पड़ते फर्श पर, लोटने लगते, बकने लगते। फिर उनके पास बैठ कर सुनता था कि वे क्या कह रहे हैं। क्योंकि वह कहता था कि आदमी इतना बेईमान है कि इससे अगर तुम ऐसे ही पूछो तो यह कुछ कहता है, जब कि असलियत कुछ और होती है। इसकी असलियत तो तभी जानी जा सकती है जब यह बिल्कुल बेहोश हो, क्योंकि बेहोशी में यह धोखा नहीं दे सकता।

यह कैसी विडंबना है कि होश में तुम्हारी बात का भरोसा नहीं किया जा सकता; सिर्फ बेहोशी में तुम्हारी बात का भरोसा किया जा सकता है, क्योंकि तुम्हारा बेईमान सोया होता है। मनोवैज्ञानिक भी यही करते हैं। वे तुमसे यह नहीं पूछते कि तुमने दिन में क्या सोचा। वे तुमसे पूछते हैं, रात तुमने सपने में क्या देखा? क्यों? आखिर दिन में भी तुम हो। मगर दिन में तुम धोखेबाज हो। दिन में तुम दबाए जा रहे हो। रात में तुम्हारी

असलियतें प्रकट हो जाती हैं। सपने में, तुम्हारे जितने भी तुमने आयोजन किए हैं सुरक्षा के, तुमने जितनी रोक-टोकें लगा रखी हैं, वे सब गिर जाती हैं। तुम्हारी दीवारें गिर जाती हैं। तुम्हारे भीतर के रोग सीधे-सीधे प्रकट हो जाते हैं।

और सपने की भाषा ऐसी होती है, चित्रों की, कि तुम्हें बताते वक्त भी पता नहीं चलता कि तुम जो बता रहे हो उसका मतलब क्या है। वह तो मनोवैज्ञानिक ही समझता है। तुम तो बता जाते हो कि मैंने यह सपना देखा। तुम्हें साफ नहीं होता कि इसका मतलब क्या है। अगर मतलब तुम्हें साफ हो तो शायद तुम उसमें भी धोखा दे जाओ।

जो लोग बहुत दिन तक मनोवैज्ञानिकों से चिकित्सा करवाते हैं, हद की बात अनुभव में आई है, वे लोग झूठे सपने देखने लगते हैं। झूठे यानी ऐसे जैसे कि मनोवैज्ञानिक चाहता है। झूठे अर्थात ऐसे जैसे कि शुभ मालूम पड़ें, जिनमें अशुभ काट दिया जाए।

आदमी की तो बात और, कल मैं पढ़ रहा था कि अगर आदमी के साथ जानवर भी रहें तो जानवर तक झूठ बोलना और बेईमानी करना सीख जाते हैं। जानवर! झूठ बोलना! पहले तो मुझे भी भरोसा न आया। लेकिन जब मैंने पूरा प्रयोग पढ़ा तो समझ में आया।

एक वैज्ञानिक ने प्रयोग किया। कुछ बंदरों को एक कोठरी में बंद कर दिया है। जंजीरें हैं उन पर, इसलिए भाग नहीं सकते, कुछ कर भी नहीं सकते, मगर बैठे-बैठे देखते हैं जो भी कमरे में होता है। एक आदमी आता है नीली वर्दी पहने हुए। कमरे में कई डब्बे रखे हुए हैं, बीस-पच्चीस डब्बे रखे हुए हैं। वह एक डब्बे में आकर, समझो कि पांच नंबर के डब्बे में आकर मिठाइयां बंदरों को दिखा कर और डब्बे में बंद कर देता है और ताला लगा देता है।

फिर दूसरा आदमी आता है पीली वर्दी पहने हुए। वह खोजता है कि मिठाई कहां छिपी है। तो बंदर उसको इशारा करते हैं। वे पांचवें नंबर के डब्बे की तरफ इशारा कर देते हैं, हाथ बता देते हैं, आंख मारते हैं कि उधर। वह आदमी खोलता है पेटी और मिठाई खुद खा जाता है। बंदरों को बड़ा दुख पहुंचता है।

एक और आदमी आता है तीसरा, लाल वर्दी पहने हुए। वे उसको भी बताते हैं। वह आदमी वे मिठाइयां निकाल कर बंदरों को खिला देता है।

अब बंदर जानते हैं कि कौन उनका मित्र है और कौन उनका दुश्मन है। और बस बेईमानी शुरू। अब जब मित्र भीतर आता है तो उसको ठीक डब्बे की तरफ आंख मारते हैं वे और जब जो आदमी खुद मिठाई खा गया वह आता है तो उसको गलत डब्बा बताते हैं जिसमें मिठाई नहीं है। पांचवें को छोड़ कर कोई भी डब्बा बताते हैं, पांचवां भर नहीं बताते। अगर वह पांचवें की तरफ जाने भी लगता है तो कहते हैं--ऊंहूं! वहां मत जाओ, कोई सार नहीं है। इशारा कर देते हैं कि बेकार है। इस तरफ! उसको भड़काने की कोशिश करते हैं।

यह प्रयोग इतनी बार किया गया और कई तरह के जानवरों पर किया गया और पाया गया कि सब जानवर झूठ बोलना सीख लेते हैं, जरा उनको मौका दिया जाए। जरा उनको अवसर दिया जाए तो चालबाजी उनको पकड़ में आ जाती है। आदमी की संक्रामक बीमारी उनको भी जैसे लग जाती है।

मनोवैज्ञानिकों के पास जो लोग बहुत दिन चिकित्सा कराते हैं, वे झूठे सपने देखने लगते हैं। एक बहुत अनूठा तथ्य पकड़ में आया है। अलग-अलग मनोवैज्ञानिकों की अलग-अलग धारणाएं हैं। इसलिए फ्रायड को मानने वाले मनोवैज्ञानिक के पास जो लोग चिकित्सा करवाते हैं, वे इस तरह के सपने देखने लगते हैं जो कि फ्रायड की व्याख्या के अनुकूल पड़ते हैं। और जो जुंग के मानने वालों के पास व्याख्या करवाते हैं, वे जुंग की तरह

के सपने देखने लगते हैं। और जो एडलर के पास करवाते हैं, वे एडलर की तरह के सपने देखने लगते हैं। आदमी की बेईमानी हद्द की है! दिन में ही धोखा नहीं देता, धीरे-धीरे रात के सपनों में भी धोखा देने लगता है।

मगर उन धोखों को भी अगर गौर से तुम देखो, तो कहीं न कहीं सत्य अपने को प्रकट करता हुआ मिल जाएगा।

मैंने सुना है, अडोल्फ हिटलर एक रात बर्लिन के सबसे प्रसिद्ध सिनेमागृह में गया--यह देखने कि जब मेरी तस्वीर आती है तो लोग क्या व्यवहार करते हैं। चित्र शुरू होने के पहले अडोल्फ हिटलर की तस्वीर आई। सारे लोग खड़े हो गए और सबने जय-जयकार की ध्वनि की। स्वभावतः, अडोल्फ हिटलर सिर्फ खड़ा नहीं हुआ। वह क्यों खड़ा हो, वह तो खुद ही अडोल्फ हिटलर है! वह यह भूल ही गया कि यहां मैं अडोल्फ हिटलर की तरह नहीं आया हुआ हूं। सभी जय-जयकार की ध्वनि कर रहे हैं। बड़ा प्रसन्न था। तभी बगल के आदमी ने, जो खड़े होकर जय-जयकार कर रहा था, उसको कंधे पर धक्का दिया और कहा, खड़ा हो जा भाई! अगर उस हरामजादे को पता चल गया तो तू पीछे मुसीबत में पड़ेगा।

कहां तक छिपाओगे? कहीं न कहीं से बात प्रकट हो जाती है।

मुल्ला नसरुद्दीन रास्ते पर खड़े होकर राष्ट्रपति को गालियां दे रहा था कि उल्लू का पट्ठा है राष्ट्रपति। मिल जाए तो इसके मुंह पर थूक दूं। ऐसा महामूढ़ मैंने नहीं देखा।

पुलिसवाले ने उसे पकड़ लिया और कहा कि तुम थाने चलो।

तब जरा वह होश में आया। उसने कहा कि भई, मैं कोई अपने देश के राष्ट्रपति के संबंध में थोड़े ही कह रहा हूं। अरे मैं तो अमरीका के राष्ट्रपति के संबंध में कह रहा हूं।

उस पुलिसवाले ने कहा, तुमने हमें मूरख समझा है? हमें पता नहीं कि किस देश का राष्ट्रपति मूरख है? तुम हमें बनाना चाहते हो? चल थाने!

जब देखा मुल्ला ने कि बचने का कोई उपाय नहीं, तो उसने कहा, भई, क्या अपने राष्ट्रपति की आलोचना करने में कोई खराबी है?

उसने कहा कि खराबी तो कुछ भी नहीं है--पुलिसवाले ने कहा--लेकिन तुम इस तरह की बातें बता रहे हो कि अगर लोगों को पता चल जाए कि ये गुण जिनमें होते हैं वह आदमी राष्ट्रपति हो सकता है, तो यह सारा देश ही राष्ट्रपति होने की कोशिश करने लगेगा। तुम हमारी मुसीबत करवाओगे। तुम राष्ट्रपति की योग्यता बता रहे हो सबको। चल थाने!

आदमी बचा नहीं सकता, कहीं न कहीं से बात उघड़ आती है। झूठ टूट-टूट जाता है।

तुम मन के झूठों को टूटता हुआ देखना शुरू करो। और उसी से तुम्हारे जीवन में क्रांति का सूत्रपात होगा। तुम मन के झूठ देखो।

मन तुम्हें अतीत में भटकाता है, मत भटको उसके साथ। कह दो कि तू भटक, हम तेरे पीछे नहीं आते हैं। मन भविष्य में ले जाए, सपने दिखाए, आशाएं बंधवाए, बड़ी योजनाएं बनवाए--कह दो कि तू जा, हमारे कोई इरादे नहीं। हम तो यहीं भले। हम तो यहीं राजी। हम तो तथाता में रहेंगे। वर्तमान बहुत है। न हमें अतीत में लौट कर देखना है, न भविष्य में।

थोड़े दिन तो मन पुरानी आदत के अनुसार खींचातानी करेगा; खींचेगा अतीत की तरफ, खींचेगा भविष्य की तरफ; लेकिन अगर तुमने तय ही कर लिया हो, संकल्प ही कर लिया हो कि नहीं जाओगे मन के पीछे, तो

जल्दी ही मन थक जाता है। तुम्हारे बिना सहयोग के मन एक इंच नहीं चल सकता। ऊर्जा तो तुम्हीं देते हो, बल तो तुम्हीं देते हो, भोजन तो तुम्हीं देते हो। तुम्हारा साथ मिले तो ही चलता है, नहीं तो चलेगा कैसे?

जल्दी ही थक जाएगा मन। और जब मन थक जाएगा और देख लेगा कि अब कोई उपाय नहीं है, तो मन करीब-करीब वैसा ही करता है जैसे कुत्तेः पहले भौंकेंगे और देख लिया कि तुम पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा तो पूंछ हिलाने लगेंगे। मन की भी वही हालत है।

विवेकानंद ने लिखा है कि वे पहली दफा हिमालय गए। एक पहाड़ी के पास से गुजरते थे। संन्यासी के गैरिक वस्त्र! कुछ बंदरों को मजा आ गया। कुछ बंदर उन्हें चिढ़ाने लगे।

संन्यासी को देख कर कई तरह के बंदरों को चिढ़ाने का मजा आता है। बंदरों को ही चिढ़ाने का मजा आता है, और किसको आएगा! अब बंदर कोई धार्मिक तो होते नहीं, शैतान प्रकृति के होते हैं। मन जैसा ही उनका ढंग होता है। इसलिए तो मन को बंदर कहते हैं।

विवेकानंद को डर लगा। ऐसे तो मजबूत आदमी थे। मगर कितने ही मजबूत होओ, कोई बीस-पच्चीस बंदर अगर तुम्हारे पीछे पड़े हों... एक ही काफी है। वे बंदर उनके पीछे ही चलने लगे। आवाज कसें, खिल्ली उड़ाएं। फिर तो कंकड़-पत्थर फेंकने लगे। विवेकानंद ने भागना शुरू कर दिया। विवेकानंद भागे तो वे भी भागे। बंदरों ने भी भागना शुरू कर दिया उनके पीछे। और जब कुछ बंदर भागे तो और बंदर जो वृक्षों पर बैठे थे उनको भी रस आ गया। घिराव ही हो गया। और बंदर भी उतर आए। विवेकानंद ने देखा, यह तो बचने का उपाय नहीं है। ऐसे अगर मैं भागा तो ये मेरी चिंदी-चिंदी कर डालेंगे। वे रुक कर खड़े हो गए। वे रुक कर खड़े हुए तो बंदर भी खड़े हो गए। बंदर ही तो ठहरे आखिर! जब उन्होंने देखा कि मेरे रुकने से ये भी रुक गए, तो पीछे मुड़ कर उन्होंने बंदरों की तरफ देखा, तो बंदर थोड़े सहमे, दो कदम पीछे भी हटे। विवेकानंद उनकी तरफ दौड़े, तो वे भाग कर वृक्षों पर सवार हो गए।

विवेकानंद ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि उस दिन मुझे समझ में आया कि मन के साथ भी यही हालत हैः इससे डरो, इसकी मानो, इससे भागो, तो यह और सताता है। रुको, ठहरो, घूर कर इसे देखो, मत डरो, दो कदम इसकी तरफ बढ़ाओ, इसको चुनौती दे दो कि तुझे जो करना हो कर, हम हिलने वाले नहीं, डुलने वाले नहीं--तो यह पूंछ हिलाने लगता है।

तुम जरा प्रयोग करके देखो। अंतर-जगत के थोड़े प्रयोग करने चाहिए। चिंता, प्रश्नों के उत्तर मुझसे नहीं मिलेंगे। मैं केवल इंगित दे सकता हूं, इशारे दे सकता हूं। इशारे कि तुम प्रयोग कर सको। प्रयोगों से तुम्हें उत्तर मिलेंगे, समाधान मिलेंगे। तुम्हारा प्रयोग ही तुम्हारे लिए समाधान बन जाएगा।

मन तो इसीलिए तुम पर हावी है कि तुम उसे हावी होने देते हो। तुम जिस क्षण तय कर लो कि अब नहीं हावी होने देना है, बहुत हो चुका, उसी क्षण मन उतर जाता है, उसी क्षण रास्ते पर आ जाता है, उसी क्षण तुम्हारे पीछे छाया की तरह चलने लगता है। और जब मन तुम्हारा मालिक न हो तब एक निर्दोषता पैदा होती है, एक सरलता पैदा होती है। दंभ मिट जाता है, क्योंकि मन ही दंभ को पैदा करवाता है। लोभ मिट जाता है, क्रोध मिट जाता है, मोह मिट जाता है, माया मिट जाती है। वर्तमान में न तो क्रोध होता है, न लोभ होता है, न माया होती है। वर्तमान में तो होती है परम शांति, परम शून्यता। वर्तमान में ज्ञान भी नहीं होता, ज्ञान का दंभ भी नहीं होता कि मैं वेद का ज्ञाता हूं, कि उपनिषद का ज्ञाता हूं, कि कुरान का ज्ञाता हूं। ये सब ज्ञान वगैरह भी व्यर्थ साबित हो जाते हैं। जो है उसकी छबि बनती है तुम्हारे भीतर।

पक्षी गीत गा रहे हैं, तो तुम्हारे भीतर उनके गीत गूंजते हैं--और यही वेदों की ऋचाएं हैं। वृक्षों में फूल खिले हैं और उनके रंग तुम्हारे भीतर फाग की तरह फैल जाते हैं, जैसे गुलाल उड़ गई हो! रंग ही रंग हो जाते हैं! यही उपनिषदों का रंग है। रसो वै सः! यही परमात्मा का रस रूप है। कि पहाड़ से गिरते झरने की मरमर ध्वनि, कि वृक्षों से गुजरती हुई हवाओं से पैदा हुआ संगीत--यही कुरान की आयतें हैं। फिर जो है तुम्हें घेरे हुए, यह परमात्मा का ही जगत है। तुम दर्पण की तरह जब सरल-स्वच्छ हो तो इसकी प्रतिछवि बनती है, इसकी छाया बनती है, इसका प्रतिफलन बनता है। और जीवन एक धन्यता से, अहोभाव से भर जाता है।

मैंने जीवन को कब समझा? कब अपने को पहचाना?
भेद सकीं कब मेरी आंखें ममता का ताना-बाना?
मैं तो एक पथिक हूं भाई
अंतहीन है जिसकी मंजिल,
एक चमक जिसकी आंखों में,
जो है अपने से ही गाफिल!
मैं तो जान सका हूं केवल मिट-मिट कर बनते जाना!
मैंने जीवन को कब समझा? कब अपने को पहचाना?
विगत विगत बन चुका, न उसको बांध सकूंगा प्राणों से,
मुझमें यह रुचि नहीं कि उलझूं कटुता के पाषाणों से!
तुम चाहो तो कायर कह दो,
टिक न सके ये मेरे दो पग,
ढूंढ रहा मैं विकल, विसुध सानिज
कल्पित सुंदरता का जग,
मुझको इतना मिला कि बरबस बस आगे बढ़ते जाना!
मैंने जीवन को कब समझा? कब अपने को पहचाना?
मैंने निज को सक्षम समझा, मैं अक्षम अज्ञानी था,
भिक्षापात्र लिए निज कर में, बनता दानी-मानी था!
मुझे मिली है सदा निराशा,
मुझे मिला अपमान, पराभव,
हतप्रभ प्राण हो गए पीकर
अविश्वास का तीखा आसव!
पर मैंने कब किसको कोसा? वैर-भाव किससे माना?
मैंने जीवन को कब समझा? कब अपने को पहचाना?
राग-रंग, सुख-वैभव, ये सब बस केवल सपने निकले,
यहां और तो और, न मेरे सपने ही अपने निकले!
मुक्त कंठ से आज कर रहा,
मैं अपनी स्वीकार पराजय,

मेरे नयनों के आगे जो
अंधकार है, वह है अक्षय!
मुझे मिला है निज निर्बलता से पग-पग पर टकराना!
मैंने जीवन को कब समझा? कब अपने को पहचाना?
उठ पड़ती है बुझे हृदय में एक टीस सी कभी-कभी,
ऐसी ही कुछ अजब व्यथा में डूब गया हूं अभी-अभी!
कुछ भारी-भारी दिन लगता;
कुछ सहमी-सहमी सी रातें
कुछ सूनी-सूनी लगती हैं
अपनी और परायी बातें!
चरण चाहते हैं रुक जाना, शीश चाहता झुक जाना!
मैंने जीवन को कब समझा? कब अपने को पहचाना?
छूट रही हैं मानो मुझसे काल-नियति की सीमाएं,
सभी अपरिचित सा लगता है जो कुछ है दाएं-बाएं!
क्या है? क्या है नहीं यहां पर?
एक प्रश्न उठ पड़ा अचानक!
कब से चलना शुरू किया है?
चलना होगा मुझको कब तक?
इन सीधे-सादे प्रश्नों का बड़ा कठिन उत्तर पाना!
मैंने जीवन को कब समझा? कब अपने को पहचाना?
आज हृदय पर भार बन गई है मेरी चेतना स्वयम्,
अंधकार, आलोक सभी कुछ आज दिख रहा है विभ्रम!
इस भ्रम पर विश्वास असह है,
पर विश्वास यहां पर जीवन,
जीवन को कैसे भ्रम कह दूं
जब कि सत्य है उर का स्पंदन!
सत्य और भ्रम मैं क्या जानूं जब मैं ही हूं अनजाना!
मैंने जीवन को कब समझा? कब अपने को पहचाना?
मैं पुकार उठता हूं बरबस--दया करो मेरे स्वामी!
तुम कर्ता हो तुम ही कृति हो, तुम तो हो अंतर्यामी!
मेरी पीड़ा में तुम पीड़ित
मेरी शंका में तुम शंकित,
कण-कण में अस्तित्व तुम्हारा,
श्वास-श्वास में तुम ही अंकित!
आत्म-समर्पण आज कर रहा है यह अपना दीवाना,

मैंने जीवन को कब समझा? कब अपने को पहचाना?

क्या हम जानते हैं? शास्त्रों को जानते हैं। पर शास्त्रों को जानने से ज्ञान का क्या संबंध? शब्दों को जानते हैं। लेकिन शब्दों की पहचान से क्या कोई सत्य को पहचान पाया है? मन का ऊहापोह हमारा परिचित है। मगर मन का ऊहापोह तो बाधा है; वही तो धुआं है, वही तो धूल है, जिससे हमारा दर्पण दबा है। और यह जगत अपरिसीम रहस्य है। इस जगत को हम मापने चले हैं--मन की इस छोटी सी चम्मच से जैसे कोई सागर को मापने चला हो! हम पागल हैं।

चिंता, मन से मुक्त हुए बिना जीवन से हम वंचित ही रह जाते हैं। न जीवन का उत्सव अनुभव हो पाता, न जीवन की उमंग, न जीवन का अर्थ खुलता, न जीवन का रहस्य, न जीवन की रसधार बहती। इसीलिए कहता हूंः सरल बनो। सरल ऐसे जैसे छोटे बच्चे। सरल ऐसे जैसे फूल। सरल ऐसे जैसे कुछ भी पता नहीं है।

सुकरात ने कहा हैः मैं इतना ही जानता हूं कि मैं कुछ भी नहीं जानता।

यह सरलता है। यह ध्यान की पराकाष्ठा है।

उपनिषद के ऋषियों ने कहा हैः अज्ञान तो भटकाता ही है अंधकार में, ज्ञानी और भी महाअंधकार में भटक जाते हैं।

किन ज्ञानियों के संबंध में कहा है? निश्चित ही पंडितों के संबंध में कहा है। यह मन पंडित बन जाता है--तोते की तरह; सुंदर-सुंदर वचन सुभाषित रच लेता है। यह मन ज्ञान-संग्रह करता, धन-संग्रह करता, प्रतिष्ठा-संग्रह करता--यह मन संग्रह करने में ही जीता है। यह मन कूड़ा-करकट ही इकट्ठा करता रहता है। यह इकट्ठा करते-करते ही मर जाता है।

इस मन से थोड़ा सा अपने को अलग जानो। अलग तुम हो। तुम इस मन के साक्षी बनो। तुम इस मन को भी देखो। इस मन को भी अपना विषय बनाओ। तुम इसके विषयी बनो। तुम इसके द्रष्टा बनो, इसे बनाओ दृश्य। और वहीं से तुम्हारे जीवन में एक नई किरण, एक नया प्रकाश जलेगा। एक नई ज्योति उठेगी--सरलता की, सौम्यता की, सौंदर्य की, निर्दोषता की।

मैं तुम्हें पंडित नहीं बनाना चाहता; मैं तुम्हें सरल बनाना चाहता हूं। और सरलता का अर्थ तुम ऐसा मत लेना जैसा तुम्हारे पंडित-पुरोहित तुम्हें समझाते हैं--कि सादगी से रहो तो सरल, कि लंगोटी ही लगा लो तो सरल, कि नंगे ही हो जाओ तो और भी सरल। झोपड़े में रहो तो सरल और झाड़ के नीचे रहने लगो तो और भी सरल।

ये सब मन के ही खेल हैं। मैं झोपड़ी में रहने वालों को जानता हूं, झाड़ों के नीचे रहने वालों को जानता हूं, जिन्होंने सब छोड़ दिया उनको जानता हूं। सरलता उनको नाममात्र को नहीं छू गई है। उन जैसे जटिल आदमी खोजना कठिन है। वे सब हिसाब-किताब कर रहे हैं स्वर्ग में स्थान बनाने का। वे परलोक जाने का आयोजन कर रहे हैं। वे बड़े चालबाज हैं। वे तुमसे ज्यादा चालबाज हैं। तुम तो यहीं बैंक में धन इकट्ठा कर रहे हो; वहां वे परमात्मा के बैंक में धन इकट्ठा कर रहे हैं। वे पुण्य अर्जित कर रहे हैं। वे बैठे-बैठे देख रहे हैं कि ठीक है, तुम भोग लो यहां, चार दिन की जिंदगी है, फिर सड़ोगे नरक में! उनका रस यही है कि तुम सब नरक में सड़ोगे। और हम! हम स्वर्ग में विराजमान होंगे और भोगेंगे सब आनंद! सब आनंद, जो यहां छोड़े हैं, वही सब आनंद!

जरा तुम स्वर्ग की कल्पनाएं उठा कर देखो, उनमें वही सब सुख, जो जहां त्यागने को कहा जा रहा है। यह बड़ी अजीब बात है! कौन सा तर्क है? कौन सा गणित है? यहां तो शराब छोड़ो और वहां चश्मे बह रहे हैं

शराब के! यहां पीओ तो हराम है और वहां पीओ तो हलाल है। यह क्या मजा हुआ? अगर शराब यहां पीनी हराम है तो स्वर्ग में पीनी कैसे हलाल हो जाएगी? शराब तो शराब है। और यहां की शराब में तो पानी भी मिला हो, वहां शुद्ध शराब है, वहां कोई मिलावट चलती है क्या? तुमने स्वर्ग को कोई भारतीय समझा हुआ है? वहां तो शुद्ध मिलेगी और बड़ी प्राचीन मिलेगी, सनातन, कि एक ही घूंट पी लोगे तो सदियों न उठोगे। शराब के चश्मे बह रहे हैं--नहाओ, धोओ, डुबकी मारो, तैरो! और यहां पीना मत। यहां किसी तरह सम्हाले हुए हैं लोग अपने को, कि कोई बात नहीं, अरे दो दिन की जिंदगी है, कट जाएगी; इतनी कट गई, थोड़ी रही, यह भी कट जाएगी। फिर तो मजा ही मजा है। झेल लो, इतना त्याग कर लो। यह सौदा करने जैसा है।

ये सब सौदागर हैं। ये कोई सरल लोग नहीं हैं। इनको अगर अभी पता चल जाए कि कोई स्वर्ग नहीं है, ये अभी अपनी माला वगैरह फेंक कर, लंगोटी-वंगोटी फेंक कर वापस संसार में आ जाएं, कि हम भी अच्छे बुद्धू बने! कि नाहक बैठे समय खराब किया! एकदम टूट पड़ें ये संसार पर। ये भी भोग की आकांक्षा से आतुर हैं। लेकिन इनकी आतुरता तुमसे बड़ी है; ये क्षणभंगुर से राजी नहीं हैं। ये कहते हैंः ऐसा सुख चाहिए जो सदा ठहरे। हमें शाश्वत सुख चाहिए।

यह मन का और भी विस्तार हो गया। यह मन घटा नहीं, कम न हुआ--और बढ़ गया, और बड़ा हो गया। यह मन तो और भी साम्राज्यवादी हो गया। अब इसको बड़ा साम्राज्य चाहिए, छोटे-मोटे से काम नहीं चलेगा। ये साधारण स्त्रियां काम नहीं देंगी, इसको उर्वशी चाहिए, मेनका चाहिए। इसको इस जगत का सौंदर्य नहीं जंचता। इसको तो सोने के वृक्ष चाहिए, जिसमें हीरे-पन्नों के फूल लगे हों, सड़कों पर हीरे-जवाहरात बिछे हों। जरा इसकी कामनाएं तो देखो। स्वर्ग इसकी कामनाओं का सबूत है।

जिन लोगों ने ये शास्त्र लिखे हैं और स्वर्गों का वर्णन किया है, यह सरल चित्त लोगों की बात नहीं हो सकती। स्वर्ग में सुंदर-सुंदर परिधान हैं, सब सुंदर है, सुख ही सुख है। दुख का वहां नाम-निशान नहीं। और इन्हीं ने नरक की कल्पना की। स्वर्ग की खुद के लिए और नरक की उनके लिए जो इनकी नहीं मानेंगे!

अब बड़ी कठिनाई है। अगर ईसाइयों की मानो, तो भी जैनियों के हिसाब से नरक में जाओगे। अगर मुसलमानों की मानो, तो भी ईसाइयों के हिसाब से नरक में जाओगे। दुनिया में तीन सौ धर्म हैं। अगर एक धर्म की मानो, तो दो सौ निन्यानबे के हिसाब से नरक में जाओगे और एक के हिसाब से स्वर्ग में। संभावना नरक में ही जाने की ज्यादा है। दो सौ निन्यानबे धर्मों के महात्मा नरक भेजने को तत्पर हैं। हां, एक ही धर्म के महात्मा तुम्हारा साथ दें तो दें। और महात्माओं का क्या भरोसा! वहां भी धक्कमधुक्की होगी। क्योंकि महात्मागण यहां भी कुछ कम धक्कमधुक्की नहीं करते कि कौन आगे, कौन बड़ा महात्मा! यहां भी उनके दावे कुछ कम नहीं हैं। यहां भी सब एक-दूसरे से बढ़-चढ़ कर अपने को बताने की चेष्टा में लगे हैं। ये वहां भी छोड़ देंगे प्रतियोगिता, इतना आसान नहीं है। वहां भी राजनीति चलेगी। वहां भी बड़ी मारधाड़ मचेगी। तुम्हारा तो नरक ही निश्चित है, यह समझ लो। स्वर्ग में तुम क्या पहुंच पाओगे! यहां भी पिछड़ गए हो जिंदगी में। यहीं नहीं जीत पा रहे हो, जहां कि क्षणभंगुर का ही मामला है, वहां कैसे जीतोगे जहां शाश्वत पर छीना-झपटी होगी?

तुम्हारे लिए नरक का इंतजाम किया है। और नरक का इंतजाम जिन्होंने किया है, इनको तुम सरल चित्त कह सकते हो? फिर सरल चित्त का कोई अर्थ ही न रह जाएगा। ये तो महादुष्ट लोग हैं, जिन्होंने नरक का आयोजन किया है, नरक की कल्पना की है। कैसी कल्पना की है--कैसी घृणित! गर्हित कल्पना! आदमी को चुड़ा रहे हैं कड़ाहों में, सड़ा रहे हैं। कीड़े-मकोड़े आदमी के भीतर दौड़ रहे हैं। आदमी मरता भी नहीं, मर भी नहीं सकता। नरक में, मालूम है, आत्महत्या नहीं कर सकते! नरक में आत्महत्या होती ही नहीं। नरक में कोई उपाय

ही नहीं है आत्महत्या का। गिरो पहाड़ से, मगर जिंदा रहोगे। हड्डी-पसली टूट जाएगी, फ्रैक्चर हो जाएंगे। प्यास लगेगी, जल के सरोवर सामने होंगे, मगर ओंठ सीए होंगे, पी न सकोगे पानी। कैसे-कैसे दुष्ट लोगों ने यह कल्पना की होगी! ये कुछ हिटलर से कम हैं इस तरह के लोग?

मैं तो कई दफे सोचता हूं कि हिटलर और स्टैलिन को भी जो ख्याल मिले धर्मशास्त्रों से मिले होंगे। नहीं तो इनको मिले कहां से? इतने ऊंच-ऊंचे ख्याल, ऐसी गहन कल्पनाएं इनके हाथ कैसे लग गईं? धर्मशास्त्रों से लगी होंगी।

हिंदुस्तान में तो हिंदुओं का ख्याल है ही कि जर्मनों के हाथ में जो भी लगा, वह हमारा वेद ले गए उठा कर, उसी से लगा। और कुछ लगा हो कि न लगा हो, मगर नरक की धारणा निश्चित वेदों से लगी होगी। हालांकि हिंदू और आर्यसमाजी सोचते हैं कि हवाई जहाज बना लिया उन्होंने और एटम बम बनाने के करीब पहुंच गए तो वह सब हमारे वेद के कारण। और तुम क्या कर रहे हो भैया? वेद तुम्हारे पास पांच हजार साल से कम से कम है, तुम साइकिल भी न बना सके! तुम कम से कम साइकिल तो बना लेते! तुम बैठे-बैठे क्या करते रहे? तुम्हारा वेद उनके हाथ में लग गया और उन्होंने हवाई जहाज बना लिया। और तुम्हारे वेदों में साइकिल तक का वर्णन नहीं है। साइकिल का पंक्चर जोड़ने का भी साल्युशन नहीं बना सके और तुम एटम बम बना लेते!

लेकिन एक बात से मैं राजी हूं कि नरक के संबंध में जो भी जानकारी अडोल्फ हिटलर को हुई होगी, वह तुम्हारे वेद से ही हुई होगी, तुम्हारे धर्मशास्त्रों से ही हुई होगी। नहीं तो ऐसी-ऐसी ऊंची बातें कहां से पता चलतीं--कि कैसे सताओ लोगों को। अडोल्फ हिटलर ने ऐसे-ऐसे उपाय किए सताने के कि मात कर दिया धर्मगुरुओं को भी। उसके कारागृहों में यहूदियों को जैसी पीड़ाएं दी गईं, उनका वर्णन सुन कर भी तुम्हारे रोएं-रोएं कंप जाएं, हृदय की धड़कन बंद हो जाए। किस तरह सताया! किस बुरी तरह सताया! मरने भी न दे और जीने भी न दे। और सताने की कितनी-कितनी नई-नई ईजादें कीं! छोटे बच्चों को, स्त्रियों को, पुरुषों को, सबको, कोई भेदभाव नहीं रखा, बिल्कुल अद्वैतवादी था। अरे क्या भेदभाव करना--कौन स्त्री, कौन पुरुष! कौन बच्चा, कौन बूढ़ा! ये तो सब ऊपर की बातें हैं--माया! भीतर तो सब एक ही हैं। मारने में जरा भी संकोच नहीं किया, क्योंकि मानता होगा कि आत्मा तो अमर ही है, मारने में डर क्या? अरे कहीं आत्मा मरती है? मारो!

जैसा कृष्ण ने गीता में कहाः काटो बेफिक्री से! न हन्यते हन्यमाने शरीरे। काटने से कटती नहीं, मारने से मरती नहीं।

यह अदभुत सूत्र अडोल्फ हिटलर को हाथ में कहां से लगा होगा? करोड़ों लोगों को काट डाला। जरूर तुम्हारे ही धर्मग्रंथों से लगा होगा।

मैंने सुना है कि एक आदमी, जो भारतीय था, लेकिन जर्मनी में रहा और मरा, जब वह मर कर नरक के द्वार पर पहुंचा, तो उससे पूछा शैतान ने कि तुम्हें किस नरक में जाना है--भारतीय या जर्मन?

उस आदमी ने कहा, हम तो सोचते थे नरक एक ही होता है। नरक में भी भेद हैं? यह तो सुना नहीं, किसी शास्त्र में पढ़ा नहीं।

शैतान ने कहा कि आदमी बिना भेद के मानता ही नहीं, जहां जाएगा वहां भेद खड़ा करेगा। कमबख्तों ने यहां भी भेद खड़े कर दिए हैं। यहां भारतीयों का अलग ही मुहल्ला है और जर्मनों का अलग। तुझे कहां जाना है? तुझसे इसलिए पूछते हैं कि तू रहा जर्मनी में और पैदा हुआ भारत में।

उसने पूछा कि क्या मैं थोड़ी सी जानकारी चाह सकता हूं, मिल सकती है, कि दोनों में भेद क्या है? जर्मन नरक का क्या वर्णन है?

उसने कहा, जर्मन नरक का वर्णन यह है कि पिटाई होगी। समय से रोज सुबह छह बजे पिटाई शुरू होगी, शाम छह बजे बंद होगी। ऐसी पिटाई कि लहूलुहान हो जाओगे। खाने के लिए कूड़ा-करकट मिली हुई रोटियां मिलेंगी, कंकड़-पत्थर मिली हुई रोटियां मिलेंगी। बिजली के कड़ाहों में चुड़ाए जाओगे। सब वर्णन जो किया जाना था किया गया।

उसने पूछा, और भारतीय नरक में?

उसने कहा कि वहां भी बिजली के कड़ाहों में चुड़ाए जाओगे, वहां भी सुबह छह बजे से शाम छह बजे तक पिटाई होगी, लहूलुहान किए जाओगे। रोटियां मिलेंगी, कंकड़-पत्थर मिले होंगे।

तो उसने कहा, मैं कोई फर्क नहीं देखता।

शैतान हंसने लगा। उसने कहा कि फर्क अनुभव से समझ में आएगा। जर्मन नरक में व्यवस्था जर्मन ढंग से की जाती है। छह बजे का मतलब छह बजे! भारतीय नरक का मामला यूं है कि कभी सात बजे भी नहीं आते पहरेदार, कभी आठ भी बज जाते हैं, कभी दिन-दिन भर भी नहीं आते, छुट्टी पर चले जाते हैं कि बीमार हो जाते हैं। जर्मन नरक में बिजली फेल नहीं होती। भारतीय नरक में दस-पंद्रह दफे तो दिन में फेल होती ही है।

उस आदमी ने कहा कि बस तो मुझे भारतीय में भेजो, मुझे जर्मन में नहीं जाना। इतना ही भेद काफी है।

जर्मनों ने और भी परिष्कार कर लिया। पढ़े तुम्हारे ही शास्त्र और उनको और परिष्कृत कर लिया। जर्मन बुद्धि चीजों में परिष्कार करना जानती है और व्यवस्था देना जानती है और हर चीज को गणित के हिसाब से चलाना जानती है।

आश्रम की बिजली का काम भी मैंने हरिदास को दिया है--एक जर्मन संन्यासी को। पूना में बिजली कितनी ही दफे फेल हो, आश्रम में नहीं होने देता। पूना में होती रहे फेल, लेकिन आश्रम में फेल नहीं होने देता। हरिदास इसकी फिक्र पूरी करता है, उसने इंतजाम कर रखा है पूरा। जनरेटर लगा रखे हैं आटोमेटिक, कि इधर बिजली फेल हुई कि जनरेटर पर बिजली फौरन शुरू हो जाती है। पता ही नहीं चल पाता कि आश्रम में कभी कोई बिजली फेल होती है। अब किसी भारतीय को मैंने भी नहीं दिया वह काम।

यह सीखा कहां से होगा? यह जो इतनी दुष्टता दुनिया में है, यह तुम्हारे संत-महात्माओं ने पहले ही इसका आयोजन शास्त्रों में कर रखा है। नरक औरों के लिए, स्वर्ग अपने लिए। ये कोई सरल चित्त आदमियों के लक्षण नहीं हो सकते।

सरल चित्त व्यक्ति तो क्यों सोचेगा नरक की और स्वर्ग की? सरल चित्त व्यक्ति को न तो कोई नरक है, न कोई स्वर्ग है। सरल चित्त व्यक्ति की ये धारणाएं ही नहीं हैं, ये कल्पनाएं ही नहीं हैं। सरल चित्त व्यक्ति के लिए तो यहीं मोक्ष है। न स्वर्ग, न नरक, दोनों से मुक्ति है। सरल चित्त व्यक्ति तो यहीं निर्वाण को उपलब्ध हो जाता है, प्रतिपल निर्वाण में जीता है। और उसकी एक ही आकांक्षा होती है, एक ही अभीप्सा, उसकी एक ही प्रार्थना, एक ही पूजा, एक ही आराधना--कि और सब भी इसी निर्वाण में प्रविष्ट हो जाएं। वह क्यों सोचेगा नरक की बातें? ये कोई सत्पुरुषों के लक्षण नहीं हैं। जो नरक की बातें सोची गई हैं, ये दुष्टों की ईजादें हैं, दुष्टों की कल्पनाएं हैं। वे तुम्हें सताना चाहते हैं। यहां नहीं सता पाए तो वहां सताने का आयोजन कर रहे हैं।

तुम्हारे तथाकथित महात्मा बहुत महात्मा नहीं हैं। महात्मा दिखाई पड़ते हैं। और तुम्हें महात्मा मालूम भी होते हैं, क्योंकि तुम्हारी धारणा के अनुकूल हैं। तुम्हारी धारणा ही तय कर देती है कि कौन महात्मा है, कौन महात्मा नहीं है।

एक मित्र ने पूछा है--कृष्ण सत्यार्थी ने पूछा है--कि ओशो, आपने तथाकथित धर्म को राजनीति ही बताया। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण आचार्य तुलसी हैं। वे जब प्रवचन करते-करते बीच में चुप होते हैं तो अग्रिम पंक्ति में बैठे श्रावक खम्माघणी अन्नदाता बोलते हैं। यहां तक कि वे जब कुदरती वायु छोड़ते हैं, तब वे ही श्रावक वही खम्माघणी अन्नदाता बोलते हैं। उन्होंने अपने उत्तराधिकारी को युवराज पद दिया है एवं पैंसठ वर्षीय मुनि नथमल को युवाचार्य घोषित किया है। क्या आचार्य भी युवाचार्य, वृद्धाचार्य एवं बालाचार्य होते हैं? क्या श्रावकों के इस तरह से खम्माघणी अन्नदाता बोलने से चेतना में क्रांति हो सकेगी? बताने की कृपा करें!

कृष्ण सत्यार्थी, जो आचार्य तुलसी को मानते हैं, उनको इसमें कुछ अड़चन नहीं मालूम होगी। उनकी धारणा के अनुकूल सारी बात हो रही है। जो उन्हें मानते हैं, उनकी मान्यताओं के हिसाब से सब ठीक हो रहा है। मुंह पर पट्टी बांधे हुए हैं; एक बार भोजन लेते हैं, मांग कर भोजन लेते हैं; पैदल चलते हैं; जूते नहीं पहनते। और क्या चाहिए? यही तो महात्मा के लक्षण हैं। और महात्मा तो प्रतिनिधि है परमात्मा का जगत में। परमात्मा अन्नदाता है, सो उसका प्रतीक महात्मा भी अन्नदाता है। इसलिए खम्माघणी अन्नदाता।

एक तो राजस्थान, वह राजाओं का इलाका, वहां की भाषा में ही ये बातें भर गई हैं। मैं राजस्थान जाता था तो वे मुझी को अन्नदाता कहते थे। मैंने कई दफे कहा कि भैया, मुझे मत कहो। वह आचार्य तुलसी को कहते हो, वह ठीक। मैं किसी का अन्नदाता नहीं हूं। लेकिन मैं लाख मना करूं, वे कहें कि नहीं-नहीं, आप कैसी बातें करते हैं अन्नदाता!

पुरानी आदतें पड़ी हैं। राजा-महाराजाओं का हिसाब-किताब रहा। तो संस्कार! कुछ भी कहो तो वे कहेंगेः हुकुम! तो मैं उनसे कहता कि मेरे सामने हुकुम कहने की जरूरत नहीं है। मैं कौन हुकुम देने वाला? लेकिन वह पुरानी दासता।

आचार्य तुलसी को जो लोग अन्नदाता कह रहे हैं, उनकी मान्यताओं से उन्हें कोई अड़चन नहीं मालूम होगी। सब मारवाड़ी हैं। कल देखा नहीं, मीरा ने कहाः म्हारो देश मारवाड़! यह मारवाड़ तो अदभुत देश है। यह सदियों से गुलामी की परंपरा में पला है, भाषा में भी गुलामी छा गई है। मुनि होकर भी उत्तराधिकारी चुन लिया है, उसको भी युवराज कहते हैं। जैसे कि राजा-महाराजा... राजा-महाराजा नहीं रहे, सांप मर गए मगर लकीरें छोड़ गए। शर्म भी नहीं आती कि महात्मा के उत्तराधिकारी को युवराज कैसे! मगर मारवाड़ में सब जमेगा, जंचेगा, बिल्कुल ठीक। हुकुम महाराज! वे कहेंगेः बिल्कुल ठीक है, युवराज तो होना ही चाहिए नाम।

अब यह थोड़े ही देखना पड़ता है कि नथमल की उम्र कितनी है। पैंसठ साल है। मगर आचार्य तुलसी के पास सबसे ज्यादा खुशामदी शिष्य वही है। मैं तो उनको मुनि थोथूमल कहता हूं। सबसे थोथा आदमी आचार्य तुलसी के पास वही है। अगर आचार्य तुलसी नंबर एक तो वह नंबर दो। स्वभावतः उन्होंने उसको अपना युवराज चुन लिया। अपने जैसों को ही चुनेंगे न--खुशामदी, चापलूस, चमचे जिनको तुम कहते हो।

मगर प्रत्येक व्यक्ति को अपने धर्म में भूल-चूक नहीं दिखाई पड़ेगी, दूसरे के धर्म में बिल्कुल दिखाई पड़ जाएगी। कारण? क्योंकि हम जिस धर्म में पैदा होते हैं, उसके रंग में बड़े होते हैं, उसी की धारणाओं में पलते-पुसते हैं; वे हमारे खून के, हड्डी-मांस-मज्जा के हिस्से बन जाते हैं।

दिगंबर जैन मुनि नग्न चलता है, दिगंबर जैन एकदम आह्लादित होते हैं कि अहा, यह है असली मुनित्व! और बाकी लोग एतराज उठाते हैं कि नंग-धड़ंग घुमाना लोगों को सड़कों पर, यह बात ठीक नहीं है। आखिर हमारे बच्चे भी देखते हैं, हमारी पत्नियां देखती हैं। और देखने योग्य भी कहां है दिगंबर जैन मुनि में कुछ?

अस्थिपंजर हो गए होते हैं। कुछ देखने योग्य हो तो भी ठीक। देख कर और एकदम वीभत्स मालूम होते हैं। देख कर विराग पैदा हो, कि पति देख ले तो एकदम भाग जाए पत्नी को छोड़ कर, पत्नी देख ले तो फिर पति के पास कभी बैठे नहीं, कि बस हो गया, अगर शरीर की यह हालत होनी है तो बात खतम। इसीलिए तो वह इतना शरीर को वीभत्स बनाए हुए है, ताकि लोगों में विराग पैदा हो। दतौन नहीं करते, स्नान नहीं करते। विराग पैदा करवाने के कैसे-कैसे आयोजन किए हुए हैं!

अब दूसरा कोई देखेगा तो स्नान नहीं करने को कहेगा, यह तो बात बड़ी अस्वच्छ हो गई। कम से कम आदमी को स्वच्छता का तो ख्याल रखना ही चाहिए। और महात्मा अस्वच्छ रहे, यह तो ठीक नहीं। ये कैसे महात्मा कि दतौन भी न करें! इनके दांतों पर परतें जमी होती हैं। इनके मुंह से बदबू आती है। अब दतौन नहीं करोगे तो बदबू आएगी ही।

जैन मुनि से बात करना पास बैठ कर मुश्किल होता है। मेरे पास आते थे तो मुझे बड़ी हैरानी और बड़ी मुश्किल होती थी। उनके मुंह से बदबू आती, भयंकर बदबू आती। वे इस तरह बदबू का प्रचार कर रहे हैं, ताकि लोगों में विराग उत्पन्न हो। वे तो सेवा में लगे हुए हैं। मगर दूसरों को देख कर अड़चन होगी। दूसरों को देख कर बड़ी बेचैनी होगी कि यह किस तरह का महात्मापन है! यह तो कुछ रुग्ण अवस्था मालूम होती है। यह तो कुछ पागलपन मालूम होता है।

दिगंबर जैन मुनि बाल उखाड़ता है, क्योंकि वह किसी तरह के साधन का उपयोग नहीं करता। अब उस्तरे का उपयोग करे या रेजर का उपयोग करे तो साधन हो गया, तो हाथ से उखाड़ता है। भीड़ इकट्ठी होती है दिगंबरों की देखने, कि जब महाराज केश-लुंच करते हैं, बड़ा उत्सव मनाया जाता है। आंसू बहते हैं जैनियों की आंखों से कि अहा, धन्यभाग हमारे कि केश-लुंच देखने मिल गया! और तुम देखो, तुम्हें लगेगा कि यह क्या गधापच्चीसी हो रही है! यह आदमी पागल है कि होश में है, क्या कर रहा है? बाल उखाड़ रहा है। विक्षिप्त होते हैं कुछ लोग जो बाल उखाड़ते हैं। खास तरह के पागलपन में लोगों को बाल उखाड़ने की सनक सवार होती है। तुम तो कहोगे कि यह कुछ न कुछ आदमी विक्षिप्त है।

अगर मनोवैज्ञानिक के हाथ में पड़ जाए तो वह इसका इलाज करेगा; नहीं मानेगा तो बिजली के शॉक देगा, कि इसको रास्ते पर लाना पड़ेगा। अगर ये दिगंबर जैन मुनि भारत के बाहर पश्चिम में चले जाएं तो फौरन पकड़ कर जेल में बंद किए जाएंगे।

इसलिए जैन मुनि बाहर गए भी नहीं कभी। कारण साफ है। जैन धर्म का प्रचार भारत के बाहर क्यों नहीं हुआ? बौद्ध धर्म का हो सका। दोनों धर्म एक साथ पैदा हुए। बौद्ध धर्म ने सारे एशिया को रंग दिया। जैन धर्म क्यों पिछड़ गया?

कुल कारण इतना था कि बौद्ध भिक्षु कपड़े पहन सकता था, नहाता-धोता था, दतौन करता था। यह जैन मुनि को कौन बरदाश्त करेगा! यह जहां जाता वहीं से भगाया जाता। इसलिए यह भारत के बाहर कहीं जा नहीं सका। भारत में भी वहीं घूमता है जहां जैनी घर हों, गैर-जैन इलाकों में भी नहीं घूम सकता। क्योंकि वहां भी इसको कौन बरदाश्त करेगा!

मगर यह सारे धर्मों के बाबत में सच है। हिंदू महात्मा हिंदू को महात्मा लगता है। ईसाई से पूछो, तो वह कहेगा, इसमें महात्मा क्या है? महात्मा है मदर टेरेसा, जो अपाहिजों की, अनाथों की सेवा करती है, लंगड़े-लूलों की सेवा करती है, अंधों की--वह है महात्मा! ये किस तरह के महात्मा? नहीं ईसाई मान सकता। ये मुक्तानंद के गुरु नित्यानंद महात्मा हैं, यह नहीं मान सकता। जरा नित्यानंद की फोटो देखो। इतनी बड़ी तोंद, मैं

नहीं समझता कि दुनिया में किसी आदमी के पास थी। और लोगों को तोंद होती है, यहां बात उलटी थीः यहां तोंद को आदमी था। बस तोंद समझो तुम। उसमें थोड़ा सा सिर लगा दिया, टांगें लगा दीं, हाथ लगा दिए। तोंद असली चीज है। यह कैसे उठता-बैठता है आदमी, यही मुश्किल समझ में आती है। तो ईसाई कोई राजी नहीं होगा कि इसको महात्मा माने। इस आदमी को कहेगा, यह आदमी विक्षिप्त है। इतना तो कोई साधारण भोगी भी नहीं खाता-पीता जितना यह आदमी खा-पी रहा है। इतना बड़ा पेट!

मगर अगर हिंदू महात्मा का पेट बड़ा न हो तो महात्मा ही क्या खाक! उसका पेट बड़ा होना ही चाहिए। उससे ही तो पता चलता है कि आत्मा कितनी बड़ी है! अरे छोटे से पेट में छोटी ही आत्मा रहेगी न! पेट बड़ा होगा तो बड़ी आत्मा रहेगी; विराट आत्मा होगी तो विराट पेट होता चला जाएगा।

हिंदू महात्मा सेवा लेता है, करता नहीं। सदियों से उसने सेवा ली है। सेवा करने का सवाल ही नहीं उठता। ईसाई महात्मा सेवा करता है, सेवा लेने की बात ही नहीं उठती। मगर वह ईसाई को ही महात्मा मालूम पड़ता है। किसी और से पूछो। अगर तुम जैनों से पूछो कि ईसाई महात्मा, यह मदर टेरेसा जो सेवा करती है, नोबल प्राइज मिली, अभी भारत-रत्न की उपाधि मिली, जगह-जगह उपाधि दी जा रही हैं, इस संबंध में जैनियों का क्या ख्याल है? तो वे कहेंगे कि इसने पिछले जन्म में दुष्कर्म किए होंगे। पापों के कर्म के कारण ही इस तरह के काम करने पड़ते हैं--कि कोढ़ियों के पैर दाबो। कोई न कोई पाप किया होगा पीछे, नहीं तो कोई कोढ़ियों के पैर किसलिए दाबेगा? बिना पाप के ऐसा क्यों होगा? जिसने पुण्य-कर्म किए हैं उसके दूसरे लोग पैर दाबेंगे कि वह दूसरों के पैर दाबेगा?

उनकी बात में भी बल मालूम होता है। और फिर जैन, खासकर आचार्य तुलसी के पंथ के मानने वाले, तेरापंथी मानते हैं कि किसी की सेवा भूल कर मत करना। क्योंकि सेवा करने का अर्थ हैः उसके कर्मों में बाधा डालना। समझो कि एक आदमी कुएं में गिर गया; अब तुम सेवक हो और तुमने उसे निकाल बाहर कर दिया। उसने कोई पाप किया होगा पिछले जन्म में, किसी को धकाया होगा कुएं में, कुछ किया होगा उपद्रव, जिसका फल भोग रहा था कुएं में गिर कर। आप आ गए, बीच में बाधा डाल दी। इसको फिर कुएं में गिरना पड़ेगा। कर्म का सिद्धांत तो पूर्ण होकर रहेगा। और तुमने जो बाधा दी इसके कर्म में आकर, उससे तुमने एक दुष्कर्म बांध लिया। अब तुम झंझट में पड़ोगे। इसको तो कुछ लाभ हुआ नहीं, इसकी तुमने हानि कर दी। यह छुटकारा हुआ जा रहा था इसका बेचारे का, एक झंझट से छुटकारा हुआ जा रहा था, एक पाप कटा जा रहा था, उसका फल भोग रहा था; आप आ गए बीच में, फल नहीं भोगने दिया। जैसे किसी के हाथ में से थाली छीन ली, वह भोजन करने ही जा रहा था कि फिर भूखा कर दिया उसको।

और अगर यह आदमी समझो कि जाए गांव में और एक आदमी की हत्या कर दे, या किसी की चोरी कर ले, या किसी के मकान में आग लगा दे। अरे जो आदमी कुएं में गिर कर आत्महत्या कर रहा था वह कुछ भी कर सकता है। और जिंदगी में कुछ तो करेगा ही न यह अब। अब जिंदा रहेगा तो कोई ऐसे ही तो नहीं बैठा रहेगा, कुछ न कुछ करेगा। तो जो भी पाप यह करेगा उसके भागीदार तुम भी होओगे। न तुम बचाते, न यह पाप करता।

यह गणित भी सोचने जैसा है।

तेरापंथी कहते हैं, इसलिए किसी की सेवा मत करना। अगर कोई कुएं में भी गिर गया हो, तो अपने रास्ते पर जाना, अपनी आंखें नीची करके गुजर जाना। इस उत्तेजना में मत पड़ना। यह उत्तेजना तुम्हारे मन को

पकड़ेगी। वह चिल्ला रहा है कि बचाओ। सावधान! बचाने वगैरह की झंझट में मत पड़ना। अगर तुम्हें मोक्ष पाना है तो और नये जाल खड़े मत करो।

मदर टेरेसा कोई जैनियों के हिसाब से महात्मा नहीं है।

एक जैन मुनि ने मुझसे कहा कि आप जीसस का नाम जब महावीर के साथ लेते हैं तो हमें बहुत दुख होता है।

मैंने कहा, क्यों?

उन्होंने कहा, स्वभावतः। जीसस को सूली लगी, साफ लिखा है जैन शास्त्रों में कि सूली पिछले जन्मों के किसी महापाप के कारण लगती है। न किया होता पाप तो सूली क्यों लगती? महावीर तो चलते थे, तो अगर रास्ते पर कांटा भी पड़ा हो, सीधा पड़ा हो, तो जल्दी से उलटा हो जाता था। क्योंकि इतना पुण्यात्मा आदमी आता है, उसके पैर में कांटा भी नहीं लग सकता। सूली की तो बात दूर, कांटा नहीं चुभ सकता। पुण्य उसकी रक्षा करते हैं।

मुसलमानों से पूछो। वे कहेंगे कि सूली तो नहीं लगनी चाहिए। मोहम्मद जब चलते थे अरब में तो उनके ऊपर एक बदली छाया करके चलती थी। जहां जाते वहीं बदली जाती। छाया रखती। परमात्मा फिक्र करता है। ये कैसे परमात्मा के इकलौते बेटे कि वक्त पर दगा दे गया! अपना बाप भी अपना साबित न हुआ।

और जीसस ने कहा भी है मरते वक्त कि हे प्रभु, क्या तूने मुझे छोड़ दिया? यह तू मुझे क्या दिखा रहा है?

तो मुसलमान कहेंगे, इससे क्या जाहिर होता है? इससे जाहिर होता है कि खुद जीसस को भी शक पैदा हो रहा है कि मैं भी किसके चक्कर में पड़ा रहा! किसके पीछे जान गंवा रहा हूं! वह उतरा नहीं, न कोई चमत्कार घटा। यह तो अवसर था। अरे जरूरत के वक्त मित्र का पता चलता है। और इसको मैं पिता कहता रहा, बार-बार कहता रहाः अब्बा! अब्बा! पुकारता रहा। न सुनी गई खबर, न प्रार्थना पहुंची कोई।

हरेक धर्म की अपनी धारणा है। उसकी धारणा के अनुसार उस धर्म के मानने वाले बिल्कुल अंधे होते हैं। उन्हें अपनी बात ही दिखाई पड़ती है, औरों की बात दिखाई नहीं पड़ती। अगर ईसाई से पूछो तो वह कहेगाः महावीर और बुद्ध, इन्होंने क्या किया? इन्होंने कौन सा त्याग किया? जीसस ने जीवन का बलिदान दिया, अपने को समर्पित कर दिया, अपने को लुटा दिया। इन्होंने क्या किया? इनकी क्या महत्ता है? इनका क्या मूल्य है? ये तो स्वार्थी लोग थे। कोई बारह वर्ष ध्यान करता रहा, यह कोई ढंग है? जब कि अनाथ भूखे मर रहे हैं, गरीब परेशान हो रहे हैं, बीमार लोग हैं। महावीर को अस्पताल खोलना चाहिए, स्कूल खोलना चाहिए। बुद्ध को वृद्धाश्रम खोलना चाहिए। और ये बैठे वृक्ष के नीचे बोधगया में ध्यान कर रहे हैं। स्वार्थी कहीं के! जीसस ने अंधों को आंखें दीं, लंगड़ों को पैर दिए, मुर्दों को जिलाया। महावीर ने, बुद्ध ने क्या किया?

बड़ा मुश्किल मामला है। कैसे तय करो? जैनों से पूछो राम के बाबत। तो वे कहेंगे, ये कोई भगवान हैं? धनुष-बाण लिए चल रहे हैं! यह तो ऐसे ही हुआ कि भगवान बंदूक लिए चल रहे हैं। आधुनिक होते तो बंदूक लिए चलते। पुराने जमाने के थे तो धनुष-बाण लेकर चल रहे हैं। अब तुम भगवान को बंदूक लिए चलते देखो तो मानोगे कि ये भगवान हैं? ये कैसे भगवान? बंदूक! बंदूक तो सब बात ही खराब कर देगी। मगर धनुष-बाण लिए हैं!

और तुलसीदास कहते हैं कि जब तक धनुष-बाण न हो तब तक मैं सिर ही नहीं झुकाऊंगा। पहले धनुष-बाण लो हाथ! कृष्ण के मंदिर में गए तो वहां भी कहा कि मैं नहीं झुकूंगा। जब तक धनुष-बाण हाथ नहीं लोगे, मैं नहीं झुकूंगा। बाबा तुलसीदास अपनी जिद पर रहे। और कहते हैं कि कृष्ण को धनुष-बाण हाथ लेना पड़े। अरे

झुकवाना हो अगर किसी को तो आदमी कुछ भी करता है। बेचारे कृष्ण ने ले लिया होगा धनुष-बाण कि चल भैया, मगर झुको तो कम से कम! झुकाने के लिए इनकी भी खूब उत्सुकता है। और बाबा तुलसीदास भी एक! उन्होंने कहा कि ऐसे नहीं झुकूंगा, झुकने में भी शर्त है। झुकने में भी, समर्पण में भी शर्त है कि तुम पहले अपना ढंग बदलो, धनुष-बाण हाथ लो। यह मोर-मुकुट और बांसुरी वगैरह नहीं चलेगी। पहले ढंग से खड़े होओ, तब मैं झुकूंगा। झुकाना हो तो तुम्हारी मर्जी, न झुकाना हो तो आगे बढ़ो।

तुलसीदास को धनुष-बाण के बिना राम जंचते नहीं। जैनों को धनुष-बाण लिए हुए राम एकदम उपद्रवी मालूम होते हैं। यह कोई ढंग है! एक महावीर हैं, जिनके पास कुछ भी नहीं है--निःशस्त्र, निहत्थे। अहिंसक को ऐसा होना चाहिए।

इधर कृष्ण हैं कि मोर-मुकुट बांधे हुए नाच रहे हैं। अकेले नहीं हैं, स्त्रियां नाच रही हैं; खुद की भी नहीं, औरों की भी नचा रहे हैं। सोलह हजार स्त्रियां थीं, इनमें एक ही खुद की परिणीता थी। और परिणीता से तो कम ही संबंध रहा। रुक्मणी का कोई ज्यादा स्मरण नहीं आता कथाओं में। बाकी जो दूसरों की उड़ा लाए, किसी की भी भगा लाए, पता नहीं कितने घर उजाड़ दिए होंगे! सोलह हजार पत्नियां!

मैं सौराष्ट्र जाता था, तो एक दफा तुलसी-श्याम में शिविर था। सुंदर जगह है। वहां नीचे तुलसी-श्याम का मंदिर है और ऊपर पहाड़ी पर रुक्मणी का मंदिर है। मैंने पूछा कि मामला क्या है? रुक्मणी वहां उतने दूर?

तो उन्होंने कहा, रुक्मणी गुस्सा होकर वहां बैठी है कि ये भैया तुलसी के साथ रास रचा रहे हैं, तो रुक्मणी नाराज होकर वहां बैठी है। मगर वह भी ऐसी जगह पर बैठी है जहां से दिखाई पड़ता रहे, कि क्या कर रहे हो, कहां तक बात पहुंची! नजर रखे हुए है। मंदिर ऐसी जगह बना है, जहां से कि रुक्मणी देखती रहे कि क्या खेल चल रहा है।

रुक्मणी का कम ही उल्लेख आता है, वही एकमात्र विवाहित है। बाकी और सब का उल्लेख आता है--राधा इत्यादि हैं--वे कोई विवाहित नहीं हैं। इनको कैसे जैन मान लें कि ये भगवान हैं!

ये जो धारणाएं हैं अलग-अलग धर्मों की, सरल चित्त व्यक्ति इन सारी धारणाओं को छोड़ देता है। वह न हिंदू होता है, न मुसलमान, न जैन, न ईसाई। उसकी सारी सीमाएं टूट जाती हैं। वह सिर्फ सरल होता है। ये सब धारणाएं जटिल बनाती हैं। वह ध्यानमग्न होता है, शून्य होता है। और उसी शून्य से जीता है। उसी शून्य में पूर्ण का अवतरण होता है। उसी शून्य में पूर्ण का अतिथि एक दिन आता है, द्वार खटखटाता है।

चिंता, शून्य बनो। और तुम सरल हो जाओगी, निर्दोष हो जाओगी। हिंदू नहीं चाहिए दुनिया में, मुसलमान नहीं चाहिए, ईसाई नहीं चाहिए, भारतीय नहीं चाहिए, जापानी, चीनी नहीं चाहिए। इस पृथ्वी से अब सारे भेदभाव गिरने चाहिए। इस पृथ्वी पर धार्मिक लोग चाहिए। धर्म नहीं चाहिए, धार्मिकता चाहिए। एक धार्मिक भाव चाहिए। प्रार्थना और प्रेम और सहजता और सरलता और निर्दोषता चाहिए। तो हम एक नई मनुष्यता की आधारशिला रख सकते हैं।

दूसरा प्रश्नः ओशो, क्या आप अंग्रेजी भाषा के विरोध में हैं? आप कुछ भी कहें, मैं तो अंग्रेजी सीखूंगी।

सीता, मैया, जैसी मर्जी। सीखो। मैं अंग्रेजी भाषा के विरोध में नहीं हूं। मैंने तो यह सोच कर कि तुम्हारी उम्र ज्यादा हुई, अब कहां की झंझट में पड़ना! अब समय आ गया भूलने का और तुम सीखने में लगोगी! अब समय आ गया कि जो जानती हो वह भूलो। अब समय आ गया कि भाषा छोड़ो, मौन में उतरो। समय आ गया

कि शब्दों को जाने दो, निःशब्द को पकड़ो। और तुम कहती हो, अंग्रेजी सीखेंगे! तुम्हें चिंता इसकी पड़ी है कि यहां रहना है, तो यहां इतने लोग हैं विदेशों से, उनसे कैसे संबंध बनेगा?

यहां रह कर तुम्हें मुझसे संबंध बनाना है या उनसे संबंध बनाना है? यहां रह कर तुम्हें परमात्मा से संबंध बनाना है या यहां की भीड़-भाड़ से संबंध बनाना है? अगर परमात्मा से संबंध बनाना है तो मौन सीखो। और सब भूलो। और अगर यहां लोगों से संबंध बनाना है, फिर तुम्हारी मर्जी; फिर अंग्रेजी सीखो, जर्मन सीखो, जापानी सीखो, जो तुम्हें सीखना हो सीखो। थोड़े-बहुत दिन जो जिंदगी के बचे हैं, जैसे गंवाना हो गंवाओ। ऐसे ही जिंदगी गंवा दी। चार दिन की जिंदगी है।

उम्रे-दराज मांग के लाए थे चार दिन

दो आरजू में कट गए, दो इंतजार में

यूं ही गुजर जाते हैं चार दिन--दो आरजू में, दो इंतजार में। अब तुम्हें अंग्रेजी सीखनी है!

मैं कोई अंग्रेजी के विरोध में नहीं हूं। मैं तो चाहता हूं कि भारत में अंग्रेजी अनिवार्य रहे। मैं तो चाहता हूं कि भारत में तीन भाषाएं प्रत्येक व्यक्ति को सीखनी चाहिए। अंग्रेजी अंतर्राष्ट्रीय भाषा की तरह अनिवार्य होनी चाहिए। हिंदी राष्ट्रीय भाषा की तरह अनिवार्य होनी चाहिए। और एक तीसरी भाषा प्रादेशिक भाषा की भांति अनिवार्य होनी चाहिए। अंग्रेजी टूटी जा रही है भारत से। और जैसे ही अंग्रेजी भारत से टूटेगी, भारत का भविष्य अंधकारपूर्ण हो जाएगा। क्योंकि अंग्रेजी सेतु है विश्व के साथ। अंग्रेजी सेतु है भविष्य के साथ। अंग्रेजी सेतु है विज्ञान के साथ। अंग्रेजी से जैसे ही भारत का संबंध टूटा कि भारत फिर पंडित-पुरोहितों के चक्कर में पड़ जाएगा--वही अंधविश्वास, वही मूढ़ताएं जो सदियों हमने ढोई हैं, फिर हम ढोने लगेंगे।

इसलिए पंडित-पुरोहित बिल्कुल खिलाफ हैं। वे कहते हैंः संस्कृत को बनाओ राष्ट्रभाषा। स्वभावतः, उनका न्यस्त स्वार्थ इसमें है। अगर संस्कृत राष्ट्रभाषा हो जाए तो फिर क्या कहना! फिर तो बिल्ली के भाग्य से छींका टूटा। फिर तो सब मूढ़ताएं वे वापस ले आएं जो किसी तरह छूट गई हैं; या नहीं छूटी हैं तो कम से कम छूटने के करीब हैं। फिर सती-प्रथा हो शुरू। फिर ढांढन सती की सजाओ झांकी! फिर करो सब उपद्रव जो तुम करते रहे सदियों से और गंवाते रहे। फिर मूढ़ता में पड़ जाओ अतीत की।

नहीं, मैं अंग्रेजी-विरोधी नहीं हूं। मैं तो इसलिए कहा कि अब इस उम्र में कहां झंझट में पड़ना तुझे! अब तुझे अपनी फिक्र कर लेनी चाहिए, पता नहीं कब आखिरी सांस आती हो--कल आ जाए, कि परसों आ जाए, कि आज ही आ जाए। वैसे तेरी बात भी मैं समझता हूं। ऐसे लोग भी हैं जो अंग्रेजी के दीवाने हैं।

जसोदा हरि अंग्रेजी पढ़ावै।
मेरो लाल कॉनवेंट जात है, इंग्लिश पोइम गावै।
टा टा कहि जब विदा होत है, रोम रोम हरषावै।
आंटी सुनि चाची बलि जावै, अंकिल मूंछ फरकावै।
डांस करत कजिन सिस्टर संग, नंदबाबा मुसकावै।
बरसाने या छवि कौ निरखत, अंग्रेजहु शरमावै।
जसोदा हरि अंग्रेजी पढ़ावै।

सीता मैया, जैसी इच्छा! खुद भी पढ़ो, राम जी को भी पढ़ाओ!

आखिरी प्रश्नः ओशो, पूरब-पश्चिम, विज्ञान-धर्म और बाहर-भीतर का संतुलन जो आप करने का प्रयास कर रहे हैं, यह साधारण जन की समझ में क्यों नहीं आता है?

कमल भारती, साधारण जन का अर्थ ही यही होता हैः जिसकी समझ में कुछ नहीं आता। समझ में ही आ जाए, फिर साधारण जन क्यों? फिर तो असाधारण हो जाए न! समझ असाधारण बनाती है। समझ न हो तो साधारण जन, पृथक जन। सूझ-बूझ न हो, अंधा हो, लकीर का फकीर हो, परंपरागत ढंग से जीता हो, रूढ़िग्रस्त हो--साधारण।

ऐसे सभी असाधारण पैदा होते हैं और सभी साधारण हो जाते हैं। क्योंकि सभी जल्दी ही न मालूम किन-किन चक्करों में पड़ जाते हैं। सबकी प्रतिभा खो जाती है। सब दर्पण लाते हैं ताजा, जिसमें परमात्मा की छबि बने, पर जल्दी ही खूब धूल जम जाती है।

फिर, साधारण जन अपने ही ढंग से सोचता है, सुनता है। मैं जो कहता हूं, वही थोड़े ही सुनता है वह। मैं कुछ कहता हूं, वह कुछ सुनता है।

मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी बीमार थी। उसको देखने डाक्टर आया था। उसको देखने के बाद मुल्ला नसरुद्दीन उसे दूसरे कमरे में ले गया और कहा कि हालत तो मेरी भी खराब है। अब आप आए ही हैं तो जरा मेरी भी जांच-पड़ताल कर लें। डाक्टर ने कहा, लेटो। जांच-पड़ताल की, कहा कि तुम्हारी हालत जरूर खराब है। ऐसा मालूम होता है कोई बहुत पुरानी बीमारी है, जो आपके स्वास्थ्य को और मानसिक शांति को नष्ट कर रही है।

मुल्ला नसरुद्दीन बोला कि खुदा के लिए जरा धीरे बोलो, वह दूसरे कमरे में ही बैठी हुई है।

डाक्टर बोला, दूसरे कमरे में बीमारी बैठी हुई है?

वह बोला, अभी-अभी जिसकी आप जांच करके आए हो, वही तो मेरा स्वास्थ्य खाए जा रही है और मानसिक शांति खाए जा रही है। जब से वह मिली है तब से सब चौपट हो गया है।

डाक्टर बीमारी की बात कर रहा है, मुल्ला अपनी पत्नी की बात समझ रहा है। उसके भीतर तो एक ही घूम रहा है मामला कि यह बीमारी से कैसे छुटकारा हो! हरेक के भीतर अपनी-अपनी कल्पनाएं हैं, अपने पक्षपात हैं।

मैं तुमसे कुछ कहूंगा, तुम कुछ सुनोगे। रुचि-भेद है। पक्षपात है। निर्मल चित्त कहां जो समझ सके वही बात जैसी कही जाए?

तुम भले उगाओ
कैक्टस
अपने लान में
तुम्हारी मां तो
आंगन की तुलसी पर ही
धरती है दीया।

स्वभावतः, तुम कितने ही कैक्टस उगाओ, तुम लाख घर में कैक्टस सजाओ, तुम यह आशा मत रखना कि तुम्हारी माताराम कैक्टस के पास दीया जलाएंगी शाम को। वह तो तुलसी पर ही...

तुम भले उगाओ
कैक्टस
अपने लान में
तुम्हारी मां तो
आंगन की तुलसी पर ही
धरती है दीया।

ड्राइंग रूम में
तुम भले सजा लो
पिकासो की पेंटिंग्स
शयनकक्ष में तो
अभिनेत्रियों के भड़कदार कैलेंडर्स
टांग रखे हैं घरवाली ने।

बुक-शेल्फ में
तुम भले रख लो
काफ्का और सार्त्र,
तुम्हारा छोटा भाई तो
छिप-छिप कर पढ़ता है
खूनी पंजा
और असली कोकशास्त्र।

साधारण जन क्यों नहीं समझ पाते, तुम पूछते हो कमल। साधारण जन की खोपड़ी भरी है न मालूम किस-किस कचरे से! उस कचरे को पार करके पहुंचना आसान नहीं। उस कचरे में से जाते-जाते ही बात का रंग-ढंग बदल जाता है, रूप बदल जाता है।

आज अपने विवाह की हम रजत-जयंती मना रहे हैं--फोन पर निमंत्रण देते हुए एक अभिनेता ने अपने मित्र से कहा।

आश्चर्य है--मित्र ने कहा--कलियुग में भी आप जैसे सतयुगी लोग मौजूद हैं! क्या सचमुच ही आपके विवाह को पच्चीस वर्ष हो गए? विश्वास नहीं आता।

अभिनेता ने कहा, गलतफहमी में मत पड़ो भाई। रजत-जयंती का अर्थ है--इस वर्ष में मेरा यह पच्चीसवां विवाह है।

अर्थ अलग, भाव अलग। इसमें कुछ आश्चर्य नहीं कि साधारण जन, मैं जो कहता हूं, उसे समझ नहीं पाते। समझ लें तो असाधारण हो जाएं। नहीं समझ पाते, तभी तो साधारण हैं।

थोड़े से ही लोग समझ पाएंगे मेरी बातों को। पर थोड़े से ही लोग समझ लें तो काफी है। क्योंकि थोड़े से लोग ही इस जगत में प्रकाश को आमंत्रित करने के पात्र हो पाते हैं। और थोड़े से लोग ही अगर दीये बन जाएं तो काफी रोशनी हो जाती है। फिर उस रोशनी में साधारण जन भी धीरे-धीरे अपने बुझे दीयों को जलाने लगते हैं।

लेकिन साधारण जन तो पीछे आएंगे, बहुत देर में आएंगे। प्रतिभाशाली लोग ही पहले मेरे पास आ सकते हैं। पहले मेरा संदेश उनकी ही समझ में पड़ेगा। हिम्मत और साहस जिनके भीतर है, जो दांव पर लगा सकते हैं, सब कुछ दांव पर लगा सकते हैं--वे ही केवल मेरी बातों को समझने की हिम्मत जुटा पाएंगे। नहीं तो कई समझ भी जाते हैं, तो भी अनसमझी कर देते हैं; सुन लेते हैं, अनसुनी कर देते हैं।

मैं इलाहाबाद में बोल रहा था। एक मित्र मेरे सामने ही बैठे सुन रहे थे। उनकी पत्नी उनके बगल में ही बैठी हुई थी। मैंने उनकी आंख से आंसू झरते देखे। और फिर बीच में ही वे उठ कर एकदम चल पड़े। मैं थोड़ा हैरान हुआ कि क्या हुआ! सभा के बाद मैंने उनकी पत्नी को पूछा कि तुम्हारे पति को क्या हुआ?

उसने कहा कि मैं भी कुछ समझी नहीं। इतने भाव-विभोर थे, इतने वर्षों से आपकी प्रतीक्षा करते थे। आपकी किताबें पढ़ते हैं, टेप सुनते हैं, दीवाने हैं आपके, पास-पड़ोस में रजनीशी करके जाने जाते हैं, अभी भी बैठे-बैठे रो रहे थे। और फिर बीच में क्यों उठ कर चले गए, मुझे भी पता नहीं!

मैं उनके घर पहुंचा। रास्ते में ही उनका घर पड़ता था, जहां मैं ठहरा था। सभा-स्थल से जाते वक्त मैंने कहा कि उनके घर ले चलो।

घर पहुंचा तो उन्होंने कहा, आप यहां भी आ गए! मुझे बख्शो!

मैंने कहा, बात क्या है?

उन्होंने कहा कि आपकी बातें इतनी ठीक मालूम पड़ती हैं कि मुझे खतरा दिखाई पड़ता है। खतरा यह कि कहीं मैं इन बातों में पड़ गया, तो मेरी घर-गृहस्थी कच्ची है, पत्नी है, छोटे-छोटे बच्चे हैं, बूढ़े मां-बाप हैं, इन सबका क्या होगा? वहां बैठ कर मुझे ऐसा लगा कि संन्यास ही ले लूं। जैसे ही मुझे लगा कि संन्यास का भाव उठा है, फिर मैं भागा। मैंने कहा इधर से निकल ही जाना बेहतर है। इसीलिए मैं उठ आया। आप मुझे क्षमा करेंगे! मैंने बीच में उठ कर बाधा डाली, मैं क्षमायाची हूं। मगर अभी नहीं। आऊंगा, समय आने दें। अब न आपकी किताब पढूंगा, न आपका टेप सुनूंगा। आपको नहीं मिला था, नहीं देखा था, नहीं सुना था, तो सोचता था कि किताब पढ़ने की बात है, पढ़ ली। लगती थी, हृदय को छूती थी, बुद्धि को भी भाती थी। मगर आप को देख कर लगा कि यह मामला गहरा है, यह बुद्धि तक रुकने वाला नहीं, यह हृदय तक ही ठहर जाने वाला नहीं, यह आत्मा तक तीर उतर जाएगा। इतनी मेरी अभी हिम्मत नहीं है।

दस वर्ष हो गए, उनकी हिम्मत अभी तक नहीं हो पाई, वे नहीं आ पाए हैं। कभी-कभी कोई खबर लाता है उनकी कि मेरा नाम सुनते हैं तो उनकी आंखों में आंसू आ जाते हैं।

सुन कर भी लोग अनसुनी कर देते हैं। कभी-कभी समझ कर भी नहीं समझना चाहते। साधारण जन की तो बात, कमल, कहनी ठीक ही नहीं है। साधारण जन एक तो आते ही नहीं। आ भी जाते हैं, तो यहां जो हो रहा है, उनकी समझ-बूझ के बिल्कुल बाहर है। वे बिल्कुल किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं। वे बंधी हुई धारणाएं लेकर आते हैं। उनकी सब धारणाएं टूट जाती हैं। आश्रम से उनका मतलब होता है कि बुड्ढे-ठुड्ढे बैठे होंगे अपने-अपने झाड़ के नीचे, कोई चरखा चला रहा होगा, कोई माला फेर रहा होगा। यहां कोई बुड्ढे-ठुड्ढे दिखाई नहीं पड़ते झाड़ों के नीचे बैठे हुए, माला फेरते हुए--कोई उपवास कर रहा होगा, कोई धूनी रमाए होगा। उन्हें बड़ी हैरानी हो जाती हैः यह कैसा आश्रम! आश्रम से उनका मतलब ही कुछ और है।

आश्रम से मेरा मतलब कुछ और है। मेरे लिए आश्रम एक सौंदर्य का तीर्थ है। मेरे लिए आश्रम प्रतिभा का एक तीर्थ है। मेरे लिए आश्रम त्याग नहीं है, आनंद-उत्सव है।

संन्यास मेरे लिए जीवन से भागना नहीं है, पलायन नहीं है--जीवन को उसकी अंतरंग गहराइयों में जीना है। संन्यास से उनका अर्थ है कि जो बाहर से मुंह फेर ले। संन्यास का मेरे लिए अर्थ है, जो बाहर और भीतर दोनों को जोड़ ले, दोनों का सेतु बना ले; जो बाहर भी जीए, भीतर भी जीए और दोनों में कोई विरोध न पाए, द्वंद्व न पाए, द्वैत न पाए।

इसलिए मैं कहता हूं कि पूरब और पश्चिम जुड़े जिसके भीतर, विज्ञान और धर्म जुड़े जिसके भीतर, बाहर और भीतर जुड़े जिसके भीतर, जिसके भीतर इन द्वंद्वों के बीच संतुलन आ जाए, उसको ही मैं संन्यास कहता हूं, उसी को मैं संन्यासी कहता हूं।

यह उनकी धारणा नहीं है। वे शंकराचार्य के पास जाते हैं, उनकी समझ में आता है। आचार्य तुलसी के पास जाते हैं, उनकी समझ में आता है। विनोबा भावे के पास जाते हैं, उनकी समझ में आता है। वे सोचते हैं यहां मैंने कोई गौशाला खोली होगी, गौमाता की सेवा हो रही होगी, कि हनुमान जी के वंशज बंदरों को भोजन कराया जा रहा होगा। यहां यह कुछ भी नहीं हो रहा है। न गौमाताओं में मेरी कोई उत्सुकता है, न बंदरों में मेरी कोई उत्सुकता है। तो उनको हैरानी होती है।

विनोबा जी के आश्रम से तीन महिलाएं कुछ दिन पहले आईं। उनकी सूझ-बूझ के बाहर था कि यह क्या हो रहा है! लोग नाच रहे हैं, लोग आनंदित हैं, लोग मस्त हैं! वे तो इतनी घबड़ा गईं कि वे यहां से चली ही गईं। उनको बहुत बेचैन कर गई होगी बात।

वहां से जाकर पत्र लिखा कि हम प्रवचन में भी नहीं आ सके, ध्यान भी नहीं देख सके आकर, क्योंकि जो हमने देखा उससे बेचैनी आ गई। हां, हमें कुछ चीजें अच्छी लगीं। जैसे एक तो संन्यासी कुछ कपड़े बुनते हैं, वह हमें अच्छा लगा। कुछ संन्यासी फर्नीचर बनाते हैं, वह हमें अच्छा लगा। संन्यासियों की पाकशास्त्र में रुचि है और भोजन बनाते हैं, वह हमें अच्छा लगा। कुछ संन्यासी साग-सब्जी उगाते हैं, वह हमें अच्छा लगा।

यहां उन्हें ये बातें आकर अच्छी लगीं। अपनी धारणाएं! गांधीवादी धारणाएं! जो यहां मूल हो रहा है, वह उन्हें अच्छा नहीं लगा! जो यहां वस्तुतः हो रहा है, उसे देखने की भी, उसके साथ सम्मिलित होने की भी हिम्मत नहीं आई, सुनने की भी हिम्मत नहीं आई! लक्ष्मी से वे कह कर गईं कि आनंदित तो हम लोग वहां भी हैं।

तो लक्ष्मी ने कहा कि फिर यहां काहे के लिए कष्ट किया? हम तो नहीं आते वहां। अच्छा है, आप वहां आनंदित हैं, हम यहां आनंदित हैं! मगर सूरत-शक्ल से कोई आनंद दिखाई तो पड़ता नहीं। सूरत-शक्ल पर तो मुर्दापन छाया हुआ है, मरघट छाया हुआ है। आनंद वगैरह कहां!

लेकिन उनके आनंद के भी अर्थ अलग होते हैं। आनंद उनका नाचता हुआ नहीं होता। आनंद उनका ऐसा होता है जैसे मरघट का सन्नाटा--शून्य, रिक्त, खाली-खाली। फुलवाड़ी का आनंद नहीं, जहां फूल खिलें, पक्षी गीत गाएं, मोर नाचें!

इसलिए कमल, साधारण जन को समझ में नहीं आती है बात। लेकिन असाधारण जन को समझ में अगर आ गई तो एक न एक दिन साधारण जन को भी समझ में आएगी। आनी ही पड़ेगी। क्योंकि मैं जो कह रहा हूं, उसके ऊपर मनुष्य का पूरा भविष्य निर्भर है। उसके बिना मनुष्य के लिए कोई आशा नहीं है।

आज इतना ही।

सोलहवां प्रवचन

हंसो, जी भर कर हंसो

पहला प्रश्नः ओशो, अजीब लत लगी है रोज सुबह आपके साथ बैठ कर हंसने की!

रंजन, धर्म जब जीवित होता है तो हंसना प्रार्थना होती है; धर्म जब मर जाता है तो हंसने का दुश्मन हो जाता है। हंसना जीवन की धड़कन है। जो धर्म हंसना नहीं जानता, वह बहुत समय हुआ तब मर चुका, धड़कन बंद हो चुकी है, श्वास चलती नहीं है, लाश पड़ी है। लाश की पूजा चल रही है।

धर्म पृथ्वी को रूपांतरित नहीं कर पाता है इसीलिए कि धर्म बार-बार हंसने की भाषा भूल जाता है; गीत भूल जाता है; नृत्य भूल जाता है।

यह कोई लत नहीं है। यह तो तुम्हारी रोज की सुबह की प्रार्थना है, उपासना है। हंसो, जी भर कर हंसो! मेरे देखे, अगर कोई समग्ररूपेण हंसना सीख ले, कि जीवन की कोई भी परिस्थिति उससे उसकी हंसी न छीन पाए, उसकी मुस्कुराहट बनी ही रहे--सुख में, दुख में; सफलता में, असफलता में--तो कुछ और पाने को नहीं बचता। सब पा लिया! वैसी दशा ही समाधि है, मोक्ष है।

और जिसे हंसना आता है, उसके आंसू भी हंसते हैं। और जिसे हंसना नहीं आता, उसकी हंसी भी रोती है, रोती-रोती सी ही होती है। हंसी हंसी में भी तुम भेद देखो। उदास लोग भी हंसते हैं, मगर उनकी हंसी कड़वा स्वाद छोड़ जाती है। मस्त लोग भी हंसते हैं, उनकी हंसी से फूल झरते हैं। मस्ती से हंसो।

एक हंसी होती है, जो सिर्फ अपने दुख को भुलाने के लिए होती है। उस हंसी का कोई बड़ा उपयोग नहीं है--धोखा है, आत्मवंचना है। एक हंसी है, जो तुम्हारे भीतर उठ रहे आनंद से, तुम्हारे भीतर उठ रहे गीत से झरती है। भीतर कुछ भरा-भरा है, इतना भरा है--जैसे बदली भरी हो वृष्टि के जल से, तो झुकेगी, कहीं बरसेगी; भिगाएगी जमीन को, पहाड़ों को, वृक्षों को नहलाएगी; उसे हलका होना ही होगा। जो हंसी तुम्हें हलका कर जाए, जो हंसी तुम्हारे आनंद का फैलाव हो, जो हंसी बांटती हो कुछ, वह हंसी पुण्य है।

एक मित्र ने पूछा है--सत्य निरंजन ने पूछा है--कि ओशो, हाल ही में मैं मराठी साहित्य के एक ख्यातिनाम लेखक आचार्य अत्रे की जीवन-कथा पढ़ता था। उसमें एक जगह वे कहते हैंः इस दुनिया में दुख सहने का हास्य-विनोद ही एक राजपथ है। हास्य-विनोद सबसे बड़ा मानव-धर्म है। मनुष्य के कल्याण के लिए आज तक अनेक अवतारी पुरुषों ने भिन्न-भिन्न धर्मों की स्थापना की है। किसी का धर्म दया पर आधारित है, तो किसी का समता पर; किसी का सत्य पर, तो किसी का अहिंसा पर। लेकिन आज तक ऐसा कोई धर्म-संस्थापक नहीं हुआ कि जिसने विनोद के वेदांत पर आधारित हंसते-खेलते हुए आनंदमय धर्म की स्थापना की हो।

काश, आज वे जीवित होते तो आपके रूप में ऐसा धर्म अवतरित होते देखने का सौभाग्य उन्हें प्राप्त होता। ओशो, हास्य-विनोद की ऐसी क्या खूबी है?

आचार्य अत्रे के अंतिम दिनों में मेरा उनसे मिलना हुआ था। उनकी बेटी शिरीष पै मेरी शिष्या है। उसका बहुत आग्रह था कि इसके पहले कि उसके पिता जीवन छोड़ें, देह छोड़ें, मेरा उनका मिलना हो जाए। उनकी भी

बड़ी आकांक्षा थी। तो मैं उन्हें देखने गया था। बिस्तर पर थे, अंतिम घड़ियां थीं। यह बात चली थी, जो बात सत्य निरंजन ने पूछी है। उन्होंने यही मुझसे कहा था कि दुख सहने का हास्य-विनोद एक राजपथ है। और मैंने उनसे कहा था, इस घड़ी में, जब आप जीवन और मृत्यु के बीच जूझ रहे हैं, मैं कोई विवाद खड़ा करूं, उचित नहीं; लेकिन इतना जरूर निवेदन करूंगा कि फिर मेरे हास्य-विनोद में और आपके हास्य-विनोद में जमीन-आसमान का अंतर है। आप कहते हैंः हास्य-विनोद दुख सहने का राजपथ है।

फिर तो धोखा हुआ। फिर तो अफीम का नशा हुआ। तो कोई अफीम लेकर दुख को भुला देता है, कोई शराब पीकर दुख को भुला देता है, कोई किसी और ढंग से। तो तुमने हंस कर भुला दिया, हास्य-विनोद में भुला दिया। मगर भुलाने से कोई चीज मिटती है? काश, इतना आसान होता कि हम भुला देते किसी बात को और वह मिट जाती! तब तो सभी बुद्ध हो जाते, कभी के बुद्ध हो जाते। बात इतनी आसान नहीं है। हम भुला कर बैठ जाएं थोड़ी देर को, अपने को भरमा लें; लेकिन जिसे हमने भुलाया है वह लौटेगा। भुलाया ही है, मिटा तो नहीं। भीतर पड़ा है। क्षण भर को छिपा लिया है, ओट में हो गया है, परदा डाल दिया है; जैसे किसी ने घाव के ऊपर फूल रख दिया हो। घाव के ऊपर फूल रखने से घाव थोड़े ही मिट जाएगा। हां, फूल रखने से शायद किसी को दिखाई न पड़े। शायद तुम भी थोड़ी देर को धोखा खा जाओ, आत्मवंचना में पड़ जाओ। मगर घाव, जब तुम भूले हो फूल रख कर, तब भी बढ़ रहा है, फैल रहा है। उसमें मवाद इकट्ठी हो रही है। वह नासूर बनेगा। वह कैंसर भी बन सकता है।

मेरे हास्य-विनोद में और आचार्य अत्रे के हास्य-विनोद में बुनियादी भेद है। वे कहते हैं, दुख को भुलाने का, दुख सहने का। और मैं कहता हूं, आनंद को प्रकट करने का, आनंद को अभिव्यक्ति देने का। पहले आनंद चाहिए, तब तुम्हारी हंसी में धर्म की सुगंध होती है; तब तुम्हारे रोने तक में धर्म की सुगंध होती है, हंसने की तो बात छोड़ो। तुम बैठो तो नृत्य होता है। तुम मौन रहो तो उपनिषद झरते हैं। तुम न कहो तो भी परमात्मा तुमसे प्रकट होता है। तुम चलो, उठो, और तुम्हारे चलने-उठने में भी अलौकिक प्रसाद होता है; एक सौंदर्य होता है, जो इस पृथ्वी का नहीं है! फिर हंसने की तो बात ही और। हंसना तो बहुत अदभुत घटना है।

सिर्फ मनुष्य को छोड़ कर कोई पशु-पक्षी हंसता नहीं। किसी पशु-पक्षी की क्षमता नहीं है हंसने की। हंसने के लिए विवेक चाहिए, बोध चाहिए। हंसने के लिए समझ चाहिए। जितनी समझ गहरी होगी, उतनी ही गहराई तुम्हारे हंसने में भी आएगी।

इसलिए रंजन, मत ऐसा सोच कि अजीब लत लगी है। लत नहीं है यह। यह उपासना है, सत्संग है।

मैं एक जागते हुए, जीते हुए, हंसते हुए, नाचते धर्म को पृथ्वी पर फैलता हुआ देखना चाहता हूं। ऐसा धर्म, जो जीवन को अंगीकार करे, आलिंगन करे! जो जीवन के प्रति परमात्मा का अनुग्रह प्रकट करे! जो जीवन का त्यागी न हो। जो जीवन का निषेध न करता हो। जिसमें जीवन के प्रति अहोभाव हो। जो धन्यभागी समझे अपने को। जो हलका-फुलका हो, भारी-भरकम नहीं।

पुराने सब धर्म बहुत भारी-भरकम सिद्ध हुए। शुरुआत में तो ऐसे न थे। मगर यही तो दुर्भाग्य है कि आदमी के हाथ में जो चीज पड़ जाती है, वही बिगड़ जाती है। महावीर के साथ तो धर्म हंसता हुआ रहा होगा। बुद्ध के साथ तो हंसता हुआ रहा होगा। जीसस के साथ तो हंसता हुआ रहा होगा। नानक के साथ तो हंसता हुआ रहा होगा। अगर कबीर के साथ न हंसा होगा धर्म तो फिर किसके साथ हंसेगा? फरीद के साथ न हंसा होगा तो फिर किसके साथ हंसेगा? लेकिन पीछे जो लोग आते हैं, वे करीब-करीब विपरीत होते हैं। हर धर्म को जन्म देने वाले व्यक्ति के आस-पास पंडितों की भीड़ इकट्ठी हो जाती है।

मैं बहुत सावधान हूं। इसलिए पंडितों को यहां टिकने ही नहीं देता। पंडितों को प्रवेश ही नहीं है। पंडित आ जाएं तो उन्हें ऐसा झकझोरता हूं, ऐसी उनकी पिटाई होती है कि वे भाग ही जाते हैं। फिर वे लौट कर कभी दोबारा नहीं आते। पंडितों से मैं सावधान हूं। मैं नहीं चाहता कि मेरे पीछे, मैं जो कह रहा हूं, वह पंडितों के हाथ में पड़े। क्योंकि उन्होंने सारे धर्मों को नष्ट किया है।

पंडित गुरु-गंभीर होता है। उसे कुछ सत्य का तो पता होता नहीं। उसे कुछ जीवन का अनुभव तो होता नहीं। उसके पास शब्द होते हैं, तर्कजाल होते हैं। और तर्कजाल और शब्दों का वह धनी होता है। वह ऊंची-ऊंची बातें करता है, बड़े गहरे और उलझे सिद्धांतों की चर्चा करता है। उन सिद्धांतों की चर्चा करना और हंसने का मेल नहीं हो सकता। हंसना और ब्रह्मज्ञान की उलझी-उलझी बातें... जान कर उलझाता है, क्योंकि लोगों पर उलझी बातों का प्रभाव पड़ता है। जो बात लोगों की समझ में आ जाए, वे समझते हैं उसमें क्या रखा है! जो बात लोगों की समझ में न आए, लोग समझते हैं होगा कुछ रहस्य। लोग भी बहुत अदभुत हैं!

सत्य तो सीधा-सरल है। झूठ होते हैं इरछे-तिरछे। झूठ होते हैं उलझे हुए, पहेलियों जैसे। सत्य में क्या पहेली है? सत्य तो खुले आकाश जैसा है, कोरी किताब जैसा है। बेपढ़ा-लिखा भी पढ़ ले। कोरी किताब में पढ़े-लिखे होने की क्या जरूरत है? सत्य तो तुम्हें चारों तरफ से घेरे हुए है बाहर-भीतर। दूर नहीं है। जैसे मछली सागर में है, ऐसे तुम सत्य में हो। लेकिन पंडित सत्य को बहुत दूर बताता है--दूर कहीं आसमान पर, बहुत दूर, लंबी यात्रा। नक्शे देता है, मार्ग समझाता है।

सब नक्शे व्यर्थ, सब मार्ग झूठे; क्योंकि सत्य वहां है जहां तुम हो। जहां तुम हो वहीं जाग जाओ, बस वहीं जरा होशपूर्वक देख लो, वहीं जरा टटोल कर देख लो और तुम परमात्मा को पा जाओगे। न कहीं जाना है--न काशी, न काबा, न कैलाश; न कुरान में, न बाइबिल में, न गीता में। अपने भीतर जाना है। वहीं से उठेगा कुरान। वहीं से उठेगी गीता। वहीं से जगेंगे उपनिषद। वहीं बज रही है बांसुरी कृष्ण की। अभी भी बज रही है। सदा बजती रही है। तुम्हारे भीतर अनाहत नाद हो रहा है।

मगर पंडित अगर दूर की बात न करे तो पंडित की जरूरत क्या? पंडित अगर उलझी बात न करे तो तुम पंडित को मूल्य क्या दोगे?

पंडित का धंधा है--उलझाए। सुलझी बातों को जो उलझा दे, उसका नाम पंडित। सीधे-साफ को जो इरछा-तिरछा कर दे, उसका नाम पंडित। जिसके पास जाकर तुम गुरु-गंभीर होकर लौटो, उसका नाम पंडित। गए थे तो शायद कुछ समझ भी थी, लौटो तो वह भी गंवा कर आ जाओ, उसका नाम पंडित। गए थे तो थोड़ा बोध था, और बुद्धू होकर लौटो, उसका नाम पंडित। हां, कूड़ा-करकट पकड़ा देगा, सिद्धांतों के जाल पकड़ा देगा। ऐसे जाल जिनसे कुछ हल नहीं होता, जालों में से जाल निकलते आते हैं। ऐसे उत्तर पकड़ा देगा, जिनसे हजार प्रश्न खड़े होते हैं। तुम एक प्रश्न पूछते थे, वह ऐसे उत्तर पकड़ाएगा कि जिनसे हजार प्रश्न खड़े हो जाएंगे। तुम्हारा एक प्रश्न तो अपनी जगह खड़ा है सो खड़ा ही रहेगा। अब उसके उत्तर तुम्हें दिक्कत में डालेंगे।

ज्ञानी और पंडित में भेद है। ज्ञानी वह है जिसने जाना। पंडित वह है जो उधार बातों को दोहरा रहा है।

पंडित के हाथ में धर्म पड़ जाता है कि बस उसकी हंसी खो जाती है, मुस्कुराहट खो जाती है। जिस दिन धर्म की हंसी खो जाती है, उसका नृत्य खो जाता है, पैर में घूंघर नहीं बजते, हाथ में बांसुरी नहीं रह जाती--बस उसके बाद फिर लाश है। फिर पूजो! फिर करते रहो हवन-यज्ञ, हाथ कुछ भी न लगेगा, बस राख ही राख है। फिर राख का ही प्रसाद है। फिर राख को तुम चाहे विभूति कहो, जो तुम्हारी मर्जी। तुम्हारे विभूति कहने से राख कुछ विभूति नहीं हो जाती। मगर कैसे-कैसे लोग हैं, राख को विभूति कह रहे हैं! राख को सिर पर डाल रहे

हैं, माथे पर लगा रहे हैं। और सोच रहे हैं कि बड़ा पुण्य-कर्म किया होगा पिछले जन्मों में, इससे यह राख माथे पर लगी, सिर पर पड़ी।

पुण्य-कर्म से राख बरसती है? न मालूम किन पापों का फल भोग रहे हो! लेकिन कहते हो--विभूति! अच्छे-अच्छे नाम व्यर्थ की बातों को हम दे लेते हैं।

नहीं रंजन, यह कोई लत नहीं है। हंसो, जी भर कर हंसो! और हंसी के संबंध में कंजूसी मत करना। लोग बहुत कंजूस हो गए हैं, हर चीज में कंजूस हो गए हैं। उन चीजों में भी कंजूस हो गए हैं जिनमें तुम्हारा कुछ खोता नहीं। उन चीजों में भी कंजूस हो गए हैं जिनमें कौड़ी नहीं लगती। उन चीजों तक में कंजूस हो गए हैं जिनको बांटने से वे चीजें बढ़ती हैं, घटती नहीं।

जीवन का एक अदभुत नियम समझो। बाहर की जगत की जितनी चीजें हैं, बांटोगे तो घट जाएंगी। भीतर के जगत की जितनी चीजें हैं, बांटो तो बढ़ जाएंगी। भीतर का अर्थशास्त्र अलग। बाहर ऐसा करोगे तो अनर्थ हो जाएगा। बाहर का अर्थशास्त्र अलग।

एक भिखमंगे ने मुल्ला नसरुद्दीन से भीख मांगी। उसी दिन उसे लाटरी मिली थी। तो नसरुद्दीन मौज में था। एकदम फिल्मी गाना गाता हुआ चला आ रहा था घर की तरफ, नोट ही नोट तैर रहे थे चारों तरफ--आंखों में नोट, जेबों में नोट, आत्मा में नोट, नोट ही नोट थे! और इसी वक्त इसने मांगा। आज कृपणता न थी। और यह आदमी भला भी लगा, देखने से सुसंस्कृत लगता था, चेहरे से कुलीन लगता था। वस्त्र यद्यपि फटे थे, पुराने थे, मगर कभी शानदार रहे होंगे, कीमती रहे होंगे। सौ रुपये का नोट एकदम मुल्ला ने उसे दिया और पूछा कि मेरे भाई, तुम्हारी भाषा से, तुम्हारे खड़े होने के ढंग से, तुम्हारी आंखों से, तुम्हारे चेहरे से कुलीनता टपकती है। तुम्हारा यह हाल कैसे हुआ?

उसने कहा कि घबड़ाओ मत, अगर ऐसे ही सौ-सौ रुपये देते रहे तो यही हाल तुम्हारा हो जाएगा। इसी तरह मेरा हुआ। अगर मेरी मानो तो--उसने कहा--जरा सोच-समझ कर देना। मैं अनुभव से कह रहा हूं।

बाहर तो बांटोगे, तो कितना ही हो, तो भी बंट जाएगा। एक दिन तुम भिखमंगे हो जाओगे। बाहर कोई खजाना अकूत नहीं होता--कुबेर का भी नहीं।

लेकिन भीतर का एक मजा है। भीतर अकूत खजाना है। तुम अगर प्रेम दो तो प्रेम घटता नहीं, बढ़ता है। तुम अगर गीत गाओ तो गीत घटते नहीं, बढ़ते हैं। तुम जितना गाओ उतनी गाने की क्षमता प्रगाढ़ होती है, उतना तुम्हारा कंठ सुरीला होता है।

तुम हंसो! बांटो हंसी के मोती! और तुम कुछ संकोच न करना कि बांटा तो कहीं हंसी बंट न जाए! कहीं ऐसा न हो कि एक दिन हंसी से हम खाली हो जाएं! नहीं, जितना हंसोगे उतना भरोगे।

और दूसरी बात भी समझ लो कि अगर डर के कारण, कंजूसी के कारण हंसी को रोका, तो हंसी मर जाएगी। धीरे-धीरे तुम हंसना भूल ही जाओगे।

लोग बाहर के अर्थशास्त्र को भीतर भी लागू कर देते हैं। और तब उनके जीवन से कुछ चीजें खो जाती हैं। प्रेम तक करने में लोग डरते हैं। प्रेम देने में लोग डरते हैं कि कहीं ऐसा न हो कि बस कोई ले ले और हम खाली के खाली रह जाएं, उत्तर दे न दे! पहले तय कर लेते हैं कि प्रेम का उत्तर भी मिलेगा या नहीं। यही नहीं, यह भी तय कर लेते हैं कि जितना हम देते हैं उससे ज्यादा मिलेगा कि नहीं। क्योंकि वही धंधे का नियम हैः जितना हम दें, उससे ज्यादा मिले, तो धंधा। नहीं तो फायदा क्या!

इसी तरह तो लोग तुम देखते हो चारों तरफ--जिनकी क्षमता थी कि जो प्रेम के आगार बनते, जिनकी क्षमता थी कि जिनके भीतर से आनंद की फुलझड़ियां फूटतीं, जिनकी क्षमता थी कि जिनके भीतर समाधि का संगीत बजता--वे सब सूने-सूने, खाली-खाली, रिक्त, उदास हैं! कारण? बाहर के अर्थशास्त्र को भीतर लगा रहे हैं। भीतर और बाहर के नियम उलटे होते हैं। जो बाहर सच है वह भीतर बिल्कुल सच नहीं होता। और जो भीतर सच है वह बाहर सच नहीं होता। बाहर के नियम को समझ कर तुम समझ लेना कि उससे ठीक उलटा नियम भीतर लागू होता हैः बांटोगे तो बढ़ेगा; बचाओगे, घटेगा। अगर बिल्कुल बचा गए, सड़ जाएगा, समाप्त हो जाएगा। तुम भूल ही जाओगे, हंसना ही भूल जाओगे।

ऐसे बहुत लोग हैं, जो हंसना भूल गए हैं। वे अगर मुस्कुराते भी हैं तो तुम देख सकते हो कि सिर्फ ओंठों का अभ्यास कर रहे हैं, व्यायाम। कहीं कोई मुस्कुराहट नहीं। हृदय में कहीं कोई कली नहीं खिलती, कोई गंध नहीं उठती। चिपकाई हुई मुस्कुराहट है। खींच रहे हैं, तान रहे हैं ओंठों को। नेतागण जैसे मुस्कुराते हैं। नेतागणों का तो सभी झूठा है। हंसना झूठा, रोना झूठा। राजनीति का धंधा झूठा है। झूठ की संपदा ही वहां चलती है।

एक नेताजी की मगरमच्छ से बातचीत--

"यार मगर,
थोड़े आंसू
उधार दे दो अगर
तो हम
देश की दुर्दशा पर
बहा आएं।"

सूखी आंखों से
मगर ने कहा--
"आपने बड़ी देर कर दी हुजूर,
सारा स्टाक तो
दूसरी पार्टी वाले
ले गए हैं।"

कंजूसी न करना, रंजन। और हम बड़े कृपण हैं। कंजूसों से पृथ्वी भरी हुई है। तरह-तरह के कंजूस। और मैं पैसे, धन इत्यादि की बात नहीं कर रहा हूं। जो संपदा बांटने से बढ़ती है उसमें भी कंजूस। कंजूसी ऐसी है कि लोग मरने को राजी हैं, अगर कुछ बचाने का उनको मौका मिले; जीवन देने को राजी हैं, कुछ बचाने का मौका मिले।

मुल्ला नसरुद्दीन को एक रात एक आदमी ने एकांत में पकड़ लिया। छाती पर पिस्तौल लगा दी और कहा कि रख दो जो भी तुम्हारे पास हो! चाबी भी दे दो! या तो सब दे दो जो है और नहीं तो जान से हाथ धो बैठोगे!

मुल्ला ने कहा कि भई, एक दो मिनट सोचने दो।

वह आदमी भी थोड़ा हैरान हुआ। उसने कहा, मैंने बहुत लोगों को लूटा, मगर जहां जिंदगी और मौत का सवाल हो वहां कोई सोचने की बात नहीं करता।

मुल्ला ने कहा कि बिना सोचे मैं कोई काम नहीं करता। आंख बंद करके सोचा और फिर कहा कि ठीक है, तुम गोली मारो।

वह आदमी और चौंका। पहली दफा जिंदगी में उसके हाथ ढीले पड़े कि इस आदमी को मारना कि नहीं मारना! उसने कहा कि भई मुझे भी सोचने दो। तुम आदमी कैसे हो। अरे थोड़े से पैसों के पीछे... !

मुल्ला ने कहा कि सवाल यह है कि पैसे मैंने बचाए हैं बुढ़ापे के लिए, पैसे चले गए तो फिर मैं मुश्किल में पड़ूंगा। अरे जिंदगी का क्या है, यूं मुफ्त में मिली थी, मुफ्त में जाएगी, एक दिन जानी ही है। मैं तत्वज्ञानी हूं--मुल्ला ने कहा--मैं कोई छोटा-मोटा ऐसा-वैसा ऐरे-गैरे नत्थू-खैरे, उनमें मेरी गिनती मत करना। मैं तत्वज्ञानी हूं। ब्रह्मज्ञान जानता हूं। अरे जीवन का क्या, यह तो खेल है, अभिनय है। यह तो लीला है भगवान की। दिया है, फिर मिलेगा। मगर जो मैंने बुढ़ापे के लिए रखा है बचा कर, वह मैं नहीं दे सकता। वह लीला नहीं है, वह खेल नहीं है। वह मामला गंभीर है। और फिर जीवन मुफ्त मिला है, मुफ्त तो जाना ही है। आज नहीं कल खतम होना है। ले ले, तू ही ले ले।

वह आदमी, कहते हैं, भाग गया--कि ऐसे आदमी को क्या करना! अरे मारे को क्या मारना! मरे-मराए को क्या मारना! यह तो स्वर्गीय है ही!

कंजूसी न करना।

कंजूस बाप को
मरती हुई हालत में देख कर
बेटे ने बुलवा लिया
दो गुना बड़ा कफन
और हुआ प्रसन्न
कि बाप जी ने जीवन भर
बड़ा कष्ट पाया
न तरीके से पहना, न खाया
मैं आज कम से कम
जी भर
उढ़ा तो सकूंगा कफन

परंतु कान में पड़ते ही
लड़के की बात
बाप जी ने खोली
धीरे से आंख
और बोले
कि बेटे!

ठीक नहीं है तेरी मर्जी
क्यों करता है फिजूलखर्ची
इस कफन के आधे से
मेरी लाश ढंकना
और आधा
जरा सम्हाल कर रखना
कपड़ा है
रखा रहेगा
बेकार नहीं जाएगा
तू जब मरेगा
तेरे काम आएगा

हंसो, जी भर कर हंसो। मेरा आश्रम हंसता हुआ होना चाहिए। हंसी यहां धर्म है। यह आनंद-उत्सव है। यहां उदास होकर नहीं बैठना है। यह कोई उदासीन साधुओं की जमात नहीं है। उदासीनता को मैं रोग मानता हूं; साधुता नहीं, रुग्णता! जो उदासीन हैं, उनकी मानसिक चिकित्सा की जरूरत है। प्रफुल्लता स्वास्थ्य का लक्षण है! प्रफुल्लित होओ! और धीरे-धीरे जैसे-जैसे तुम्हारे जीवन में हंसी की किरणें फैलेंगी, चकित होओगे कि कितना हंसने को है! खुद के जीवन में हंसने को है, औरों के जीवन में हंसने को है। चारों तरफ हंसने ही हंसने की घटनाएं हैं। वह तो हम देखते नहीं, कंजूस हैं, कि कहीं हंसना न पड़े, तो हमने देखना ही बंद कर दिया है। नहीं तो चारों तरफ प्रतिपल क्या-क्या नहीं घट रहा है! हर चीज हंसने की है। कोई ऐसा ही थोड़े ही कि कभी-कभी कोई केले के छिलके पर फिसल कर गिर पड़ता है। हर आदमी यहां केले के छिलके पर फिसल रहा है! सड़कें केलों के छिलकों से भरी पड़ी हैं। यहां तुम हर आदमी को गिरते देखोगे।

और ऐसा नहीं है कि दूसरे ही गिर रहे हैं! दूसरों के लिए हंसे तो वह हंसी ठीक नहीं, काफी नहीं, पूरी नहीं, सम्यक नहीं। तुम अपने को भी गिरते देखोगे। और हंसी तो तुम्हें तब आएगी कि उन्हीं छिलकों पर गिर रहे हो जो तुम्हीं ने बिछाए हैं, कोई और भी नहीं बिछा गया। उन्हीं गड्ढों में गिर रहे हो जो तुम्हीं ने बिछाए हैं।

मेरे एक संन्यासी हैं, ईरानी हैं--डाक्टर हमीद। दिव्या से उनका प्रेम था। फिर थक गए, ऊब गए। हर चीज उबा देती है। हर चीज थका देती है। मन का यह नियम है। जब तक तुम मन के पार नहीं हो, ऐसी कोई चीज नहीं जो तुम्हें उबा न दे। और ये सब खेल, प्रेम हो कि घृणा हो, सब मन के ही खेल हैं। तो अब एक ही सब्जी रोज-रोज खाओगे--भिंडी, भिंडी, भिंडी--एकदम घबड़ा ही जाओगे। एक दिन थाली फेंक कर खड़े हो जाओगे। मन घबड़ाएगा ही। फिर चाहे यह प्रेम हो तुम्हारे मन का और चाहे घृणा हो तुम्हारे मन की, मन जो भी करता है, उसमें जल्दी ही ऊब जाता है। ऊबना मन का स्वभाव है। वह जल्दी ही नये की मांग करने लगता है। वह कहता है, कुछ और। अब कुछ बदलाहट चाहिए। कुछ न कुछ बदलाहट।

डाक्टर ने एक अभिनेत्री को सलाह दी, आपके लिए वातावरण-परिवर्तन बहुत आवश्यक है।

अभिनेत्री ने कहा, वातावरण-परिवर्तन! मैं पिछले चार वर्षों में दो पति, चार नौकर, तीन सेक्रेटरी और पांच प्रेमी बदल चुकी हूं, अब और क्या परिवर्तन करना पड़ेगा?

सो हमीद थके, बहुत थके। दिव्या भी थक गई। दोनों थक गए। बार-बार मुझे लिखने लगे कि हम दोनों को अलग करवा दें। जब मैंने देख लिया कि अब थकान बिल्कुल सौ डिग्री पर आ गई, तो उन दोनों को अलग करवा दिया। थोड़े ही दिनों में फिर दोनों एक-दूसरे की आकांक्षा करने लगे। मन तो पागल है! फिर मुझे पत्र लिखने लगे कि हमें तो फिर साथ रहना है। महीने दो महीने मैंने टाला। जब फिर देखा कि अब बात सौ डिग्री पर पहुंची जा रही है, अब बिल्कुल दीवाने ही हुए जा रहे हैं, तो दोनों को फिर साथ कर दिया।

दूसरे दिन सुबह ही हमीद ने मुझे एक पत्र लिखा और कहा कि सूफियों की एक कहावत जो मैं बचपन से सुनता रहा था, कभी मेरी समझ में न आई थी, आज आपने अवसर दे दिया कि समझ में आ गई। कहावत यह है कि आदमी ही एकमात्र गधा है, जो एक ही गड्ढे में दोबारा गिरता है। कोई गधा नहीं गिरता। एक गड्ढे में एक दफा गिर गया तो उस गड्ढे में फिर न गिरेगा। तुम गधे को धकाओ तो भी इनकार करेगा, कि अब नहीं! अब गिरना ही है तो किसी और गड्ढे में गिरेंगे!

यह तुम्हारा जो मन है, इस मन से तो जो भी हो रहा है वह मूढ़तापूर्ण है। एक ही गड्ढे में आदमी दोबारा नहीं, हजार बार गिरता है। और जानता है कि यह गड्ढा है और जानता है कि इसमें गिरने से चोट लगती है। और कितनी ही बार तय कर चुका कि अब नहीं गिरेंगे। मगर कुछ बात है। जैसे खाज को कोई खुजलाता है। जानता है, भलीभांति जानता है कि अभी खुजलाएगा, फिर अभी परेशान होगा, जलन उठेगी, लहू निकल आएगा। मगर जब खुजलाहट उठती है तो ऐसी मिठास पकड़ती है।

तो तुम अपने ही बिछाए केले के पत्तों पर गिरते हो। अगर जिंदगी को जरा गौर से देखो तो यहां हंसने ही हंसने जैसा है। चारों तरफ घटनाएं ही घटनाएं बिखरी पड़ी हैं। चुटकुलों से पटी हुई पड़ी है पृथ्वी--पत्थरों से नहीं, चुटकुलों से। जरा देखो, जरा खोजो।

मुल्ला नसरुद्दीन शिकार को गया। बैठा था बंदूक वगैरह लेकर एक झाड़ के पास। उसका संगी-साथी एक भागा हुआ आया और उसने कहा कि नसरुद्दीन, क्या कर रहे हो? अरे जल्दी आओ! जिस तंबू में तुम ठहरे हो, तुम्हारी पत्नी अकेली है और एक चीता अंदर घुस गया है।

नसरुद्दीन खिलखिला कर हंसा। उसने कहा, अब कमबख्त को पता चलेगा। अब करे अपनी आत्मरक्षा खुद ही! हम क्यों आएं? गया ही क्यों अंदर? हमारी कौन आत्मरक्षा करता है? हम अपने को बचाते हैं। अब बचाए अपने को! चीता हो कि कोई हो। वैसे भी हमें चीतों से कुछ लेना-देना नहीं है। अब बच्चू को छठी का दूध याद आएगा, कि कहां घुस गए!

मैंने यह भी सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन के गांव में एक बार सर्कस आया, और उसमें से चीता छूट भाग निकला। पूरे गांव में डुंडी पिटी, पुलिस सतर्क की गई, भोंपू बजाया गया कि सब लोग सावधान रहें। मुल्ला तो जल्दी से सीढ़ी लगा कर अपने छप्पर पर चढ़ गया और सीढ़ी भी खींच ली। उसकी पत्नी मोटी भी बहुत है, ऊंची भी बहुत है। वह चिल्लाई कि अरे, यह क्या करते हो?

उसने कहा कि तू चढ़ेगी तो सीढ़ी तोड़ देगी।

और उसने कहा कि और चीता आ गया, फिर?

उसने कहा, तू क्यों घबड़ाती है? अरे चीता कोई क्रेन लेकर थोड़े ही आएगा! तेरा क्या बिगाड़ लेगा? ये भोंपू वगैरह तो हम जैसे गरीबों के लिए बज रहे हैं, तू बेफिक्री से रह। चीता आएगा तो खुद अपना बचाव करेगा।

जिंदगी पटी पड़ी है, अगर तुम गौर से देखो। यहां हंसने को बहुत है। लेकिन चूंकि तुम्हारे भीतर की क्षमता खो गई है, इसलिए बाहर देखने का भी मौका नहीं मिलता; दृष्टि भी खो गई है।

एक मुकदमे में मुल्ला नसरुद्दीन पर भी गवाही देने का काम था। गवाही देते वक्त उसने बार-बार सिद्ध करने का प्रयास किया कि अमुक-अमुक होटल में बदमाशी का अड्डा है। बचाव-पक्ष का वकील बराबर विरोध करता रहा--उस होटल में बदमाशी का अड्डा है, यह सिद्ध करने के लिए तुमने जो दलीलें पेश की हैं उनमें दम नहीं है। ऐसी कोई ठोस वजह बता दो जिससे तुम्हारी बात पर विश्वास किया जाए।

मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, मानते नहीं हो तो फिर मैं बताए देता हूं। फिर मत कहना।

वकील भी थोड़ा डर कि क्या बताएगा! उसने कहा, हां बताओ, क्या डराते हो!

तो उसने कहा कि एक बार मैंने आपको भी वहां बैठे देखा था। और क्या ठोस प्रमाण चाहिए?

रंजन, हंसो, जी भर कर हंसो। हर बहाने हंसो। न बहाने मिलें तो बिन बहाने हंसो।

मुल्ला नसरुद्दीन बैठा था एक स्टेशन पर। ट्रेन लेट थी। जैसा कि नियम है। दो-चार बार उठ कर भी गया, स्टेशन मास्टर को पूछा भी; मगर जब जाए तभी और लेट होती जाए। आखिर उसने कहा कि यह मामला क्या है? क्या ट्रेन पीछे की तरफ सरक रही है? लेट होना भी समझ में आता है, मगर और-और लेट होता जाना! क्या ट्रेन उस तरफ जा रही है? फिर आएगी कैसे? और जब हर गाड़ी को लेट ही होना है तो टाइम-टेबल किसलिए छापते हो?

उस स्टेशन मास्टर ने कहा, टाइम-टेबल नहीं छापेंगे तो पता कैसे चलेगा कि कौन सी गाड़ी कितनी लेट है?

नसरुद्दीन ने कहा, यह बात जंचती है। यह बात पते की कही!

फिर उसने कहा, अब कोई फिक्र नहीं। अब मैं बैठ कर राह देखता हूं।

बैठ कर वह राह देखने लगा। बीच-बीच में हंसे। कभी-कभी ऐसा झिड़क दे कोई चीज हाथ से। कभी-कभी कहेः छी-छी! वह स्टेशन मास्टर थोड़ी देर देखता रहा कि यह कर क्या रहा है! बार-बार आता था, वही अच्छा था पूछने, अब यह और उत्सुकता जगा रहा है। किसी चीज को हाथ से सरकाता है, किसी को छी-छी कहता है, कभी कुछ। और फिर बीच-बीच में हंसता है, ऐसा खिलखिला कर हंसता है! आखिर वह आया, उसने कहा कि भाईजान, बड़े मियां! आप मुझे काम ही नहीं करने दे रहे हैं। मेरा दिल यहीं लगा है। इसमें कुछ गड़बड़ हो जाए, ट्रेन पटरी से उतर जाए, कि दूसरी पटरी पर चढ़ जाए, कि दो ट्रेनें टकरा जाएं। जब तक मैं आपसे पूछ न लूं, मुझे चैन नहीं है। या तो आप जरा दूर जाकर बैठो। आप कर क्या रहे हो? आप हंसते क्यों हो बीच-बीच में? कुछ भी तो नहीं हो रहा है यहां। गाड़ी लेट है। सब सन्नाटा छाया हुआ है। रात आधी हो गई है। सब यात्री बैठे-बैठे सो गए हैं। कुली-कबाड़ी भी विश्राम कर रहे हैं। तुम हंसते किसलिए हो बीच-बीच में?

उसने कहा कि अब मैं बैठे-बैठे क्या करूं? अपने को कुछ चुटकुले सुना रहा हूं।

उसने कहा, चलो, यह भी समझ में आ गया कि चुटकुले। यह बीच-बीच में छी-छी और यह हाथ से हटाना, यह क्या करते हो?

तो उसने कहा, जो चुटकुले मैं पहले सुन चुका हूं, वो मैं ऐसे ही... अरे हटो, रास्ते पर लगो! उनको ऐसा हटा देता हूं। बीच-बीच में घुस आते हैं।

हंसो! बहाने मिलें तो ठीक, न बहाने मिलें तो कुछ खोजो! मगर जिंदगी तुम्हारी एक हंसी का सिलसिला हो। हंसी तुम्हारी सहज अभिव्यक्ति बन जानी चाहिए।

मेरा संन्यासी हर हालत में मस्ती और आनंद को अभिव्यंजना दे, यही मेरी आकांक्षा है।

सुंदर लत है। अगर लत है, तो सुंदर है, प्यारी है, शुभ है। बड़ी धार्मिक लत है।

दूसरा प्रश्नः ओशो, कल किसी प्रश्न के उत्तर में आपने बताया कि क्यों साधारण व्यक्ति की समझ में आपकी बात आती नहीं। मुझे याद आया, आप पहली बार उन्नीस सौ चौंसठ में पूना आए थे, दो दिन आपके प्रवचन सुने थे, आपको स्टेशन पर छोड़ने आया था। तब मैंने आपको पूछा थाः आपकी बात साधारण आदमी की समझ में आना मुश्किल लगता है। तब आपने कहा थाः माणिक बाबू, कौन व्यक्ति खुद को साधारण समझता है?

क्या ज्यादातर व्यक्ति इसी भ्रांति में होते हैं? यह व्यक्ति की असाधारणता की कल्पना नष्ट करने के लिए नव-संन्यास उपयुक्त है। असाधारण को साधारण बनाने की आपकी कीमिया अदभुत है! इस पर कुछ प्रकाश डालने की कृपा करें।

योग माणिक, साधारण कोई व्यक्ति अपने को समझता नहीं। जो समझ ले, वह साधारण न रहा; वह असाधारण हो गया। जिसने समझ लिया कि मैं साधारण हूं, इससे बड़ी और कोई असाधारणता नहीं है। जिसने जाना कि मैं अज्ञानी हूं, उसके जीवन में ज्ञान का द्वार खुला। जिसने जाना कि मैं पापी हूं, उसने पुण्य की तरफ पहला कदम उठाया।

लेकिन हमारा अहंकार हमें कुछ और कहलवाता है। हमारा अहंकार कहता हैः तुम और साधारण! सारी दुनिया साधारण है, तुम असाधारण हो! कोई माने या न माने, कोई जाने या न जाने। जब लोग जानेंगे तब पछताएंगे। प्रत्येक के भीतर...

अरबी कहावत है कि परमात्मा जब भी आदमी को बनाता है, किसी भी आदमी को, तो वह एक मजाक सबके साथ कर देता है। चलते-चलते, धक्का देते-देते आकाश से जमीन की तरफ वह कान में कह देता है कि भैया सुन, तुझसे ज्यादा असाधारण व्यक्ति मैंने दूसरा कभी नहीं बनाया। मगर किसी से कहना मत, इस बात को गुप्त ही रखना।

सो लोग इस बात को गुप्त रखे हैं। दिल ही दिल में छिपाए हुए बैठे हैं। हर आदमी यही सोच रहा है कि मैं असाधारण हूं और दूसरी सारी दुनिया साधारण है। इसी तरह तो अहंकार पलता है, पोषण पाता है।

लाख घटनाएं तुम्हें बताती हैं कि अज्ञानी हो। लाख घटनाएं तुम्हें बताती हैं कि मूर्च्छित हो, बेहोश हो। लाख घटनाएं तुम्हें बताती हैं कि कहां की समझ! जंग खा चुकी है तुम्हारी समझ! लोगों ने तुम्हारी समझ के ऊपर खूब कूड़ा-कचरा थोप दिया है और तुम उसको छाती से लगाए बैठे हो--यह सोच कर कि यह बहुमूल्य है। ज्ञान को पकड़े बैठे हो जो उधार है। उधार और ज्ञान, होता ही नहीं! ज्ञान या तो अपना होता है या होता ही नहीं। लेकिन गीता कंठस्थ है, कुरान कंठस्थ है। समझ जरा भी नहीं, बोध कणमात्र नहीं। कुरान पूरा दोहरा देते हो। फिर स्वभावतः यह ख्याल पैदा होता है कि मुझ जैसा ज्ञानी कौन! पंडित हूं, मौलवी हूं, शास्त्री हूं, शास्त्रज्ञ हूं!

और अहंकार इन्हीं झूठे सहारों पर टिका हुआ जीता है। हालांकि तुम्हारा जीवन कुछ उलटा ही साबित करता है। अगर तुम्हारी जिंदगी को तुम जरा भी साक्षी-भाव से देखो, तो तुम पाओगे कि कुरान कहां काम आती है? गीता रटे बैठे हो, मगर काम कहां आती है?

गीता बिल्कुल शुद्ध तुम्हें याद है, और कोई आदमी एक चपत लगा दे कि आगबबूला हो जाते हो; तब भूल ही जाते हो कि सुख-दुख में समभाव... । उस वक्त अगर कोई याद दिलाए गीता की तो और गुस्सा आता है कि यह कोई वक्त है गीता याद दिलाने का! अरे इस वक्त तो इसको मजा चखाऊंगा, फिर पीछे कर लेंगे गीता का पाठ। कि अर्जुन पूछता हैः हे कृष्ण, स्थित-प्रज्ञ के लक्षण क्या हैं? समता में जीता, न सफलता न असफलता डिगाती। और तुम्हें किसी ने जरा सी चपत लगा दी। शायद सच में चपत न भी लगाई हो, सिर्फ चपत बता दी दूर से। लगाई भी नहीं, बता दी।

मैं छोटा था, मेरे घर और स्कूल के बीच में एक मिठाई वाले की दुकान थी। बड़े भक्ति-भाव वाले आदमी थे वे। बड़ा लंबा टीका लगाते थे! और चूंकि उनके बाल गिर चुके थे तो उनका टीका बिल्कुल चांद तक चला जाता था। लोग उनको चंदुआ कहते थे। चंदुआ कहने से वे चिढ़ते थे। चंदुआ कहो तो झगड़ा हो जाए। तो मैंने एक तरकीब निकाली। मैं उनसे चंदुआ नहीं कहता था, सिर्फ उनकी दुकान के सामने खड़ा हो जाता, ताली बजाता और अपनी चांद पर हाथ रख कर हिला देता। यह देखते ही उनको एकदम आग लग जाती। छोड़-छाड़ कर, तराजू वगैरह नीचे पटक कर वे एकदम मेरे पीछे भागते। मैं उनसे कहता कि मैं कुछ बोला भी नहीं, एक शब्द नहीं बोला। अब ताली तो मेरी है, मैं बजाऊं तो तुम इसमें तो रोक नहीं सकते। चांद भी मेरी है, मैं अपनी चांद पर हाथ रखूं तो तुम्हें इसमें क्या एतराज है?

अब मगर वे अपने दिल का दुख किससे कहें! यह बात फैलती गई। स्कूल से दो हजार विद्यार्थी निकलते थे वहां से, सबमें हवा फैल गई कि ताली बजाने से और चांद पर हाथ रखने से यह आदमी एकदम भनभना जाता है। अब दो हजार लड़कों के पीछे किस-किस के दौड़ोगे! और यह दिन भर सिलसिला लगा रहे, कभी स्कूल जा रहे, कभी स्कूल से आ रहे, कभी दोपहर की छुट्टी, कभी यह, कभी वह। यह कतार बंधी ही रहे। और जो निकले वही ताली बजाए। जैसे ही छुट्टी का घंटा बजे स्कूल में, वह जल्दी से भीतर हो जाए, अपनी पत्नी को बाहर बिठाल दे।

मैं एक दिन आ रहा था, तो उसने देखा मुझे दूर से ही आते, जल्दी भीतर हो गया, पत्नी को दुकान पर बिठाल दिया। मैं भी खड़ा ही रहा और ताली बजाता ही रहा। पत्नी ने मुझे गुर्रा-गुर्रा कर दो-चार बार देखा, पर मैंने कहा अब आज जो भी हो, जब तक यह आदमी बाहर नहीं आएगा मैं ताली बजाऊंगा। मैं अपना बस्ता-वस्ता रख कर वहीं बैठ गया। जब मैंने बस्ता वहीं रखा और बैठा, तो उसकी पत्नी ने कहा कि क्यों उस चंदुए के पीछे पड़े हो?

वह निकल कर एकदम बाहर आ गया। उसकी पत्नी के उसने बाल पकड़ लिए कि दुष्ट, दूसरे कहें तो ठीक, अरे तुझे शर्म न आई चंदुआ कहते! अपने वाले भी कहने लगे!

फिर उसने देखा यूं बात न बनेगी, तो उसने मुझे बुलाया। वह मुझे कहे कि भैया, मिठाई खाओ, चाकलेट ले जाओ। जब भी निकलो, आओ यहां, बैठो।

मैंने कहा कि भई, यह बहुत मुश्किल मामला है। रिश्वत मैं लूंगा नहीं। और तुम किस-किस को रिश्वत दोगे, बात बहुत फैल चुकी है। तुम मुझे ही मान लो चाकलेट दे दोगे और मिठाई दे दोगे, मैं नहीं बजाऊंगा ताली। मगर ये दो हजार लड़के, अब इनको कौन रोकेगा? तुमसे मैंने पहले ही कहा था कि तुम्हारा क्या बिगड़ता है, ताली मैं अपनी बजाता हूं!

वह मेरे घर भी आया। उसने मेरे पिताजी को भी आकर कहा कि भई, आप अपने लड़के को रोकिए। उन्होंने पूछा कि यह करता क्या है?

तो वह कहे कि अब आपसे क्या बताएं क्या करता है!

उन्होंने कहा, बताओ तो करता क्या है? मतलब इसका कसूर क्या है?

मैंने भी कहा कि साफ-साफ कहो न, कसूर क्या है? कोई तुम्हारा नुकसान किया है? कोई तुम्हें गाली दी? कोई पत्थर मारा?

अरे, उसने कहा, पत्थर मारो तो भी ठीक है, गाली दो तो भी ठीक है, उससे भी ज्यादा किया।

तुम बताओ तो क्या?

वह मेरे पिताजी से कहे कि अब बताना क्या है आपसे, आप समझ लो।

मैंने कहा कि ऐसे कैसे समझ लो? तुम मेरी शिकायत लेकर आए हो, मेरी कुटाई-पिटाई हो, उसके पहले साफ-साफ बात होनी चाहिए।

मेरे पिताजी ने भी कहा कि भई, तुम बताते क्यों नहीं बात? यह क्या करता है?

उसने कहा, अब आपसे क्या बताना! यह बात ऐसी कर रहा है कि मैं किसी को भी नहीं बता सकता। ताली बजाता है।

मैंने कहा कि ताली बजाने में आपका क्या बिगड़ता है?

और यह अपने सिर पर हाथ रखता है--बोले।

मैंने कहा, सिर मेरा है और हाथ मेरा है। इसमें मेरे पिताजी भी नहीं रोक सकते, कोई मुझे नहीं रोक सकता। इतनी स्वतंत्रता तो है कि आदमी अपने सिर पर हाथ रख सके। तुम कौन हो?

चपत ही कोई मारे तो तुम्हारा गीता-ज्ञान नष्ट हो जाए, ऐसा नहीं... वैसे वह बड़ा गीता-ज्ञानी था, गीता-पाठी था। उसका तिलक-चंदन देख कर ही तो मुझे यह रस उसमें पैदा हुआ था, नहीं तो होता ही नहीं। धार्मिक आदमियों में मेरा रस पहले ही से रहा। अभी भी है, गया नहीं। कभी जाएगा भी नहीं।

मगर हर मूढ़ भी यही मानता है कि वह ज्ञानी है।

गांव में रहने वाला मोती
साथ में लेकर शीला पत्नी
प्रथम बार दिल्ली में आया
रेलवे स्टेशन पर उतर कर
एक इश्तहार को ही देख कर
हो लिया उलटे पांव
और उसी गाड़ी से
लौट आया गांव।
गांव में आकर
अपने एक मित्र के पास जाकर
उसने बताया--
"मैं कभी नहीं जाऊंगा दिल्ली
मेरी उड़ाई गई है खिल्ली।
रेलवे स्टेशन पर ही यार

लगा रखा था इश्तहार

कि--

दिल्ली में पहली बार

जोरू का गुलाम आ रहा है।"

अपने को समझदार समझने वाले लोग भी हैं। अब यह अपने को बड़ा समझदार समझ कर लौट आया है। कौन अपने को साधारण समझता है?

इसलिए, माणिक, कहा था कि नहीं कोई आदमी अपने को साधारण समझता है। साधारण आदमी खोजना ही मुश्किल है। अगर कहीं मिल जाए तो उसके चरण छूना, क्योंकि वह असाधारण है। जो जानता हो कि मैं साधारण हूं, उसके जीवन में असाधारणता की शुरुआत हो गई।

और निश्चित ही संन्यास का यही प्रयोजन है कि मैं तुम्हें बोध दिलाऊं--तुम्हारे वास्तविक जीवन का, तुम्हारी मूर्च्छा का, तुम्हारे क्रोध का, तुम्हारे मोह का, तुम्हारे लोभ का। इसलिए तुमसे भागने को नहीं कहता, क्योंकि भाग जाओगे तो बोध कैसे होगा? घर-द्वार छोड़ कर जंगल में जाकर बैठ जाओगे तो वहां तो शांति मालूम होगी ही। कोई कारण नहीं है अशांत होने का। पत्नी मांग नहीं करती कि आज यह नहीं लाए, वह नहीं लाए; नोन-तेल-लकड़ी का कोई उपद्रव नहीं है; बच्चों की फीस नहीं भरनी, कालेज में भरती नहीं करवाना; लड़की की शादी नहीं करनी; बूढ़ा बाप, बूढ़ी मां सिर नहीं खाते; मुहल्ले-पड़ोस के लोग जोर-जोर से रेडियो नहीं बजाते। कुछ भी तो नहीं हो रहा। सब सन्नाटा है। तुम वृक्ष के नीचे बैठे। तो स्वभावतः लगेगा शांत हो गए।

मगर यह कोई शांति नहीं है। यह शांति का धोखा है। छोड़ दिया सब, तो अब क्या असफलता और क्या सफलता? जंगल में न असफलता होती, न सफलता होती। तुम नंग-धड़ंग बैठो तो जंगल के जानवरों को कोई मतलब नहीं; तुम रंग-रोगन लगा कर बैठो तो उन्हें कोई मतलब नहीं। न तुम्हारी प्रशंसा को आएंगे, न निंदा को आएंगे। ध्यान ही नहीं देंगे। वहां तो तुम अकेले हो।

यहां भीड़-भाड़ में धक्का-मुक्की हो रही है, चारों तरफ से धक्के लग रहे हैं, रेलमपेल है। यहां गुस्सा भी आएगा, क्रोध भी आएगा, लोभ भी पकड़ेगा, मोह भी पकड़ेगा। दूसरे आगे बढ़े जा रहे हैं। यहां तो कुछ न कुछ हो ही रहा है।

एक व्यक्ति नदी में कूदने जा ही रहा था कि मुल्ला नसरुद्दीन ने दौड़ कर उसकी कौलिया भर ली। वह व्यक्ति छूटने के लिए जोर मारने लगा और बोला, मैं दुनिया से तंग आ गया हूं, मुझे छोड़ दो। मैं मरूंगा।

मगर मुल्ला ने भी कस कर उसको पकड़ा। वह बोला कि हद्द हो गई! अरे न जीने देते हैं न मरने देते! तेरा मैंने क्या बिगाड़ा भाई? कभी जिंदगी में मिला नहीं, कभी जिंदगी में किसी काम आया नहीं। अब मरने जा रहा हूं तो कूदने क्यों नहीं देता? तू और कहां से आ टपका!

मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा कि सुन भैया, अगर तू पानी में छलांग लगाएगा तो तुझे बचाने के लिए मुझे भी कूदना पड़ेगा। डूब तुम सकोगे नहीं; दया के कारण मुझे बचाना ही पड़ेगा। और मेरे सिवाय यहां कोई और है भी नहीं, सो मैं ही फंसूंगा। अब देखते हो, सर्दी कितने जोर की पड़ रही है! पानी बिल्कुल बर्फ हो रहा है। और जब तक तुम्हें एंबुलेंस लेने आएगी, हमें यहीं बैठा रहना होगा--गीले कपड़े, ठंडी हवा, बर्फ जैसा पानी। तू तेरी जान, मगर मुझे निमोनिया हो जाए तो फिर कौन जिम्मेवार? तुम तो चले अपनी स्वतंत्रता बताने, आखिर हमें भी जीने का हक है कि नहीं? ऐसा कर भैया कि घर जाकर फांसी लगा ले। मुझे क्यों झंझट में डालता है? या फिर

नुक्कड़ वाले डाक्टर से कोई भी दवा लेकर खा लेना, मरने में कठिनाई नहीं होगी। उस डाक्टर के पास जिसको मैंने जाते देखा उसको मरते देखा। तू क्यों इतना कष्ट करता है? इतने ऊपर से कूदेगा, टांग-वांग टूट गई और बच गया... और मुझे बचाना ही पड़ेगा, यह मैं तेरे से कहे दे रहा हूं। आखिर लाज-शरम भी तो है कुछ!

यहां मर भी नहीं सकते, जी भी नहीं सकते। यहां तो कुछ न कुछ रुकावट है, बाधा है। यहां तो हर चीज, जब तक कि तुम ध्यान-मग्न न हो जाओ, तुम्हें अवसर देगी उद्विग्न होने का, विक्षिप्त होने का। यहां बहुत निमंत्रण हैं, चारों तरफ प्रलोभन हैं। इश्तहार पर इश्तहार लगे हैं, जो बुला रहे हैं कि आओ, जिंदगी इसको कहते हैं! लिव्वा लिटिल हाट, सिप्पा गोल्ड-स्पाट! जीओ, कुछ गरम-गरम जीओ! क्या बैठे-बैठे कर रहे हो, गोल्ड-स्पाट पियो! खाली बैठे हो तो भी सामने लगा है इश्तहार। कब तक बैठे देखते रहोगे? एकदम दिल में कुलबुली उठेगी कि एक दफा देखो तो यह गोल्ड-स्पाट क्या है! और अपन यूं ही जिंदगी जीए जा रहे हैं, बिना ही गोल्ड-स्पाट पीए। पता नहीं हो कुछ राज इसमें!

यहां प्रलोभन हैं, आकर्षण हैं, सब तरह के भुलावे हैं, सब तरह के छलावे हैं। भाग गए जंगल में, वहां तो कुछ भी नहीं है। न कोई इश्तहार, न कोई बुलावा, न कोई निमंत्रण, न कोई पार्टी, न कोई जुआघर, न कोई वेश्यालय, कुछ भी नहीं। बैठे रहो। मजबूरी में भजन ही करोगे, करोगे क्या और! मगर मजबूरी का भजन कोई भजन है?

इसलिए मैं नहीं कहता मेरे संन्यासी को कि तुम भागो। मैं तो कहता हूं, जम कर यहीं रहो। और यहीं रह कर जीओ और यहीं रह कर जागो! और जागना किस चीज से है? जागना इस बात से कि हमारी मूर्च्छा हमें साधारण बनाए हुए है; हमारा अहंकार हमें साधारण बनाए हुए है। और मजा यह है कि हमारा अहंकार हमें समझाता है कि हम असाधारण हैं, हम विशिष्ट हैं, हम खास हैं, हम अद्वितीय हैं। अहंकार ही के कारण हम अद्वितीय नहीं हो पा रहे हैं। और वही हमें समझा रहा है कि हम अद्वितीय हैं। झूठे सिक्के पकड़े रहोगे तो असली सिक्के कैसे खोजोगे?

संन्यास का अर्थ है झूठे सिक्कों से मुक्त होना, ताकि असली सिक्के पाए जा सकें। असली भी यहीं हैं, नकली भी यहीं हैं। जंगल गए तो असली भी नहीं हैं, नकली भी नहीं हैं। जंगल में सिक्के ही नहीं हैं। जंगल में तो तुम खाली अकेले हो। वहां धोखा तुम अपने को आसानी से दे सकते हो। गुफाओं में बैठ कर बड़ी आसानी से सोच सकते हो कि मुक्त हो गए। बाजार में बैठ कर मुक्त हो जाओ तो मुक्ति है।

संन्यास की पूरी प्रक्रिया मेरी यही है। यह एक विधि है--तुम्हें जगाने की, तुम्हें चेताने की।

किसने कहा--वह फूल है!
किसने कहा--वह शूल है!
प्रातः हुई--सब रूप है,
प्रातः हुई--सब रंग है,
दिन का प्रकाश उछाह है,
दिन का प्रकाश उमंग है।
पर मौन सूनी सी अमा,
निज नास्ति की ले कालिमा
निःश्वास भर कर कह उठी--

"जो कुछ यहां वह भूल है।
"तब चेतना ले, ज्ञान ले
नभ पर यहां मानव चढ़ा,
रवि-शशि बने उसके नयन,
निःसीम को उसने गढ़ा,
पर वह अचानक रुक गया,
पर शीश उसका झुक गया,
ले गोद में उसको धराने कह दिया--"तू धूल है!"

देह तो धूल है। मन सब बासा और उधार है। देह और मन के भीतर छिपी हुई तुम्हारी आत्मा है। वहां चलना है। जंगल नहीं, गुफा में नहीं; अपने हृदय की गुफा में, अपने हृदय के जंगल में, अपने हृदय के एकांत में प्रवेश करना है। और चमत्कारों का चमत्कार घटित होता है।

निश्चित ही माणिक, यह अदभुत कीमिया है! क्योंकि इससे बड़ा कोई चमत्कार पृथ्वी पर नहीं है। जिस दिन तुम अपने अंतरस्थ केंद्र पर पहुंचते हो, उस दिन तुम जानते हो--तुम परमात्मा हो। परमात्मा ही है, तुम नहीं हो। उस दिन उदघोष होता हैः अहं ब्रह्मास्मि! अनलहक!

अपना सिर नीचा कर मानव!
तू, जो कि उठा कौतूहल बन,
जीवन की पुलकित चाह लिए;
तू, जो कि बढ़ा उत्सुकता बन,
गति का स्वच्छंद प्रवाह लिए!
तू जो व्यापक, तू जो समर्थ,
तुझमें अक्षय विश्वास भरा,
ओ जल-थल-अंबर के स्वामी
तू अपने ही को देख जरा।
तेरी आंखों में आंसू हैं!
तू है ओंठों पर आह लिए!
है एक भयानक दाह लिए
तेरे अंदर वाला प्रकाश,
तू एक हाथ में लिए सृजन,
है लिए दूसरे में विनाश।
तू अपने ही से डर मानव!
अपना सिर नीचा कर मानव!
तेरे आगे, तेरे पीछे
हंसता अदृश्य का अंधकार
तू अपनी ही निर्बलता से

टकरा जाता है बार-बार!
तेरे नयनों में प्रेम-ज्योति
उर में है करुणा का सागर,
तू है प्रबुद्ध, तू चेतन है,
तू शाश्वत है, तू अजर-अमर!
अस्तित्व असीमित औ अखंड,
नश्वर है तेरा अहंकार!
यह एक इकाई सत्ता की,
बस जन्म-मरण है इसका क्रम,
तू नहीं आज तक जान सका,
क्या सत्य और क्या है विभ्रम,
जीवन की गति में लय होकर
तू सत्ता का भ्रम हर मानव!
अपना सिर नीचा कर मानव!

अहंकार को जाने दो, मिटने दो, गलने दो--और तुम पाओगे, तुम्हारे भीतर अद्वितीय विराजमान है! तुम्हारे भीतर परमात्मा विराजमान है! तुम उसके मंदिर हो! प्रत्येक व्यक्ति उसका मंदिर है, प्रत्येक व्यक्ति उसका काबा है।

लेकिन मैं जो कह रहा हूं--अहं ब्रह्मास्मि, कि मैं ब्रह्म हूं; अनलहक, कि मैं सत्य हूं--इसे तुमने अगर अहंकार से ही पकड़ा तो भूल हो जाएगी, फिर चूक हो जाएगी। अहंकार चुकाने में बड़ा कुशल है। अहंकार कहेगाः बात तो बिल्कुल ठीक है, यही तो मैं कहता हूं कि तुम साक्षात ब्रह्म हो! यही तो मैं कहता हूं। लेकिन अहंकार कहे तो यही बात झूठ। और जब निर-अहंकार में यह उदघोष उठे तो यही बात सच। इसलिए कसौटी निर-अहंकारिता है। और तुम्हारे अतिरिक्त कौन जानेगा? तुम्हें ही अपने भीतर जाग कर देखना होगा, कहां से उठ रही है यह बात? नहीं तो भूल-चूक होती रहेगी। अहंकार चुकाने में बिल्कुल कुशल है। वह कुछ का कुछ समझा देता है।

एक फेरीवाला एक स्त्री को कुछ सामान बेच रहा है। बोला, बीबी जी, क्या आपको बिजली की इस्त्री लेनी है?

गृहस्वामिनीः नहीं, पड़ोसियों को दे दो। क्योंकि उनकी पुरानी इस्त्रियां खराब हो गई हैं, हम तो उन्हीं से मांग कर काम चला लेते हैं।

फेरीवालाः मगर बीबी जी, मैंने तो आपके पतिदेव को यह कहते सुना था कि उनकी पुरानी इस्त्री बहुत ही खराब है और वे अब एक नई इस्त्री चाहते हैं।

गृहस्वामिनीः अच्छा, तो वह हरामजादा अब घर के बाहर भी मेरी बुराई करने लगा।

एक हमारे भीतर तत्व है, एक पर्त है अहंकार की, जो हर चीज को अपना रंग, अपना अर्थ दे देती है। अगर हम उससे सावधान न हुए तो वह हमें नये-नये चक्करों में डालती चली जाएगी। धर्म को भी धोखा देने का उपाय अहंकार कर लेता है। इसलिए तुम्हारे तथाकथित संन्यासियों में, साधुओं में, महात्माओं में जितना अहंकार होता है, उतना शायद किसी और में हो। उनका तो अहंकार नाक पर चढ़ा बैठा होता है।

मैंने कल योगानंद का तुम्हें अर्थ बताया था न! योगानंद ने पूछा था कि आपने मुझे योगानंद नाम क्यों दिया? तो मैंने उनको कहा कि तुम्हें देखा, अकड़ योगियों जैसी, अहंकार योगियों जैसा, बैठ गए सिद्धासन में जब संन्यास तुम्हें दिया, तो मैंने सोचा कि योगानंद नाम दे दूं।

एक बार एक उपन्यासकार मेरे पास अपना उपन्यास लाया--बड़ा भारी पुथंगा! और उसने कहा कि और सब तो मैंने कर लिया, शीर्षक नहीं मिल रहा है। आप शीर्षक बता दें।

मैं तो उसका पुथंगा देख कर ही डर गया। मैंने कहा इतना बड़ा पुथंगा पढूंगा, तब शीर्षक निकाल पाऊंगा! मैंने उससे कहा, तू एक काम कर। तू मुल्ला नसरुद्दीन से मिल; वह बड़ा ज्ञानी है और बड़ी उसकी अंतर्दृष्टि है, वह जल्दी ही कोई काम की बात निकाल लेगा।

भेज दिया उसे। वह तो पांच ही मिनट में लौट कर आ गया। उसने कहा कि आपने ठीक कहा था, बड़े गजब का आदमी है! उसने तो शीर्षक भी दे दिया।

मैं भी थोड़ा चौंका। पांच मिनट में उसने इतना बड़ा पुथंगा कैसे देखा! मैंने कहा, किताब पढ़ गया वह?

उसने कहा, पढ़ने की बात कह रहे हैं, अरे उसने मुझे किताब निकालने भी नहीं दी बस्ते से। उसने तो मुझसे दो प्रश्न पूछे, और दो का उत्तर दिया कि उसने फौरन मुझे शीर्षक बता दिया। पहले उसने पूछा कि इसमें कहीं ढोल का जिक्र है? मैंने कहा, नहीं। उसने कहा, नगाड़े का जिक्र है? मैंने कहा, नहीं। उसने कहा, बस "न ढोल न नगाड़ा", यह इसका शीर्षक।

जब मैंने तुम्हें देखा योगानंद, तो मैंने देखा--न योग, न आनंद--योगानंद! ऐसे मैं नाम खोजता हूं। और क्या करूं? न ढोल न नगाड़ा! तरकीब हाथ लग गई। मैंने कहा, यह तो बिल्कुल सुंदर बात है। अब कौन तुम्हारे पुथंगे को खोले पूरा और जांच-पड़ताल करे तुम्हारे जन्मों-जन्मों की और पता लगाए कि तुम्हें क्या शीर्षक ठीक रहेगा! अरे सीधी-सादी बात है, देख लिया कि ये दो चीजें तुममें नहीं दिखाई पड़तीं।

तुम्हारे महात्माओं में संतत्व तो नहीं दिखाई पड़ता। संत का तो अर्थ ही होता है कि जिसके भीतर सत्य का अवतरण हुआ हो, सत का अवतरण हुआ हो। अहंकार विराजमान है, कहां सत्य का अवतरण? जगह कहां है सत्य के लिए? तुम्हारे महात्मा साधु नहीं हैं। साधु का तो अर्थ होता है--सरल चित्त, निर्दोष। तुम्हारे महात्मा तो बड़े हिसाब-किताब लगाने वाले हैं, बड़ा गणित बिठा रहे हैं, बड़ा तर्क बिठा रहे हैं--कहां निर्दोष! कहां सीधे-सादे! असंभव है। सादगी और तुम्हारे साधुओं में मिल जाए!

हां, ऊपर की सादगी उन्होंने आरोपित कर ली है। कोई लंगोटी लगाए बैठा है, इसको अगर तुम सादगी समझते हो तो बात अलग। कोई सिर्फ भिक्षापात्र लिए बैठा है, अगर इसको तुम सादगी समझते हो तो बात अलग। लेकिन जरा चेहरे पर तो देखो, अकड़ ऐसी है कि एक दफा सिकंदर भी फीका मालूम पड़े। एक दफा इनके भीतर तो झांको, अहंकार की प्रज्वलित अग्नि जल रही है। लंगोटी जरूर लगाए बैठे हैं, लेकिन लंगोटी के भीतर अहंकार दंड-बैठकें लगा रहा है।

इसलिए तुम्हारे साधु-महात्मा खुद भी लड़ते हैं, तुम्हें भी लड़वाते हैं। सारी पृथ्वी को उन्होंने एक कलहपूर्ण वातावरण में बदल दिया है।

यह अहंकार तुम्हारे भीतर भी बैठा हुआ है। कोई धन की आड़ में छिपाए बैठा है, कोई पद की आड़ में छिपाए बैठा है, कोई ज्ञान की आड़ में, कोई त्याग की, तपश्चर्या की आड़ में। इस सबसे तुम्हें जागना होगा, तो ही तुम्हारे भीतर से असाधारण ज्योति प्रकट होगी। वह तुम्हारी ज्योति नहीं है, स्मरण रखना; वह परमात्मा की ज्योति है। तुम मिटोगे तो ही प्रकट हो सकती है।

और सावधानी रखनी पड़ेगी। यह कोई एक-दो दिन की बात नहीं है कि एक-दो दिन सावधानी रख ली और बात खतम हो गई। यह कुछ मामला ऐसा नहीं है कि जैनों के पर्युषण आए और दस दिन किसी तरह भोजन पर संयम कर लिया और फिर टूट पड़े एकदम दस दिन के बाद ग्यारहवें दिन; जो-जो छोड़ा था उससे दुगुना, तीन गुना पा गए। यह कुछ ऐसा नहीं है कि सुबह उठ कर प्रार्थना कर ली एक-दो मिनट और चुकतारा हुआ, छुटकारा हुआ, फिर दिन भर जो करना है करो। यह तो सतत जागरूकता साधनी होगी।

अहंकार के रास्ते बड़े सूक्ष्म हैं। यह तो जागते, उठते, बैठते, धीरे-धीरे सोते भी जागरूकता रखनी होगी, तो ही किसी दिन वह अपूर्व घटना घटती है कि अहंकार विसर्जित हो जाता है। और उसके साथ ही सारी मूढ़ता, सारी साधारणता, उसी के साथ सारा अंधकार भी क्षीण हो जाता है।

एक यात्री ने अपनी कार पहाड़ के एक ढलान पर रोकी, बहुत घबड़ा कर रोकी। पास में ही बैठे एक देहाती से कहा कि भई, यह तो बहुत खतरनाक ढलान है, यहां सावधानी का बोर्ड क्यों नहीं लगाया गया है? यहां से तो कोई गिरे तो सीधा पाताल जाए। नीचे इतना बड़ा गड्ढा है कि बचना असंभव है। बचना क्या, चिंदी-चिंदी हो जाए आदमी, टुकड़े-टुकड़े होकर बिखर जाए। यहां सावधानी का बोर्ड तो होना ही चाहिए।

उस ग्रामीण ने कहा कि जी हां, यह खतरनाक तो जरूर है और यहां सावधान रहने का बोर्ड भी लगाया गया था, लेकिन जब दो साल तक कोई दुर्घटना नहीं हुई तो उसे अनावश्यक समझ कर अलग कर दिया गया है। अब दो साल बहुत हो गए, देख लिया कि यहां कुछ होती ही नहीं दुर्घटना, नाहक बोर्ड लगाए हो!

सावधानी तुम्हें जो बरतनी है, वह कुछ ऐसी नहीं है कि थोड़ी-बहुत देर सम्हाल ली, कि दिन दो दिन सम्हाल ली, कि साल दो साल सम्हाल ली। यह तो तुम्हारी जीवन-चर्या हो जानी चाहिए; यह तो तुम्हारी श्वास-श्वास में व्याप्त हो जानी चाहिए। तो ही तुम जाग कर देख सकोगे कि कितनी मूढ़ताएं तुमसे हो रही हैं, होती रही हैं। आदतन होने लगी हैं, यंत्रवत होने लगी हैं।

चंदूलाल की पत्नी फोन पर लंबी बातें करने की आदत से परेशान थी। कम से कम एक घंटा तो लग ही जाता। ज्यादा भला लग जाए, कम तो नहीं। एक दिन संयोग से पंद्रह मिनट में ही फुरसत पा गई, तो चंदूलाल ने पूछा, आज तो बड़ी जल्दी बात खतम कर दी, क्या तबियत ठीक नहीं है?

श्रीमती जी ने इत्मीनान से जवाब दिया, अजी रांग नंबर लग गया था।

रांग नंबर, फिर भी पंद्रह मिनट बात चली ही!

आदतें जड़ हो जाती हैं। हम उन्हीं-उन्हीं को दोहराते जाते हैं। जागरण ही इन सारी आदतों को तोड़ सकता है। और जागरण आदतों की जड़ को ही तोड़ देता है--अहंकार को। फिर तुम्हारे भीतर प्रतिभा प्रकट होती है, मेधा प्रकट होती है, परमात्मा प्रकट होता है।

तीसरा प्रश्नः ओशो, ईश्वर को देखे बिना मैं पूजा किसकी, कैसे और कहां करूं? समझाने की अनुकंपा करें!

जागेश्वर, जब ईश्वर को देखा ही नहीं तो पूजा करना ही क्यों? क्यों यह प्रश्न उठता है कि पूजा किसकी, कैसे और कहां करूं? यह तो अजीब बात हुई। यह तो वैसी बात हुई कि नंगा पूछे कि अगर नहाऊं तो फिर कपड़े कहां निचोड़ूं? और निचोड़ भी लूं तो फिर कपड़े सुखाऊं कहां?

जब तुम्हें ईश्वर का कोई बोध ही नहीं है, तो अभी पूजा कैसे करोगे? ईश्वर का बोध नहीं है और आगे चले! यह तो शेखचिल्लीपन हुआ। लेकिन अक्सर शेखचिल्लीपन की बातें तत्वज्ञान मालूम होती हैं। तुमने जब पूछा होगा यह प्रश्न तो सोचा होगा तत्वज्ञान की बात पूछ रहे हो, बड़ी धार्मिक बात पूछ रहे हो!

तुम बिल्कुल ही व्यर्थ की बात पूछ रहे हो। यह तो ऐसे ही है जैसे कि मकान तो अभी बना ही नहीं, तो छप्पर पर क्या लगाना है--खपड़े लगाना हैं कि एस्बेस्टस शीट्स चढ़ानी हैं? और मकान बना ही नहीं, नींव भी रखी नहीं गई--और छप्पर का विचार कर रहे हो!

पूजा तो पीछे आएगी, पहले ईश्वर का बोध आना चाहिए। यह पूछो कि ईश्वर का बोध कैसे हो! अभी पूजा की बात ही क्यों उठाते हो? ईश्वर का बोध हो तो पूजा अपने आप आ जाती है। बच ही नहीं सकते, झुकना ही पड़ेगा।

मेरी उत्सुकता यहां तुम्हें पूजा सिखाने में नहीं है और न मैं कहता हूं--कैसे करो और कहां करो। कहां करोगे? जो भी करोगे, झूठ होगा। मंदिर जाओगे, झूठ; मस्जिद जाओगे, झूठ; गुरुद्वारा जाओगे, झूठ। ईश्वर का बोध पहले होना चाहिए, फिर मंदिर जाओ कि न जाओ, फिर जहां झुक जाओगे वहीं मंदिर है। फिर जहां मौन होकर उस परमात्मा का स्मरण करोगे, गदगद होओगे, भीगोगे--वहीं गुरुद्वारा! नहीं तो अभी तो सब गड़बड़ हो जाएगी।

कल मैं एक कविता पढ़ रहा था। तुमने कबीर का प्रसिद्ध सूत्र तो सुना ही है--

गुरु गोविंद दोई खड़े, काके लागूं पांव।

बलिहारी गुरु आपकी, गोविंद दियो बताए।।

इसको लोग दोहराते हैं। तो यह लोगों को कंठस्थ हो गया है। सूत्र प्यारा है। मगर यह मौका तुम्हें आता कहां कि गुरु गोविंद दोनों खड़े हों। पहले तो तुम किसी को गुरु ही स्वीकार नहीं करते, तो गोविंद के खड़े होने की तो बात ही दूर। मगर कल मैंने एक कविता पढ़ी, वह मुझे लगा कि ज्यादा समझदारी की है--

पत्नी प्रेयसी दोई खड़े, काके लागूं पांव।

बलिहारी गुरु आपकी, दोइन दियो बताए।।

यह मुझे ज्यादा जंचा कि यह बात ठीक है। यह जरा अनुभव की है। यह करीब-करीब सभी के अनुभव की है। कौन होगा अभागा जिसको ऐसा अनुभव न हो, पति-पत्नी सभी को यह अनुभव है। और फिर कोई मिल गए होंगे गुरुघंटाल, जिन्होंने कहा कि भैया दोनों ही के लग ले, जिसमें सार।

एक दिन मुल्ला नसरुद्दीन बहुत उदास बैठा था। मैंने पूछा, मामला क्या है? बड़े मियां, इतने उदास! क्या पत्नी ने फिर नौकरानी के साथ पकड़ लिया?

उसने कहा कि आज हद्द हो गई, आज बात और उलटी हो गई।

मैंने कहा, क्या हुआ? इससे और क्या बुरा हो गया?

उसने कहा, आज नौकरानी ने पत्नी के साथ पकड़ लिया। और पत्नी तो फिर भी थोड़ी सुसंस्कृत है, नौकरानी तो नौकरानी! उसने तो इतना हंगामा मचाया कि मुहल्ले भर को इकट्ठा कर दिया।

तुम पूछते हो, जागेश्वरः "ईश्वर को देखे बिना मैं पूजा किसकी, कैसे और कहां करूं?"

करो ही मत पूजा। अभी करोगे भी कैसे? और जो भी करोगे, झूठी होगी। इस पंचायत में पड़ना क्यों? अभी पूछो कि ईश्वर को कैसे जानूं।

इसलिए मेरा जोर ध्यान पर है, पूजा पर नहीं। क्योंकि ध्यान से ईश्वर जाना जाता है। फिर ईश्वर की जरा भी पहचान हो जाए तो पूजा तो अपने आप आती है। आती है! न सीखनी पड़ती है, न सिखानी पड़ती है। जैसे बच्चा पैदा होता है तो जानता है कैसे दूध पीए मां का। कोई सिखाना पड़ता है? अब अगर छोटे-छोटे बच्चों को, मां के पेट से पैदा हुए, पहले उनको सिखाओ कि बेटा ऐसे-ऐसे दूध पीना, ऐसे पीओगे तो ही बच पाओगे--तो बड़ी मुश्किल खड़ी हो जाए। उनको समझाने में ही महीनों लग जाएं। उस बीच में उनका खात्मा ही हो जाए। वे तो जन्म के साथ ही दूध पीने की कला लेकर पैदा होते हैं।

ऐसे ही ईश्वर के बोध के साथ पूजा अपने आप आती है। अनुग्रह का भाव आता है। पूजा और क्या है? धन्यवाद है। पूजा और क्या है? कि तूने इतना दिया, अब हम और क्या करें! झुकाते हैं तेरे चरणों में सिर। चढ़ाते हैं अपने को।

पूजा का मतलब नारियल चढ़ाना नहीं है। लोग बड़े बेईमान हैं। नारियल को देखते हैं, आदमी के सिर जैसा होता है--बाल भी हैं, दाढ़ी भी है, मूंछ भी, आंखें भी बनी होती हैं। आदमी ने तरकीब निकाल ली है--सिर तो चढ़ाता नहीं, नारियल चढ़ाता है। प्रतीक! क्योंकि आदमी की खोपड़ी जैसा लगता है। नारियल को कहते भी खोपड़ा हैं। खूब धोखाधड़ी की! दिल खोल कर नारियल फोड़ते हैं! और वे भी सड़े नारियल! तुम्हारी खोपड़ी के ही प्रतीक होते हैं। क्योंकि मंदिरों में मैं नहीं समझता कि कोई ठीक नारियल लेकर जाता हो।

सड़े नारियलों की दुकान ही अलग होती हैं, जहां पूजा के लिए नारियल बिकते हैं, अक्सर मंदिरों के सामने ही होती हैं। वहां सदियों से वही के वही नारियल बिक रहे हैं--बड़े प्राचीन नारियल! जितने प्राचीन उतने ही बहुमूल्य। जैसे कि शराब जितनी पुरानी होती है उतनी ही कीमती होती है--ऐसे ही पूजा के नारियल। जमाने भर में नारियलों के दाम बदल जाते हैं, मगर पूजा के नारियल के दाम बदलते ही नहीं, उतने के ही उतने। क्योंकि उनमें भीतर तो कुछ है ही नहीं, किसी और काम के वे हैं नहीं; उनका कुल काम इतना है कि चढ़ाया जाना। दिन भर तुम चढ़ाओ, रात पुजारी वापस दुकानदार को दे देता है। सुबह फिर वे ही नारियल बिकने लगते हैं। नारियल घूमते रहते हैं। संसार का चक्र--दुकान से मंदिर, मंदिर से दुकान; दुकान से मंदिर, मंदिर से दुकान--चलता रहता है! पुजारी में और दुकानदार में सांठ-गांठ, नारियल यहां से वहां होते रहते हैं; जैसे कोई फुटबाल का खेल हो! और तुम ढोते रहते हो--इधर से उधर, इधर से उधर। सड़े नारियल! मगर एक लिहाज से बिल्कुल तुम्हारी खोपड़ी के प्रतीक।

चढ़ाना है अपना सिर। चढ़ाना है अपना अहंकार। वही तुम्हारा सिर है। वह तो न चढ़ाओगे। झूठे ईश्वरों के सामने झूठे ही प्रतीक चढ़ाए जाएंगे। फूल तोड़ लोगे वृक्षों से। वे भी दूसरों के! पड़ोस में किसी के फूल तोड़ लोगे। सुबह से लोग निकलते हैं अपनी-अपनी छोटी-छोटी डालियां लेकर, चले पूजा के फूल इकट्ठे करने। दूसरों की दीवालों पर से चढ़-पढ़ कर, दूसरों की फेंसिंग पर से चढ़-चढ़ कर पूजा के फूल। तो उनको कुछ कह भी नहीं सकते--पूजा के फूल! धार्मिक आदमी से कौन झंझट ले! धार्मिक आदमी पुराने दिनों से ही खतरनाक होते रहे हैं। दुर्वासा होते हैं ये लोग। एकदम अभिशाप दे दें, कुछ का कुछ कर दें। ले जाने दो! तो लोग अपनी फेंसिंग के आस-पास लगाते भी ऐसे पौधे हैं कि ले जाओ तो ले जाओ। चांदनी के फूल लगाते हैं--न सुगंध, न कुछ, देखने भर के फूल। और खूब लगते हैं! कितने ही तोड़ो, कोई फिक्र नहीं। बस चांदनी के फूल लोग लगा देते हैं फेंसिंग के पास। सो पूजा की डालियां लेकर लोग जब आते हैं तो अपनी भर-भर कर डालियां ले जाते हैं। चढ़ा आए। फूल भी उधार! वे भी खुद न उगाए। खुद भी उगाते तो भी उधार होते। क्योंकि वे पौधों के होते, तुम्हारा क्या होता?

अपने जीवन के फूल चढ़ाने हैं। अपने बोध के फूल, अपने प्रेम के फूल, अपने आनंद के फूल, अपने हंसी के फूल, अपने आंसुओं के फूल--इनको चढ़ाना है।

पर अभी बचो, अभी पूजा की बात न छेड़ो, जागेश्वर। अभी जागो। किसने तुम्हें यह प्यारा नाम दे दिया--जागेश्वर! जरा अपने नाम का ख्याल तो करो! कुछ अपने नाम की इज्जत भी रखो! अभी जागो। साक्षी बनो। चैतन्य को उभारो। ईश्वर का थोड़ा बोध होने दो।

होता है बोध निश्चित। जो जाग गया, उसे बोध होता ही है। अपरिहार्यरूपेण होता है। और जब बोध होता है तो पूजा अपने आप पैदा होती है, करनी नहीं पड़ती। और जब पूजा स्वस्फूर्त होती है, उसका सौंदर्य अनूठा है।

आखिरी प्रश्नः ओशो,

इतना आनंद शुरू हो गया है कि कुछ समझ में नहीं आता, बस यही लगता है--

आप जो मेरी पेशानी में हाथ लगा देते हैं।
सैकड़ों दीप मुहब्बत के जला देते हैं।।
दिल में आनंद का फूल महक उठता है।
मीरा के गीत जब मुझ को सदा देते हैं।।
हम कलमकार हैं सदाकत के "आनंद"।
जेरे खंजर भी अनलहक की सदा देते हैं।।
जमाने में रहे हैं वही फनकार जिंदा।
फिक्र को जो एक नई तर्जे-अदा देते हैं।।

आनंद मोहम्मद, देखता हूं तुम्हारी आंखों में, आने लगी उसकी छबि! दर्पण धूल से मुक्त होने लगा। प्रसन्न हूं तुमसे। प्रफुल्लित हूं तुमसे। शुभ हो रहा है। पहली-पहली किरण उतरने लगी।

प्रीतम छबि नैनन बसी, पर छबि कहां समाय।
भरी सराय रहीम लखि, पथिक आप फिर जाय।।

आज इतना ही।